प्रद्युम्नचरित्रका कथाप्रबन्ध ।

१ प्रथमसर्ग—प्रस्तावना, जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, राजगृहनगर, और उसके राजा श्रेणिकका वर्णन, विपुलाचलपर वीर भगवानके समवसरणका आगमन, राजाका बन्दनाके लिये जाना, भगवानकी स्तुति करना, धर्मोपदेश सुनना, प्रद्युम्नकुमारका चरित्र सुननेकी इच्छा करना, और चरित्रका प्रारंभ होना । (पृष्ठ १ से ४ तक)

२ द्वितीयसर्ग—सौराष्ट्रदेशका वर्णन, द्वारिका वर्णन, श्रीकृष्ण तथा सत्यभामाका वर्णन । (पृष्ठ ४ से ७ तक)

३ तृतीयसर्ग—श्रीकृष्णकी राजसभामें नारदका आगमन, परस्पर कुशलप्रश्न, श्रीनेमिजिनका आगमन, नारदका अन्तःपुरमें जाना, सत्यभामाके द्वारा अपमानित होना, वदला लेनेकी चिन्ता करना, कुंडनपुरके राजा भीष्मकी सभामें जाना, फिर उसके अन्तःपुरमें जाकर रुक्मिणीको देख सन्तुष्ट होना, उसे "श्रीकृष्णकी पट्टरानी हो" ऐसा आशीर्वाद देना, रुक्मिणी की भुआका श्रीकृष्णके विषयमें प्रश्न करना, नारदजीका श्रीकृष्णका प्रताप वर्णन करना, रुक्मिणीका शंका करना कि, "मुझे तो शिशुपाल राजाको देना कही है" भुआका यह कहना कि, "अतिमुक्तक मुनिने भी तुझे श्रीकृष्णकी पट्टरानी होनेके विषयमें भविष्य कहा था, सो तू निश्चयसे उन्हींकी रानी होगी।" यहां श्रेणिकका प्रश्न करना, उत्तरमें गौतमस्वामीका "रूप्यकुमारका शिशुपालकी सहायताके लिये लड़ाईमें जाना तथा रुक्मिणीका वाग्दान कर आना" आदिका वर्णन करना, नारदका रुक्मिणीके हृदयमे श्रीकृष्णको ठसाके कैलास पर्वतपर जाना, वहां रुक्मिणीका चित्रपट खींचकर श्रीकृष्णजीकी सभामें जाना, और चित्र दिखाना, उसे देखकर श्रीकृष्णका व्याकुल होना, चित्रसुन्दरीका वृत्तान्त जानकर उसे प्राप्त करनेकी चिन्ता करना, शिशुपालके साथ विवाह होनेकी तयारी देखकर रुक्मिणीका श्रीकृष्णजीके पास दूत भेजना, उसके द्वारा सब वृत्तान्त जानकर श्रीकृष्ण और बलदेवका कुंडनपुर जाकर प्रमद उद्यानमें ठहरना । (पृष्ठ ७ से १६ तक)

४ चतुर्थसर्ग—नारदका शिशुपालके यहां जाकर कहना कि, तुम्हारी जन्मपत्रीमें तुम्हें कष्ट होना मालूम पड़ता है, इससे शंकित होकर शिशुपालका कुंडनपुरको सेनासहित जाना, वहां रुक्मिणीका कामदेवकी पूजाको प्रमद उद्यानमें आना, श्रीकृष्णका उसको रथमें विठाकर ले चलना, और शिशुपालको उसे छीननेके लिये आव्हानन करना, शिशुपालके साथ घनघोर युद्ध, शिशुपालका वध, रूप्यकुमार का नागपाससे बांधना, फिर रुक्मिणीकी प्रार्थनासे उसको बंधमुक्त करना, रैवतक गिरपर रुक्मिणी कृष्णका पाणिग्रहण होना. प्रवेश, नगरकी स्त्रियोंकी चेष्टायें, श्रीकृष्णका रुक्मिणीपर अत्यन्त आसक्त होना, सत्यभामाका दुखी होना, श्रीकृष्णके

अनेक लीलाओंसे चिढ़ाया जाना, रुक्मिणीका देवी बनना, सत्यभामाका उसमें वर मांगकर लज्जित होना, कुरुदेशके राजा दुर्योधनका परस्परकी संतानके आगामी विवाहसम्बन्धके विषयमें दूतके द्वारा संदेशा आना और उसका स्वीकार होना। (१६ से २७)

५ पंचमसर्ग—सत्यभामा और रुक्मिणीका प्रतिज्ञाबद्ध होना कि, "जिसके संतान पहले होगी उसके लड़केके विवाहमें जिसके नहीं होगी, उसके सिरके केश मुंडाये जावेंगे।" दोनोंके गर्भस्थित होना, रुक्मिणीको छह स्वप्न होना, पतिसे उनका फल सुनना कि, तेरे मोक्ष गामी पुत्र होगा, रुक्मिणीके प्रद्युम्नका और सत्यभामाके भानुकुमारका जन्म होना, कृष्णजीके पास पहले रुक्मिणीके पुत्रका समाचार पहुचना, पुत्रोत्सव मनाया जाना, एक असुरके द्वारा प्रद्युम्नका हरण होना, और खदिरा अटवीकी एक शिलाके नीचे दबाया जाना, वहां मेघकूटनगरके विद्याधर राजा कालसंवरका स्त्रीसहित आना, शिलाके नीचेसे प्रतापी पुत्रको उठाना, वहींपर उसे पानकी पीक से राजतिलक करना, अपने नगरमें ले जाना, रानीके गूढ़गर्भ था, ऐसा कहकर जन्मोत्सव करना, और प्रद्युम्नका पालन पोषण होना। (२७ से ३५ तक)

६ षष्ठसर्ग—द्वारिकामें रुक्मिणी श्रीकृष्ण आदिका शोक करना, मंत्रियोंका तथा नारदजीका धैर्य धारण कराना, नारदजीका पुत्रकी तलाशमें निकलना, विदेहक्षेत्रकी पुंडरीकिणी नगरीमें सीमंधरस्वामीके समवसरणमें जाना, स्तुति करना, नारदके छोटे शरीरको देखकर पद्मनाभि चक्रवर्तीका चकित होना, उसके विषयमें प्रश्न करना, तीर्थनाथकी दिव्यध्वनिमें भरतक्षेत्रका, श्रीकृष्णका, प्रद्युम्नके हरे जानेका, कालसंवरके यहां पहुचनेका, वहांसे लौटकर द्वारिकामें आने आदिका वर्णन होना, और फिर प्रद्युम्नके पूर्वभवका वृत्तान्त कहा जाना, उसमें मगधदेशके शालिग्रामके सोमदत्त ब्राह्मणके अग्निभूति वायुभूति पुत्रोंका नन्दिवर्धनके शिष्य सात्विकी मुनिसे विवाद करना, सात्विकीमुनिका दोनोंके पूर्वभवका तथा प्रवरकिसानके पुनर्जन्मका वृत्तान्त प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखाना, उससे लज्जित तथा क्रोधित होकर ब्राह्मणपुत्रोंका मुनिराजको मारनेका प्रयत्न करना, क्षेत्रपालद्वारा कीलित होना, मुनिराजके कहनेसे बंधमुक्त होना, धर्मका स्वरूप सुनकर जैनधर्म धारण करना, और अन्तमें समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्गमें उत्पन्न होना। (३५ से ५३ तक)

७ सप्तमसर्ग—कौशल देश तथा अयोध्या नगरीका वर्णन, अयोध्या के समुद्रदत्त शेठ की धारणी स्त्रीके गर्भ से अग्निभूति वायुभूतिके जीवोंका जन्म लेना, महेन्द्रसूरि मुनिका आगमन, राजा अरिंजयका वन्दनाको जाना, धर्मोपदेश सुनना, राजाका समुद्रदत्तसहित दीक्षित होना, शेठ के पुत्रोंका गृहस्थधर्मका व्याख्यान सुनना, गृहस्थोंके बारह व्रत धारण करना, एक चांडाल तथा कुत्ती को देखकर उनपर मोह करना, फिर उन्हें मुनि के द्वारा अपने पूर्व जन्म के माता पिता जानकर उपदेश देना, व्रत ग्रहण कराना, अन्त में मरकर चांडाल का देव होना, तथा कुत्ती का राज्यकन्या होना, राजकन्याका स्वयंवरमंडपमें उसी देव द्वारा प्रतिबोधित होकर दीक्षा लेलेना, शरीर छोड़कर स्वर्ग में देव होना और शेठ के पुत्रों का भी सन्यासमरण करके सौधर्मस्वर्गमें देव होना। (५३ से ६१)

प्रस्तावना ।

(पहली आवृत्ति पर से ।)

प्रद्युम्नचरित्र मूलग्रन्थ जिसका यह हिन्दी अनुवाद पाठकोंके साम्हने उपस्थित है, श्री सोमकीर्ति आचार्यका बनाया हुआ है। ग्रन्थके अन्तमे आचार्य महाराजने जो प्रशस्ति लिखी है, और जिसका अनुवाद इस पुस्तकके अन्तमें दिया है, उसमें उनकी गुरुपरम्पराका तथा ग्रन्थ रचनेकी तिथिका स्पष्ट उल्लेख किया है, इसलिये यहां उस विषयमें विशेष कुछ लिखनेकी आवश्यकता नही दिखती है।

मूलग्रन्थकी संस्कृत बहुत ही सीधी साधी है। उसके पढ़नेसे यह मालूम होता है कि, ग्रन्थकर्त्ताकी यह पहली ही रचना होगी, जो बहुत करके कविताका अभ्यास करनेके अभिप्रायसे की गई होगी। क्योंकि इसमें काव्यके जितने गुण चाहिये, उतने नहीं दिखलाई देते हैं। अन्य पुराणग्रन्थों सरीखा अर्थगाम्भीर्य, सौन्दर्य्य, तथा शब्दोंका गठन इसमे नहीं है। तौ भी इस ग्रन्थका कथाप्रबन्ध ऐसा सुन्दर तथा चित्ताकर्षक है कि, पढ़नेवालोंको कवित्वकी इस त्रुटिपर ध्यान देनेका अवकाश ही नहीं मिलता है। यही कारण है कि, इस ग्रन्थका जैनसमाजमें आशासे अधिक प्रचार हो रहा है। कथाप्रबन्धको देखकर ऐसा भी अनुमान होता है कि, ग्रन्थकर्त्ताने किसी आदर्श ग्रन्थके कथाक्रमका तथा वर्णनशैलीका अनुकरण करके अपने शब्दोमे—अपनी सरल भाषामें इसकी रचना की है।

इस ग्रन्थके कर्त्ता काष्ठासंघी हैं, इसलिए इसमें कहीं कही मूलसंघी कथा-ग्रन्थोंकी अपेक्षा कुछ भेद मालूम होता है, परन्तु वह विशेष उल्लेख करनेके तथा विचार करनेके योग्य नहीं है।

इस ग्रन्थके प्रारंभके ८५ पत्रोंका* (अनुमान आधे ग्रन्थका) अनुवाद सिवनी निवासी श्रीयुक्त बाबू बुद्धमलजी पाटणीका किया हुआ है, जो कि इस समय इन्दौरकी जैन पाठशालामें अध्यापक हैं, और अंग्रेजी तथा संस्कृतके विद्वान् हैं। और शेष भागका अनुवाद उक्त बाबू साहबके बम्बई छोड़कर चले जानेसे तथा अन्य भी कई कारणोंसे मैंने किया है।

प्रद्युम्नचरित्रकी एक भाषावचनिका भी किसी विद्वानकी बनाई हुई है। परन्तु मूलग्रन्थ सरल होनेसे तथा वचनिकामें अनेक स्थानोंमे प्रमाद होनेसे नवीन अनुवाद करना ही उचित समझा गया। हमको उक्त भाषा-वचनिकाके बड़े भारी प्रमादका जो एक स्थान बाबू बुद्धमलजीके द्वारा मालूम हुआ है, अपने विद्वान पाठकोंको उसके देखनेके लिये हम आग्रहके साथ प्रार्थना करते हैं। चौथे सर्गके ७३ वें श्लोकसे लेकर ८४ तकके श्लोक वचनिकासे मिलाकर देख जाइये, जिनमें संध्याका वर्णन किया गया है। बल्कि परीक्षकोंसे तो

* इस संस्करण के अनुसार ८२ पत्रों का।

हमारा यह निवेदन है कि, वे सम्पूर्ण वचनिकाको मूलसे मिलाकर देखें।

इस ग्रन्थके पूर्वार्द्धका अनुवाद केवल एक ही मूलप्रतिपरसे किया गया है और शेष भागका अनुवाद दो प्रतियोंपरसे किया गया है। परन्तु दोनों ही प्रतियां अशुद्ध थीं। इस लिये बहुत परिश्रम करनेपर भी अनेक स्थान जैसे चाहिये, वैसे सन्देहरहित नहीं हो सके हैं।

भाषाकी सुन्दरता नष्ट नहीं होने पावे, इस ख्यालसे मूलग्रन्थका अनुवाद शब्दशः न करके कुछ स्वतंत्रताके साथ किया गया है। तौ भी मूल ग्रन्थका कोई भाव नहीं छोड़ा गया है। बल्कि कहीं कहीं योग्य समझकर अभिप्राय स्पष्ट करनेके लिये अपनी ओरसे भी थोड़ा बहुत बढ़ा दिया गया है।

जहा तक बना है, इस ग्रन्थके अनुवादकार्यमें परिश्रम करनेमें कमी नहीं की गई है, तौ भी बहुत कुछ भूलें रह जानेकी संभावना है। उनके लिये हम पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं। अलमतिविस्तरेण।

चन्दावाडी–बम्बई।
श्रावणकृष्णा ३०
श्रीवीरनि० स० २४३५

विद्वानोंका सेवक—
नाथूराम प्रेमी
देवरी (सागर) निवासी।

८ अष्टमसर्ग—कौशलदेशके राजा पद्मनाभिकी रानी धारिणी के उदर से उक्त दोनों देवोंका स्वर्गसे चयकर जन्म लेना, उनका मधु कैटभ नाम होना, पद्मनाभका दीक्षा लेना, मधुका राजा और कैटभका युवराज होना, मधुका शत्रुदमन के लिये सेनालेकर निकलना, मार्गमें बटपुर के राजा हेमरथके यहां ठहरना, उसकी स्त्री चन्द्राभाका आरती उतारना, मधुका मोहित होकर काम से अतिशय व्याकुल होना, मंत्रियों के समझाने से कठिनाई से लड़ाई को जाना और शत्रुको जीत कर नगर को लौट आना, फिर बसन्तोत्सव करके छल से राजा हेमरथको रानी सहित बुलाना, सब राजाओं के साथ हेमरथको विदाकर देना, उसकी रानी को रख लेना, पीछे छलबलसे उसको अपनी प्यारी बनाकर भोगमग्न होना, राजाहेमरथ का स्त्रीहरणसे पागल होकर गली गली में मारा मारा फिरना, रानी चन्द्राभाका उसे देखकर दुखी होना, एक परस्त्री गमन करने वाले को शूलीपर चढ़ाने की आज्ञा देते समय चन्द्राभाका राजामधु से अपने विषय में प्रश्न करना कि, "मेरे साथ आपने क्या किया है ?" इससे मधुका मुनि होना, चन्द्राभाका अर्जिका होना, मधुका तप करके सोलहवें स्वर्ग में देव होना, चन्द्राभाका उसकी देवांगना होना, फिर वहां से चयकर मधुके जीवका रुक्मिणी के गर्भसे प्रद्युम्नकुमार होना, और चन्द्राभाका कालसंवर की रानी कनकमाला होना, हेमरथ का चिरकाल तक भ्रमणकरके प्रद्युम्नका हरण करने वाला धूमकेतु असुर होना, सीमंधर स्वामीके द्वारा यह वृत्तान्त जानकर नारदका प्रसन्न होकर कालसंवरके यहां जाना, वहां प्रद्युम्नको देखकर द्वारिका आना और रुक्मिणीको सब वृत्तान्त सुनाना। (६१ से ७६)

९ नवमसर्ग—कालसंवरके यहां प्रद्युम्नकुमारका प्रौढ़ होना, उससे कालसंवरके अन्य ५०० पुत्रोंका ईर्षा करना, नानाप्रकारके मारनेके उपाय करना, परन्तु उनसे प्रद्युम्नकुमारको उलटा लाभ होना, सोलह भयंकर स्थानोंसे उसका सोलह लाभ प्राप्त करना, लाभ प्राप्तकरके कनकमालाके पास जाना, कनकमालाका उसपर आसक्त होना और अनुचित प्रेमकी प्रार्थना करना, प्रद्युम्नका उसे माता कहकर समझाना, फिर वरसागर मुनिके पास जाकर, उनसे कनकमालाके आसक्त होनेका कारण पूछना, उनके द्वारा अपनेको मधुका और कनकमालाको चन्द्राभाका जीव जानना, फिर मातासे बियोग होनेका कारण पूछना, मुनिका रुक्मिणीके पूर्वभव कहना, प्रद्युम्नका कनकमालाके पास फिर जाना और छल करके उससे विद्यायें सीख लेना, कनकमालाका प्रद्युम्नकी झूठी शिकायत करना, कालसंवरका पुत्रोंको प्रद्युम्न के विरुद्ध भड़काना पुत्रोंका प्रद्युम्नको जलक्रीड़ाके लिये ले जाना, तथा मारनेकी तजवीज करना, परन्तु अभाग्यसे उनका स्वयं बावड़ीमें पड़ना, पुत्रोंको बावड़ीमे कैद सुनकर कालसंवरका स्वयं सेना लेकर चढ़ आना, लड़ाईमें परास्त होना, बीचमें नारदजीका आ जाना, कालसंवरका लज्जित होना, कालसंवरके पुत्रोंका बंधमुक्त होना। (७६ से ९६)

१० दशमसर्ग—कनकमाला तथा कालसंवरसे आज्ञा लेकर प्रद्युम्नकुमारका अपने बनाये हुए विमानपर नारदसहित द्वारिकाको रवाना होना, मार्गके अनेक दृश्य देखते हुए दुर्योधनकी सेनाके डेरेके समीप पहुंचना, नारदके द्वारा कौरव पांडवोंका संक्षिप्त चरित्र सुनना,

विमानसे उतरकर भील बनना तथा कौरवोंका लड़ाईमें परास्त करके उदधिकुमारीका हरण करना, द्वारिकामे पहुंचकर सत्यभामाके बन बगीचे वापिका आदिका बरबाद करना, भानुकुमार, वसुदेव, बलदेव आदिको नाना विक्रियायें करके चिढ़ाना, सत्यभामाके घरकी सारी भोजनसामग्री खाकर वमनकर देना, क्षुल्लकका वष धारणकर रुक्मणी माताके साथ विनोद करना, सत्यभामाकी दासियोंके नाक कान काटना, बाल्यरूप धारणकर माताको बाललीला दिखाना, बलदेवके नौकरोंको कीलित करना, सिंह बनकर बलदेवको जमीनपर गिराना, रुक्मिणीको लेकर आकाशमें जाना, तथा श्रीकृष्ण आदि को लड़ाईके लिये आव्हानन करना, और घनघोर युद्धकी तयारी होना। (९६ से १३०)

११ एकादशसर्ग—प्रद्युम्नकी मायामयी सेनाके साथ यदुवंशीसेनाकी लड़ाई होना, पांडव बलदेवादि शूरवीरोंका मारा जाना, बाप बेटेका युद्ध होना, मल्लयुद्धके लिये तयार होते ही नारदका बीचमे आकर सुलह कराना, प्रद्युम्नका मृत सेनाको जिलाना, सबका प्रसन्न होकर प्रद्युम्नसे मिलना, द्वारिकामें प्रवेश करना, श्रीकृष्णका कालसंवर कनकमालाको बुलाना और उनके समक्षमें प्रद्युम्नका उदधिकुमारी आदि पांचसौ आठकन्याओंके साथ विवाह कर देना, कालसवर आदिको विदा करना, और भानुकुमारका अनेक कन्याओंके साथ विवाह होना। (१३० से १३८)

१२ द्वादशसर्ग—कैटभके जीवका जो कि सोलहवे स्वर्गमें इन्द्र था, तीर्थंकरके द्वारा यह जानना कि "तू श्रीकृष्णका पुत्र होगा" इन्द्रका श्रीकृष्णके पास जाकर यह वृत्तान्त कहना, श्रीकृष्णका सत्यभामाके गर्भमें इन्द्रके जीवको स्थापित करनेका विचार करना, नियत तिथिको प्रद्युम्नका जाम्बुवतीको सत्यभामा बनाकर श्रीकृष्णके पास भेजना, जाम्बुवतीका गर्भधारण करना, सत्यभामाका पीछे पहुंचना, और किसी दूसरे जीवका उसके गर्भमे आना, जाम्बुवतीके गर्भसे शम्बुकुमारका और सत्यभामाके उदरसे सुभानुकुमारका जन्म होना, सर्वकलाकुशल तथा युवा होनेपर एक दिन दोनों कुमारोंका जुआ खेलना, प्रद्युम्नकी सहायतासे शम्बुकुमारका जीतना, सुभानुकी माता सत्यभामाको निर्धन कर देना, शम्बुकुमारका राज्य पाकर दुराचारी होना, इस अपराधमे उसे देश निकाला होना, प्रद्युम्नकी सहायतासे शम्बुकुमारका स्त्रीरूप धारण करके सत्यभामाकी और उसके पुत्रकी फजीहत करना, श्रीकृष्णके द्वारा शम्बुकुमारका अपराध क्षमा होना, फिर दोसौ कन्याओंके साथ शम्बुकुमारका विवाह होना, प्रद्युम्नका नाना प्रकारके भोग भोगना। (१३८ से १४७)

१३ त्रयोदशसर्ग—श्रीकृष्णकी सभामे योद्धाओंके बलकी चर्चा होना, नेमिनाथ भगवानके सबसे बलवान समझे जानेपर श्रीकृष्णका परीक्षाके लिये उठना, नेमिकी अंगुलीपर श्रीकृष्णका झूलना, श्रीकृष्णका अपने राज्यके विषयमे चिन्तित होना, रुक्मिणी आदि रानियोका नेमिको बनक्रीड़ाके लिये ले जाना, वहा जाम्बुवतीके गर्वयुक्त वचनोंसे नेमिका रुष्ट होना और नेमिनाथका नागशय्यापर आरूढ़ होकर

धनुष चढ़ाना, शंख बजाना, श्रीकृष्णका स्वयं जाकर शान्त करना, नेमिनाथके विवाहकी तयारी होना, जूनागढ़में पशुओंको बँधे देखकर वैराग्य प्राप्त करके घर लौट आना और गिरनार पर्वतपर जाकर जिनदीक्षा लेना, तपकल्याणक, तथा ज्ञानकल्याणक होकर समबसरणकी रचना होना, राजीमती आदि पांच हजार स्त्रियोका दीक्षा लेना, भगवानका धर्मोपदेश करना, नाना देशोंमें विहार करना, और भद्दिलपुर नगरमें श्रीकृष्णके छह पुत्रोंका दीक्षा लेना। (१४७ से १५३)

१४ चतुर्दशसर्ग—नेमिनाथ भगवानका समवसरण गिरनार पर्वतपर आनेसे श्रीकृष्ण प्रद्युम्न आदिका बन्दनाके लिये जाना, श्रीकृष्णका भगवानकी स्तुति करना, भगवानका धर्मोपदेश होना, गजकुमारका विरक्त होकर दीक्षा लेना, घोर तपश्चरण करना, अपने श्वसुरके किये हुए उपसर्गसे कंठगतप्राण होना, परन्तु परिणाम चलित न होना, आखिर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षको सिधारना, बलदेवका नेमिभगवानसे प्रश्न करना कि, "द्वारावतीका नाश और श्रीकृष्णजीका मरण कब होगा ?" उत्तर सुनकर सबका चिन्तित होना, द्वीपायनका तथा जरत्कुमारका विदेशगमन करना। (१५४ से १५७)

१५ पंचदशसर्ग—प्रद्युम्नकुमारका विरक्त होना, पिता, माता, स्त्रियोंको संबोधित करके भगवानके समवसरणमें जाकर जिनदीक्षा ग्रहण करना, भानुकुमारका भी दीक्षित होना, और सत्यभामा, रुक्मिणी जाम्बुवती आदिका राजीमतीके निकट अर्जिका हो जाना। (१५७ से १६१)

१६ षोडशसर्ग—प्रद्युम्नकुमारका घोर तप करना, ध्यानके योगसे केवलज्ञानकी प्राप्ति करना, नेमिभगवानके साथ नाना देशोंमें विहार करना, द्वीपायन मुनिका द्वारिकाके बाहर आकर तप करना, शम्बुकुमार आदि राजपुत्रोंका मद्ययुक्त जल पीकर उन्मत्त होना, द्वीपायनकी दुर्दशा करना, मुनिके क्रोधसे द्वारिकाका भस्म होना शम्बुकुमार, भानुकुमार तथा अनुरुद्धकुमारका दीक्षा लेकर दुस्सह तप करना और नेमिनाथ तथा प्रद्युम्नके सहित मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त करना, अन्तमंगल, शास्त्रमहात्म्य, प्रशस्ति आदि। (१६१ से १६७)



श्रीसकलपरमात्मने नमः।

श्रीप्रद्युम्नचरित्र।

(अनुवादकका मङ्गलाचरण।)

श्रीअरहन्त जिनिंदको, वन्दों मन वच काय। छयालिस गुन जिनमें लसैं, प्रातिहार्य सुखदाय ॥ १ ॥
अष्टकर्मको नष्ट करि, सिद्ध अष्ट गुणसंग। अष्टमधरा विराजते, नमों नाथ अष्टांग ॥ २ ॥
पंचाचार प्रचारते, मुनिजनशासक सूरि। राजत गुण छत्तीसयुत, नमों अवर गुणभूरि ॥ ३ ॥
द्वादशाङ्गवाणी विमल, पारंगत उवझाय। गुण पचीसयुत राजते, वन्दों शीस नवाय ॥ ४ ॥
अट्ठाइस गुणधारि जो, सर्वसाधु कहलाहिं। धरैं दृष्टि सम सबनिपर, जयवन्तो जगमाहिं ॥ ५ ॥
हे जिनवाणी भगवती, निवसो मम उर आय। जातैं बुद्धिविकाश हो, मोह तिमिर मिट जाय ॥ ६ ॥
सोमकीर्तिआचार्यकृत, श्रीप्रद्युम्नचरित्र। मन्दमती भाषा करन, उमगानों मैं चित्र ॥ ७ ॥

प्रथमः सर्गः

मूल ग्रन्थका मंगलाचरण ।

श्रीमतं सन्मतिं नत्वा नेमिनाथं जिनेश्वरम् । मदनो विश्वजेतापि बाधितुं नो शशाक यम् ॥ १ ॥
वर्द्धमान जिनं नत्वा वर्द्धमानं सतामिह । यद्रूपदर्शनाज्जातः सहस्रनयनो हरिः ॥ २ ॥
प्रणम्य भारतीं देवीं जिनेन्द्रवचनोद्गताम् । चरितं कृष्णपुत्रस्य वक्ष्ये सूत्रानुसारतः ॥ ३ ॥

अर्थात्—अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरङ्गलक्ष्मी तथा समवसरणादिरूप बाह्यलक्ष्मीसंयुक्त श्रीमहावीरस्वामी और श्रीनेमिनाथस्वामीको जिन्हें कि त्रिलोकविजयी कामदेव भी कुछ बाधा न कर सका, नमस्कार करके, तथा सत्पुरुषोंकी पुण्यराशिको बढ़ानेवाले, जिनके दर्शनमात्रसे सौधर्म इन्द्रके हजार नेत्र हो गये ऐसे, श्रीवर्द्धमानस्वामीको नमस्कार करके, तथा श्रीजिनेन्द्र मुखसे प्रगट हुई श्रीसरस्वती देवीको नमस्कार करके, मैं पूर्व आचार्योंके कहे अनुसार श्रीकृष्णनारायणके पुत्र प्रद्युम्नकुमारका चरित्र कहता हूँ ॥ १–३ ॥

यह चरित्र श्रीमहासेनादि आचार्योंने जिसप्रकार कहा है, उस प्रकारसे मैं अल्पमति कैसे कह सकता हूँ ? तथापि उनके चरणकमलोंको प्रणाम करनेसे मुझे जो पुण्यकी प्राप्ति हुई है, उसके द्वारा श्रीप्रद्युम्नचरित्र ग्रन्थके रचनेमें मुझे अवश्य ही कुछ परिश्रम न होगा ॥ ४–५ ॥

सदाकाल निर्मल चित्तके धारक, परनिन्दाकरनेमें मूक (गूंगे), और सर्व प्राणियोंके उपकार करनेवाले सज्जनोंको मेरा वारम्वार नमस्कार है ॥ ६ ॥ साथ ही दूसरोंके दूषण निकालनेमें तत्पर रहनेवाले दुर्जनोंको आशीर्वाद भी है कि, वे चिरकालतक आनन्दित रहें । क्योंकि उनके प्रसादसे लोग चतुर हो जाते हैं ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न कामदेवका चरित्र तो कहां और अल्प विषयको समझनेवाली मेरी बुद्धि कहां ? भला दोनों भुजाओंसे विस्तीर्ण और गंभीर समुद्रको तिरके कोइ पार पहुँच सकता है ? ॥ ८ ॥ विद्वानोंके साम्हने मैं मन्दबुद्धि कविता करनेकी इच्छासे उसी प्रकार उपहासका पात्र बनूंगा, जैसे ऊंचे वृक्षके फलोंको

तोड़नेकी इच्छा करनेवाला कुबड़ा (कुब्ज) मनुष्य हास्यपात्र बनता है ॥ ९ ॥ मैं व्याकरण, छन्द अलंकार, नाटकादि कुछ नहीं जानता हूँ, केवल पुण्यके उदयसे मनमें जो उत्साह उत्पन्न हुआ है, उसीसे पापका नाश करनेवाला चरित्र कहता हूँ ॥ १० ॥ श्रीजिनेंद्रदेवकी जो पूजा इन्द्रगण उत्तमोत्तम कल्पवृक्षोंके फूलोंसे करते हैं, उसे क्या मनुष्य कल्हारके (सन्ध्याको खिलनेवाले श्वेतकमल) पत्रोंसे नहीं करते हैं? करते ही हैं ॥ ११ ॥ श्रीजिनसेनादिपूज्य आचार्योंने जिस प्रकार निरूपण किया है, उसीके अनुसार मैं शक्तिहीन भी उनके चरणारविंदोंकी सेवाके प्रसादसे वर्णन करता हूँ ॥ १२ ॥

जिस चरित्रके बांचने तथा सुननेसे पापका नाश होता है, उसे सत्पुरुषोंको और विशेषकर भव्य जीवोंको अवश्य ही सुनना चाहिये ॥ १३ ॥ मैं मन्दमति यह शुभ चरित्र केवल पाप शत्रुके विनाशार्थ और पुण्यकी प्राप्तिके लिये लिखता हूँ ॥ १४ ॥ इस चरित्रको मैं भव्य जीवोंके ज्ञानकी वृद्धिके लिये, पुण्यफलका दृष्टान्त देनेके लिये, तथा बालकोंकी बुद्धिकी बढ़वारीके लिये बहुत ही सुगम रचता हूँ ॥ १५ ॥

इति प्रस्तावना ।

इस पृथ्वीतलपर जम्बूवृक्षोंके आकारसे चिन्हित एक जम्बूद्वीप नामका द्वीप है, जिसकी सुवृत्त (उत्तम वृत्तोंके धारण करनेवाले) राजाके समान वाहिनीनाथ सेवा करते हैं। जिस प्रकार राजाकी वाहिनीनाथ अर्थात् सेनापति अथवा मांडलिक राजा सेवा करते हैं, उसी प्रकार जम्बूद्वीपकी वाहिनीनाथ अर्थात् लवणसमुद्र सेवा करता है। जिस प्रकार राजा सुवृत्त अर्थात् सदाचारी है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप सुवृत्त अर्थात् गोलाकार है ॥ १६ ॥ उसमें भरतक्षेत्र नामका एक क्षेत्र है, जो सुप्रसिद्ध है तथा तीर्थंकरोंके पंचकल्याणके स्थानोंद्वारा पवित्र और पापका नाश करनेवाला एक तीर्थ ही है ॥ १७ ॥ उसमें जगत्प्रसिद्ध मगध नामका एक देश है, जो अनेक प्रकारकी वापिका (बावड़ी) कुए और सरोवरोंसे शोभायमान है ॥ १८ ॥ उस मगधदेशमें एक राजग्रह नामका नगर है, जो धरातलपर प्रसिद्ध है और जिनमन्दिरोंके द्वारा स्वर्गपुरीके समान सुन्दर है ॥ १९ ॥ उस नगरमें श्रेणिक नामका राजा राज्य करता

था, जो जगद्विख्यात, शत्रुओंका जीतनेवाला, निर्मल चित्तका धारक, विवेकी, दुष्टोंका निग्रह करनेवाला, सत्पुरुषोंकी रक्षामें दत्तचित्त, श्रावकोंके आचारका पालनेवाला और सम्यक्त्वसे शोभायमान था ॥ २०–२१ ॥ उस राजाकी चेलना नामकी एक रानी थी, जो सरल स्वभावकी धारक, अपने रूपकी सम्पत्तिसे देवांगनाओंके भी रूपको जीतनेवाली, पापसे भयभीत, अपने गुणोंसे संसारमें विख्यात, गुणोंकी खानि, सम्यक्त्ववान्, श्रावकाचारके धारणसे अतिशय निर्मल, दोनों कुलोंको विशुद्ध बनानेवाली, पतिके अत्यन्त स्नेहके भारसे मन्दगमन करनेवाली, जिनमार्गमें निपुण, और पतिव्रता स्त्रियोंके गुणोंको धारण करनेवाली थी ॥ २२–२४ ॥ उसके साथ राजा श्रेणिकने रात्रिदिवस अनेक प्रकारके सुख भोगते और आनन्दसागरमें मग्न रहते हुए कितना समय व्यतीत कर दिया, कुछ जान न पड़ा ॥ २५ ॥

एक दिन अनेक उद्यानोंवाले विपुलाचल पर्वतपर श्रीमहावीरस्वामीका समवसरण आया, जिनके चरणारविंद गणधरादि मुनीन्द्रोंसे पूजित थे, और जिनकी परमौदारिक शरीरकी शोभा अद्वितीय थी ॥ २६–२७ ॥ उस समय श्रीजिनेन्द्रके प्रभावसे वह वन फल फूलोंसे परिपूर्ण हो गया और मृगव्याघ्रादिकका स्वाभाविक वैर भी दूर हो गया। तब उपवन को विशेष विभवसहित देखकर वनका रक्षक माली चकित हो गया, और उसके कारणका विचार करता हुआ, चारों ओर भ्रमण करने लगा ॥ २८–२९ ॥ घूमते २ उसे समवसरण दिखाई दिया, जिसके दर्शनमात्रसे उसका चित्त प्रफुल्लित हो गया ॥ ३० ॥

तब मालीने बगीचेके फलपुष्प तोड़े और उन्हें लेकर वह द्वारपालकी आज्ञासे राजा श्रेणिककी सभामें गया ॥ ३१ ॥ जाते ही उसने राजाको नमस्कार किया, विनयसहित फलपुष्प भेंट किये, और हाथजोड़कर वह इस प्रकार मनोहर वचन बोला:—हे महाभाग्यशाली महाराज! आपके उपवनमें केवलज्ञान विभूषित श्रीवर्द्धमान् भगवानका शुभागमन हुआ है। उनके प्रसादसे आप चिरकाल जीओ! सर्वगुणसम्पन्न बनो! और धन धान्यसे मंडित होओ! ॥ ३२–३४॥ राजा श्रेणिक वीरभगवानका समवसरण आया जानकर तत्काल अपने सिंहासनसे उठा और जिस दिशामें श्रीभगवान विराजमान

थे, उस ओर सात पैंड़ आगे चलकर उसने भगवानको प्रणाम किया। सो ठीक ही है:—"परोक्षमें विनय करना यह सज्जनोंका लक्षण है" ॥ ३५–३६ ॥ पश्चात् अपने सुंदर सिंहासनपर बैठकर राजा श्रेणिकने बनपालको अपने सोलहों प्रकारके वस्त्राभूषण उतार कर दे दिये ॥ ३७॥ और आनन्दभेरी बजवाकर तथा बहुतसे मनुष्योंको इकट्ठे करके वह अपने परिवारसहित जिनदेवकी वंदनाके लिये चला ॥ ३८॥ समवसरणको दूरसे देखते ही उसने तत्काल हाथीसे उतरकर सम्पूर्ण राजसी ठाठको छोड़ दिया ॥ ३९ ॥ समवसरणमें जाते ही मानस्तंभके प्रभावसे उसका सर्व गर्व गलित हो गया और परम भक्तिभावसे उसके परिणाम भींज गये। उसने हाथ जोड़कर महावीर स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दीं, तथा अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार स्तवन किया,—॥ ४०–४१ ॥

"हे प्रभो! आप तीन जगतके स्वामी हो, सत्पुरुषोंकरके वंदित हो, संसाररूपी घोर समुद्रमें नावके समान हो, कामशत्रुके जीतनेवाले हो, मोह सुभटको विनाश करनेवाले हो, चिंतामणिके समान चिंतित पदार्थके दाता हो, केवलज्ञानकी मूर्ति हो, आदिपुरुष हो, परमोत्तम तेजमूर्ति हो, स्वयंभव (अर्थात्—स्वयं ही इस स्वरूपको प्राप्त होनेवाले) हो, स्वयंबुद्ध हो, स्वाभाविक आनन्दसे भरपूर हो, दुःखशोकादिके नाश करनेवाले हो, जरामरणादिसे रहित हो, सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयसे मंडित हो, मान और मायासे वर्जित हो, प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगरूपी चार वेदोंमें आपकी ही महिमा वर्णित है, ध्यानमें वा गानमें आपका ही ध्यान वा गुणानुवाद किया जाता है, कोटि सूर्यके प्रकाशके समान आपका तेज है, और कोट चन्द्रमाके उजालेके समान आपकी कान्ति है, निश्चयसे आपके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके पाप नाशको प्राप्त होते हैं, आपही लोकमें शंकर अर्थात् शान्ति के कर्ता हो, तीन लोकमें आपका ज्ञान व्याप्त है अतएव आपही विष्णु हो, परम ब्रह्मस्वरूप आत्मस्वरूप होनेसे ब्रह्मा हो, पापरूपी शत्रुको नाश करनेवाले हर अर्थात् महादेव हो, संसारबंधनसे मुक्त हो, शरणागत भव्य जीवोंके तारनेवाले हो, अनन्त चतुष्टय तथा समवसरणआदिलक्ष्मीके ईश्वर हो, तीन भवनके

स्वामी हो, धर्मचक्रके चलानेवाले हो, संसारसमुद्रमें डूबते हुए भव्य जीवोंकी रक्षा करते हो, अतएव दयासिंधु हो, भव्य जीवोंकी सुखपरम्पराको बढ़ानेवाले हो अतएव वर्द्धमान हो और जिन अर्थात् गणधरादिके ईश्वर हो, अतएव जिनेश्वर हो ॥ ४२–४९ ॥" इस प्रकार जगद्गुरु श्रीमहावीरस्वामीकी स्तुतिकरके राजा श्रेणिकने भक्तिभावसे अष्टाङ्ग नमस्कार किया, जल, गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलरूप अष्टद्रव्यसे विधिपूर्वक जिनेन्द्रकी पूजा की और बारह सभामें जो मनुष्योंका कोठा था, उसमें जाकर बैठ गया ॥ ५० ॥

पश्चात् जिनेश्वरका धर्मोपदेश प्रारंभ हुआ,—धर्म दो प्रकारका है, एक सागारधर्म और दूसरा अनागार, धर्म। गृहस्थियोंके धर्मको सागारधर्म कहते हैं और यतियोंके धर्मको अनागारधर्म कहते हैं। यतिधर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है, और गृहस्थधर्मसे स्वर्गादिककी प्राप्ति होती है। अनागार अर्थात् यतियोंके चारित्रके तेरह भेद हैं,—पंचमहाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह; पंचसमिति अर्थात् इर्या, भाषा, एषणा, आदान, निक्षेपण और तीनगुप्ति अर्थात्, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। इसके पीछे यतियोंके विख्यात अट्ठाईस मूलगुण और असंख्यात उत्तरगुण भी कहे, जो मोक्षके साधक हैं। पश्चात् गृहस्थोंके बारहव्रत कहे, जो इस प्रकार हैं:—पंचअणुव्रत, तीनगुणव्रत (दिग्व्रत, भोगोपभोगपरिमाण, अनर्थदण्डत्याग) और चार शिक्षाव्रत (देशावकाशिक सामायिक, प्रोषधोपवास, वैयावृत्य) और फिर श्रावकोंके अष्टमूलगुणोंका अर्थात् ऊंबर, कठूम्बर, (अंजीर) बड़, पीपर, पाकर इन *पंचोदुम्बरोंका तथा मद्य मांस और मधु इन तीन मकारोंके त्याग करनेका वर्णन किया। इस प्रकार गृहस्थधर्मको कहा। यह गृहस्थधर्म स्वर्गादि सुखका दाता है (और परम्परासे मोक्षका साधक है) इसलिये भव्यजीवोंको अपने हिताहितका विचारकरके पहले इसीका पालन करना चाहिये। श्रेणिक राजाको धर्मका स्वरूप सुननेसे अपार आनन्द हुआ। क्योंकि "भव्यात्माओंको धर्मकथासे ही संतोष

* अनेक आचार्योंने पंचोदुम्बरके स्थानमें पंचअणुव्रतका भी ग्रहण किया है।

होता है" ॥ ५८-५९ ॥

उसी समय प्रस्तावना करनेका प्रसंग पाकर राजा श्रेणिकने अपने हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया कि, हे भगवन्! कृष्ण नारायणके पुत्र प्रद्युम्नका चरित्र सुननेकी मेरी अभिलाषा है। वह कहां उत्पन्न हुआ, उसे शत्रु कैसे हर ले गया, उसने कैसे २ धर्मकृत्य किये, उसकी किस २ प्रकारकी श्रेष्ठ विभूति हुई, तथा वह किस प्रकार युक्ति, शक्ति, पराक्रम, धैर्यका धारक हुआ, आपके प्रसादसे मैं ये सब बातें सुनना चाहता हूं। आप संदेहरूपी अंधकारको दूर करनेमें सूर्यके समान हो, इसलिये मेरे सन्देहको दूर कीजिये।

तब वीरनाथ भगवानने कहा—हे राजन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। प्रद्युम्नका चरित्र पापका नाश करनेवाला है। पृथ्वीतलपर विना पुण्योदयके प्राणियोंको ऐसे चरित्रके सुननेका अवसर नहीं मिलता है। इसीसे भव्य और अभव्य जीवोंकी वास्तविक पहिचान होती है (अर्थात्—जो भव्यजीव होते हैं, उन्हींको यह चरित्र सुननेका अवसर प्राप्त होता है, अभव्योंको नहीं। जिसने इस चरित्रको सुना हो, समझ लो कि, वह भव्य है) अतएव हे मतिमान्! सावधान होकर और स्थिर चित्त करके श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नका चरित्र सुनो,—श्रीवर्द्धमानस्वामीकी दिव्यध्वनिसे ऐसे वचन श्रवणकरके बारह-सभाके समस्त प्राणी स्थिरचित्त और दृढ़ासन होकर बैठ गये। क्योंकि "सत्पुरुष उत्तम मनुष्यके चरित्र सुननेकी उत्कण्ठा रखते हैं" ॥ ६०-६८ ॥

इस प्रकार जब श्रेणिकराजाने उस निर्मल अलौकिक, और सर्वोत्तम चरित्रके सुननेकी अभिलाषा प्रकट की, तब श्रीवीरनाथ भगवानने कृष्णपुत्रका चरित्र वर्णन करना प्रारंभ किया। इसके सुननेसे प्राणी उत्तम पदको प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर भव्यजीवोंको जिनधर्ममें रुचिपूर्वक अपनी बुद्धि लगाकर इस चरित्रको सुनना चाहिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें राजा श्रेणिकके प्रश्नके कथनका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

अथ द्वितीयः सर्गः ।

स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्रोंके बीचमें जम्बूवृक्षोंसे चिह्नित और पृथ्वीतलपर सुप्रसिद्ध जम्बूद्वीप नामका एक द्वीप है। उसकी दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र शोभायमान है। उसका हम विशेष क्या वर्णन करें। तीर्थंकरोंके पंचकल्याणक स्थानोंसे वह एक तीर्थस्वरूप है, और पापका नाश करनेवाला है। वहां जिनकल्याणककी रचना करनेवाले देवोंका आगमन हुआ करता है ॥ १–३ ॥

उस भरतक्षेत्रमें एक जगत विख्यात सौराष्ट्र नामका देश है, जो पुण्यात्माओंके लिये स्वर्गके समान है ॥ ४ ॥ वहांकी वाटिकाओंमें लगे हुए सरस गन्ने (इक्षु) पवन द्वारा चहुँओरसे कम्पायमान होनेपर भी 'हम भूमिपर गिरजानेसे नीच पुरुषोंके द्वारा बांधे जायँगे' ऐसे भयसे पृथ्वीपर नहीं गिरते ॥ ५ ॥ सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं और राजहंस शब्द कर रहे हैं ॥ ६ ॥ नदियें सदाकाल जलसे भरपूर रहती हैं और उनके दोनों किनारे पुष्पोंके समूहसे सुगंधित रहते हैं ॥ ७ ॥ वहांकी बावड़ी अथाह जलसे भरी हुई हैं, और कोक (चक्रवाक) के शब्दोंसे मानों प्रवासियोंका स्वागत ही कर रहीं हैं ॥ ८ ॥ जगह २ मनोहर जलपानके स्थान (प्याऊ) बने हुए हैं और पैंड़ २ पर दानशाला खुली हुई हैं। सुन्दर ग्राम इतने निकट २ हैं कि, मुर्गा एक ग्राम से उडकर दूसरे ग्राममें जा सकता है ॥ ९ ॥ अनेक बगीचे लगे हुए हैं, जो (नंदनवनके समान) बड़े सुन्दर मालूम होते हैं, मानो पुण्यात्माजीवोंके लिये ब्रह्माने मध्यलोकमें भी स्वर्गकी रचना की है ॥ १० ॥ पद पदपर धान्यके खेत पककर पीले हो रहे हैं। खेतोंमें भारके कारण झुके हुए धान्यके वृक्ष ऐसे शोभित होते हैं, मानों पानी पीनेके लिये नीचे मस्तक कर रहे हैं ॥ ११ ॥ जहां तहां धान्यके ढेरके ढेर लगे हुये हैं, इस लिये वहां कभी दुर्भिक्ष (काल) पड़नेकी बात तक सुनाई नहीं पड़ती ॥ १२ ॥ वहांकी बाहिरी जमीन हरित वा सरस घाससे हरी हो रही है—और चारों ओर (श्वेत) गायोंके चरनेसे मानों सफेद कर दी गई हो, ऐसी दिखाई देती है ॥ १३ ॥ वहां वन २ में नाग-

है ॥ ४२ ॥ दिग्विजयको सैन्यसहित जाते समय आकाशमें जो धूल उड़कर मँड़ रहती है, वह ऐसी जान पड़ती है, मानों विश्रामके लिये दूसरी भूमि बन गई हो ॥ ४३ ॥ जिसके निर्दोष महत्वको देखकर इन्द्र-ने भी अपने ऐश्वर्यादिकी प्रभुताका गर्व छोड़ दिया ॥ ४४ ॥ जो सज्जनोंके पालनमें तत्पर, दुष्टोंके निग्रह करनेमें समर्थ, समुद्रके समान गंभीर और सुमेरुके समान स्थिर था ॥ ४५ ॥ जिसने परस्त्रियोंको अपना वक्षस्थल, शत्रुओंको युद्धके समय पीठ, और याचकोंको नकार (देनेको नहीं है, ऐसा वचन) कभी नहीं दिया ॥ ४६ ॥ ऐसे अनेक गुणोंका धारक, चन्द्रके तुल्य मनोहर वह श्रीकृष्ण नारायण हरिवंशके राजा-ओंका शृङ्गार बनकर राज्य करता था ॥ ४७ ॥

उस राजाकी सत्यभामा नामकी पट्टरानी थी, जो निर्मल चित्तकी धारण करनेवाली, शीलवती स्त्रियोंमें शिरोमणि, पुण्यवती, लावण्यके सर्व लक्षणों से मण्डित, हाव भाव संयुक्त, और अपने रूपकी सम्पदासे देवाङ्गनाओंके भी रूपको तिरस्कार करनेवाली थी ॥ ४८–४९ ॥ वह अपने पतिसे कभी २ निवेदन करती थी कि, हे स्वामिन् ! आप मुझे लक्ष्मीकी उपमा क्यों देते हैं ? कारण लक्ष्मी तो चपला होती है, परन्तु मैं चपला कदापि नहीं हूं ? ॥ ५० ॥ सत्यभामा विनयादि गुणोंकी धारण करनेवाली, अपने भर्तारकी आज्ञानुसार चलनेवाली, और दोनों कुलोंको विशुद्ध करनेवाली विद्याधरकी पुत्री थी ॥ ५१ ॥ चन्द्रमा कलंकसहित है, और पखवाड़ेके पीछे क्षीण होता जाता है, परन्तु रानी निष्कलंक और सदा उदयरूप है । अतएव उसके मुखको चन्द्रमाकी उपमा किसप्रकार दी जाय ? ॥ ५२ ॥ उसने अपनी वेणीसे मोरको, ललाट (मस्तक) द्वारा अष्टमीके चन्द्रमाको, नासिका द्वारा तोतेकी चोंचको, और नेत्र-द्वारा हरणियोंको भी पराजित किया था । इसी कारण मैं समझता हूं कि, लज्जित होकर हरणियोंने बनका शरण लिया था ॥ ५३–५४ ॥ उसने अपने दांतोंसे कुन्दपुष्पकी कलियोंको, ओंठोंसे बिंबाफलको (कुन्दरूके पके फलको) कण्ठसे शंखको और दोनों स्तनोंसे नारियलोंको जीत लिया था ॥ ५५ ॥ वह मालतीकी मालाके समान कोमल भुजाओंसे और शुभलक्षणोंवाली रेखाओंसे युक्त करकमलोंसे बहुत

उसने अपनी कटिद्वारा सिंहसमूहको, नितम्बोंसे पर्वतकी सघनताको,
सुन्दर जान पड़ती थी ॥ ५६ ॥ उसने अपनी कटिद्वारा सिंहसमूहको, नितम्बोंसे पर्वतकी सघनताको, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ५७ ॥ उसके
और जंघाओंसे कदलीवृक्ष (केले) के स्तंभको जीत लिया था, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ५७ ॥ उसके दोनों चरणकमल लाल, मनोहर, और सुकोमल तथा शुभलक्षणोंकी रेखाओंसे मण्डित थे ॥ ५८ ॥ उसका शरीर शिरीषके फूलके समान सुकुमार और चाल मदोन्मत्त हाथीके समान थी। वह शास्त्रार्थ करनेमें सरस्वतीके समान निपुण और चतुर थी ॥ ५६ ॥ उस सत्यभामा पट्टरानीके साथ श्रीकृष्ण महाराजने सब कंटकोंसे (द्वेषीराजाओंकी बाधासे) रहित, और राज्य सम्पदासहित, चिरकाल तक राज्य किया ॥ ६० ॥ जिसप्रकार काले मेघको बिजुली, मयूरको शिखा, और समुद्रको उसकी वेला (ज्वार) शोभायमान करती हैं,—उसी प्रकार राजाको रानीने शोभायमान किया ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार महादेवको पार्वती, और इन्द्रको इन्द्राणी प्रिय थी, उसी प्रकार श्रीकृष्णको सत्यभामा प्रिय हुई ॥ ६२ ॥

श्रीकृष्ण महाराज जिनधर्ममें सदा लवलीन थे, इन्द्रके समान जिनेन्द्रकी पूजा करते थे, सुपात्रोंको भली भाँति दान देते थे, और कुटुम्बी जनोंके सहित भोग भोगते थे ॥ ६३ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण महाराजने प्रजाका पालन करते हुए, जिनेन्द्रकथित शास्त्रोंका श्रवण करते हुए, गुरुजनोंको नमन करते हुए, अपनी स्त्रियोंके साथ प्रीतिपूर्वक क्रीड़ा करते हुए, बंधुओंका सन्मान करते हुए, सम्यक्त्वको दृढ़तासे पालते हुए और अपने मनमें संसारको केलेके स्तंभके समान निःसार समझते हुए सुखसागरमें मग्न रहकर अपना समय व्यतीत करते थे। उनका एक बलभद्र नामका भाई पृथ्वीमें अतिशय प्रसिद्ध था, जिसकी आज्ञा हजारों यादव मानते थे। श्रीकृष्ण नारायण सत्यभामाके साथ अनेक बगीचोंमें क्रीड़ा किया करते थे ॥ ६४–६७ ॥ उनके यहां मदोन्मत्त हाथियों, शीघ्रगामी घोड़ों तथा सेवकोंकी गणनाका कुछ पार न था ॥ ६८ ॥ सात प्रकारकी राज्य विभूतिसहित राज्य करते हुए सुख सागरमें मग्न होकर उन्होंने कितना समय व्यतीत कर दिया, यह न जाना गया ॥ ६६ ॥ उनके राज्यमें प्रजाको ईति, भीति आदिका भय न था। वे प्रजाके हितके लिये राज्य करते थे ॥ ७० ॥ इसप्रकार श्री कृष्णमहाराजने अपनी

॥ १

बेल सुपारीके वृक्षोंसे लिपटी हुई है, इस कारण ताम्बूल (पान) के लिये वहांके मनुष्य केवल चूना (चूर्ण)❀ही लेकर जाते हैं ॥ १४ ॥ वहां केलों तथा ताड़फलोंसे लदे हुए कदली तथा ताड़ आदिके वृक्ष और द्राक्ष (अंगूर) वृक्षोंके मंडप जगह २ शोभा दे रहे हैं, जिससे वहांके यात्रीलोग विना कलेवाके ही बाहर निकलते हैं ॥ १५ ॥

इस प्रकारके सौराष्ट्र देशमें स्वर्गपुरीसे सुन्दर एक द्वारिका नामकी प्रसिद्ध नगरी है। जिसमें वापिका, कूप सरोवर, वन, वाटिका आदि शोभायमान हैं, मानों अमरावती (इन्द्रपुरी) ही लोगोंके पुण्यसे यहां आ गई है ॥ १६–१७ ॥ उसमें सात सात आठ आठ खण्डके महल हैं, जिनकी सुवर्णकी भीतें रत्नोंकी मालाओंसे शोभित हो रही हैं ॥ १८ ॥ वे महल चूनेसे पुते हुए सफेद हो रहे हैं, और उनके झरोखोंमें बैठीं हुई स्त्रियोंके मुखको देखनेसे मनुष्योंको शुक्लपक्षकी आशंका होती है ॥ १९ ॥ उस नगरी में स्थान२ में प्याऊ खुली हुई हैं और डग २ पर जिनमन्दिर बने हुए हैं, जिनमें भव्यजीव उत्सव कर रहे हैं ॥ २० ॥ नगरीके चारोंओर ऊंचे कोट और समुद्रकी खातिका (खाई) परम रमणीक मालूम पड़ती है। देश देशान्तरके मनुष्योंसे वहांकी शोभा अनोखी बन रही है ॥ २१ ॥ यह नगरी उत्तमोत्तम रत्नोंके संग्रहको लेकर कहीं चली न जाय, इसी विचारसे मानों समुद्रने खाईके छलसे उसे घेर रक्खा है ॥२२॥ वह द्वारावती रत्नजटित सुवर्णके महलोंसे बहुत ही सुंदर दीखती है ॥ २३ ॥ वहांकी दूकानोंमें रत्नोंके ढेरके ढेर लग रहे हैं, जो प्रतिदिन आकाशमें इन्द्रधनुषकी सी आशंका उत्पन्न करते हैं ॥ २४ ॥ वहांके राजमार्ग (आमसड़कें) मदोन्मत्त हाथियोंके आने जाने और उनके मदजलके झरनेसे कीचड़युक्त हो रहे हैं ॥ २५ ॥ वहां राजा सदाकाल निवास करता था, इसकारण वह पृथ्वीतलपर अद्वितीय राजधानी बन रही थी, और द्रव्यादिकी इच्छाकरनेवाले पुरुषोंको चिन्तामणिके तुल्य प्रिय जान पड़ती थी ॥ २६ ॥ वहांकी स्त्रियोंके रूपको देखकर देवाङ्गनाओंने भी अपने रूपलावण्यका घमण्ड छोड़ दिया था ॥ २७ ॥

❀ विना कत्थेके कच्ची सुपारीके साथ जो पान खाया जाताहै, वह बहुत स्वादिष्ट लगता है। बंगालमें प्रायः विना कत्थेके ही पानखाने का प्रचार है।

इस द्वारका नगरीमें जगत्प्रसिद्ध कृष्णनारायण नामका राजा राज्य करता था, जिसके समान कोई भी दाता, भोक्ता, विवेकी, और ज्ञानविज्ञानभूषित, न था। वह वास्तवमें अपनी प्रजाकी पिताके समान रक्षा करता था ॥ २९–३० ॥ जिसने बाल्यावस्थामेंही कंस आदि अनेक शत्रुओंका विनाश किया था, गोवर्द्धन नामका पर्वत उठाकर उसके नीचे गायके बछड़ोंकी रक्षा की थी, यमुना नदीके भीतर काले नागको नाथा था, नागशय्या धनुष्य और शंख शत्रुके घरसे प्राप्त किये थे और जरासंधिके भाई अपराजितको संग्राममें नष्ट किया था, उस कृष्णकी शूरवीरताको हम कहां तक वर्णन करें ? ॥ ३१–३३ ॥ जिसको समुद्रान्त नामके देवने समुद्रको पीछे हटाकर बारह योजनकी मनोहर भूमि प्रदान की थी और जिसके बलको देखकर कुवेरने इन्द्रकी आज्ञासे द्वारिकापुरीकी रचना की थी ॥ ३४–३५ ॥ जो लोकका सेवकके समान बंधु था, सेवकोंका मित्र था, और शरणागतोंका रक्षक था ॥ ३६ ॥ जो याचकोंके लिये कल्पवृक्षके समान, शत्रुओंकी वनिताओंके मुखचन्द्रको मलीनकरनेके लिये राहुके समान और यादवोंके कुलरूपी समुद्रको बढ़ानेकेलिये सदाकाल स्थिर रहनेवाले चन्द्रमाके समान था। पृथ्वीपर उस समय ऐसा कोई भी राजा न था, जो उसके शुभ लक्षण और गुणोंकी समानता कर सके ॥ ३७–३८ ॥ कोटि शिलाके उठानेमें उसके पराक्रमको देखकर अन्य राजाओंने अपनी शूरताका घमण्ड छोड़ दिया था ॥ ३९॥ उसे मनोरथसे भी अधिक दान करते हुए देखकर ही मानों गये हुए कल्पवृक्ष फिर लौटकर आजतक नहीं आये ॥ ४० ॥ "हे स्वामिन् ! आप गुणोंहीका आदर क्यों करते हो," ऐसा कहकर और क्रोधित होकर ही मानों अवगुण उससे दूर भाग गये थे ॥ ४१ ॥ निर्मलता, सुवृत्तता (गुलाई) और प्रसन्नता (कान्ति) जो मुझमें है, वही चित्तकी वा बुद्धिकी निर्मलता, सुवृत्तता (अर्थात् उत्तमोत्तम व्रतोंका पालन) और प्रसन्नता राजाने भी धारण कर ली है, ऐसा जानकर ही मानों (ईर्षा भावसे) चन्द्रमा काला पड़ गया

कुलकी भूमिको छोड़कर विदेशमें पूर्ण विनोदसे राज्य लक्ष्मी भोगी और अपने धन धान्यको इस प्रकार बढ़ाया, जैसे चन्द्रमा समुद्रको बढ़ाता है। सो ठीक ही है, "जिन्होंने पूर्वभवमें पुण्यका संचय किया है, उन्हें कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती?" ॥ ७१ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रंथके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें श्रीकृष्णकी राज्यविभूतिके वर्णनवाला द्वितीयसर्ग समाप्त हुआ।

अथ तृतीयः सर्गः।

एक समय राज्यविभूतिसे मण्डितहोकर कृष्णमहाराज अपने बन्धुवर्गोंकी एक बड़ी सभामें विराजे थे, राज्य तथा देशसम्बन्धी वार्ता कर रहे थे, और समस्त मण्डलीको आनन्दित कर रहे थे। उस समय की एक घटना सुननेके योग्य है ॥ १–२ ॥

आकाश मार्गसे एक तेजःपुंजको आते हुए देखकर उस सभामें बैठे हुए समस्त मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥ यह सूर्यमयी तेज है अथवा अग्निसम्बन्धी तेज है? सूर्यका गमन तो तिरछा होता है और अग्निकी ज्वाला ऊपरको जाती है, परन्तु यह तो नीचे उतरता चला आता है। तब यह क्या पदार्थ है? इस प्रकार दर्शकोंके चित्तमें कौतूहल उपजा ॥ ४–५ ॥ जब वह आकाशसे कुछ नीचे उतरा, तब मालूम हुआ कि, यह कोई मनुष्य सा है, जब कुछ निकट आया, तब निश्चय हुआ कि, 'यथार्थमें मनुष्य है और जब बिलकुल पास आ गया, तब सबको ज्ञान हुआ कि, ये नारद हैं। इस प्रकार क्रम से मनुष्योंने नारदमुनिका निर्णय किया ॥ ६–७ ॥ ये नारद कोपीन पहने हुए, जटा रखाये हुए और हाथमें कुशाका आसन लिये हुए थे। ये कौतूहलके अभिलाषी, कलहप्रिय (लड़ाई झगड़े खड़े करनेके प्रेमी) जिनमार्गमें सदा लवलीन, अभिमानरूपी धनके धारक, पापवर्जित, हास्यकरनेमें आसक्त, और जिनवन्दनामें सदा तत्पर थे ॥ ८–९ ॥

नारद मुनिको समीप आया जानकर सर्व सभाके सज्जन और श्रीकृष्णमहाराज प्रसन्न चित्तसे खड़े हो गये ॥ १० ॥ कृष्णजीने तत्काल सन्मुख जाकर उन्हें नमस्कार किया, चरण प्रक्षालन करके अर्घ चढ़ाया, अपने सिंहासनपर विराजमान किया और भक्ति भावसे इसप्रकार स्तवन किया, जैसा कि घरमें आने वाले अतिथिका करना चाहिये ॥ ११–१२ ॥

हे महाभाग्यवान मुनि! आप तपके द्वारा पवित्र हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आपके तुल्य महानुभावका आज मेरे घर शुभागमन हुआ है। आज मेरा घर आपके चरणकमलके स्पर्शसे पवित्र हुआ है। "जो भाग्य हीन होते हैं, उनके गृहपर सत्पुरुषोंका शुभागमन नहीं होता है॥ १३–१४ ॥ इससे जाना जाता है कि, मैंने पूर्वभवमें महत्पुण्य संचय किया है, जिससे इष्ट पदार्थकी प्राप्ति हुई हैं। अब मुझे विश्वास हो गया है कि, पुण्योदयसे मेरे पाप भी विनाशको प्राप्त हो जावेंगे ॥ १५ ॥ हे नाथ! वास्तवमें आपने मुझे भूत–भविष्यत्–वर्तमान कालमें योग्यता का पात्र बनाया है। यदि ऐसा न होता, तो भला आपका मेरे घर पधारना कैसे होता? ॥ १६ ॥ वे ही पृथ्वीतलपर विवेकी, प्रशंसापात्र और धन्यवाद देनेके योग्य हैं, जिनके गृहपर आपके समान महापुरुषोंका शुभागमन हो ॥ १७ ॥ इस प्रकार कृष्णजीने नारदजीकी प्रशंसा की और अपना सौभाग्य दर्शाया। फिर मुनिकी आज्ञाको पाकर वे विनयपूर्वक दूसरे सिंहासनपर बैठ गये ॥ १८ ॥ नारदजी बोले राजन्! मेरी बात सुनो, निःसन्देह मैं यहां तुमसे मिलनेके वास्ते ही आया हूं ॥ १९ ॥ जो मैं आपके समान सत्पुरुषोंके घर आने जानेसे ही वंचित रहूं, तो मेरे अवतारसे क्या प्रयोजन है? ॥ २० ॥ जिनेन्द्र, बलदेव, नारायणआदि पुरुषोत्तम दर्शन करनेके योग्य होते हैं। यदि उनसे न मिलूं, तो मेरा जन्म ही निष्फल है ॥ २१ ॥ थोड़ी देर इस प्रकार परस्पर प्रेमसंवाद होता रहा, तदनन्तर नारदजीने कृष्णजीको देशदेशान्तरके ताजे समाचार सुनाये, और अनेक तीर्थोंसे लाई हुई आशिषें दीं ॥ २२ ॥

जिस समय नारदमुनि और महाराज कृष्णका इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था, उसी समय श्रीनेमि-

नाथ स्वामी भी वहां पधारे। जिनेश्वरको आया जानकर समस्त सभाके मनुष्य और कृष्ण व नारद खड़े हो गये ॥ २३–२४ ॥ नारदजीने भगवानको दूसरे सिंहासन पर बिठाया और उनकी भक्तिपूर्वक इस प्रकार स्तुति की ॥ २५ ॥—"हे जिनेश्वर! आप जयवन्त रहो! हे पापके नाश करनेवाले आपकी सदा जय हो! आप जरामरणके दुःखोंको नाश करते हो, आप तीन भवनके परमोत्तम नेत्र हो, आप भव्य कमलोंको सूर्यके समान प्रफुल्लित करनेवाले हो, आप कलावान् और सदाकाल उदयस्वरूप अद्वितीय चन्द्रमा हो ॥ २६–२७ ॥ चारों प्रकारके देवोंसे सेवित हे जिनाधीश! आपको नमस्कार हो। हे कल्याण के कर्त्ता और गणधरादिके स्वामी! आपको नमस्कार हो। हे नेमिनाथ स्वामी! आप कामरूपी गजको सिंहके समान हो, मोहरूपी सर्पको गरुड़के समान हो और जन्ममरणके नाश करनेवाले हो, अतएव आपको मेरा नमस्कार हो।" ॥ २८–२९ ॥ इसप्रकार स्तुति करके नेमिनाथस्वामीकी आज्ञासे नारद विनयपूर्वक एक कृष्णके सिंहासनपर बैठ गये। पश्चात् सबने परस्पर कुशलप्रश्न किये, और उनसे नेमिनाथ कृष्ण बलभद्रादि सबको प्रसन्नता हुई ॥ ३०–३१ ॥ पश्चात् और सब लोगोंने भी नारदको देखा। उनके दर्शनोंसे सर्व सामान्यको अथाह आनन्द हुआ ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् नारदजी बोले, श्रीकृष्ण! मेरी बात ध्यानसे सुनो। मैं अनेक देशोंमें परिभ्रमण करता हुआ जिन वंदना किया करता हूं। मुझे तुम्हारा सदा काल स्मरण रहता है, और मैं सदा यही चाहता रहता हूं कि, तुम सुखसे तिष्ठो। तुम्हारे सुखसे मुझे सुख होता है और तुम्हारे दुःखसे मुझे दुःख होता है ॥ ३३–३५ ॥ इसलिये आज मैं तुम्हारे रनवासमें (अन्तःपुरमें) जाकर तुम्हारी रानियोंको देखना चाहता हूं ❀। कारण मुझे यह देखना है कि, तुम्हारी रानियोंके समान अन्य स्त्रियें संसारमें हैं या नहीं? (तथा तुम्हारी स्त्रियां तुम्हारे समान विनयवान, और उदारचित्त हैं, अथवा नहीं) ॥ ३६ ॥ नारदजी श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर आश्चर्यसहित अन्तःपुर देखनेके मनोरथसे भीतर गये ॥ ३७ ॥ पहले श्रीकृष्ण

❀ नारद सच्चे ब्रह्मचारी थे। उनपर इस विषयमें सबका विश्वास था। इसलिये उन्हें रनवासादिमें जानेकी मनाई नहीं थी।

की पट्टरानी सत्यभामाको ही देखना चाहिये, ऐसा विचार कर वे उसीके महलको गये ॥ ३८ ॥ जिस समय नारदजीने दूरसे उस सुनेत्रा, सत्यभामा को देखा उस समय वह मज्जन करके कृष्णजीके सिंहासन पर बैठी हुई थी। और साम्हने दर्पण रक्खे हुए अपनी मनोहर रूपसंपदाको निरखती हुई वस्त्र आभूषण पहन रही थी। और फिर फिर कर अपने विभूषित रूपको देखकर अपने भर्तारके सन्मानका स्मरण करती हुई अर्थात् इस शोभाको देखकर महाराज मेरा बहुत सन्मान करेंगे इस विचारमें मनही मन हर्षित हो रही थी ॥ ३९-४१ ॥ उसका चित्त दर्पणमें ऐसा लग रहा था कि, उसे भान भी नहीं हुआ कि, नारदजी आये हैं। जब नारदजी धीरेसे उसकी पीठके पीछे जाकर खड़े हो गये और भस्मसे लिपटा हुआ और जटासे भयंकर दीखनेवाले उनके मुखका प्रतिबिम्ब सत्यभामाने अपने मुखके समीप देखा, तब उसने अपना मुख तिरस्कारकी दृष्टिसे बिगाड़ा और घमण्डमें आकर यह विचारा कि, मेरे चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखके पास यह किस दुष्टकी विकराल छाया पड़ी है? ॥ ४२-४५ ॥ पीठ पीछे खड़े हुए नारदमुनिने ज्यों ही सत्यभामाकी उक्त तिरस्कारकी दृष्टि देखी, त्यों ही उनका जी जल गया, और चहरा क्रोधसे लाल पड़ गया। सारा जगत जिसका सन्मान करता है, उस नारदका आज सत्यभामाने इस प्रकार अपमान किया! इससे दुःखी होकर वे पुनः विचारने लगे कि, मुझ मन्दभाग्यमें ऐसी बुद्धि कहां से उपजी, जो मैं सत्यभामाके गृहपर आया। मैंने उचित नहीं किया। कारण "विचारवानोंको जिसका कुल शील (स्वभाव) नहीं मालूम हो, उसके घर नहीं जाना चाहिये" ॥ ४६-४९ ॥ पश्चात् चित्तमें तरह २ के संकल्प विकल्प करते हुए और कारणका विचार करते हुए वे अन्तःपुरसे बाहर निकलकर कैलाशगिरिपर जाकर पहुंचे ॥ ५० ॥

वहांपर चिन्ताग्रसित नारदमुनि बैठ गये और विचारने लगे, अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं? मेरे दुखःकी उपशांति किस प्रकार हो? ॥ ५१ ॥ मैं तो बिना बाजेके नाचनेवाला हूं, फिर आज इन बाजेके शब्दोंके सुननेपर तो कहना ही क्या है? ॥ ५२ ॥ जो कोई मुझे भक्तिसे मानता है, उसे मैं भी मानता

हूं और जो मुझपर क्रोध करता है, उसपर मैं भी कुपित होता हूं। जो मूढ़बुद्धि मुझसे द्वेषबुद्धि रखता है, उसका कभी भला नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ मैं अढ़ाई द्वीपकी समस्त भूमिमें विचरता हूं और सर्व मनुष्य मुझको नमस्कार करते हैं। परन्तु पाप चित्तकी धारण करनेवाली सत्यभामाने मेरा तिरस्कार किया ॥ ५४ ॥ मैं अब इसका क्या करूं? इसको किसप्रकार दुःसह दुःख हो? किस प्रकार इसका मान गलित हो? कब मैं इसे दुःखित देखूं? ॥ ५५ ॥ और किसके सन्मुख इसकी सुन्दरताका वर्णन करके उसके द्वारा इस पापिनीका हरण कराऊं? ऐसा होगा तभी इसके अन्तरंगमें दुःख व्यापेगा ॥ ५६ ॥ जब नारदने इस उपायका गहरा विचार किया, तो उनके चित्तमें यह बात झलकी कि, सत्यभामाके वियोगसे श्रीकृष्णको अत्यन्त दुःख होगा, और यदि श्रीकृष्ण दुःखी होंगे, तो मुझे भी दुःख होगा। क्योंकि श्रीकृष्ण नारायण मेरे परम मित्र हैं। अतएव ऐसा करना ठीक नहीं है। कोई दूसरी ही तदबीर सोचनी चाहिये ॥ ५७–५८ ॥ हां! सत्यभामाको माया विशेषसे किसी परपुरुषमें आसक्त दिखा देना ही ठीक होगा। क्योंकि लोग प्राणोंसे भी प्यारी स्त्रीको यदि वह परपुरुषासक्त हो, तो क्षणभरमें छोड़ देते हैं। सो संसारमें इसके समान कोई अच्छा उपाय नहीं है। परन्तु उन्होंने इस उपायपर ज्यों २ विचार किया त्यों २ उनके हृदयमें अनेक विस्मित करनेवाले कारण उठे ॥ ५९–६० ॥ उन्होंने सोचा, सत्यभामा शीलवती स्त्रियोंमें अग्रेसर है, उज्ज्वल गुणोंको धारण करनेवाली है और कृष्णकी प्राणवल्लभा है। श्रीकृष्ण जानते हैं कि, वह विशुद्धचित्तकी धारक है, इसकारण वे मेरे कहनेपर प्रतीति नहीं करेंगे। उनकी सत्यभामा पर वैसी ही कृपादृष्टि बनी रहेगी और मुझसे विरक्ति हो जावेगी ॥ ६१–६३ ॥ फिर कभी श्रीकृष्ण मेरी बातका विश्वास नहीं करेंगे। क्योंकि "चतुर पुरुष झूठ बोलनेवालोंको दूर ही छोड़ देते हैं" ॥ ६४ ॥ मेरी सत्यता उठ जायगी और इस बातकी शल्य सदाकाल मेरे हृदयमें पैठी रहेगी। इसलिये मैं इसप्रकार दोनों तरफसे भ्रष्ट होना नहीं चाहता हूं ॥ ६५ ॥ ऐसा दृढ विचारकर नारदजी इस युक्तिको छोड़कर कोई दूसरा ही उपाय चिन्तवन करने लगे ॥ ६६ ॥ बहुत देरतक विचारते २ उनके चित्तमें एक

उत्तम उपाय उपजा । सो ठीक ही है "जब एकाग्रचित्तसे विचार किया जाता है, तब चित्तके दुःखको दूर करनेके लिये अन्तःकरणमें ज्ञानकी ज्योति प्रकाशमान होती है" ॥ ६७ ॥ वह उपाय यह है कि, स्त्रियोंको पृथ्वीतलपर सौतके जैसा दुःख न हुआ, न होगा और न है । स्त्रियोंको जैसा सौतका दुःख होता है; वैसा विधवा अवस्थासे दरिद्रतासे तथा अपुत्रदशासे भी नहीं होता ॥ ६८-६९ ॥ बारम्बार विचारनेपर भी उनकी दृष्टिमें सर्वोत्तम एक यही उपाय दीख पड़ा ॥ ७० ॥ इसीका उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया और अढ़ाई द्वीपकी सुन्दर भूमिमें कर्तव्यको चित्तमें धारणकर वे किसी सुन्दर कन्याकी खोजमें वहांसे बाहिर निकले ॥ ७१-७२ ॥

प्रथम ही नारदजी विजयार्धपर गये । वहां उन्होंने विद्याधरोंकी राजधानी देखी । विद्याधरोंके राजाओंसे आदरपूर्वक मिले और उनकी आज्ञा लेकर रणवासमें गये । परन्तु वहां कोई भी ऐसी विवाहिता अविवाहिता स्त्री न देखी, जो सुन्दरतामें सत्यभामाके पदके अँगूठेकी भी समानता कर सके । इस प्रकार विद्याधरोंकी दोनों श्रेणियों को देखकर नारदजी बहुत ही खेदखिन्न हुए और विचारने लगे कि, मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? और कहां मैं ऐसी सुन्दर कन्याको देखूं, जो सत्यभामाके घमण्डको चकचूर करनेमें समर्थ हो । जब ऐसी सुन्दरी विद्याधरोंके महलोंमें ही नहीं है, तो भूतलपर कहां मिल सकती है ॥ ७३-७७ ॥ इस प्रकार नारदजी चित्तमें बहुत ही व्याकुल हुए । पश्चात् भूतलके देशोंमें भी शोधकर चिन्ताको निवारण करना उन्होंने उचित समझा ॥ ७८ ॥ सो उसी प्रकार वे भूलोकमें प्राप्त हुए और भूमिगोचरी राजाओंकी राजधानी भी उन्होंने देख डाली । परन्तु कहीं भी ऐसी कन्या देखने में नहीं आई, जो सत्यभामाकी भी समानता कर सके । इस कारण नारदमुनि अत्यन्त खेदखिन्न तथा उदास हुए और पृथ्वीतलपर परिभ्रमण करने लगे ॥ ७९-८० ॥

एक दिन नारदजी चहुँओर देखते हुए आकाश मार्गसे जा रहे थे । दैववशात् वे कुण्डनपुर नामके एक रमणीक नगरमें प्राप्त हुए, जो लक्ष्मीका निवास तथा विद्यावती रूपवती गुणवती स्त्रियोंका स्थान

था। इस नगरमें भीष्म नामका राजा राज्य करता था, जो राज्यसम्बन्धी मुकुट आदि आभूषणोंसे शोभायमान था। यह राजा सर्वमान्य, सुप्रसिद्ध, शत्रुओंका जीतनेवाला, शरणागत प्राणियोंका रक्षक, रूप सौन्दर्यसे मण्डित, और शारीरिक शुभलक्षणोंसे सुशोभित था ॥ ८१–८४ ॥ इस राजाकी श्रीमती नामकी रानी थी, जो गुणवती, मायाचारवर्जित, सुन्दरताकी खानि और जगद्विख्यात थी ॥ ८५ ॥ नारद को सभाके भीतर आया जानकर राजा भीष्म सिंहासनसे उठा और विनयसहित उनके सन्मुख गया ॥ ८६ ॥ उसने चरणोंका प्रक्षालन करके उन्हें सिंहासनपर तिष्ठाया और आप विनयसे प्रणाम करके दूसरे सिंहासनपर बैठ गया ॥ ८७ ॥ नारदजीने स्नेह दृष्टिसे कुशल प्रश्न किये। फिर परस्पर वार्तालाप करते समय नारदजीने अपने सन्मुख बैठे हुए राजकुमारको देखा और विचार किया कि, यदि इसकी बहिन होगी, तो वह भी इसीके समान सुन्दर होगी। यदि ऐसा हुआ, तो मेरे सर्व मनोरथ सफल होंगे। ऐसा विचारकर नारदजीने भीष्मराजसे पूछा ॥ ८८–९१ ॥ राजन्! यह पुत्र जो साम्हने बैठा हुआ है, किसका है? तब राजाने अपना मुख नीचे झुकाकर कहा, हे मुने! आपके चरणकमलके प्रसाद से ये मेरा ही पुत्र है। नारदजी बोले, बहुत ठीक ॥ ९२–९३ ॥ परन्तु इसकी मातासे और कितनी संतान है? तब राजाने उत्तर दिया, मेरी दो सन्तान हैं, एक तो यह पुत्र और दूसरी पुत्री। नारदजी बोले, राजन्! तुम बड़े भाग्यशाली हो ॥ ९४–९५ ॥ पर यह तो कहो कि उक्त पुत्री विवाहिता है, अथवा अविवाहिता (कुंवारी)? राजा भीष्मने उत्तर दिया, भगवन्! वह कन्या शिशुपाल राजाको देनी कह दी है। यह सुनकर नारदजीको जैसा आनन्द हुआ, वह कहा नहीं जाता ॥ ९६–९७ ॥ कुछ समयतक दोनोंका प्रेमसंलाप होता रहा। पश्चात् नारदजी आसनसे उठे ॥ ९८ ॥ और उन्होंने आदरपूर्वक राजासे कहा, मैं तुम्हारा रणवास (अन्तःपुर) देखना चाहता हूं। तब राजाने प्रसन्नतासे प्रत्युत्तर दिया, हे नाथ! बहुत अच्छा, आप मेरे महलको पवित्र कीजिये ॥ ९९–१०० ॥ तब नारदजी उसके सुन्दर रणवास में गये। वहां भीष्मराजकी एक बालविधवा बहिन थी। उसने मुनिको आता देखकर बाह्यलक्षणोंसे

जान लिया कि, ये नारद हैं ॥ १०१-१०२ ॥ तब वह खड़ी हो गई। उसने मुनिका यथोचित सत्कार करके सिंहासन सम्मुख रखके नम्रताके साथ कहा, महाराज! आप इस दिव्य सिंहासनपर विराजैं। जब नारदजी सिंहासनपर बैठ गये ॥१०३-१०४॥ तब वह बोली—प्रभो! आपने बड़ी कृपा की, जो यहां पधारे और अपने चरणारविंदसे इस स्थानको पवित्र किया। पुण्यहीन पुरुषोंको आपके समान नरोत्तमों का समागम होना कठिन है ॥ १०५-१०६॥ इस प्रकार कहके उसने राजा भीष्मकी रानियोंको मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराया। नारदजीने रानियोंको आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया। कुछ देरतक पुण्यमयी वार्तालाप होता रहा। इतनेमें ही नारदजीने अपने सन्मुख खड़ी हुई रुक्मिणीको देखकर भीष्मराजकी बहिनसे पूछा, यह सुन्दर बालिका कौन है? ॥१०७-१०९॥ "हे नाथ! यह राजा भीष्मकी पुत्री है" ॥११०॥ ऐसा कहकर उसने अपनी भतीजी (रुक्मिणी) से मुनिको प्रणाम कराया। तब नारदजीने उसे ऐसा आशीर्वाद दिया कि, "पुत्री तू श्रीकृष्णमहाराजकी पट्टरानी हो" मुनिके वचनोंको सुनकर रुक्मिणी चकित हो रही ॥ १११-११२॥ और आश्चर्यसे अपनी भुआकी (फूफीकी) तरफ झांकने लगी। भुआने मुनिके वचनोंकी समस्यामात्र सुनी थी, इस कारण उसने पूछा, मुनिमहाराज! (आपने यह क्या आशीर्वाद दिया?) जिनका आपने अभी नाम लिया वे श्रीकृष्ण कौन हैं? ॥ ११३-११४ ॥ उनका निवास कहां है? कुल कैसा है? उमर कितनी है? रूप कैसा है? ऋद्धि कैसी है? और कुटुम्ब परिवार कैसा है? सो आप कहो ॥ ११५ ॥ तब नारदजीने जवाब दिया, हे! बेटी मैं श्रीकृष्णका परिचय कराये देता हूं, सुन—॥ ११६ ॥

सौराष्ट्र नामके देशमें एक द्वारिका नामकी नगरी है। उसमें श्रीकृष्ण महाराज राज्य करते हैं। वे हरिवंशके शृङ्गार हैं, यादवोंके कुटुम्बके भूषण हैं, नव यौवनके धारक हैं, कामदेवके समान सुंदर हैं, ऋद्धिवृद्धिकर सम्पन्न हैं, धनधान्यकर सहित हैं, सहस्रों यादववंशी उनके कुटुम्बी (स्वजन) हैं, शत्रुओंके वंशका उन्होंने विनाश किया है, और अनेक राजा उनकी आज्ञाको पालन करते हैं ॥ ११७-११९ ॥

जिन्होंने बाल्यावस्थामें ही गोवर्द्धनपर्वतको अपनी हाथकी अंगुलीपर उठा लिया। दुष्टचित्ता पूतनाका तत्काल नाश किया, यमुना नदीके अगाध जलमें काले नागका मर्दन किया, संग्राममें कंसको तथा चाणूर मल्लको नष्ट किया, समुद्रके तीरपर पहुँचते ही समुद्ररक्षक देवोंको वशीभूत किया और अपने भुजबलसे द्वारिका पुरीको बसाया। तथा जिनके नेमिनाथ जिनेश्वर सरीखे भाई हैं, उनकी अतिशययुक्त धीरवीरताको हम और कहांतक वर्णन करें? जिनकी धीरवीरता और ऐश्वर्यको बृहस्पति भी वर्णन नहीं कर सकता, उसे हे पुत्री! मैं एक जिव्हासे कैसे वर्णन कर सकता हूं? ॥ १२०–१२४ ॥ नारदजीके वचन सुनकर भीष्मकी बहिन बोली, रुक्मिणी! तूने जगतके हिताकांक्षी नारदजीके वचन सुने कि, नहीं? तू यही सत्य समझ ॥ १२५ ॥ तब रुक्मिणी बोली, भुआजी! मुनिके वाक्योंको तुमने किसप्रकार सत्य बताये, मुझे तो किसी दूसरेको ही देनी कर दी है। नारदजी यों ही किसीका नाम ले रहे हैं। भुआजी! आपने जान बूझकर मुनिके कहनेमें हांमें हां कैसे मिला दी? तब भुआने उत्तर दिया, पुत्री! मैं तुझे बताती हूं, सुन ॥ १२६–१२७ ॥

पहले एकदिन अपने यहां एक अतिमुक्तक नामके बड़े ज्ञानवान और शास्त्रोंके पारगामी मुनि आहार लेनेके लिये आये थे। सो तेरे पिताने (भीष्मराजने) नवधा भक्तिसे मुनिको आहार दान दिया था। भोजन करनेके पीछे जब मुनिराज आसनपर विराजे, और राजा भक्ति करनेके लिये उद्यत हुआ, उस समय तू भी साम्हने खड़ी हुई थी। तेरी अनुपम सुन्दरताको देखकर मुनिराजने तेरे पितासे पूछा, राजन्! यह श्रेष्ठ पुत्री किसकी है? तब राजाने जवाब दिया, महाराज! यह मेरी ही पुत्री है। पीछे तेरे पिताने विनयसहित प्रश्न किया ॥ १२८–१३२ ॥ स्वामिन्! यह पुत्री किसकी प्राणवल्लभा होगी? जिसको देकर मैं सुखी और कृतकृत्य बनूंगा ॥ १३३ ॥ राजाके वचनोंको सुनकर योगीश्वरने उत्तर दिया, भाग्यवान् राजन्! जो तुम्हारी पुत्रीका पति होनहार है, उसका वृत्तान्त सुनोः—॥ १३४ ॥ जो यदुवंशियोंके कुलरूपी आकाशको प्रकाशमान करनेमें सूर्यके समान है, जो धरातलपर उपेन्द्र अर्थात् नारायण

के नामसे विख्यात है, जिसकी गुण सम्पदा सुप्रसिद्ध है ॥ १३५ ॥ और जो दैत्योंके समूहको नष्ट करनेवाला है, वह तेरी लड़कीका पति होगा। मैंने जो कुछ कहा है—वास्तवमें सत्य समझना ॥ १३६ ॥ इस प्रकार कहकर अतिमुक्तक मुनिराज वनमें तपश्चरण करने योग्य स्थानको चले गये। उनके उपर्युक्त वाक्य मैंने निकट खड़े होकर सुने थे ॥ १३७ ॥ मुनियोंके वाक्य सत्य हैं, सर्वथा सत्य हैं, उनका कथन कभी असत्य नहीं हो सकता, लोकमें भी प्रसिद्ध है कि, मुनियोंका कहा हुआ कभी अन्यथा नहीं होता ॥ १३८ ॥ तब रुक्मिणी बोली, ये बात कैसे बन सकती है? कारण मुझे तो शिशुपालको देनी कर दी है ॥ १३९ ॥ तब भुआने उत्तर दिया, बेटी! तू चित्तमें वृथा ही क्यों खेदखिन्न हो रही है, मेरा कहा सुन ॥ १४० ॥ तेरे माता पिताने तुझे शिशुपालको देनी नहीं की है, किन्तु यह तेरे रूप्यकुमार भाईकी करतूत है, जो कारणवशात् वहां गया था और सन्मानको पाकर संतुष्ट हो देनी कर आया है ॥ १४१ ॥

इस प्रकार वृत्तान्त सुनकर राजाश्रेणिकने गणधरस्वामीसे प्रश्न किया कि, शिशुपालके पास रूप्यकुमार किस कारणसे गया था? तब गौतमस्वामी बोले, श्रेणिक! मैं इसका वृत्तान्त सुनाता हूं, ध्यानसे सुनो;— एक दिन जब शिशुपाल शत्रुओंपर चढ़ाई करनेको तयार हुआ ॥ १४२-१४३ ॥ तब उसने राजा भीष्मके पास एक दूत भेजा और उससे यह संदेशा कहलाया कि, आपको अपनी सेनासहित मेरे पास बहुत शीघ्र आना चाहिये ॥ १४४ ॥ दूतके वचन सुनकर राजा भीष्म बहुत शीघ्र कवच (जिरहबख्तर) पहनी हुई और शस्त्र धारणकी हुई अपनी सेनाको इकट्ठी करके रवाने होनेको उद्यत हुआ ॥ १४५ ॥ चलते समय वह अपने रूप्यकुमार पुत्रको राज्यसत्ता सौंपने लगा, कारण यह बुद्धिमानोंकी नीति है ॥ १४६ ॥ तब अपने पिताको इस कार्यमें उद्यत हुआ देख रूप्यकुमार बोला, पिताजी! आप ये क्या करते हो? इतना कहते ही वह यौवनशाली कुमार स्वयं सेनासहित शिशुपालके पास जानेको तयार हो गया ॥ १४७ ॥ तब राजा भीष्मने कहा, बेटा! तुम्हें कुलपरम्परासे प्राप्त होनेवाले और शत्रुओंकी बाधासे रहित ऐसे इस राज्यकी रक्षा करनी उचित है ॥ १४८ ॥ मुझे सेनासहित जाने दो। तब कुमारने अपना सिर झुका लिया

और कहा, पिताजी ! मुझ पुत्रके विद्यमान होनेपर भी आप किसप्रकार जा सकते हैं ? कारण पुत्रका यही धर्म है, कि अपने माता पिताको सुखी रक्खे । अन्यथा शोक सन्तापके करनेवाले बहुतसे पुत्रोंकी उत्पत्तिसे क्या लाभ है ? पिताका एक भी भक्त सुपुत्र हो, तो वही बस है ॥ १४६–१५१ ॥ तब भीष्मराजने कहा, बेटा ! तू अभी सुकुमार है, तुझे युद्ध कर्मका अभी अभ्यास नहीं है, इस कारण तुझे शत्रुके सम्मुख जाना उचित नहीं है । तब कुमारने प्रत्युत्तर दिया, पिताजी ! पृथ्वीतलपर पुरुषके शक्तिशालीपनेकी ही प्रशंसाकी जाती है । देखिये–गजराज कितना स्थूल होता है और सिंह कितना पतला होता है, परन्तु सिंहकी गर्जना मात्रसे सैकड़ों हस्ती क्षणमात्रमें भाग जाते हैं ॥ १५२–१५४ ॥ अतएव यही कहना चाहिये कि "शूरवीरतासे सर्व कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें अवस्थाकी कोई अपेक्षा नहीं है ।" आपके पुण्यके प्रभावसे मैं क्षणमात्रमें शत्रुका पराजय करूंगा ॥ १५५ ॥ पुत्रके वचनोंको सुनकर पिताको सन्तोष हुआ, और उसने अनेक शकुनोंकी प्रेरणासे अपने पुत्रको सेनाके मध्यमें भेजकर उसके चित्तको प्रफुल्लित किया ॥१५६॥ जब रूप्यकुमार सेनासहित जाकर चन्देरीके राजा शिशुपाल से मिला, तब उसने कुमारका बहुत ही सम्मान किया । पश्चात् रूप्यकुमार वा उसकी सेना सहित राजा शिशुपाल युद्धको रवाने हुआ, संग्राममें उसने शत्रुका पराजय किया और विजयसामग्रीको साथमें लेकर चेदिपति अपने घर लौट आया ॥ १५७–१५८ ॥ रूप्यकुमारकी सेनाके बलसे ही शिशुपालने संग्राममें जय प्राप्त किया, इस कारण रूप्यकुमार उसका प्रेमपात्र बन गया ॥ १५९ ॥ चेदिपतिने (चंदेरीके राजा शिशुपालने) उसका अत्यन्त आदर सन्मान किया, जिससे कुमारने बहुत ही संतुष्ट होकर अपनी रुक्मिणी बहिन देनी कह दी । यह सुनते ही चेदिपतिको अपार आनन्द हुआ और सन्तुष्ट होकर उसने रूप्यकुमारको वस्त्रआभूषण असवारीसहित बिदा कर दिया । कुमारने अपने घर आकर मातापितादिसे सब वृत्तान्त निवेदन किया, जिससे सबको संतोष हुआ । इसप्रकार रूप्यकुमारका राजा शिशुपालके पास जाने आदिका वृत्तान्त है ॥ १६०–१६३ ॥

तदनन्तर भुआने रुक्मिणीसे कहा, बेटी ! अब तुझे मालूम हुआ कि, मातापिताने नहीं, किन्तु तेरे

भाईने तुझे चेदिराजको देनी की है ॥ १६४ ॥ संसारमें मातापिताकी दी हुई कन्या दूसरेकी कही जाती है। इसलिये तू चिन्ता मत कर, भवितव्य अच्छा ही होगा ॥ १६५ ॥ मैं ऐसा उपाय रचूंगी, जिससे श्रीकृष्णजी निःसन्देह तेरे भर्तार होंगे ॥ १६६ ॥ भुआके वचनोंको सुनकर रुक्मिणी दिलमें फूली नहीं समाई। कृष्णजीके होनहार समागमको सुनकर उसको बड़ा सन्तोष हुआ ॥ १६७ ॥ तदनन्दर बारम्बार अनेक प्रकारसे कृष्णनारायणकी प्रशंसा करके और उसे रुक्मिणीके दिलमें ठँसाके नारदजी वहांसे दूसरी जगह रवाना हो गये ॥ १६८ ॥

कुण्डनपुरसे चलकर नारदजी कैलाशशिखरपर पहुंचे। वहां बैठकर उन्होंने रुक्मिणीके रूपका एक चित्रपट बनाया। वह जब बिलकुल ठीक बन गया, तब नारदजी बड़ी प्रसन्नतासे उसे साथमें लेकर शीघ्रतासे द्वारिकाको चले ॥ १६९–१७१ ॥ श्रीकृष्ण सभामें विराजे हुए थे, वहींसे उन्होंने आकाश मार्गसे आते हुए नारदजीको देखा। जब मुनिको निकट आते देखा, तब कृष्णजीने खड़े होकर तथा आगे बढ़कर उनका सत्कार किया और अपना आसन दिया। नारदजी आशीर्वादसे राजाको सन्तोषित कर के सिंहासनपर बैठ गये। कृष्णजी भी दूसरे आसन पर बैठ गये। धर्मकथा होने लगी। पश्चात् कृष्णजी और नारदजीने जिनका कि चित्तप्रेमसे भरा हुआ था, परस्पर कुशल प्रश्नादि वार्तालाप किया ॥ १७२–१७५ ॥ अवसर देखकर श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैं आपसे एक दिलकी बात पूछता हूं। आप अढ़ाई द्वीपमें सर्वत्र परिभ्रम करते हैं, इसलिये यदि आपने कहीं कोई विनोदकी बात सुनी हो अथवा कोई चमत्कार देखा हो, तो मुझको सुनाओ। और यदि मेरे लायक कोई नवीन वस्तु लाये हो, तो वहभी दिखाओ। क्योंकि आप मेरे परम मित्र हैं। आपके समान मेरा और कोई मित्र नहीं है ॥ १७६–१७८ ॥ कृष्णके वाक्योंको सुनकर नारदजी प्रसन्न हुए, मुखसे कुछ न बोले, केवल अपने हाथको पसारकर उन्होंने कृष्णके साम्हने रुक्मिणीके स्वरूपका चित्रपट रख दिया ॥ १७९ ॥ कृष्णजीने ज्यों ही चित्रपटपर अपनी दृष्टि डाली, त्यों ही वे चकित हो गये और विचारने लगे कि, सचमुचमें इस सुंदरीने जिसकी

छवि चित्रपटपर खिंची हुई है, मेरे चित्तको चुरा लिया है। वे बड़ी देरतक टकटकी लगाकर उस मनोहर रूपको देखते रहे, और विचारने लगे कि, नारदको ऐसी सुंदरी कहां देखनेको मिली, जिसका यह चित्राम खींचकर उतावलीसे ले आये ॥ १८०–१८२ ॥ ब्रह्माने ऐसी रूपवतीको कैसे बनाया ? जगतमें कहीं भी अभी ऐसी सुन्दरी नहीं है–न पहले कभी हुई है और न आगे होवेगी ॥ १८३ ॥ जिसने अपनी चोटीसे (वेणीसे) काले नागोंकी कृष्णता वा नरमाईको, बोलीसे अमृतको, ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाको, मुखसे चन्द्रमाको, नासिकासे सूएकी चोंचको, नेत्रोंसे मृगीको, भौंहोंसे कामदेवके धनुषको, कण्ठसे शंखको, स्वरसे कोकिलाको, स्तनोंसे नारियलको, भुजासे पुष्पोंकी मालाको और मनोहर उदरसहित कमरसे इन्द्रधनुषको(?) जीता है, और जिसकी गंभीर नाभि लावण्यजलकी वापिकासी जान पड़ती है ॥ १८४–१८७ ॥ जिसकी जांघें और पुष्ट नितम्ब कदलीस्तंभके समान हैं और जिसके चरण गुलाईदार जांघोंसे बड़े मनोहर दीख पड़ते हैं ॥ १८८ ॥ जिसने अपनी हथेली और चरणके तलुओंसे कमलोंको परास्त किया है, जिसके शरीरका रंग ताये हुए सुवर्णके समान है, जिसने अपनी कांतिसे चन्द्रमाका, तेजसे सूर्यका और गंभीरतासे समुद्रका पराजय किया, जो शुभलक्षणोंकी धारण करनेवाली और सर्वाङ्ग सुन्दर है ॥ १८९–१९० ॥ यह कौन है ? कहांसे आई है ? किसप्रकार और किस हेतुसे इसकी यह छवि खींची गई है ? नारदने इसे कैसे देखा ? और किस प्रकार उसकी मनोहर आकृतिको पटपर उतारा ? ॥ १९१ ॥ यह इन्द्रानी है कि कामदेवकी पत्नी रति है। चन्द्रमाकी प्राणप्यारी है कि सूर्यकी कान्ता है ? कीर्तिकी मूर्ति है कि साक्षात् सरस्वतीका ही रूप है ? यक्षिणी है कि कोई किन्नरी है ? यथार्थमें यह रूप किसका है ? ॥ १९२–१९३ ॥ इस प्रकार अचम्भेमें पड़कर श्रीकृष्णने अनेक संकल्प विकल्प किये, और चिरकालतक वह उस चित्रपटको एक ध्यानसे देखते रहे। पश्चात् विचार किया कि, मैं इतनी उलझनमें क्यों पड़ा हुआ हूं ? नारदजीसे ही चित्रपटपर खिंची हुई सुन्दरीका वृत्तान्त क्यों न पूछ लूं। हाथमें पहने हुए कंकणको देखनेके लिये दर्पणकी क्या आवश्यकता है ? "करकंधनको आरसी क्या ?" इस प्रकार

श्रीकृष्णने बड़ी देर एक विचारसागरमें गोते लगाये। पीछे जिन जिन बातोंका दिलमें संदेह पैठ रहा था, वे सब विनयपूर्वक नारदजीसे पूछीं किः—हे स्वामिन्! ये किसका रूप है? आपने इस मोहनी सूरतको कहां देखकर खींची? इसका पूरा २ परिचय मुझे कृपाकरके कराइये॥ १९४–१९७॥ कारण चित्राममें खिंची हुई सुन्दरीको देखकर मेरा मन मानो कीलित हो गया है, वशीभूत कर लिया गया है, वा मोहित कर लिया गया है। इसको देखते ही एकदम मेरा चित्त चलायमान हो गया है॥ १९८॥ कृष्णजीकी बातको सुनकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले, राजन्! अपने दिलको दुःखी मत करो। यह किसी देवाङ्गना, गांधर्वी वा विद्याधरीका रूप नहीं है। किन्तु एक भूमगोचरी मनुष्यनीका ही रूप है। मैं इसका वृत्तान्त कहता हूं, सुनो—॥ १९९॥

एक कुण्डनपुर नामका नगर है, जिसमें भीष्म नामका राजा राज्य करता है। उसकी जगद्विख्यात सर्व रानियोंमें श्रेष्ठ श्रीमती नामकी प्रिया है। और श्रीमती रानीकी एक रुक्मिणी नामकी पुत्री है। उसीका स्वरूप इस चित्रपटपर खिंचा हुआ है। रुक्मिणी पृथ्वीपर शोभायमान शुभलक्षणों वा गुणोंकी निधि ही है॥ २००–२०१॥ मैंने लवणसमुद्रतककी भूमि देख डाली। विद्याधरों वा भूमगोचरी राजाओंकी राजधानी वा महलोंमें भी मैं घूस आया, परन्तु मेरी दृष्टिमें कोई भी ऐसी स्त्री न आई; जो सुन्दरतामें रुक्मिणीके अंगूठेकी भी समानता कर सके। पृथ्वीतलपर ऐसी मनोहर सुन्दरी कोई भी नहीं है॥ २०२–२०३॥ रुक्मिणी जगतप्रसिद्ध है। नवयौवनसम्पन्न है और सुन्दरतारूपी जलकी बावड़ी है। आपने उसका नाम सुना ही होगा॥ २०४॥ उसे बनाकर ही ब्रह्माने अपनेको कृतकृत्य समझा है। इसके पहले स्त्रियोंकी रचनासे उसका दिल नहीं भरा था॥ २०५॥ परन्तु जब तक वह गुणवती युवती तुम्हारे घर विवाहित होकर न आ जावे, तब तक यह बात तुम गुप्त ही रखना॥ २०६॥ संसारमें तुम्हारा अवतार लेना तभी सार्थक होगा, जब जगद्विख्यात रुक्मिणी तुम्हारे साथ रमण करेगी॥ २०७॥ इस प्रकार अनेक वाक्योंसे नारदजीने कृष्णके चित्तको मोहित किया। तब कृष्णजीने जीखोलकर पूछा,

यह बाला विवाहिता है या कुँवारी ? सब बातका खुलासा हाल आप सुनाओ। तब नारदजीने जवाब दिया, यह श्रेष्ठ सुंदरी कुँवारी ही है ॥ २०८–२०९ ॥ परन्तु बन्धुजनादिके बिना पूछे इसे उसके भाईने राजा शिशुपालको देनी कर दी है। कारण जब कुमार उसके घर गया था, तब वह उसके आदर सन्मानसे संतुष्ट हो गया था ॥ २१०–२११ ॥ इसलिये जब तक तुम संग्राममें चंदेरीके राजा शिशुपालको नष्ट न करोगे, तब तक रुक्मिणी न मिल सकेगी। कारण शिशुपाल बलवान् है, उसके जीतेजी आपका सामर्थ्य नहीं है कि, रुक्मिणीको पा सको ॥ २१२ ॥ ऐसा सुनते ही कृष्णजीका मुख कुछ कृष्ण (उदास) पड़ गया। तब नारदजी बोले कृष्णजी तुम अपने चित्तको कातर (भयभीत) मत करो। रुक्मिणी तुम्हें बिना कठिनाईके मिल सकेगी ॥ २१३ ॥ कारण "शूरबीर पुरुषोंको सब कुछ मिल सकता है, डरपोंकोंको कुछ नहीं मिलता"। इस लिये कायरताको छोड़ दो और धीरज धारण करो ॥ २१४ ॥ हे कृष्ण ! जिस सुंदरीकी छबिपर तुम मोहित हो गये हो, उसे मैंने उसीके पिताके घर (माता पिताके पास) देखा है। वह अभीसे तुम्हारे घर आ गई, ऐसा तुम दिलमें निश्चय कर लो ॥ २१५ ॥ तुम वृथा ही चित्त दुःखी न करो। कारण कार्य अकार्यका विचार करनेवाले "उद्योगी पुरुषोंको ही सुख मिलता है, आलसी पुरुषोंको कभी सुख प्राप्त नहीं होता" ॥ २१६ ॥ यदि तुम्हारी अभिलाषा स्त्रियोंमें रमण करनेकी हो, तो जगत्प्रसिद्ध सुंदरी रुक्मिणीको प्राप्त करो ॥ २१७॥ जिस प्रकार द्विजपति, औषधिपति तथा कलावन्त चन्द्रमाको पूर्णमासीके सिवाय दूसरी रात्रि शोभाके लिये नहीं होती, उसी प्रकार जब तक तुम्हारे घर वह सुन्दरी न आ जाय, तब तक तुम्हारी सैकड़ों हजारों वा लाखों रानियें सब व्यर्थ हैं ॥ २१८–२१९॥ ऐसे तरह २ के वाक्योंसे श्रीकृष्णको मोहित करके नारदजी प्रसन्न चित्तसे अपने यथायोग्य स्थानको चले गये ॥ २२० ॥ उनके जाते ही कृष्णजीको मूर्छा आ गई। परन्तु बन्धुजनोंने शीतोपचार किया, जिससे वे सचेत हो गये ॥ २२१ ॥ परन्तु चिन्तातुर होने लगे कि किस प्रकारसे वह सुन्दरी मुझे प्राप्त हो ? मैं यह वार्ता किससे कहूँ ? ॥ २२२ ॥ इस प्रकार सचिन्त दशाका अवलम्बनकरके कृष्णजी अपने घर ही

रहने लगे। उन्हें दिनको न भूख लगे और न रात्रिको नींद आवे ॥ २२३ ॥ जिससमय कृष्णनारायण रुक्मिणीके लिये ऐसे चिन्ताग्रसित हो रहे थे, उसी समय रुक्मिणीके यहां एक दूसरी घटना हुई, वह सुननेके योग्य है:— ॥ २२४ ॥

बुद्धिवान् राजा शिशुपालने मुझे (रुक्मिणीको) विवाहनेके लिये लग्नपत्र शुधवाया है। ऐसा सुनते ही रुक्मिणीको बड़ी चिन्ता व्यापी ॥ २२५ ॥ उसने अपना दुःख अपनी भुआसे निवेदन किया कि, यदि श्रीकृष्णका मुझसे वियोग हुआ अर्थात् यदि मेरा उनसे सम्बन्ध न हुआ, तो सच समझना, मैं जीवित नहीं रहूंगी ॥ २२६ ॥ तब भुआ बोली, बेटी! तू वृथा ही दुःखी क्यों हो रही है ? जैसी तेरी इच्छा होगी, मैं उसे सफल करनेका उपाय करूंगी ॥२२७॥ तब भुआ भतीजीने अपने "कुशल" नामके दूतको बुलाया, जो सर्व कलामें कुशल (निपुण) था और यौवन अवस्था सम्पन्न था। उससे सब रहस्यकी बात कहकर तथा एक उत्तमतासे लिखा हुआ प्रेमसूचक वाक्योंसे भरा हुआ पत्र भी देकर श्रीकृष्णके पास जानेके लिये रवाना कर दिया ॥ २२८–२२९ ॥ ज्यों ही दूत कुण्डनपुरसे द्वारिकाको रवाना हुआ, त्यों ही उसे अनेक शुभशकुन हुए, जिनसे उसका चित्त रंजायमान हुआ ॥ २३० ॥

"कुशल" दूत रमणीक द्वारिका नगरीमें पहुंचा। वह उसे देखते ही चकित हो गया। विचारने लगा कि, यह इन्द्रकी पुरी अमरावती पृथ्वीपर कैसे आ गई ? ॥२३१॥ फिर बड़े आश्चर्यसे चहुँओर निरखता हुआ दूत प्रसन्न चित्तसे राजमार्गसे आगे बढ़ा ॥ २३२ ॥ राजद्वारपर पहुँचकर उसने द्वारपालसे कहा कि, श्रीकृष्ण महाराजसे मेरे आनेके समाचार कहो ॥ २३३ ॥ द्वारपालने पूछा, तुम कौन हो? कहांसे आये हो? और किसने तुम्हें भेजा है ? तब दूतने सरसतासे उत्तर दिया—मैं विदेशसे आया हूं, और विदेशी राजाने मुझे भेजा है। तुम अपने स्वामी श्रीकृष्णके पास जाओ और उनसे ऐसा कहो कि "मैं आपके चित्तको प्रसन्न करनेवाले एक प्रेमसम्बन्धी कार्यके लिये आया हूं" दूतके वचन सुनकर द्वारपाल राजाके पास गया ॥ २३४–२३६ ॥ उसने नमस्कार किया और दूतसम्बन्धी वार्ता कह सुनाई। कृष्णजी-

ने आज्ञा दी कि, उसे सन्मानपूर्वक बहुत जल्दी मेरे पास ले आओ ॥ २३७–२३८ ॥ आज्ञानुसार द्वारपाल दूतको सभाके भीतर ले आया। श्रीकृष्णकी सभाके दर्शन करके दूतका हृदय आनन्दसे भर गया। श्रीकृष्णजीको प्रणाम करके वह बतलाये हुए स्थानपर गया। और फिर उसने श्रीकृष्णजीको कुछ संकेत किया। जिसे समझकर उन्होंने प्रतिहारीको इशारेसे आज्ञा दी और उसने सभाको विसर्जन कर दी ॥ २३९–२४१ ॥ पश्चात् श्रीकृष्णने दूतसे आनेका कारण पूछा, तब वह विनयपूर्वक बोला, स्वामिन्! आपसे कुछ निवेदन करना है, जिसके श्रवणमात्रसे आपके हृदयमें प्रमोद उत्पन्न होगा। कृष्णजीको दूतके वचनोंसे संतोष हुआ। इस कारण वे अपने भ्राता बलदेवसहित दूतको लेकर महलमें गये और एकान्त स्थानमें जा विराजे। दूत भी यथोचित स्थानपर बैठ गया ॥ २४२–२४५ ॥ श्रीकृष्णजीने दूतसे पुनः वृत्तान्त पूछा, तब वह बोला "नाथ! मेरे वाक्य प्रेमके कारणभूत और सत्पुरुषोंके माननीय हैं। उन्हें आप सारभूत और यथार्थ समझ कर ध्यानसे सुनें— ॥ २४६–२४७ ॥

रमणीक कुण्डनपुर नगरमें सुप्रसिद्ध भीष्म नामका राजा राज्य करता है, जो अनेक राजाओंद्वारा सेवित और शत्रुसमूहको जीतनेवाला है ॥ २४८ ॥ उसकी श्रीमती नामकी प्राणप्रिया है, जो जगद्विख्यात और मनोहर स्वरूपकी धारण करनेवाली है। जिसका महाशीलवान वा गुणवान रूप्यकुमार नामका पुत्र है। जिस प्रकार इन्द्रका पुत्र जयन्त और महादेवका पुत्र षडानन शूरवीर, धीर और मानी है, उसी प्रकार भीष्मराजका रूप्यकुमार भी है ॥ २४९–२५० ॥ इस कुमारकी जो छोटी बहिन है, वह रूपवती गुणवती और नवयौवनसम्पन्न है। उसका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर है ॥ २५१ ॥ जिसप्रकार समुद्रसे लक्ष्मी, पर्वतसे पार्वती, ब्रह्माजीसे सरस्वती उत्पन्न हुई और जगतमें विख्यात हुई हैं, उसी प्रकार श्रीभीष्म राजाकी पुत्री रुक्मिणी जगतमें प्रसिद्ध है ॥ २५२–२५३ ॥ उसे रूप्यकुमारने संग्रामसे लौटकर सन्मानसे सन्तुष्ट होकर शिशुपाल राजाको देनी कर दी है ॥ २५४ ॥ प्रथम ही गुरुजनों वा बन्धुओंसे विना पूछे रूप्यकुमारने चेदिराजको रुक्मिणी देनेका वचन दे दिया था पश्चात् जब वह घर

आया और उसने अपने कुटुम्बियोंसे कहा, तब उन सबने भी उसने जो कुछ किया स्वीकार कर लिया। कारण शिशुपाल योग्य है और योग्य पुरुष किसको प्यारा नहीं लगता है ॥ २५५–२५६ ॥ आगनमें इकट्ठे होकर समस्त स्वजन बन्धुओंने रुक्मिणी और शिशुपालकी लग्ननिधि निश्चय की है ? । और माघशुक्ला अष्टमीके दोषवर्जित शुभलग्नमें उनका विवाह होना नियत हो गया है ॥ २५७–२५८ ॥ रात्रि व्यतीत होनेपर दूसरें ही दिन प्रातःकाल नारदजी वहां पधारे । वे प्रथम ही राजा भीष्मसे मिले । पश्चात् रणवासमें गये, जहां उन्हें पहले ही राजाकी विधवा बहिन मिली, जो बड़ी चतुर, और रणवासमें सन्मान पानेवाली है तथा जिसका भीष्मराज भी सत्कार करता है । विधवाने राज्यमान नारदजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके आसन दिया । पश्चात् उसीने राजाकी रानियोंसे नारदजीके पांव पड़वाये ॥ २५९–२६१ ॥ जब नारदजी आसनपर विराजमान हुए और उन्होंने कुशल क्षेम पूछी, तब रुक्मिणी साम्हने खड़ी हुई थी । उसे देखकर मुनिने भीष्मराजकी बहिनसे पूछा, यह सन्मुख खड़ी हुई बाला कौन है, और किसकी पुत्री है ? ॥ २६२–२६३ ॥ तब उसने उत्तर दिया, नाथ ! यह राजा भीष्मकी पुत्री है और रूप्यकुमारकी छोटी बहिन है ॥ २६४ ॥ ऐसा कहकर विधवाने रुक्मिणीको मुनिके चरणोंमें नमाया, तब मुनिने उसे इस प्रकार उत्तम आशीर्वाद दिया कि "जो मुरारी (श्रीकृष्णनारायण) शत्रुसमूहको जीतनेवाला, द्वारिका नगरीका स्वामी और हरिवंशका श्रृङ्गार है, पुण्यके उदयसे हे पुत्री ! तू उसीकी पट्टरानी हो ।" नारदके वचनोंको सुनकर रुक्मिणीको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २६५–२६७ ॥ नारदजी तो वहांसे दूसरी जगह रवाने हो गये । परन्तु आपके स्नेहवश रुक्मिणीकी कैसी दशा हो रही है सो आप सुनिये ॥ २६८ ॥ उसको न कुछ अन्न रुचता है, न वह पानी पीना चाहती है और न रात्रिको (चिन्तातुर होनेके कारणसे) उसे नींद आती है ॥ २६९ ॥ चन्द्रमाकी चांदनी उसे विषके समान लगती है और शरीर में लेपन किया हुआ चन्दन अग्निके समान दाह करता है । उसका मन आपमें ही आसक्त हो रहा है । इस कारण बारम्बार वह ठंडी श्वास लेती है ॥ २७० ॥ आपके ही नामकी गणनासे अर्थात् आपहीके

नामकी माला फेरते रहनेसे वह जी रही है, इसमें कुछ संदेह नहीं है। ऐसा जानकर हे नाथ! आप यथोचित प्रयत्न कीजिये, जो परम सुखका कर्ता हो। आप मेरे वचन यथार्थ और सारगर्भित समझें और कर्तव्यको चित्तमें ठानकर यथोचित उपाय करें। यही मेरी प्रार्थना है ॥ २७१–२७२ ॥

श्रीकृष्ण और बलदेवजीने कुशल दूतके वचन ध्यानपूर्वक सुने। पश्चात् प्रेमके अत्यन्त वशीभूत होकर कृष्णजीने दूतसे पूछा—॥ २७३ ॥ वहां जाकर कहां तो ठहरना होगा? मेरा उसके पास कैसा जाना होगा? वह मुझे कैसे मिलेगी? ये सब वृत्तान्त तुम मुझसे कहो॥ २७४॥ तब दूतने विनयपूर्वक निवेदन किया, महाराज! आप शीघ्र ही कुण्डनपुरको पधारें। वहां एक "प्रमद" नामका बगीचा है, जो अनेक प्रकारके वृक्षलतादिकोंसे भरपूर है। उसमें एक अशोक नामका वृक्ष है, जिसके तले एक कामदेवकी मूर्ति है। वह रुक्मिणीने आपको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे स्थापित की है। उस अशोक वृक्षपर मनोहर पताका लगरही हैं। सो उसी वृक्षके पास हे नाथ! आप पधारें और पासके वृक्षसमूहकी ओटमें छुपकर बैठ जावें। कारण निःसन्देह रुक्मिणी वहां कामदेवकी पूजनको आवेगी। वह कुमारी पूजाके छलसे अपनी सखियोंको दूर ही छोड़कर अकेली वहां आवेगी और आपसे मिलेगी। इसलिये अपना हित जानकर आपको वहां अवश्य पधारना चाहिये। यह आप निश्चय समझिये कि, आपको छोड़कर वह बाला दूसरा पति नहीं करेगी। क्या सिंहनी कभी श्यालके (गोमायुके) बचेसे रमण करती है? कभी नहीं। उसी प्रकार क्या वह आपके अतिरिक्त किसी दूसरेको अंगीकार कर सकती है? कदापि नहीं। इसी बातका उसने व्रत धारण कर लिया है। वह सुंदरी आपके ही लिये उस बगीचेमें आवेगी और आपको चहुँओर देखेगी। कदाचित् उस बालाको आपके दर्शन नहीं होंगे, तो वहीं अपने प्राण त्याग देगी। ॥ २७५–२८३ ॥ जिससे आपको स्त्रीहत्याका पाप लगेगा। इस कार्यमें आप ढील न करें, शीघ्र ही प्रमदबनमें पधारें, यही मेरी बारम्बार प्रार्थना है ॥ २८४॥ इसप्रकार कहके और श्रीकृष्णको प्रणाम करके दूत वहांसे रवाना होनेको तयार हुआ। तब श्रीकृष्णने उसे वस्त्राभूषण देकर विदा किया ॥२८५॥

दूतके चले जानेपर श्रीकृष्ण (जिनका चित्त रुक्मिणीमें ही लगा हुआ था) और बलदेवजी युक्ति सोचने लगे ॥ २८६ ॥ उन्होंने विचारा कि, कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिये, जो सत्यभामाको मालूम न होने पावे। कारण वह विद्याधरकी पुत्री है। कहीं विद्याके बलसे अपने कार्यमें कोई विघ्न न कर बैठे ॥ २८७ ॥ पश्चात् उन्होंने कुण्डनपुर जानेका दृढ़ विचार कर लिया और इसी अभिप्रायसे वे दोनों भाई रात्रिके पिछले पहरके समय कवच पहनकर अपने स्वरूपको छुपाकर और अनेक शस्त्र धारणकरके रथमें बैठकर कुण्डनपुर को रवाना हो गये। सिवाय चित्तके धैर्यके जिनका कोई दूसरा साथी न था, रुक्मिणीमें ही जिनका मन लग रहा था, जो सर्व कलाओंमें कुशल थे, और जो बड़े गुणवान थे, ऐसे कृष्णबलभद्र दिलकी दौड़के समान शीघ्रगामी रथपर बैठकर कुण्डनपुरके प्रमद उद्यान के पास पहुंचे ॥ २८८-२९१ ॥ जब दूरसेही श्रीकृष्णने रमणीक कुण्डनपुरको देखा, तब वे दिलमें कहने लगे, दैव जाने क्या होता है ॥ २९२ ॥ पश्चात् कर्तव्यको चित्तमें ठानकर वे धर्मरूपी धनके धारण करनेवाले, सुन्दर मुखवाले, निःसहाय श्रीकृष्ण बलभद्र कुण्डनपुरके प्रमद उद्यानमें बहुत शीघ्र पहुंच गये ॥ २९३ ॥

इतिश्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रंथके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें श्रीकृष्ण-बलदेवका प्रमदोद्यानगमनके वृत्तान्तवाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थः सर्गः

वह प्रमद उद्यान ऐसा शोभायमान हुआ, मानों नानाप्रकारके वृक्षोंसहित और पुष्पोंके समूहसे शोभित इन्द्रका बगीचा (नन्दनवन) ही कुण्डनपुरको देखनेकी अभिलाषासे पृथ्वीपर आया है ॥ १ ॥ इस उपवनमें इन्द्र और उपेन्द्रके समान दोनों यादवोंने अर्थात् श्रीकृष्ण और बलदेवने प्रवेश किया और आगे बढ़कर शोकका नाश करनेवाला अशोक वृक्ष देखा, जिसके ऊपर मनोहर पताका फहरा रही थी

और नीचे कामकी मूर्ति स्थापित हो रही थी ॥ २–३ ॥ उस मूर्तिको देखकर श्रीकृष्णको सन्तोष हुआ। तब रथके घोड़े खोल दिये गये और स्थानान्तरमें चरनेको छोड़ दिये गये ॥ ४ ॥ तथा कृष्ण और बलदेव जिनके चित्तमें रुक्मिणी बसी हुई थी, निकटवर्ती वृक्षोंके सघन स्थानमें छुपकर बैठ गये ॥ ५ ॥ उसी समय मनुष्योंको आनन्दित करनेवाला एक दूसरा वृत्तान्त हुआः—

द्वारिकासे चलकर नारदजी चन्देरीके राजा शिशुपालके पास पहुंचे ॥ ६ ॥ राजाने उनका सन्मान किया। नारदजीने पूछा—सच सच तो कहो, क्या कार्यवाही चल रही है ? तब राजाशिशुपाल मुसकराये और बोले, भगवन्! आपके प्रसादसे जो कार्य चल रहा है, वह शुभरूप और सत्यार्थ ही है। तब नारदजीने बनावटी स्नेहसे कहा, तुम मुझे अपनी लग्नपत्रिका तो दिखाओ ? मैं भी जरा देखूं। तब राजाने मुनिके हाथमें अपनी लग्नपत्रिका दी ॥ ९ ॥ कलहप्रिय नारद लग्न देखकर और बहुत देरतक चिन्ता चक्रमें पड़कर अपना मस्तक धुनने लगे ॥ १० ॥ उनकी ऐसी चेष्टा देखकर शिशुपालने पूछा, स्वामिन्! आपने सिर क्यों धुना ? ॥ ११ ॥ तब नारदजी बोले, राजन्! मुझे लग्नके समय आपके शरीरमें कष्ट होनेके कारण दीख पड़ते हैं। इसलिये आपको कुण्डनपुर बहुत साधन सहित सावधान होकर जाना चाहिये ॥ १२–१३ ॥ ऐसा कहके और एक नयी कलह तथा शल्य खड़ी करके नारदजी वहांसे चम्पत हुए।

नारदमुनिके चले जानेपर राजा शिशुपालको बड़ी चिन्ता उपजी ॥१४॥ शंकित होकर उसने बड़ी सेना इकट्ठी की और अनेकप्रकारके साधनों सहित वह कुण्डनपुर रवाने हुआ ॥ १५ ॥ पहुँचते ही उसने कुण्डनपुरको अपनी समस्त सेनासे घेर लिया, जिस प्रकार गिरिराज सुमेरुपर्वतको तारागणोंने घेर रक्खा है ॥ १६ ॥ जिस समय शिशुपाल राजाने नगरको इस प्रकार बेढ़ रक्खा था, उसी समय प्रमद उद्यानमें कृष्ण और बलदेवजी आये थे ॥ १७ ॥

जब रुक्मिणीने सुना कि, कुण्डनपुर घिरा हुआ है, तब वह बड़ी दुःखिता हुई और विचारने लगी

कि, कृष्णसे विभूषित बनमें अब मैं कैसे जासकती हूं ॥ १८ ॥ भुआने उसे चिन्ताग्रसित देखकर कहा, बेटी! तेरे मुखपर उदासी कैसे छा रही है? ॥ १६ ॥ रुक्मिणीने उत्तर दिया, भुआजी! शिशुपालने नगरको सेनासे घेर रक्खा है। अब मेरा उपवनमें जाना कैसे होगा? ॥ २० ॥ तब भुआ बोली, बेटी! तू दुःखी मत हो, इनके देखते २ ही तेरा उपवनमें बेखटके जाना हो सकेगा ॥ २१ ॥ भुआने रुक्मिणीको ऐसे मीठे २ वाक्योंसे धीरज बँधाया। उसी समय उसके (भुआके) हृदयमें एक उपाय दृष्टि पड़ा। सो ठीक ही है, स्त्रियोंमें मौका पड़नेपर तत्काल बुद्धि स्फुरायमान होती है ॥ २२ ॥ उसने दासी सहित रुक्मिणीको अपने साथ कर लिया और गीतगाती हुई धीरे २ नगरके बाहर निकली ॥ २३ ॥ शिशुपालके सिपाहियोंने उस कन्याको स्त्रीसमूहमें जाती देखकर वहीं रोक दी और उनमेंसे कुछ सिपाहियोंने शिशुपालसे जाकर कहा, महाराज! रुक्मिणी नगरके बाहर निकली है और स्त्रियों सहित सघन बनमें जा रही है ॥ २४-२५ ॥ यह सुनकर शिशुपालने राजनीतिसे भरे हुए वचन कहे कि-"फौरन जाओ और रुक्मिणीको बनमें जानेसे रोक दो!" ॥ २४-२६ ॥ तब सिपाहियोंने जाकर रुक्मिणीको रोक दिया और कहा, भयंकर बनमें तुम्हें नहीं जाना चाहिये। ऐसी हमारे स्वामीकी आज्ञा है ॥ २७ ॥ तब भुआने कहा, मेरी बात सुनो, "रुक्मिणीने बनमें कामदेवकी यात्रा मनाई है। क्योंकि वह एकदिन सखी सहेलियों सहित बनमें क्रीड़ा करनेको गई थी। और वहां उसने एक मनोहर कामदेवकी मूर्ति देखी थी। उस समय मूर्तिको प्रणाम करके रुक्मिणीने प्रतिज्ञा की थी कि, यदि शिशुपाल राजा मेरा पति होगा, तो मैं लग्नके दिन तेरी यात्राको आऊंगी। इस प्रकार यथेष्ट वरकी इच्छासे रुक्मिणीने यह यात्रा बनमें मनाई है। और सौभाग्यसे राजा शिशुपाल ही उसके होनहार पति दीखते हैं, तो भला कामदेवकी यात्राको रुक्मिणी क्यों न जाय? ॥ २८-३२ ॥ उस मूर्तिके सन्मुख शिशुपाल राजाकी कुशलादि प्रार्थना की जावेगी, सो देखा ही जाता है कि, स्त्रियें अपने पति पुत्रादिकी कुशलता हर एक प्रकारसे चाहती हैं ॥ ३३ ॥ ये वचन सुनकर सिपाहीने राजा शिशुपालके पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३४ ॥

सुनते ही राजाका जी पानीपानी हो गया। वह हर्ष वा प्रेमसे रुक्मिणीकी वांछा करने लगा। उसने अपने सिपाहियोंको हुकम दे दिया कि, बिलकुल रोक टोक मत करो। रुक्मिणीको बनमें जाने दो। सिपाही तत्काल पहुंचे और उन्होंने उस स्त्रीसमूहको बनकी तरफ जाने दिया। जब वे सबकी सब प्रमद बनके पास पहुंचीं, तब भुआने सबको रोककर रुक्मिणीसे कहा, बेटी! यह वही बन है, जिसमें तेरा देवता स्थापित है। और जिसकी यात्राको तू आई है। अब तूही अकेली बनमें जा और अपने देवकी भक्तिपूर्वक उपासना कर॥ ३५–३९॥

तब रुक्मिणी मंद २ गतिसे पूजनकी सामग्री लेकर बनमें गई और वहां चारों तरफ इस प्रकार देखने लगी, जैसे झुंडसे बिछुड़ी हुई मृगी चहुँओर झांकने लग जाती है॥ ४०॥ कृष्णराजने वृक्षोंके कुंजमेंसे छुपे हुए उस मनोहर अंगकी धारण करनेवाली, शुभलक्षणा, घूंघरवाले केशवाली, कामबाणके समान नेत्रोंवाली, चन्द्रके समान सुंन्दर मुखवाली, और कंबुके समान सुन्दर कण्ठवाली रुक्मिणीको देखा जिसका शरीर पतला था, जिसके कुच पुष्ट और ऊँचे थे, जिसकी आवाज सारंगीके समान सुरीली थी, जिसकी भुजा मालती पुष्पके समान कोमल थी, जिसका वर्ण ताये हुए सुवर्णके समान था, जिसकी कमर नाजुक थी, और जिसके स्थूल नितम्ब मण्डल दिशाओंके हाथियोंके समान थे, मेखलासहित जिसके पांव कामदेवके निवासस्थान थे, जिसकी सघन उन्नत जांघ कदली वृक्षके स्तम्भके समान थी, जिसके चरण कमलके समान सुन्दर थे, जिसके नूपुर बज रहे थे, और जिसकी चाल हंसनीके समान थी, उस रुक्मिणीने वहां पुकारकर कहा, यदि मेरे पुण्योदयसे द्वारिकानाथ यहां आये हों, तो मेरी पुकारको सुनकर मुझे शीघ्र दर्शन देवें॥ ४१–४७॥ उस कुमारीने ज्यों ही ऐसे शब्द कहे, त्यों ही वृक्षोंके कुंजमेंसे निकलकर रूपवान कृष्णबलदेव उसके सन्मुख खड़े हो गये॥ ४८॥ अपने स्वामीको सन्मुख खड़ा देखकर वह अपना मस्तक नीचे झुकाकर अंगूठे से जमीन खुरचने लगी॥४९॥ श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे कहा, सुंन्दरी! तेरे वचनानुसार द्वारिकाका स्वामी उपस्थित हुआ है॥ ५०॥ अतएव तू प्रसन्न होकर उसकी ओर देख। कृष्णजीके

वाक्योंको सुनकर रुक्मिणीने लज्जावश अपना मुख नम्रीभूत ही रक्खा। उसका कंधा कम्पित होने लगा। मानो शिशुपालके भयसे ही उसका शरीर कम्पायमान हो रहा था ॥ ५१–५२॥ इतनेमें रथको सजाकर तथा घोड़ोंको जोतकर बलदेवजी बोले "स्त्रियोंको स्वभावसे ही लज्जा होती है। फिर कन्याओंको तो होनी ही चाहिए ॥ ५३ ॥ इसलिए कृष्ण! तू क्या देख रहा है? दोनों हाथ पकड़के इसे शीघ्र रथमें बैठा ले। स्त्री चरित्रको तू नहीं जानता। सचमुचमें तू पूरा गोपाल अर्थात् गाय भैंस चरानेवाला ही है" ॥५४॥ तब प्रेमपूरित कृष्णजीने रथमें बैठा लेनेके छलसे रुक्मिणीका आलिंगन किया ॥ ५५ ॥

रुक्मिणीको बिठाकर बलदेवजी और कृष्णजी भी रथमें आरूढ़ हो गये। तब बलदेवजीने सपाटेसे रथको चलाया और चलते रथमें श्रीकृष्णने अपना शंख बजाकर बड़ी बीरताके शब्द कहे, तथा जोरसे सबको अपना वृत्तान्त कह सुनाया किः—॥ ५६–५७॥ जो कोई शिशुपालके दलके वा कुण्डलपुरके रहनेवाले हों, वे मेरे पराक्रमके वचन सुनें, मैंने अर्थात् कृष्णनामके शूरवीरने रुक्मिणीको हठसे हरण की है, सो जिस किसीकी शक्ति हो, वह मुझसे रुक्मिणीको छुड़ा लेवे ॥ ५८–५९ ॥ यदि तुम सबके देखते २ रुक्मिणी हरी जाय, तो राजा लोगोंकी तुम जैसे सेवकोंसे क्या कार्य सिद्धि हो सकती है? ॥ ६० ॥ हे शिशुपालराजाधिराज! मेरी बात सुनो, भला जब रुक्मिणीको मैं हर ले जाऊं, तब तुम्हारे जीवनसे क्या है? ॥ ६१ ॥ हे भीष्मराज! तुम्हारी पुत्रीको द्वारिकाराजा और उनके भाई बलदेवने हरी है ॥ ६२ ॥ हे रूप्यकुमार! सुनो, मैंने तुम्हारी बहिनको हरी है। तुम्हारी शूरता, तुम्हारा अभिमान और तुम्हारा धैर्य किस कामका? ॥ ६३ ॥ यदि तुममें सामर्थ्य हो, तो मेरे रथके पीछे आओ और अपनी बहिन रुक्मिणीको छुड़ाओ। यदि तुममें कुछ साहस नहीं है, तो तुम्हारे जीवनको धिक्कार है ॥ ६४ ॥ यदि तुम सबके साम्हने मैं रुक्मिणीको हरके ले जाऊं, तो तुम्हारी शूरबीरता, धीरता और सामर्थ्य सचमुच ही व्यर्थ है ॥ ६५ ॥ हे राजाओ! मेरे साथ संग्राममें युद्ध किये विना तुम सबके सब किस-प्रकार कृतार्थ हो सकते हो? ॥ ६६ ॥ ऐसा कहके कृष्णजी अपने उत्तम रथको युद्ध करनेके लिये वनके

बाहिर लम्बे चौड़े मैदानमें झपाटेसे ले गये ॥ ६७ ॥ उसी समय शिशुपालादिक सबके सब कृष्णके वचन और रुक्मिणीका हरण सुनकर घबगाये ॥ ६८ ॥ पश्चात् भीष्मराज और रूप्यकुमारकी सब सेना कुण्डनपुरके बाहर निकली ॥ ६९ ॥ शिशुपालकी सागरके समान सेनामें हलचल मच गई और उसकी शस्त्र कवच आदिसे सजी हुई सेना, "उस दुष्ट, चोर, डाकूको पकड़ो ! पकड़ो !" ऐसी चिल्लाहट मचाती हुई शहरसे बाहर निकली जिसमें हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे और नौकर चाकरोंकी टोलीकी टोली थीं ॥ ७०–७१ ॥ बाजोंके आवाजसे हाथियोंकी चीत्कारसे, घोड़ोंके हिनहिनानेसे, भाटलोगोंके जयकारेके शब्दोंसे रथोंके चकोंके चीत्कारसे, धनुषोंकी भन्नाटसे, और सुभटोंकी खिलखिलाटकी हंसीके मारे कानोंसे सुनाई ही नहीं पड़ता था ॥ ७२–७३ ॥ चारोंतरफ फैली हुई, पीठ पीछे भागती हुई, और जोरसे आती हुई सब सेनाको बलदेव और कृष्णने रोक लिया ॥ ७४ ॥ जिसप्रकार जोरशोरसे ऊंची उठी हुई नदियोंके वेगको समुद्र रोक लेता है, उसी प्रकार उन दोनों भाइयोंने क्षणमात्रमें सब सेनाको रोक लिया ॥ ७५ ॥ जब रुक्मिणीने एक तरफ तो सैकड़ों सुभटवाली सम्पूर्ण सेनाको और दूसरी तरफ अकेले कृष्ण-बलदेव दो ही पुरुषोंको देखा, तब उसने विचारा कि न मालूम क्या होनहार है । मेरे अभाग्य के वशसे इन दोनोंकी आयुका नाश होता दीखता है ॥ ७६–७७ ॥ इतनी बड़ी सेना तो कहां और ये दोनों रूपवान और गुणवान कहां ? मेरे कारणसे इन दोनोंका मरण होगा, हाय यह मैंने अच्छा नहीं किया ॥ ७८ ॥ रुक्मिणी निराश और चिन्तातुर हुई और दुःखित होकर अपनी आंखोंसे आंसूकी धारा बहाने लगी ॥ ७९ ॥ बलदेवजीने उसकी ऐसी दशा देखकर कृष्णसे कहा, जरा इस सुंदरीकी ओर तो झांको ! अपने साम्हने इतनी जंगी सेनाको देखकर यह कैसी चिन्तातुर हो रही है ? कोई ऐसी तजवीज करो, जिससे इसे अपना विश्वास हो जाय और धीरज बँध जाय । श्रीकृष्णका हृदय रुक्मिणीको विलाप करते देखकर करुणा रससे भर आया । उन्होंने कहा, प्रिये ! मेरी बात सुन, शत्रुकी बड़ी सेनाको देखकर तू चिन्ता मतकर ॥ ८०–८२ ॥ देख तो सही, मैं क्षणमात्रमें इस सेनाके सुभटों तथा उनके स्वामी राजा-

दिकोंको यमराजके घर भेज देता हूं ॥ ८३ ॥ इस प्रकार कहनेसे रुक्मिणीके चित्तको विश्वास न हुआ, इसलिये वह फिर चिन्ता करने लगी । जब कृष्णने रुक्मिणीको पुनः चिन्ताग्रसित म्लानमुख देखा, तब कहा, हे सौभाग्यशालिनी ! जरा मेरी असामान्य शक्तिको तो देख ! मैं अभी तुझे अपनी शक्तिका परिचय दिये देता हूं, जिससे निःसन्देह तुझे विश्वास हो जायगा ॥ ८४–८५ ॥ यह कहकर कृष्णजीने अपनी अंगूठीका हीरा निकालकर चुटकीसे चूर्ण कर डाला और उसके चूर्णसे रुक्मिणीके हाथमें एक मंगलीक सांथिया बना दिया । पश्चात् उन्होंने एक बाण चलाया और क्षणमात्रमें साम्हनेके सात ताड़के वृक्ष छेद दिये ॥ ८६–८७ ॥ ऐसी अलौकिक अचंभेकारक शक्तिको देखकर भी रुक्मिणी पुनः विलाप करने लगी । तब कृष्णने पूछा, हे चन्द्रानने ! कह तो सही, अब भी तू किसकारण दुःखित हो रही है ? ॥ ८८–८९ ॥ तब रुक्मिणीने लज्जाको संकोचकर, अपने हाथ जोड़कर, विनयसे मस्तक झुकाकर निवेदन किया, हे प्राणनाथ ! इसमें संदेह नहीं कि, आपका पराक्रम अद्भुत है, परन्तु मेरी एक प्रार्थना है, उसपर आप ध्यान दीजिये । वह यह है कि, संग्राम भूमिमें आप कृपाकर मेरे पिता और भ्राताको जीवित बचा देवें, नहीं तो संसारमें मुझे लोकनिन्दाका दुःख सहना पड़ेगा ॥ ९०–९२ ॥ इसलिये दयादृष्टिसे मेरे पिता भ्राताको छोड़ देना । रुक्मिणीके वचन सुनकर कृष्णजी मुसकराये और बोले हे देवी ! तू अपने हृदयमेंसे इस दुःखदायिनी चिन्ताको दूर कर दे । मैं सच कहता हूं कि, तेरे पिता भ्राताको संग्राममें जीवित छोड़ दूंगा ॥ ९३–९४ ॥ कृष्णके वचनोंको सुनकर रुक्मिणी प्रसन्न हुई और बोली, हे नाथ ! शत्रुराशिसे भरी हुई इस संग्राम भूमिमें आपकी जय हो ॥ ९५ ॥

तब बलदेवजी लक्ष्मीपति श्रीकृष्णसे बोले,—शिशुपाल बड़ा बलवान योद्धा है । मेरा सामर्थ्य नहीं, कि उसके साथ युद्ध ठानूं ॥ ९६ ॥ शिशुपालको छोड़कर, सुभटोंसे भरी हुई सर्व सेनाको, मैं क्षणमात्रमें जीत लूंगा और दशोंदिशाओंमें भगा दूंगा ॥ ९७ ॥ तुम शिशुपाल महा शूरवीरका संग्राममें पराजय करो । बलदेवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले, शिशुपालकी आप क्या बात करते हैं ? ॥ ९८ ॥

उसे तो मैं क्षणमात्रमें जीत लूंगा और यमराजके घर भेज दूंगा। ऐसा कहके, और रुक्मिणीको रथमें छोड़कर, शत्रुको जीतनेमें लगा है चित्त जिनका, धीरवीर, साहसी विद्याविशारद वे दोनों योद्धा वहांसे आगे बढ़े और समुद्रके समान शिशुपालकी सेनाका उन्होंने साम्हना किया ॥ ९९-१०० ॥ जिस प्रकार निडर होके सिंह मदोन्मत्त गजराजपर टूट पड़ता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने, जिनका मुख क्रोधसे झलझलाट कर रहा था, शिशुपालपर आक्रमण किया ॥ १०१ ॥ शिशुपाल भी कुपित होकर कृष्णसे भिड़ पड़ा। तब उनदोनों शूरवीरयोद्धाओंमें मनुष्योंको बड़े आश्चर्यका करनेवाला घोर युद्ध हुआ ॥ १०२ ॥ दूसरी तरफ बलदेवजीने शेष समस्त सेनाके साथ तेजबाणोंकी वर्षासे बड़ा भयंकर युद्ध किया ॥ १०३ ॥ पहाड़के समान मदोन्मत्त हाथियोंको धरातलपर बिछा दिया और बड़े २ शीघ्रगामी घोड़ोंको गिरा दिया ॥ १०४ ॥ हाथी और घोड़ोंपर बैठे हुए बड़े २ अधिकारियोंको चूर कर दिया और कुलीन शक्तिवान शूरवीरोंको नष्ट कर दिया ॥ १०५ ॥ इस प्रकार एक तरफकी सब सेनासे बलदेवने और दूसरी तरफकी सबसेनासे श्रीकृष्णने बड़ा भयंकर युद्धकिया ॥ १०६ ॥ देवताओंको भी आश्चर्यका करनेवाला और शत्रुसमूहके अनेक सुभटोंका नाश करनेवाला वह युद्ध चिरकाल तक हुआ। किसीकी सामर्थ्य नहीं हुई कि, बलदेवके साम्हने आकर (जीता) खड़ा हो ॥ १०७ ॥ जब मार पड़नेपर सब फौज दशोंदिशाओंमें रफूचक्कर हुई, तब रूप्यकुमारने भी बलदेवका साम्हना किया ॥ १०८ ॥ उस सुभट शिरोमणिने सेनाके तितरबितर हो जानेसे कुपित होकर और क्रोधसे अपने मुखकमलको लालकरके बलदेवके ऊपर एक तीक्ष्ण बाण चलाया ॥ १०९ ॥ परन्तु बलदेवजी वज्रका कवच पहने हुए थे, इस कारण उस तेज बाणने उन्हें रंचमात्र बाधा न की ॥ ११० ॥ परन्तु जिसप्रकार लोहेकी संगतिसे (टक्करखानेसे) पाषाणमें अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसीप्रकार बलदेवजीकी क्रोधरूपी अग्नि भड़क उठी। तब बलदेव और रूप्यकुमारमें, जो संग्राम भूमिमें अनेक युद्ध करनेपर भी खेदखिन्न न हुए थे, बड़ी देरतक लड़ाई होती रही ॥ १११-११२ ॥ थोड़ीही देरसे बलदेवने भीष्मराजके पुत्र रूप्यकुमारको ढीला करके उसपर नागपाश बाण छोड़ा ॥ ११३ ॥ सो नागपाश बाणने

रूप्यकुमारको नखसे शिखतक रस्सीके समान जकड़के बांध दिया। इसप्रकार बंधेहुए रूप्यकुमारको बलदेवजीने उठाया, तथा उसे रुक्मिणीको लाकर सौंप दिया और कहा, "लो! इसकी मक्खियां उड़ाओ" ॥११४-११५॥ दूसरी तरफ कृष्णजीने शिशुपालके साथ नानाप्रकारके हथियारोंसे भयंकर युद्ध किया ॥ ११६ ॥ पहले उन्होंने बड़ी देरतक लोहेके शस्त्रोंसे युद्ध किया। पश्चात् वे देवोपनीत शस्त्रोंको लेकर परस्पर भिड़ पड़े ॥ ११७ ॥ जिस समय यहां यह घोर युद्ध मच रहा था, उस समय कलहप्रेमी नारदजी आकाशमें तिष्ठे थे और सन्तुष्ट होकर बारम्बार नृत्य करते थे ॥ ११८ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण नारायणने शिशुपालके साथ भांति २ का युद्ध करके अन्तमें उस दानी, गुणी, वीर, मानी, भयंकर, कुलीन, रौद्रपरिणामी और क्रोधी शत्रुको संग्राममें तेज और शूरतासे रहित करके इसप्रकार कतल कर दिया—जिस प्रकार सिंह गजराजको नष्ट कर देता है। सो ठीक ही है, पुण्यके क्षय होनेपर सर्व प्राणियोंका विनाश हो जाता है ११९-१२० ॥ वह संग्रामभूमि घोड़ोंके कटे हुए पावोंसे घृणाकारक और कबन्धों अर्थात् बिना धड़के मनुष्योंके नृत्यसे बड़ी भयंकर मालूम पड़ती थी। वहां हाथियोंके कुम्भस्थलसे नीचे गिरती हुई लोहूकी धारासे कीचड़ मच रहा था और उसमें डूबे हुए अनेक रथोंसे दिशाओंका मार्ग रुक रहा था ॥ १२१-१२३ ॥

इसप्रकार युद्ध करके और महान् मदोन्मत्त शत्रुका नाश करके श्रीकृष्ण और बलदेवजी प्रसन्नता पूर्वक रुक्मिणीके पास आये ॥१२४॥ रुक्मिणी, जिसका मस्तक नम्रीभूत हो रहा था और जिसके चित्तमें बड़ी लज्जा व्याप रही थी, अपनी कर अंजुली जोड़कर और नमस्कार करके श्रीकृष्णसे बोली ॥ १२५ ॥ भुजपराक्रमके धारक स्वामिन्! मेरी यह प्रार्थना है कि, आप कृपाकरके मेरे भाईको नागपाशसे छोड़ दें—जिसमें कि बलदेवजी उसे बांध लाये हैं ॥ १२६ ॥ तब कृष्णजीने मुसकुराके रूप्यकुमारको छोड़ दिया और उससे कहा, हमने निश्चय किया है कि आप हमारे परम बन्धु स्वजन हो ॥ १२७ ॥ इस लिये स्नेहदृष्टि रखके आप हमारे पास आते जाते रहिये, और याद रखिये कि रुक्मिणी आपकी बहिन है ॥१२८॥

मेरे ग्राम, देश, ग्रहादिकमें आप सच्चे प्रेमसे आया जाया करें और रुक्मिणीसे मिला करें। इसप्रकार अनेक बार समझानेपर भी कुमारने लज्जासे कुछ भी उत्तर नहीं दिया और वहांसे चल दिया ॥ १२९–१३१ ॥

अथानन्तर—कृष्ण बलदेव रुक्मिणीको अच्छी तरह रथमें बैठाकर द्वारिका नगरीको रवाने हुए ॥ १३२ ॥ प्रसन्न चित्तसे बलदेवजीने रथको बेगसे चलाया। कृष्णनारायण रुक्मिणीको पाकर अपनेको कृतकृत्य समझने लगे ॥ १३३ ॥ सुन्दर रूपके धारक, अपने वांछित पदार्थको प्राप्त करनेवाले और अपनेको कृतार्थ समझनेवाले वे सब परस्पर प्रेमसे वार्तालाप करने लगे ॥ १३४ ॥ (आचार्य कहते हैं) जिस कृष्ण-राजने शत्रुओंका पराजय किया और राजा भीष्मकी पुत्री रुक्मिणीको प्राप्त की, उसके महात्म्यको कौन वर्णन कर सकता है? ॥ १३५ ॥ वन उपवनोंकी शोभाको देखते हुए और तरह २ के विनोद करते हुए वे रैवतक पर्वतपर पहुंचे। उस पर्वतको देखकर रुक्मिणीके चित्तमें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १३६ ॥ नन्दनवनके समान वृक्ष और लताओंसे भरे हुए उस वनमें बलदेवजीने श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका पाणिग्रहण (विवाह) कराया ॥ १३७ ॥ सो, उसी समयसे वह स्थान पृथ्वीतलपर रुक्मिणीवनके नामसे प्रसिद्ध हो गया। ठीक है, बड़े पुरुषोंकी संगतिसे किसमें बड़प्पन नहीं आ जाता है? ॥ १३८ ॥ महत्पुरुष किसी भी ग्राममें वा वनमें क्यों न जावें, वहां भी पुण्योदयसे सब बातका ठाठ रहता है ॥ १३९ ॥ उस नन्दनवनके समान वनमें श्रीकृष्ण नवोढ़ा रुक्मिणीके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥ १४० ॥ तथा वे रुक्मिणी और बलदेवके समीप रहनेसे उस वनको स्वजनसमूहसे भरे हुए नगरके समान ही मानकर वहां ठहर गये ॥ १४१ ॥

इतनेमें द्वारिकानगरीमें खबर फैल गई कि श्रीकृष्ण शत्रुको जीतकर और रुक्मिणीको साथमें लेकर बलदेवसहित रैवतकगिरिपर पधारे हैं, इससे उन्हें अथाह आनन्द हुआ ॥ १४२–१४३ ॥ उन्होंने तोरणों तथा पताकाओंसे नगरीको शृङ्गारित किया, मार्गमें पुष्प बिछा दिये और चन्दनके जलका छिड़काव

करा दिया ॥ १४४ ॥ जब नगरी इसप्रकार सजा दी गई, तब कृष्णराजके कुटुम्बी तथा प्रजाके लोग भांति २ के आभूषण पहनकर और हजारों प्रकारके बाजे तथा अनेक स्तुतिपाठकोंको (भाटोंको) साथमें लेकर सन्मुख (पेशवाईमें) गये और बड़े उत्साहसे श्रीकृष्णनारायण तथा बलदेवजीसे मिले ॥ १४५-१४६ ॥ कृष्णजीने आदर सन्मानकरके अपने समस्त मित्र वा बन्धुगणोंको प्रसन्न किया और श्रीकृष्ण, रुक्मिणी तथा बलदेवजीने रथमें बैठकर द्वारिका नगरीमें प्रवेश किया ॥ १४७ ॥

जब श्रीकृष्णने द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया, तब नगरनिवासी लोग बड़ी उत्कंठासे मार्गमें वर और बधूको देखनेके लिये आये ॥ १४८ ॥ नगरनिवासिनी कौतुकअभिलाषिनी स्त्रियोंके तरह २ के विनोद हुए। अर्थात् वरबधूको देखनेकी उमंगसे स्त्रियें अपने शरीरकी सुध भी भूल गईं, जैसा कि यहां संक्षेपमें वर्णन किया जाता है ॥ १४९ ॥

एक उत्सुक स्त्री चूड़ाबन्धनको कमरमें और मेखलाको (करदोड़ाको) सिरपर बांधकर देखनेको आई ॥ १५० ॥ दूसरी स्त्री नेत्रोंमें कुंकुम आंजकर और गालोंपर कज्जल लगाकर विचित्र रूप बनाकर देखनेको चली आई ॥ १५१ ॥ कोई स्त्री अपना मस्तक और कुच उघाड़े करके आई ॥ १५२ ॥ कोई स्त्री घरमें बालकको दूध पिला रही थी, सो उसीप्रकार दूध पीते हुए बालकको लेकर चली आई ॥ १५३ ॥ कोई स्त्री जिसके केश मुखपर विखर रहे थे, ज्योंकी त्यों देखनेको चली आई ॥ १५४ ॥ कोई स्त्री जो अपने भर्तारको करछुईसे भोजन परोस रही थी, परोसना छोड़कर करछुई लिये हुए जल्दीसे देखनेको चली आई ॥ १५५ ॥ दो स्त्रियें मनुष्योंके झुंडमें वरवधूको देखनेके लिये धँसती चली जाती थीं, जिनमेंसे एकका तो हार टूट गया था और दूसरीका संघर्षणसे कपड़ा फट गया था ॥ १५६ ॥ किसी स्त्रीने जल लानेके मार्गमें खड़ी होकर अच्छी तरहसे वरवधूको देखा और उनपर मुक्ताफल सहित लाई (सिके हुए धान्य जो मंगलीक होते हैं) क्षेपण की ॥ १५७ ॥ स्त्रियोंके ऐसे तमाशेको देखकर लोग दोनों हाथसे ताली पीटने लगे और खिलखिलाकर हँसने लगे ॥ १५८ ॥ किसीने आवाज लगाई कि वाह! वाह! क्या

ही अद्भुत दृश्य है! उसीसमय गर्गजातिवालोंने जोरसे कहा, देखो! श्रीकृष्णनारायण नवीन स्त्रीको ले आये हैं। पुण्यके प्रभावसे देखो तो सही, क्या ही बढ़िया संयोग हुआ है ॥ १५९–१६० ॥ कोई दूसरी नारी बोली, यह कुलीन सुंदरी धन्य है, जिसने कामदेवके रूपको जीतनेवाले श्रीकृष्ण जैसे वरको पाया है ॥ १६१ ॥ इतनेमें ही दूसरी युवती बोली, कैसा उत्तम जोड़ तोड़ मिला है। सच पूछो, तो ये दोनों वरबधू कामदेव और रतिको भी लज्जित करते हैं ॥ १६२ ॥ पश्चात् दूसरी कामिनी बोली, इस सुंदरीने सचमुचमें परभवमें दान, व्रत, ध्यान, तीर्थयात्रा, जप, तप किया है। इसीके पुण्योदयसे इस भवमें इसने ऐसा सुयोग्य भर्तार पाया है। इतनेमें ही कोई ज्ञानवान स्त्री बोल उठी, ठीक ऐसा ही है, यथार्थमें इसने दान पुण्यव्रतादिका आचरण किया है, जिससे कृष्ण जैसे तीनखण्ड पृथ्वीके राजाको प्राप्त किया है। यह बड़ी पुण्यवती है। कारण "पुण्यहीन पुरुषोंके मनोरथ कदापि सफल नहीं होते" ॥१६३–१६५॥ राजमार्गसे जाते हुए श्रीकृष्ण और रुक्मिणीने स्त्रियोंके मुखसे ऐसे नाना भांतिके वाक्य सुने ॥ १६६ ॥ रुक्मिणीको द्वारिकानगरीके देखनेसे जिसमें कि जिनेन्द्र भगवानके अनेक मन्दिर शोभायमान थे अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥ १६७ ॥ वह अपने मनमें विचारने लगी कि, मैं आनन्दसे प्रत्येक दिन इन जिनमंदिरोंकी बन्दना करूंगी और इस मनुष्य पर्यायको सफल करूंगी ॥ १६८ ॥

ज्योंही रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण नारायण अपने महलमें पहुंचे, सौभाग्यवती स्त्रियोंने आरती उतारी और मंगलीक गीत गाये। जब कृष्णराज अपने महलमें पधारे तब बलदेवजी भी अपनी प्राणवल्लभा रेवतीके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे अपने स्थानपर पधारे और वहां जाकर सुखसे तिष्ठे। सो ठीक ही है संसारमें कर्तव्यकर्म कर चुकनेपर ऐसा कौन मनुष्य है, जो सुखको नहीं प्राप्त होता? ॥ १६९–१७० ॥ कृष्णजीने रुक्मिणीके अधिकारमें अपना नौखण्डका महल सौंप दिया, जो धन धान्यसे भरपूर था, जहां दासीदास टहल चाकरीमें हाजिर थे, और जो रथ, पालकी, हाथी, घोड़े, अनेक प्रकारके लड़ाईके शस्त्र और कृष्ण के आभूषणोंसे सजा हुआ था ॥ १७१–१७२ ॥ श्रीकृष्णजीने उसी समयसे दूसरी जगह जाना

बंद कर दिया और भोजन, स्नान, आसन शयनादि समस्त नित्यक्रिया उसी रुक्मिणीके महलमें करने लगे ॥ १७३ ॥ सच पूछो, तो श्रीकृष्णके मन, वचन, कायमें सर्वत्र वही गुणवती बुद्धिमती रुक्मिणी बस गई ॥ १७४ ॥ सत्यभामा विद्याधरी कृष्णजीके वियोगकी पीड़ासे दुबली पड़ गई। परन्तु अभिमानके मारे उसने इसकी बिलकुल परवाह न की ॥ १७५ ॥ जब श्रीकृष्ण इस प्रकार रुक्मिणीके मुखकमलके भौंरे बन गये और दिलभर सुखसागरमें मग्न हो गये ॥ १७६ ॥ तब नारदजी सत्यभामाको कृष्णजीकी वियोग-अग्निसे दग्ध दुःखी देखकर और अपने मनोरथको सफल जानकर बड़े सुखी हुए ! ॥ १७७ ॥ वे बारम्बार प्रतिदिन सत्यभामाके पास जाया करते, और उसे चिढ़ाया करते कि "क्यों तुझे याद है न ? जो तूने मेरे तरफ उस समय अपने रूपके घमंडमें आकर टेढ़ा मुख किया था ?" ठीक ही है—अपने शत्रुको दुःखी देखकर किसको सुख नहीं होता ? ॥ १७८ ॥ रातमें, दिनमें, स्वप्नमें तथा जाग्रत अवस्थामें श्रीकृष्णके चित्तमें रुक्मिणी सुंदरीकी ही छवि बस गई। यहांतक कि कृष्णजीने दूसरी रानियोंका स्मरण करना भी छोड़ दिया। सो ठीक ही है, गुणोंका आदर सब कोई करते हैं। केवल विद्या और उत्तम कुलसे ही कार्य नहीं सिद्ध होता। देखो ! विद्याधरकी पुत्री सत्यभामा जो विद्यावान और उत्तम कुलवाली थी, उसकी भी सुध बिसार दी गई ॥ १७९ ॥ एकदिन जब श्रीकृष्ण कामक्रीड़ाके सुखोंका अनुभव कर रहे थे, तब एक परमआनन्दकारी सुनने लायक वार्ता हुई, जो यहां वर्णन की जाती है ॥ १८० ॥

रमण करनेके पश्चात् रुक्मिणीने अपने स्वामीसे कहा, प्राणनाथ ! मैं आपसे एक बात पूछती हूं। मैंने पहले सुना था कि, सत्यभामा नामकी रानी आपको प्राणसे प्यारी है। परन्तु अब तो आप उसके महलमें बिलकुल नहीं जाते हो, इसका क्या कारण है ? ॥ १८१-१८२ ॥ तब कृष्णजीने उत्तर दिया, प्रिये ! सुनो, इसका कारण यह है कि, सत्यभामाको अभिमान बहुत रहता है। और वह मुझे पसंद नहीं है। भला ऐसे सुवर्णके गहनोंसे क्या लाभ, जिनसे कान खण्डित हो जाय ? भावार्थ—"उस सोनेको जारिये जासों टूटैं कान" ॥ १८३-१८४ ॥ तब रुक्मिणीने बड़े बड़े विनयके साथ कहा, नाथ ! भला,

जो वस्तु जिसके हाथ लगी है, वह उसको कैसे छोड़ सकता है ? सुवर्ण कानका खण्डन करै, तो क्या कोई उसे त्याग देता है ? ॥ १८५–१८६ ॥ रुक्मिणीके नीतियुक्त उदारवचन सुनकर कृष्णजी बहुत संतुष्ट हुए और बोले, प्रिये ! मैं तेरे कहनेसे उसके पास जाऊंगा ॥ १८७ ॥ उस समय रुक्मिणीने खैर, चूना, सुपारी आदिका एक पानका बीड़ा चवाया था, सो उसको जब उसने जमीनपर थूक दिया, तब कृष्णजी-ने (दृष्टि छुपाकर) उस उच्छिष्ट पानके उगालको उठाके अपने दुपट्टेके छोरसे बांध लिया और थोड़ी देरके बाद वे विचारी सत्यभामाको, जिसके चित्तमें तरहतरहके विचार उठ रहे थे, ठगनेके लिये उसके महलको गये ॥ १८८–१९० ॥

जब सत्यभामाने देखा कि, नवीन सौतके पति श्रीकृष्ण आये हैं, तब उसने उत्कट द्वेषभावसे ऐसे वचन कहे:—नाथ ! क्या आप आज रास्ता भूल गये हैं ? यह तुम्हारा किंवा तुम्हारी प्राणप्यारीका गृह नहीं है। कृष्णजीने उत्तर दिया, प्रिये ! मैं तो तेरे पास आनेकी इच्छासे ही आया हूं। परन्तु यदि तेरे कहे अनुसार मैं भूलकरही यहां आया हूं, तो अब दूसरी जगह जानेमें क्या शोभा है ? ऐसी अनेक प्रकारकी चुभती हुई बातोंसे कृष्णने अप्रसन्न सत्यभामाको राजी किया और बड़ी नरमाईसे मर्मके भेदनेवाले वचन कहे कि, हे देवी ! निद्राने मुझे वश में कर रक्खा है। यदि तेरी आज्ञा हो तो, मैं यहीं नींद ले लूं। मुझे बहुत जल्दी नींद आ जायगी ॥ १९१–१९५ ॥ तब सत्यभामा बोली, ठीक है, आपको बड़ी निद्रा आ रही है। क्योंकि वह नवोढ़ा (नूतन विवाहिता सौत) आपको नींद नहीं लेने देती होगी। उसे तो आपको प्रसन्न करना ही चाहिये। मैं आपसे कुछ नहीं कह सकती हूं, क्योंकि चिरकाल आपने मेरे साथ भोगविलास किया है ॥ १९६–१९७ ॥ रसकेलिसे थकित होकर ही आप प्रतिदिन मेरे घर आकर सोया करो। सच समझो मैं आपका हित चाहनेवाली हूं ॥ १९८ ॥ तब कृष्णजी बोले, भला तू मेरा हित क्यों न चाहेगी ? नवीन स्त्रियें तो होती ही रहती हैं (अर्थात् नवीन नवीन ही हैं) परन्तु तू मेरी सब रानियोंमें अग्रसर प्राणवल्लभा है ॥ १९९ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्ण बिछौनेपर लेट गये, और

अपना मुख वस्त्रसे ढांककर कपटभावसे (झूठमूठ) निद्रा लेने लगे ॥ २०० ॥ श्रीकृष्णके दुपट्टेमें जो रुक्मिणीके पानका उगाल बँधा हुआ था, उसकी सुगंधि चहुँओर फैल गई। जिससे उसपर भौंरे आकर मंड़राने लगे। यह देख सत्यभामाने चकित होकर धीरेसे अंचलकी गांठ खोली और विचार किया, कि जो वस्तु रुक्मिणीके लिये बंध रही है, उसको कृष्णने मुझे दिखाया भी नहीं! देखो-मोहकी लीला! मुझे तो धोखा दिया जाता है और मेरी सौत रुक्मिणीको सौभाग्यके बढ़ानेवाली ऐसी २ सुगंधित चीजें दी जाती हैं। ऐसा रोष करके और कृष्णको निद्रावश जानके उसने धीरेसे वह पानका उगाल निकाल लिया और चन्दनके चखलेपर रखके उसे मूठियेसे घिस लिया। पश्चात् सौभाग्यवर्द्धक चूर्ण जानकर सत्यभामाने उसका अपने मुख और शरीरपर लेप कर लिया ॥ २०१-२०६ ॥ और विचारा कि, अब निःसन्देह कृष्णजी मेरे वशमें हो जायंगे! ॥ २०७ ॥

जब चिन्ताग्रसिता मूढ़मती सत्यभामाका चित्त चूर्ण संलेपनके कारण हर्षसे फूल रहा था, तब कृष्णजीने धीरेसे अपना मुख उघाड़ा और खिलखिलाकर कहा, मूर्खे! तूने यह क्या लोकनिंदित काम करना प्रारंभ किया है? तू तो बड़ी पवित्र दीख पड़ती थी। भला रुक्मिणीके मुखका झूठा ताम्बूल तूने अपने मुखमें कैसे लपेट लिया? रुक्मिणीने सुपारी-कर्पूर आदि डालकर एक पानका बीड़ा चबाया था, जिसमें उसकी मुखकी लार लग रही थी। उसे उसने हँसीके लिये मेरे अंचलमें बांध दिया था। सत्पुरुष तो ऐसी झूठी चीजको छूते तक नहीं हैं। भला तूने इसे अपने मुखपर कैसे चुपड़ लिया? ऐसा कहके श्रीकृष्णनारायण जोरसे ताली पीटकर वारम्वार हँसने लगे ॥ २०८-२११ ॥ फिर बोले, हे विशालनेत्रे! प्रथम तो तू मेरी प्राणसे प्यारी पत्नी है, दूसरे तेरा पिता विद्याधरोंका नायक है और तीसरे तू मेरी सब रानियोंमें अग्रसर पट्टरानी है, इतने पर भी तूने ऐसा लोकनिंद्य कर्म कैसे किया? ॥ २१२-२१३ ॥ यह नीतिकी बात है कि नदी और स्त्री इनकी स्वाभाविक गति नीचेके तरफ ही होती है, अतएव स्त्रियें नीचकर्म करनेवाली होती हैं, ऐसा जो मनुष्योंका कथन है, वह सत्य जान पड़ता है ॥ २१४ ॥

इस प्रकार कृष्णजीने गहरे २ ताने मारे और खूब ठठ्ठा मस्खरी उड़ाई, जिससे सत्यभामा अतिशय लज्जित हुई। अपने अपमानके दुःखको जीमें ही दबाकर वह बाह्यमें (अपनी भूलको छुपानेके लिये) चतुराईसे बोली:—मूर्खस्वामिन् ! आप वृथा ही क्यों मुंह फाड़ फाड़ कर हंसते हैं? रुक्मिणी तो मेरी छोटी बहिन है, जिसे आप राजा शिशुपालको मारके हर लाये हैं ! वह मेरे साम्हने छोटीसे बड़ी हुई है, इसलिये मैंने तो जान बूझकर उसके झूठे ताम्बूलका अपने मुखपर लेपन किया है। कारण कि, छोटी बहिनके मुखके भोगको जो ताम्बूल प्राप्त हुआ है, उसका स्पर्श मुझे सुखदाई होगा। जिस रुक्मिणीका मैंने मल मूत्र धोया है, और जिसे मैंने बाल्यावस्थासे बड़ी की है, उसके अंगकी भोगी हुई चीजसे मुझे कभी ग्लानि नहीं हो सकती। आप विना कारण क्यों हँसी उड़ा रहे हैं? ॥ २१५–२१९ ॥ तब श्रीकृष्ण बोले, देवी ! अच्छा है। रुक्मिणीका उच्छिष्ट तांबूल तुझे प्रिय लगता हो, तो मैं निरंतर ला दिया करूंगा, सो उसका प्रतिदिन इसी प्रकार लेप किया करना ॥ २२० ॥

सत्यभामा बोली, बहुत अच्छा ! आप ऐसा प्रिय ताम्बूल मेरे वास्ते प्रतिदिन ले आया कीजिये ॥ २२१ ॥ भला जिस ताम्बूलकी रुक्मिणीके मुखसे उत्पत्ति हो और जो प्राणनाथके अंचलसे बँधा हो, वह मुझे प्यारा क्यों न होगा? इसमें क्या हँसनेकी बात है? ॥ २२२ ॥ तब कृष्णमहाराज बोले, खैर ! ऐसा ही सही, मैं अब न हँसूगा, यह तुम निश्चय समझो। ऐसा कहके और मौन धारणकर कृष्णमहाराज वहीं विराजे ॥ २२३ ॥ कुछ समयके पीछे सत्यभामाने श्रीकृष्णसे कहा, मेरे मनमें रुक्मिणीसे मिलनेकी अभिलाषा लग रही है ॥ २२४ ॥ तब कृष्णजीने उत्तर दिया, देवी ! सत्य समझो, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। जब रुक्मिणी तुझे ऐसी प्यारी लगती है, तो हे विचक्षणे ! उसका मिलना कोई कठिन कार्य नहीं है ॥ २२५ ॥ ऐसा कहकर और थोड़ी देर वहां और बैठकर कृष्णजी धीरेसे सत्यभामाके महलसे बाहर निकल आये और प्रेमके भारसे झूमते हुए वे रुक्मिणीके महलको चले गये ॥ २२६ ॥

कृष्णजीको आया हुआ जानरुक्मिणी एकदम उठी और विनयसहित प्राणनाथके चरणोंमें झुक गई ॥

सो ठीक है "कुलीन स्त्रियोंकी ऐसी ही मर्यादा होती हैं" ॥ २२७ ॥ कृष्णजी बोले, प्रिये ! जरा मेरे कहे अनुसार सज धजके तयार तो हो जाओ। सफेद वस्त्र और लाल कंचुकी (कांचली) पहन लो। तथा सर्व प्रकारके भूषण शरीरमें धारण कर लो। सारांश यह कि देवाङ्गनाके समान अपना सुंदर रूपबनालो और सत्यभामाके उपवनमें (बगीचेमें) जैसे मैं बताऊँ, उस प्रकार जाकर बैठ जाओ ॥ २२८-२२९ ॥ रुक्मिणी बोली, जो स्वामीकी आज्ञा हो, मुझे प्रमाण है। ऐसा कहकर जब उसने उसी प्रकारका शृङ्गार कर लिया, तब कृष्णजी अपनी विभूषिता प्राणप्रियाको उपवनमें ले गये ॥ २३० ॥ वह वन नानाप्रकारके वृत्तोंसे भरा हुआ था। स्थान २ में फूलोंकी रजके ढेर लग रहे थे। उनकी सुगंधिसे भौरोंकी पंक्ति उड़ रही थी। वह ऐसी मालूम होती थी, मानो रुक्मिणीके आगमनको जानकर तोरण ही बांधा गया हो ॥ २३१ ॥ अनेक वृत्त जिनकी शाखाओंके अग्रभाग पवनके चलनेसे कम्पायमान हो रहे थे, ऐसे दीख पड़ते थे, मानो (खुशीमें आकर) ताण्डव नृत्य ही करते हैं। बोलते हुए पत्ती ऐसे मालूम पड़ते थे, मानो वंदीजन जयकारमिश्रित स्तोत्र ही पढ़ रहे हैं ॥२३२॥ और कोयलके कूकनेको सुनकर मोर नाच रहे थे। इस प्रकारके मनोहर वनमें रुक्मिणी कृष्णजीके साथ गई ॥ २३३ ॥ और ऐसी शोभायमान हुई, जैसे नंदनवनमें इन्द्रके साथ इन्द्राणी जाती है और शोभायमान होती है। उस वनमें एक मनोहर बावड़ी थी, जिसकी सीढ़ियां सुवर्णकी बनी हुई थीं, जिसमें अथाह जल भरा हुआ था, राजहंस बैठे हुए थे, कमलसमूह खिल रहे थे, और श्वेत चकवा चकवीका जोडा भी बैठा हुआ था ॥ २३४-२३५ ॥ उस बावड़ीके किनारे रत्नोंके बने हुए थे और उसमें जलचर जीव भरे हुए थे। उसीके पास एक अशोक नामका वृत्त था ॥ २३६ ॥ जिसके नीचे एक उत्तम स्फटिककी शिला पड़ी हुई थी। उसीके ऊपर श्रीकृष्णजीने रुक्मिणीको पर्यंकासनसे बैठा दी। उसके बायें हाथमें करवीरके (कनैरके) वृत्तकी एक शाखा भ्रमरादि उड़ानेके लिये दे दी और दाहिने हाथको मुख पर रखा दिया। इस प्रकार श्रीकृष्णने रुक्मिणीको सात्तात् वनदेवीके रूपमें स्थापित कर दिया और कह दिया कि, जब तक मैं फिर कर न

आ जाऊं, प्रिये ! तुम मौनसहित इसी भांति बैठी रहना । अपने आसनको कम्पायमान न करना । ऐसा कहकर श्रीकृष्ण सत्यभामाके पास फिर गये ॥ २३७–२३९ ॥

कृष्णजीने सत्यभामाके महलमें जाकर कहा, देवी ! क्या तेरी रुक्मिणीसे मिलनेकी उत्कण्ठा है ? ॥ २४० ॥ सत्यभामाने उत्तर दिया, प्राणनाथ ! आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि रुक्मिणी बहिनसे मुझे मिला दोगे ॥ २४१ ॥ तब कृष्णजीने जवाब दिया, प्रिये ! ऐसा कर, तू बहुत जल्दी उपवनमें पहुँच जा, पीछे रुक्मिणी भी वहीं आ जायगी ॥ २४२ ॥ मैं उसके महलमें जाता हूं और उसे उपवनमें भेज देता हूं । ऐसा कहकर श्रीकृष्ण शीघ्र ही उसी वनमें चले आये और सत्यभामा तथा रुक्मिणीके रूपयौवन-सम्बन्धी अभिमानको देखनेके लिये कौतुकसहित अशोक वृक्षके पास वृक्षोंके कुंजमें छुपकर बैठ गये ॥ २४३–२४४ ॥

कृष्णके चले जानेके पश्चात् रूपयौवनसम्पन्न सत्यभामा वस्त्राभूषणोंसे शृङ्गारित होकर उसी वनमें पहुँची ॥ २४५ ॥ उस वनके मध्य भागमें प्रवेश करते ही अशोक वृक्षके नीचे शिलापर किसीको बैठा देखा, जिससे उसके मनमें तरह २ की लहरें उछलने लगीं कि, यह कोई वनदेवी है, अथवा किसी सिद्ध पुरुषकी कन्या है । किन्नरी है कि देवाङ्गना ही स्वर्गपुरीसे यहां उतर आई है । कोई नागकुमारकी स्त्री है कि चन्द्रमाकी भार्या रोहिणी है । कामदेवकी स्त्री रति है कि, सरस्वती है, अथवा लक्ष्मी ही है । सच-मुचमें यह कुमारी कौन है ? ॥ २४६–२४८ ॥ मुझे तो यह मालूम होता है कि, वास्तवमें मेरे पुण्यके उदयसे यह मनोहर वनदेवी ही प्रकट हुई है ॥ २४९ ॥ (सुना भी है कि) पुण्यके उदयसे देव प्रगट होते हैं । जो पुण्यहीन पुरुष होते हैं, उन्हें देवताके दर्शन कभी नहीं मिलते ॥ २५० ॥ इस लोकमें देवताका आराधन सचमुचमें इष्टवर पानेका कारण है, इस लिये अर्थात् कृष्णजीको अपने वशमें करनेके लिये मैं यदि भक्ति भावसे इस वनदेवताकी उपासना (पूजा) करूं, तो अच्छा हो ॥ २५१ ॥ इस प्रकार वस्त्र-आभूषणोंसे सुशोभित सत्यभामाने बड़ी देरतक अपने दिलमें इसी बातका विचार किया, पश्चात् उसने

स्नान करनेके लिये बावड़ीमें गोता लगाया। सो देखा ही जाता है कि, जिसे जो कार्य सिद्ध करना होता है, वह उसके लिये कौन २ से उपाय नहीं रचता? ॥ २५२ ॥ जलस्नान करके और बहुतसे कमल लेकर सत्यभामा जल्दीसे बावड़ीके बाहिर निकल आई। इस शंकासे कि कहीं रुक्मिणी न आ जाय। ॥ २५३ ॥ और उसीप्रकार (पूजकाके भेपमें) अशोक वृक्षके नीचे जहां कि कृष्णकी वल्लभा (देवीके रूपमें) बैठी हुई थी, आकर खड़ी हो गई ॥ २५४ ॥ उसने देवीकी भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके पुष्पोंसे पूजा की और जल्दीसे पांव पड़े (चरनोंमें मस्तक लगाया) और ऐसे मनोहर वचन कहे कि ॥ २५५ ॥ हे वनदेवते! तू मेरे पुण्यके प्रभावसे प्रगट हुई है, तो मुझे उत्तम वरदान दे। कारण "देवताओंका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता" ॥ २५६ ॥ हे देवी! मैं केवल यही वरदान मांगती हूं कि, कृष्ण मेरे बहुत जल्दी किंकर और भक्त बन जावें तथा मुझमें ही आसक्त हो जावें। उनका चित्त रुक्मिणीसे विरक्त हो जाय। बस तेरे प्रसादसे कृष्णका चित्त रुक्मिणीमेंसे उखड़ जाय, यही मेरी मनोकामना है ॥ २५७–२५८ ॥ हे भगवती! वरदान देनेमें विलम्ब होगा, तो श्रीकृष्ण रुक्मिणीसहित यहां आ जावेंगे, इस लिये कृपाकरके शीघ्र इच्छा पूरी कर ॥ २५९ ॥ मैं यही चाहती हूं कि, कृष्ण मेरे पास ऐसे खिंचे चले आवें, जैसे कि बैल उस रस्सीके खींचनेसे खिंचा चला आता है, जिससे कि उसकी नाक नथी रहती है ॥ २६० ॥ हे माता! रुक्मिणीको कृष्णके हृदयमेंसे अलग कर दे, बस इसी वरदानकी मैं याचना करती हूं। शीघ्रतासे मुझपर कृपा कर ॥ २६१ ॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक प्रलाप करती हुई सत्यभामाने अपना मस्तक उस वनदेवताके चरणोंमें धर दिया ॥ २६२ ॥

सत्यभामाकी यह लीला श्रीकृष्णनारायणने वृक्षोंके कुंजमेंसे देखी। वे वहांसे बाहर निकल आये। और सत्यभामाके तरफ देखते हुए खिलखिलाटसे हँसने लगे, बारम्बार हाथसे ताली पीटने लगे और सत्यभामाको चुभनेवाले ऐसे वचन बोले, ॥ २६३–२६४ ॥:—प्रिये! जरा मेरा कहा सुन, सचमुचमें रुक्मिणीके चरणोंकी पूजा करनेसे ही सौभाग्यकी प्राप्ति होगी। जब रुक्मिणीकी पूजाके प्रभावसे मनो-

वांछित पदार्थ मिलता है, तो हे मानिनी ! उसकी ओर तू इतना घमण्ड क्यों रखती है ? यदि रुक्मिणी-की उपासनासे वरदान प्राप्त हो सकता है, तो तुझे अष्टद्रव्यसे नित्य ही उसकी पूजा करनी चाहिये। रुक्मिणीके चरणोंकी पूजा करनेसे मैं तेरा किंकर बन जाऊंगा। ऐसा कहके श्रीकृष्ण खिलखिलाट करके हँसे, उनके पेटमें हँसी न समाई ॥ २६५–२६८ ॥

जब सत्यभामाने श्रीकृष्णके वचनोंसे जान लिया कि, यह रुक्मिणी ही है, कोई वनदेवी नहीं है। तब वह अत्यन्त लज्जित हुई। उसके परिणाम बहुत संक्लेशित हुए ॥ २६९ ॥ वह क्रोधको दबा कर बाह्य रूपसे अपनी चतुराई बघारने लगी, और प्रसन्नता दिखाती हुई बोली, हे मूर्खशिरोमणी ! सुनो ॥२७०॥:—जिस प्रकार बालगोपाल तुम्हें गोपाल २ कहते हैं, सचमुचमें तुम ऐसे ही हो। इसमें रंचमात्र संदेह करनेकी बात नहीं है। गोपाल अर्थात् गाय बैल चरानेवालेके शरीरकी चेष्टा (चाल ढाल) ऐसी ही होती है। गोपालको छोड़कर कौन विवेकी ऐसा निंदनीय और मूर्खताका काम करेगा ? ॥२७१–२७२॥ मैं विधाताकी इससे बड़ी क्या भूल बताऊं, कि उसने ऐसे मूर्खशिरोमणिको तीन खण्डका राज्य दे रक्खा है ॥ २७३ ॥ मूढ़नाथ ! हँसी उड़ानेका तुम्हें क्या अधिकार है ? मैंने यदि रुक्मिणीको अपनी बहिन जानकर नमस्कार किया, तो कौनसा अपराध किया ? जो तुम निर्बुद्धि बनकर हँसी उड़ा रहे हो ॥२७४–२७५॥ भला यदि कहीं किसी कारणसे स्त्रियें इकट्ठी हुई हों, तो क्या वहां विवेकी पुरुषको जाना उचित है ? कदापि नहीं ॥ २७६ ॥ जो आपके समान अविवेकी होते हैं, वे इस बातका विचार नहीं करते। उस समय श्रीकृष्णने सत्यभामाका मिजाज बहुत ही बिगड़ा देखा, इसकारण वे चुपचाप वहांसे निकलकर अपने गृह चले आये ॥ २७७ ॥

रुक्मिणी भी श्रीकृष्णकी बातचीतसे यह जानकर कि यह सत्यभामा ही है, अपना वनदेवीका रूप छोड़ लज्जित होकर खड़ी हो गई। और फिर उसने सत्यभामाके चरणोंमें विनयपूर्वक नमस्कार किया। सो ठीक ही है, "जो सज्जन उत्तम कुलमें जन्म लेते हैं, वे स्वभावसे ही बड़े विनयवन्त होते हैं ॥"२७८–

२७९ ॥ रुक्मिणी और सत्यभामाने अपनी भुजाओंसे एक दूसरेका आलिंगन किया । पश्चात् सत्यभामाने पूछा, हे कल्याणि ! तेरे शरीरमें साता तो है ? तब रुक्मिणीने उत्तर दिया, हे सखी ! आपकी कृपासे मैं कुशलतासे हूं । दोनोंने एक दूसरेकी उमर रूप और सौन्दर्य निहारकर परस्पर प्रेमका करनेवाला वार्तालाप किया । पश्चात् वे दोनों गुणवती रानियें वनमेंसे लौट आईं और अपने २ महलोंमें चली गईं ॥ ॥ २८०–२८२ ॥ विचारी सत्यभामा पहलेसे ही दुःखी हो रही थी । अब उसके संक्लेशका पार ही क्या था ? न्यायकी बात है । ऐसी कौनसी स्त्री है, जिसको अपने भर्तारके अपमानसे दुःख न होता हो ? अर्थात् सबको ही दुःख होता है । इस प्रकार जब वे दोनों चतुर रानियें अपने २ स्थानमें तिष्ठीं, उसी समय एक दूसरी सुप्रसिद्ध कथाका सिलसिला प्रारंभ हुआ । ॥ २८३–२८४ ॥

एक दिन कृष्ण महाराज सभामें विराजे हुए थे । उसी समय—वहां कुरुदेशके राजा दुर्योधनका एक दूत आया । उसने आते ही कृष्णजीको विनयपूर्वक नमस्कार किया । फिर उनके सन्मुख एक मनोहर लेख रखकर वह उचित स्थानपर बैठ गया ॥ २८५–२८६ ॥ कृष्णजीने अपने हाथसे लेखको उठाया । और उसे ऊपरी दृष्टिसे अवलोकन करके अपने मंत्रीको दे दिया । तब मंत्रीने उस पत्रको जिसका अर्थ साफ २ झलकता था, तथा जो कृष्णको अत्यन्त आनन्दका करनेवाला था—सभामें बैठे हुए श्रोतागणोंके साम्हने पढ़कर सुनाया:— ॥ २८७–२८८ ॥

"स्वस्ति श्रीजिनायनमः । श्रीमती द्वारिकानगरीके महाराजा श्रीकृष्णनारायणको, जिनके चरणारविंद अनेक राजाओंकर सेवित हैं, हस्तिनागपुरके राजा दुर्योधनका विनयसहित भक्तिपूर्वक प्रणाम स्वीकृत हो। अपरंच आदरपूर्वक निवेदन है कि, श्रीमान्‌की कृपासे यहां सर्व कुशल है। आपकी प्रसन्नता और कुशलता सदा चाहिए । महाराज ! यद्यपि हम सब आपसे परोक्ष हैं, दूर रहते हैं, तथापि आप हमारे परम बन्धु हैं, इसमें संदेह नहीं । आप पूर्ण हितैषी हैं, अतएव आपसे कुछ प्रार्थना है । आशा है कि आप उसे अंगीकार करेंगे । वह यह है कि:—आपकी वा मेरी जो आगामी सन्तान हो, उसका परस्पर

विवाहविधिके अनुसार मित्रताका सम्बन्ध होना चाहिये, जिसकी सब सराहना करेंगे। राजन्! कदाचित् आपकी पट्टरानीके पुत्ररत्नकी उत्पत्ति हो, और मेरे यहां पुत्री हो, तो उन वर कन्याओंका विवाह अवश्य होना चाहिये। यदि पुण्योदयसे मेरे यहां पुत्रने अवतार लिया और आपकी महारानीसे पुत्रीका जन्म हुआ, तो भी नियमानुसार विधिसहित विवाह किया जाय। संसारमें समस्त प्राणियोंका यथा-योग्य सम्बन्ध होता है। सो यदि आपके जीमें इस प्रकार सम्बन्ध करनेकी उत्कण्ठा हो, तो इस बात-का निश्चय हो जाना इष्ट है। इति शम्।" ॥ २८६–२९७ ॥

पत्रको सुनते ही श्रीकृष्ण महाराजका हृदय आनन्दसे भरगया। उन्होंने प्रसन्नतासे सभाके बीचमें कहा, ठीक है, मैं राजादुर्योधनसे इसी प्रकारका विवाह सम्बन्ध करूंगा। सत्पुरुषोंको तो योग्य सम्बन्ध करना ही चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं है ॥ २९८–२९९ ॥ ऐसा कहकर कृष्णजीने उस दूतको पान सुपारी वस्त्राभूषण प्रदान किये और सन्तुष्ट चित्तसे उस दूतके साथ अपने दूतोंको भी भूषित करके विदा किया ॥ ३००–३०१ ॥ श्रीकृष्णके दूत भी राजा दुर्योधनके पास पहुँचे। इन्होंने राजाको विनय सहित नमन किया, वार्तालापसे सन्तोषित किया और उपर्युक्त सम्बन्धका निश्चय कर लिया। पश्चात् दुर्योधन राजाने भी कृष्णजीके दूतोंको वस्त्रालंकारादि देकर प्रसन्न किया और बिदा कर दिया। जब दूत लौटकर आ गये और उन्होंने सब समाचार सुनाये, तब राजा कृष्णनारायणको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥३०२–३०३॥ रुक्मिणीको दूतके आने जानेके ये समाचार प्रगट नहीं हुए। केवल सत्यभामाको ही यह चरचा मालूम हुई। अन्य किसी भी स्त्रीने यह बात न जानी ॥ ३०४ ॥

इस प्रकार यादववंशियोंके सहित श्रीलक्ष्मीपति कृष्णनारायणने, जिनकी आज्ञाको अनेक राजा अपने मस्तक पर धारण करते थे, रुक्मिणी प्राणवल्लभाके साथ बहुत सुख भोगे। अपने मनोरथकी सिद्धिसे किसे आनन्द नहीं होता है? पुण्यके उदयसे प्राणीमात्रको सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ३०५–३०६ ॥ पुण्यसे ही श्रीकृष्णने रुक्मिणी प्राप्तकी, शिशुपालादिक शत्रु समूहका पराजय किया, और

द्वारिकाके राज्यको प्राप्त किया। इससे कहना चाहिये कि "भव्य जीवोंको पुण्यके प्रभावसे ही सब वस्तुएं प्राप्त होती हैं" ॥३०७॥ इस लिये भव्य प्राणियोंको श्रीजिनेन्द्रप्रणीत धर्मानुसार पुण्य उपार्जन करना चाहिये। पुण्यसे ही पुण्यसमूहकी बढ़वारी होती है और पुण्यसे ही चन्द्रमाके समान मनोहर उज्ज्वल परिणाम होते हैं। जो नरगति और देवगतिके सुख तीन भुवनमें मिलने कठिन हैं, वे सब पुण्य-के प्रभावसे सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर भव्यजीवोंको सदाकाल पुण्य संचय करना चाहिये ॥ ३०८ ॥

इतिश्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रंथके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें राजाशिशुपालका वध, श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका विवाह, सत्यभामाकी विटम्बना, और गर्भस्थ सन्तानके सम्बन्धका वर्णनवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पञ्चमः सर्गः ।

जब सत्यभामाका रुक्मिणीद्वारा मान गलित हो गया, तब उसका चित्त अतिशय दुःखित हुआ। वह ठंडी सांसें खींचने लगी, और मूर्खतासे विचारने लगी कि, मैं ऐसा कौनसा उपाय करूं, जिससे रुक्मिणीको ऐसा दुःख उपजै, जो उससे सहा न जाय ॥ १-२ ॥ रातदिन सत्यभामा इसी चिन्तामें पड़ी रहती थी कि, एक दिन उसे अचानक उस दुर्योधनके दूतकी याद आई, जो विवाह सम्बन्धी बात करनेके लिये आया था। वह अपने जीमें फूली नहीं समाई और विचारने लगी, क्या ही बढ़ियां उपाय सूझा है जिससे मेरा तो दुःखसे छुटकारा हो जायगा और रुक्मिणीको असह्य दुःख होगा। बात यह है कि, वास्तवमें पहले मेरे ही पुत्र उत्पन्न होगा, पीछे रुक्मिणी के पुत्र होगा, अथवा नहीं भी होगा। क्योंकि मैं रुक्मिणीसे उमरमें, तथा शरीरके आकारमें सर्वथा बड़ी हूं। अनुमानसे संभव है कि मेरे पुत्रकी ही उत्पत्ति होगी। इस वास्ते अब मुझे दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय अवश्य कर डालना चाहिए। इसमें कृष्णजी वा बलदेवजीकी भी साक्षी

ले लेनी चाहिये। इस बातका दृढ़ संकल्प करके अपने विचारको काममें लानेके लिये सत्यभामाने अपनी दूतीको बुलाया, उसको अपना विचार प्रगट किया और रुक्मिणीके महलको भेज दिया ॥ ३–६ ॥

सत्यभामाकी दूती रुक्मिणीके पास मंदमंद गतिसे डरती हुई पहुंची और रुक्मिणीसे विनयपूर्वक बोली, हे माता! मेरे वचन सुनो, सत्यभामाने मुझे किसी कारणसे भेजा है इस वास्ते मैं आपके पास आई हूं। परन्तु वे असुहावने वचन मुझसे कहे नहीं जाते ॥ १०–११ ॥ तब भीष्मराजकी पुत्री रुक्मिणीने जवाब दिया, हे दूतिके! तुझसे वह संदेशा क्यों नहीं कहा जाता? तेरे समान चाकरोंका तो यही काम है कि, जो कुछ मालिकने कहा हो, वह निर्भय होकर सुना दें। मैं तुझे अभयदान देती हूं। मेरा कहना तू अन्यथा मत समझ ॥ १२–१३ ॥ तब दूती बोली, माता! मैं निवेदन करती हूं, आप सुनोः—सुकेतु विद्याधरकी पुत्री सत्यभामाने आपको यह कहला भेजा है कि "रुक्मिणी! यदि पुण्यके उदयसे पहले तेरे पुत्र होगा, तो प्रथम धूमधामसे उसीका विवाह होगा, इसमें संदेह नहीं है ॥ १४–१५ ॥ और मैं उसकी लग्न के समय उसके पांवके नीचे अपने सिरके केश रक्खूंगी पश्चात् वरात चढ़ेगी यह मेरा दृढ़ संकल्प है। और कदाचित् पुण्योदयसे पहले मेरे ही पुत्रकी उत्पत्ति हुई, तो तुझे भी मेरे कहे अनुसार अपने मस्तकके बाल मेरे पुत्रके चरणोंके नीचे लग्न समय रखना होंगे" ॥ १६–१७ ॥ तब रुक्मिणीने मुसकराके कहा, दूतिके! मेरी बहिन (सौत) सत्यभामाने जो कुछ कहा है, वह मुझे स्वीकार है ॥ १८ ॥ इस प्रकार अभिमानमें आकर सत्यभामा और रुक्मिणीने अपनी ओरकी दो दासियोंको सभामें भेजा सो ठीक है "मान सर्वस्वका नाश कर डालता है" ॥ १९ ॥ सभा में जाते ही दोनों दूतियोंने रानियोंका पण प्रगट किया और इसमें कृष्ण, बलदेव तथा सर्व यादवोंकी साक्षी लेली ॥ २० ॥ दूतियें सभासे लौट आईं। पश्चात् मानिनी सत्यभामा और रुक्मिणी अपने २ महलमें सुखसे तिष्ठीं ॥ २१ ॥

एक दिन रुक्मिणी आनन्दसे एक कोमल मनोहर फूलोंकी सेजपर पौढ़ी हुई थी, तब उसने रात्रिके पिछले पहरमें जगन्मान्य और परम आनन्दके कर्ता कामदेवकी उत्पत्तिके सूचक छह स्वप्न देखेः— ॥ २२–२३ ॥

प्रथम स्वप्नमें—रुक्मिणीने अपनेको विमानमें बैठे हुए और राज्यविभवसहित आकाशमार्गमें क्रीड़ा करते हुए देखा।

दूसरे स्वप्नमें—इन्द्रके ऐरावत समान हस्तीको अपने सन्मुख बैठे हुए और गर्जना करते हुए देखा।

तीसरे स्वप्नमें—उदयाचल पर्वतपर उदय होते हुए और कमलोंको विकसित करते हुए सूर्यको देखा।

चौथे स्वप्नमें—विना धुँएके जलती हुई अग्नि देखी।

पांचवें स्वप्नमें—कुमुदको प्रफुल्लित करनेवाला चन्द्रमा देखा। और

छट्ठे स्वप्नमें—अपने सन्मुख गर्जते हुए समुद्रको देखा ॥ २४–२७ ॥

ऐसे स्वप्न देखने के पश्चात् प्रातःकाल तुरहीकी आवाज और भाटोंकी विरदावलीसे रुक्मिणीकी निद्रा उड़ गई। वह सचेत होकर सेज परसे उठी और विधिपूर्वक स्नान करके वस्त्राभूषण पहनकर अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णजीके पास गई ॥ २८–२९ ॥ जाते ही भर्तारको उसने नमस्कार किया और आज्ञानुसार वह उनकी बाईं ओर सिंहासनपर बैठ गई। जब स्वामीने आनेका कारण पूछा, तब रुक्मिणी बोली, हे नाथ! मैंने पिछली रातमें सूर्यके उदय होनेके पहले कई स्वप्न देखे हैं। उन्हींका फल सुननेके अभिप्रायसे आई हूं। ऐसा कहके उसने श्रीकृष्णको छहों स्वप्न कह सुनाये॥ ३०–३२ ॥

श्रीकृष्णनारायण स्वप्नावली सुनकर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी प्राणवल्लभाको उनका फल सुना दिया। जिसका सारांश यह है कि, तेरे निश्चयसे आकाशगामी और मोक्षगामी पुत्र होगा ॥३३॥ निपुणा रुक्मिणी भर्तारके वचनोंको सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई और आज्ञा लेकर अपने महलको वापिस चली आई। स्वामीके वचनोंसे रुक्मिणीको ऐसा विश्वास हो गया, मानो पुत्र उसकी गोदमें ही आ गया हो ॥ ३४ ॥ राजा मधुका जीव जो अनेक प्रकारके तपश्चरण करके सोलहवें स्वर्गको प्राप्त हुआ था, वहांसे च्यवकर रुक्मिणीके गर्भमें प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ उसे पुण्यका प्रभाव ही कहना चाहिये, जो चिरकाल तक स्वर्गका सुख भोगकर वह रुक्मिणीके उदरका भूषण बना ॥ ३६ ॥ सत्यभामाने भी इसी प्रकार स्वप्न

देखे और कृष्णजीने उसे इसी प्रकार उनका फल कह सुनाया। कोई कल्पवासी जीव स्वर्गसे चयकर सत्यभामाके गर्भमें भी आया ॥ ३७–३८ ॥

श्रीकृष्णजीकी सत्यभामा और रुक्मिणी दोनों रानियोंकी गर्भके बढ़ते समय जो अंगकी चेष्टा हुई, वह प्रसन्नताकारक है। संक्षेपमें उसका वर्णन किया जाता है ॥३६॥ दोनों गर्भवती रानियोंके नेत्र निर्मल हो गये, शरीर पीला पड़ गया। स्तनोंके अग्रभाग बहुत काले पड़ गये। चलने फिरनेमें आलस्य आने लगा, उदर स्थूल होने लगा। त्रिवलीका भंग हो गया, और मुखकी सुन्दरता बढ़ने लगी ॥ ४०–४१ ॥ इस प्रकार शारीरिक अनेक विकार हुए और श्रीकृष्णको आनन्ददायक अनेक दोहले हुए, जिन्हें राजाने हर्षसे पूर्ण किये ॥ ४२ ॥

गर्भकालके पूरे नवमास व्यतीत होनेपर रुक्मिणीके उत्तम तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभकरण योग, और पंचाङ्गशुद्धिमें पुत्ररत्नका जन्म हुआ। पुत्रकी उत्पत्तिको देखकर रुक्मिणीको अप्रमाण आनन्द हुआ। पुत्रको सूर्यके समान प्रतापवान और शुभ लक्षणोंका धारक जानकर रुक्मिणी और उसके कुटुम्बियोंको बड़ी प्रसन्नता तथा तुष्टि हुई। बंधुजनोंने मंगलसे शोभायमान नौकरोंको श्रीकृष्णके पास बधाई देनेके लिये भेजे ॥ ४३–४५ ॥

जिस समय रुक्मिणीके नौकर श्रीकृष्णके पास गये, उस समय वे सो रहे थे। महाराजको नींद आ रही है, ऐसा जानकर वे कृष्णके चरणोंके पास विनयसे मस्तक नमाकर खड़े हो रहे। यह समझकर कि महाराज उठेंगे, तो पहले उनकी दृष्टि साम्हनेकी ओर इसी तरफ पड़ेगी ॥ ४६–४८ ॥ सो ठीक ही है, लोकमें जैसे मालिक वैसे ही नौकर देखनेमें आते हैं। इतनेमें सत्यभामाके नौकर भी बधाई देनेको वहां आ पहुँचे। उन्होंने घमण्डमें आकर विचार किया कि, हमारी महाराणी तो पट्टरानी हैं, हम नीचेकी तरफ क्यों खड़े रहें? इस लिए वे कृष्णजीके मस्तकके पास (सिराने) खड़े हो गये ॥४६–५०॥ जब कृष्णजी निद्रासे जागे, और सेजपर उठकर बैठे, तो प्रथम ही साम्हने खड़े हुए रुक्मिणीके नौकरोंने बड़ी

प्रसन्नतासे बधाई दी ॥ ५१ ॥ हे नराधीश ! आप चिरंजीवि रहो ! चिरकाल जयवन्ते रहो ! रुक्मिणी रानीके पुत्ररत्नकी उत्पत्ति हुई है, उसके साथ आप चिरकाल पर्यन्त राज्यसुखका अनुभवन करो ॥५२॥ नौकरोंके मुखसे पुत्रजन्मके सुहावने शब्द सुनकर कृष्णनारायणको सन्तोष और हर्ष हुआ ॥५३॥ उन्होंने तत्काल गुणनिधान पुत्र जन्मकी बधाई देनेवालोंको राजचिन्ह छोड़कर समस्त वस्त्र आभूषण इनाममें दे दिये ॥ ५४ ॥ और उसी समय आज्ञा दी कि, जाओ और मंत्रियोंको मेरे पास बहुत शीघ्र बुला लाओ ॥ ५५ ॥ आज्ञानुसार नौकर मंत्रियोंको बुला लाये। मंत्रीगण कृष्णजीके पास आये और प्रणाम करके साम्हने बैठ गये ॥ ५६ ॥ तव नारायणने मंत्रियोंसे आदरपूर्वक कहा कि, मेरे घर पुत्रका जन्म हुआ है। इसकी खुशीमें याचकोंको जो वे मांगें, सो दान दो, शत्रुओंको जहलखानेमेंसे छोड़ दो, श्रीजिनेन्द्रके मंदिरोंमें भक्तिभावसे पूजाविधान कराओ, द्वारिकापुरीमें उत्सव करो, और नगरीको सिंगारो, इस प्रकार मंत्रियोंको आज्ञा देकर जब श्रीकृष्णजीने अपनी कंधाको मुरकाके सिरानेकी तरफ देखा, तव विद्याधरी सत्यभामाके नौकरोंने बधाई दी कि—हे देव ! विद्याधरी सत्यभामा महारानीके पुत्रकी उत्पत्ति हुई है। ऐसे वचनोंको सुनकर श्रीकृष्णजी और भी प्रसन्न हुए और उन्होंने हुक्म दिया कि इन्हें भी इनाममें धन तथा वस्त्राभूषण प्रदान करो ॥ ५७–६१ ॥ "सर्व प्राणियोंकी बुद्धि कर्मके क्षयोपशमके अनुसार हीनाधिक होती है और जो अतिशय अभिमान करता है, उसका विनाश होता है। देखो ! तीन खण्डका स्वामी रावण मान करनेसे नष्ट हो गया" ॥ ६२ ॥

श्रीकृष्णनारायणके यहां दो पुत्ररत्नोंका जन्म हुआ। द्वारिकापुरीमें बड़े २ उत्सव हुए। याचकोंको इच्छानुसार दान दिया गया। मित्रवर्ग वा बन्धुजनोंका बहुत आदर सन्मान किया गया। कुलीन स्त्रियोंको अनेक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र भेंटमें दिये गये। नगरमें विधिपूर्वक तोरण (बंदनवारे) बांधे गये। और जिनमदिरोंके शिखरोंपर पताका लगाई गईं ॥ ६३–६५ ॥ कहांतक वर्णन किया जाय, इतना ही कहना बस होगा कि, सब मनुष्योंने अपने २ घरमें महान् उत्सव मनाया। ठीक ही है, "जब राजाके

ही पुत्र उत्पन्न हो, तो प्रजा उत्सव क्यों न करे ?" ॥ ६६ ॥ जिस प्रकार हस्तिनागपुरमें श्रीशान्तिनाथ कुंथुनाथ, अरनाथ स्वामीके जन्म कल्याणकके समय देवोंने महोत्सव किया था, उसी प्रकार कृष्णनारायणके पुत्रोंके जन्ममें नगरनिवासियोंने महान् उत्सव किया ॥ ६७ ॥ जब प्राणप्यारी रुक्मिणीको पुत्र उत्पन्न हुआ, तब श्रीकृष्णजीका चित्त उसमें और भी अधिक आसक्त हो गया । उन्होंने याचकोंको इच्छासे भी अधिक दान दिया ॥ ६८ ॥ श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और तुष्टिका (संतोषका) पार न रहा। उन्होंने गुरुजनोंका बहुत ही सन्मान किया और भाई बन्धुगणोंको हर एक प्रकारसे प्रसन्न करके वे सुखसे रहने लगे ॥ ६९ ॥ इस प्रकार यदुवंशियोंके राजा श्रीकृष्णनारायणके महलमें पांच दिन तक विधि अनुसार महोत्सव होते रहे । छट्ठेदिन क्या हुआ, सो सुनियेः— ॥ ७० ॥

उस दिन सूर्य अस्त हुआ । इसका कारण यह मालूम होता है कि, आजकी रात्रिके समय श्रीकृष्णनारायणके पुत्रका हरण होनेवाला है, जिससे कृष्णको तथा उसके स्वजनोंको बड़ा दुःख होगा और वह दुःख मुझसे न देखा जायगा, ऐसा जानकर मानों सूर्य अस्त हो गया । सो ठीक ही है– सत्पुरुष अपने सन्मुख दूसरेको दुःखित नहीं देख सकते । भावार्थ दूसरेको दुःखी देखना नहीं चाहते हैं ॥ ७१–७२ ॥

सूर्यके अस्त होनेपर क्या २ फेरफार हुआ, सो संक्षेपमें वर्णन किया जाता हैः—कमलिनी संकुचित हो गई । चारों ओर अंधकार फैल गया ॥ ७३ ॥ चक्रवाकी शब्द करती है और कलियोंपरसे भौंरे उड़कर पड़ते हैं, इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि, कमलिनी रूपी स्त्री सूर्यपतिके वियोगमें रोती है, और आंसू टपकाती है । चक्रवाकी के शब्द उसका रोना और भौंरोंका पड़ना उसके आंसुओंका पड़ना है ॥ ७४ ॥ संध्याके समय चक्रवाकी वियोगकी संभावनासे गिरगिर पड़ती है, पतिका मुखचुंबन करके वारवार मूर्छित होती है, शरीरसे चिपटे हुए पतिका वारम्वार अवलोकन करती है और विरहके कारण सूर्यपर क्रोध करती है ॥ ७५ ॥ सूर्यके समुद्रमें पतित होनेपर अर्थात् डूब जानेपर संध्यारूपी स्त्री उसके वियोगमें काष्ठका भक्षण करनेके लिये अर्थात् अग्निमें प्रवेश करनेके लिये विचित्रांवर शोभाकी धारण करने-

वाली हो गई। अर्थात् जिस प्रकार सती होनेवाली स्त्री नाना प्रकारके अम्बर (वस्त्र) धारण करके सजती है उसी प्रकार संध्याका अम्बर अर्थात् आकाश रंगविरंगी शोभाका धारण करनेवाला हो गया ॥ ७६-७७ ॥ और अपने सूर्यपतिके चले जानेपर दिशारूपी गणिका (वेश्या) अंधकारके साथ रमण करनेके लिये चित्रविचित्र वस्त्र धारण करके तयार हो गई ॥ ७८ ॥ जब पृथ्वीपर अंधकारका समूह फैल गया, तब ऊँचे नीचे सब स्थान सम हो गये अर्थात् एकसे दिखने लगे, जिसप्रकार मलिनात्मा राजाके होनेपर नानाप्रकारके आचरण करनेवाले ऊँच और नीच जातिके सम्पूर्ण लोगोंमें समता हो जाती है ॥ ७९-८० ॥ उस अंजनके समान काले अंधकारके चारोंओर फैलनेपर दिशा, लता, आकाश, भूमि, पर्वत आदि कुछ भी नहीं रहे, सबका अभाव दिखने लगा। उस समय लोकमें नदी, वन, आदि किसीकी भी सीमा नहीं दिखती थी, जिस प्रकार मलीन राजाके राज्यमें प्रजा मर्यादाहीन हो जाती है ॥८१-८२॥ उस अंधकारसमूहमें रात्रिको लोगोंके जलाये हुए तेज युक्त दीपक शोभायमान होने लगे ॥ ८३ ॥ वे विमल, सुदशायुक्त (अच्छी बत्तीवाले) उत्तम पात्रोंका सेवन करनेवाले, दीपक ऐसे शोभित होने लगे हैं, जैसे मलिन लोगोंमें रहनेवाले भी तेजस्वी, विमल, सुदशायुक्त और उत्तम पात्रोंका सेवन करनेवाले पुरुष शोभित होते हैं ॥ ८०-८४ ॥

ऐसी रात्रिमें रुक्मिणी अपने पुत्रको लेकर प्रसूतिघरमें सो रही थी। उसके पास मंगलगीत गानेवाली तथा नाचनेवाली स्त्रियां भी सो रही थीं ॥ ८५ ॥ और रक्षाके लिये महलके चारों तरफ शस्त्रधारक सिपाहियोंका पहरा लग रहा था ॥ ८६ ॥ कृष्णजी किसी दूसरे महलमें चिन्तारहित सुखसे नींद ले रहे थे और अंगरक्षक उनकी रक्षा कर रहे थे ॥८७॥ प्रफुल्लित चित्त होकर रुक्मिणी हजार स्त्रियोंसहित अपने पुत्रका मुखकमल निहारती हुई पौढ़ी थी। जब रात्रिको अनेक उत्सव हुए, तब उसे सुखसे भरपूर निद्रा आ गई। उसी समय रुक्मिणी आदिको कष्टका देनेवाला अन्य उपद्रव खड़ा हुआ, जो इस प्रकार है:— ॥ ८८-८९ ॥

एक समय मोहके वशसे वा दुर्बुद्धिकी प्रेरणासे राजा मधुने अपने सामन्त राजा हेमरथकी स्त्री हरी थी, जिससे हेमरथ अपनी स्त्रीका हरण वा वियोग जानकर राजकाज़ छोड़कर सूनसान निर्जन वनमें भ्रमण करता फिरा था, और स्त्रीके विरहमें पागल हो गया था। क्योंकि "मोह बड़ा दुःखदाई होता है।" नगर वा वनमें घूमते घामते उसने अन्यमतावलम्बी तापसियोंकी सलाहसे पंचाग्निका साधन किया और अन्तको तपके प्रभावसे मरके वह दैत्य हुआ ॥९०–९३॥ एक दिन जब यह दैत्य विमानमें बैठकर आकाशमें लीलासे विचर रहा था, तब दैवयोगसे उसी रात्रिको उसका विमान रुक्मिणीके महलके ऊपर आया ॥ ९४ ॥ पवनके समान तेजसे जानेवाला विमान जब रुक्मिणीके बालकके ऊपर आया और चलते चलते आपसे आप रुक गया, ॥ ९५ ॥ तब अपने विमानको अटका हुआ जानकर वह असुर विचारने लगा कि, या तो किसी दुर्बुद्धिने मेरे विमानको रोक दिया है ॥ ९६ ॥ या नीचे कोई प्राचीन अतिशयवान जिन प्रतिमा है। कोई शत्रु है अथवा कोई मित्र आपत्तिमें पड़ा हुआ है, अथवा कोई चरम-शरीरी देह संकटमें पड़ा हुआ है। इनमेंसे कोई कारण अवश्य है। अन्यथा मेरे विमानकी गति किसी प्रकार नहीं रुक सकती थी। पृथ्वीपर ऐसा कौन है, जो मेरे चलते हुए विमानको कील देवे? विमान अटकानेवाला तीन भुवनमें मुझसे बचकर कैसे रह सकता है? जिस दुराचारीने मेरे आकाशमें जाते हुए विमानको अटकाया है, उसे मैं नियमसे अभी यमराजके घर पहुँचा देता हूं ॥ ९७–१०० ॥ जब दैत्यके अन्तरंगमें इसप्रकार विकल्पोंकी लहरें उछल रहीं थीं; उसी समय दुष्टबुद्धिके करनेवाले अवधिज्ञानसे (कुअवधिसे) उसने सब हकीकत जान ली कि, पूर्वभवमें जिस राजा मधुने पापबुद्धिसे मोहमें आकर मेरी स्त्री चन्द्राभाका हरण किया था और उसके साथ आनन्द उड़ाते हुए राज्यका कार-बार चलाया था, वही दुराचारी उस पर्यायको छोड़कर (तपश्चरणके योगसे) स्वर्गको प्राप्त हुआ था, जहां उसने देवाङ्गनाओंके सुख भोगे और फिर वहांसे चयकर पूर्वपुण्यके प्रसादसे वह रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। पूर्वभवमें जान बूझकर इस दुष्टात्माने मुझे दुःख दिया था। परन्तु उस समय तो मैं

असमर्थ था, इससे मेरी कुछ न चली थी, परन्तु अब मैं दैत्य अवस्थामें हरएक प्रकारसे समर्थ हूं और यह अभी विलकुल असमर्थ वालक है। इस लिये मैं इस दुराचारीको अवश्य ही नष्ट करूंगा। यदि मैं इस बालकका विनाश न करूं, तो मेरे दैत्यपनेको धिक्कार है ॥ १०१–१०६ ॥ दैत्यने बड़ी देरतक इस बातका आगा पीछा विचार किया। निदान वह निश्चय करके आकाशसे रुक्मिणीके महलकी तरफ उतरा ॥ १०७ ॥ वह क्या देखता है कि, महलके चारोंतरफ शस्त्रधारी सुभट पहरा दे रहे हैं। इससे वह एकदम चकित हो गया। देरतक विचारनेके बाद उसे सुधि हुई कि, मैं तो दैत्य हूं और ये मनुष्य हैं। वृथा ही मैं इनसे क्यों चौंक गया। क्रोधसे तप्तायमान होकर वह सुभटोंके पास आया और उन्हें तत्काल ही मोहकी निद्रा से अचेत करके महलके जड़े हुये कपाटोंके छिद्रमेंसे भीतर धँस गया। दैत्यने रुक्मिणीको भी मोहकी नींदसे अचेत कर दिया, जिसका कि चित्त पुत्रके स्नेहसे भरा हुआ था। पीछे उसने बालकको सेज परसे उठा लिया ॥ १०८–१११ ॥

दैत्यने महलके कपाट खोल लिये और प्रसन्नतासे वह बालकको बाहर निकाल लाया। पश्चात् वह दुर्बुद्धिधारक उसे आकाशमें ले गया और क्रोधसे नेत्र लाल करके उसकी ओर देख घुड़कके बोला ॥ ११२–११३ ॥ रेरे दुष्ट महापापी! तूने पूर्व भवमें घोर पापकर्म किये हैं। उसकी तुझे याद है या नहीं? जब तू राजा मधु था और मेरी प्राणप्यारी रानी (चन्द्राभा) को हरके ले गया था, उस समय तू सामर्थ्यवान था और मैं सामर्थ्यहीन था। इससे तूने मनमाना अन्याय कर डाला था। अब बोल मैं तुझे कौन २ से भयंकर दुःखोंका मजा चखाऊं? ॥ ११४–११५ ॥ आरेसे चीरकर तिलके समान तेरे खण्डखण्ड कर डालूं? अथवा जिस समुद्रमें बड़ी २ ऊंची लहरें उठती हैं और जो मगर मच्छादि क्रूर प्राणियोंसे भरा है, उसमें तुझे फेंक दूं? तेरे हजारों टुकड़े करके दिशाओंको बलिदान दे दूं? अथवा किसी पर्वतकी गुफामें ले जाकर चटानके नीचे दाबकर पीस डालूं? रे दुर्मति! मैं तुझे कौन २ से दुःखोंका भाजन बनाऊं? पूर्वभवमें धनयौवनके घमण्डमें चकचूर होकर तूने घोर अनर्थ किया है, उसकी तू याद कर! रे

दुराचारी ! तूही कह दे कि मैं तेरा क्या करूं ? और पूर्वकर्मके उदयसे किसप्रकार तुझे तीव्र दुःख दूं ॥ ११६–११६ ॥ इसप्रकार दैत्यने बिचारे बालकको बड़ी निर्दयताकी दृष्टिसे देखा। उसे तरह २ के कठोर शब्दोंके प्रहारसे धमकाया, चमकाया। फिर बड़ी देर तक वह इसी उलझनमें पड़ा रहा कि, ये दुःख दूं अथवा ये दुःख दूं ? निदान शिलाके नीचे दाबनेका ही दृढ़ संकल्प करके वह दैत्य उस बालकको तक्षक नामक पर्वतपर ले गया ॥ १२०–१२१ ॥

उस तक्षक पर्वतपर एक खदिरा नामकी अटवी थी, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे संकीर्ण हो रही थी जहां तहां कांटे फैले हुए थे, पैने २ कंकर पत्थर बिछ रहे थे, गोखरू कांटोंकी भी जहां कमी न थी जहां इंगुदी, खदिर, बिल्व, धव, पलाश आदि जातिके वृक्ष तथा विषवृक्ष लगे हुए थे; जिस विकट अटवीमें नेवले, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि निर्दयी जीव विचर रहे थे। विशेप कहांतक कहा जाय, इतनेहीमें समझ लेना चाहिये कि वह वन इतना डरावना था, कि उसे देखकर यमराजको भी भय उत्पन्न होता था ॥ १२२–१२४ ॥ फिर बावन हाथ लम्बी और ५० हाथ मोटी दलदार कठोर मजबूत चटानके नीचे उस दयाहीन दैत्यने बेचारे बालकको दबा दिया। पीछे उसने चटानको अपने दोनों पावोंसे खूब दबाई (इस अभिप्रायसे कि वह बिलकुल पिचल जाय) ॥ १२५–१२६ ॥ तदनन्तर दैत्य बोला, रे दुरात्मन् ! तूने पहले खोटे कर्म उपार्जन किये थे, उसीका यह फल मिला है। इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है। यह तेरी ही करतूतका वा भूलका नतीजा है। ऐसा कहके और अपने मनोरथकी सिद्धि समझके वह दैत्य वहांसे चला गया ॥ १२७–१२८ ॥ (आचार्य कहते हैं) इतना घोर उपसर्ग करनेपर भी वह बालक नहीं मरा। सो ठीकही है "पुण्यात्मा जीवोंको आपत्ति कुछ भी त्रास नहीं पहुंचा सकती"। भावार्थ–पुण्यके माहात्म्यसे दुःख भी सुखरूप में परिणत हो जाता है ॥ १२९ ॥ इस जीवने पूर्व भवमें ध्यान, जप तप किया था। उसीके प्रतापसे इस भवमें वह चरमशरीरी अर्थात् तद्भवमोक्षगामी हुआ है। देखो ! बावन हाथकी जबरदस्त शिलासे उस बालकका न मरण हुआ और न उसे रंचमात्र दुःख

हुआ। बात सचमुचमें यों ही है। क्योंकि चाहे वनमें हो या शहरमें हो, पूर्वोपार्जित पुण्य ही देहधारियोंकी रक्षा करनेवाला है ॥ १३०–१३१ ॥ जिस भव्य जीवके पल्ले पूर्वभवका संचय किया हुआ पुण्य बँधा हुआ है, उसका कैसा भी शत्रु क्यों न हो, बाल बांका नहीं कर सकता ॥ १३२ ॥

करुणावान सूर्य उदयाचल पर्वतपर पधारे। इस विचारसे कि देखें तो सही मेरी अनुपस्थिति (गैरहाजिरी) में दुष्ट दैत्यने पूर्वभवके वैरको चितारकर बालकके साथ कैसा वर्तावा किया है? पूर्वपुण्यके प्रभावसे शिलाके तले दबे हुए बालककी आगे क्या दशा हुई, सो संक्षेपसे यहां वर्णन की जाती है:— ॥ १३३–१३५ ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक विजयार्द्ध नामका सुप्रसिद्ध पर्वत है। उसकी दक्षिण दिशामें मेघकूट नामका एक जगत् प्रख्यात, नगर धन धान्यादिसे सम्पन्न और जिन चैत्यालयोंसे सुशोभित है। ऐसा जान पड़ता है, मानो इन्द्रकी नगरी अमरावती ही आ गई है ॥ १३६–१३७ ॥ इस नगरमें कालसंवर नामका राजा राज्य करता था, जो अपनी सम्पदा और गुणोंसे जगद्‌विख्यात हो रहा था और जिसने शत्रुओंके वंशको निर्मूल कर डाला था ॥ १३८ ॥ इस राजाकी कनकमाला नामकी रानी थी, जो सुप्रसिद्ध गुणवती वा रूपवती थी। उसने अपनी सुन्दरतासे देवाङ्गनाओंके रूपको भी जीत लिया था ॥ १३९ ॥ राजा कालसंवर कनकमाला रानी सहित शत्रुओंकी बाधासे रहित (निःकण्टक) राज्य करता था। एक दिन वह कनकमालाको लेकर तथा विमानमें बैठकर क्रीड़ाको बाहर निकला और रमणीक देशोंमें, भांति २ के वनोंमें, मनोहर मेरुके शिखरोंपर, चित्तप्रिय गङ्गानदीके तटोंपर, मनोज्ञ २ कदली वृक्षोंके वनोंमें तथा नन्दनवनादि बगीचोंमें तथा और भी अनेक रमणीक स्थानोंमें क्रीड़ा करता हुआ दैववशात् उसी तक्षक पर्वतपर आया, जो बालक प्रद्युम्नकुमारसे सुशोभित हो रहा था ॥ १४०–१४३ ॥ वहां आते ही राजाका विमान जो सपाटेसे आकाशमें जा रहा था, एकाएक अटक गया। विमान पुण्यके प्रभावसे ऐसा कीलित हो गया कि, तिलमात्र वह आगे पीछे न हटा ॥ १४४ ॥ तब राजा कालसंवरको बड़ी चिन्ता हुई। वह

विचारने लगा, कि क्या हो गया जो विमान चलता ही नहीं है? क्या किसीने कील दिया है? अथवा कोई ज्ञानविभूषित मुनीन्द्र नीचे विराजमान हैं? किसी जिनमंदिरमें अतिशयवान प्रतिमा विराजमान है? अथवा यहां मेरा कोई शत्रु वा मित्र विद्यमान है? वा कोई चरमशरीरी कष्टमें पड़ा हुआ है। देखें तो सही बात क्या है? ऐसा विचारकर राजा अपनी प्राणप्रियासहित विमानमेंसे उतरा और उस पर्वत-पर गया, वहां जाते ही उसको खदिरा वन दीख पड़ा ॥ १४५–१४८ ॥ वनमें धँसते ही राजाने एक बावनहाथकी बड़ी शिला देखी, जो बालकके मुखकी हवासे (सांसके जोरसे) हल रही थी ॥ १४९ ॥ इतनी बड़ी लम्बी चौड़ी शिलाको डगमगाती हुई देखकर राजाको बड़ा अचम्भा हुआ। वह विचारने लगा, इसका क्या कारण है? मैंने तो आजतक ऐसी शिलाको कम्पित होती नहीं देखी। तब बड़े कौतूहलमें आकर उसने कुछ तो अपने शरीरके बलसे और कुछ विद्याके बलसे उस शिलाको उठाई ॥ १५०–१५१ ॥

ज्योंही राजाने शिलाको दूर किया त्योंही उसने उसके तले एक सुंदर बालकको लेटा देखा जो मुसकरा रहा था, चंचल था, जिसके केश घुंघरवाले थे, हाथ पांव चलायमान हो रहे थे, जिसकी मुट्ठियां बँधी हुई थी, जिसके नेत्र कमलके समान प्रफुल्लित हो रहे थे, जिसके शरीरकी कान्ति ताये हुए सुवर्णके समान थी, जिसने अपने मुखकी सुन्दरतासे पूर्णमासीके चन्द्रको भी लज्जित कर दिया था, जिसकी भुजा कमलकी नालके समान कोमल थी, तथा शुभलक्षणोंसे चिह्नित थी ॥ १५२–१५४ ॥ ऐसे सुन्दर, बलवान धीरवीर, कान्तिवान, प्राणीमात्रके नेत्र वा मनको हरण करनेवाले, पूर्व भवके संचित पुण्यको प्रगट करनेवाले और चरमशरीरी होनेके कारण अपने कट्टर बैरी दैत्यको जीतनेवाले सर्वगुणसम्पन्न बालकको राजा कालसंवरने देखा और उसे जमीनपरसे अपने हाथोंमें उठा लिया। गोदमें लेकर विचार-ने लगा, यह कोई उच्चकुलका उत्पन्न होनेवाला बड़ा भाग्यशाली मालूम पड़ता है। थोड़ी देरतक वह ऐसे ही विचार करता रहा। निदान उसने अपनी कनकमाला रानीसे कहा, देवी! तेरे कोई पुत्र नहीं है और

तुझे पुत्रकी बड़ी लालसा लग रही है, इस लिये ले इस सर्वाङ्गसुन्दर, सर्वगुणसम्पन्न बालकको तू ग्रहण कर। रानीने अपने प्राणनाथके अमृतके तुल्य मीठे वचनोंको सुनकर दोनो हाथ फैलाये। राजा उसके हाथमें बालकको छोड़नेवालाही था कि, रानीने अपने हाथ पीछे खींच लिये। तब राजाने पूछा, प्रिये! तूने अपने हाथ पीछे क्यों खींच लिये? ॥ १५५-१६२ ॥ रानीका हृदय दुःखसे भर आया। उसके नेत्रोंसे आंसूकी धारा निकलने लगी। वह हाथ जोड़कर बोली, प्राणनाथ! हाथ संकोचनेका जो कारण है सो मैं बतलाती हूं, सुनोः—आपके घरमें दूसरी रानियोंसे जन्मे हुए ५०० पुत्र विद्यमान हैं। कहीं यह बालक उन पुत्रोंका दास होकर जीया, तो यह बात मेरे जीमें बाणके समान सदा चुभती रहेगी और मेरा जीवन भी निष्फल हो जायगा ॥ १६३-१६५ ॥ हे प्रभो! यदि मुझ मंदभागिनीने पूर्वभवमें कोई महत् पुण्य संचय किया होता, तो क्या मेरी कुक्षिसे (कूंखसे) पुत्रकी उत्पत्ति न होती? मैं बड़ी भाग्यहीन हूं, जो मेरे एक भी पुत्र नहीं है। नाथ! भला दूसरेके पुत्रसे मुझे क्योंकर सुख हो सकता है? दुःखदाई अन्यके पुत्रसे क्या? इस प्रकार गद्गदवाणी बोलती हुई रानी कनकमाला रोने लगी ॥१६६-१६८॥ विलाप करती हुई रानीको देखकर करुणावान राजाका हृदय भर आया। वह बोला देवी! संक्लेशको उत्पन्न करनेवाला दुःख मत कर, दुःख करनेसे तेरा मुखकमल व्यर्थ ही उदास हो जायगा, शरीर कृश हो जायगा। और तेजहीन हो जायगा। देख! तेरे सामने ही मैं तेरे इस पुत्रको युवराजका पद देता हूं। ऐसा कहके कालसंवर राजाने अपने मुखके तांबूलसे (पानकी ललाईसे) बालकको तिलक कर दिया और कहा, बेटा! मैंने वास्तवमें सदाके लिये तुझे युवराजके पदपर स्थापित किया है। अब मेरे राज्यका स्वामी या तो मैं हूं या तू है, दूसरा कोई नहीं ॥ १६९-१७२ ॥ ऐसा कहके राजा कालसंवरने रानी कनकमालाको बालक सौंप दिया। रानीने अपने दोनों हाथ फैलाये और उसे ग्रहण किया ॥ १७३ ॥ तब रानीने बालकके मस्तकपर हाथ धरके उसे आशीर्वाद दिया कि "बेटा! तू चिरंजीवि रह, और अपने माता पिताको सुख दे" ऐसा कहके रानी कनकमाला उस बालकका चुम्बन करके

बड़ी आनन्दित हुई ॥ १७४ ॥

इस प्रकार तत्क्षक वनकी खदिरा अटवीसे उस बालकको लेकर राजा कालसंवर विद्याधर और कनकमाला विद्याधरी दोनों विमानमें बैठकर अपने मेघकूट नामा नगरको रवाना हुए। ज्यों ही वे अपने नगरके पास पहुँचे त्योंही राजाके सन्मुख (पेशवाईमें) मंत्रियों सहित नगरनिवासी आये। राजाकी आज्ञानुसार प्रजाने बड़ा उत्सव किया, और विभूतिसहित राजाको नगरमें प्रवेश कराया। अपने महलको प्राप्त होते ही राजाने अपने मंत्रियोंको बुलाया और उनसे कहा, मंत्रीगण! मैं एक बड़े आश्चर्यकी बात कहता हूं, सुनोः—पहले किसीको भी मालूम नहीं था कि, मेरी कनकमाला प्राणप्रियाको गर्भ है। क्या तुमने पहले कभी सुना है कि स्त्रियोंको गूढ़गर्भ भी होता है? तब मंत्रियोंने राजाको संतोषित करनेके लिये कहा, जी हां, महाराज! हमने पहले कईबार सुना है कि, स्त्रियोंके गूढ़गर्भ होता है। वैद्यक आदि शास्त्रोंमें भी लिखा है ऐसा सुनते हैं, और प्रत्यक्षमें भी कईबार यह बात देखी है ॥ १७५–१७६ ॥

मंत्रियोंके वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। उसने कहा मेरी रानी कनकमालाके भी ऐसा ही गूढ़गर्भ था, इस कारण दैववशात् आज वनमें ही उसके पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है। इस वास्ते रानीको बहुत जल्दी एक उत्तम प्रसूतिगृहमें ले जाओ। सूतिकाको बुलवाओ और प्रसूति समय जो २ कार्य करना पड़ता है, उसे करनेको कहो। तदनुसार मंत्रियोंने दाईको बुलवाया और प्रसूतिकर्मका (जापेका) कार्य प्रारंभ करा दिया। पश्चात् आज्ञा दी कि, मंत्रीगण! नगरमें तोरण, ध्वजा, पताकादि बँधवाओ, जिन मंदिरोंमें उत्सव करावो, याचकोंको इच्छानुसार (किमिच्छित) दान दो, जहलखानोंमेंसे सर्व शत्रुओंको छोड़ दो, और छत्र चँवर सिंहासनादि राज्य चिह्नोंको छोड़कर सब दान कर दो ॥ १८०–१८५ ॥ राजाकी आज्ञानुसार मंत्रियोंने महोत्सवके साथ ध्वजा तोरणादिसे नगरीको सिंगार दी, सत्पुरुषोंका आदर सन्मान किया, बन्धुजनोंकी सेवा चाकरी की, कहां तक कहा जाय, समस्त प्राणधारियोंका दुःख दूर कर दिया। लवलेशमात्र किसीको किसी बातकी चिन्ता न रही ॥ १८६–१८७ ॥ हे भव्यजीवो! पुण्यकी

महिमा देखो, "जहां कहीं पुण्यात्मा जीव जाते हैं वहां उन्हें सहजमें ही इष्टसामग्री हाथ लग जाती है" ॥ १८८ ॥ इस प्रकार उस दिन नगरमें बड़ा उत्सव मनाया गया और सातवें दिन उसका नाम निकालनेके लिये सब कुटुम्बी सज्जन इकट्ठे हुए, महोत्सव किया गया और सबने यह जानकर कि यह बालक "परान् दमति" अर्थात् पर शत्रुओंका दमन करनेवाला दीख पड़ता है, उसका नाम प्रद्युम्नकुमार रक्खा ॥ १८९–१९० ॥

ज्यों २ प्रद्युम्नकुमार बड़ा होता गया, राजा कालसंवरके कुटुम्बी जनोंको तथा सर्व साधारण मनुष्योंको सन्तोष होता गया। राजाकी ऋद्धि धनादिक वृद्धिको प्राप्त होती गई ॥ १९१ ॥ जिसप्रकार भ्रमर एक कमलसे उड़कर दूसरे कमलपर और दूसरेसे तीसरेपर बैठता है, उसी प्रकार प्रद्युम्नकुमार मनुष्योंके हाथों हाथ खेला करता था। भावार्थ–कोई भी उसे नीचे जमीनपर नहीं छोड़ते थे ॥ १९२ ॥ उस समय किसी मनुष्यने तर्क किया कि, ये बालक राजाके कैसे हाथ लग गया? बांझ स्त्रीके तो पुत्र होता ही नहीं है? ॥ १९३ ॥ यह कौन है? किसका पुत्र है? और सूनसान जंगलमें राजा रानीके हाथ यह कैसे लग गया? ॥ १९४ ॥ तब दूसरे मनुष्यने जवाब दिया, इन बातोंसे तुम्हें क्या प्रयोजन है? जो कुछ राजा करता है, वह प्रजाको प्रमाण होता है। मुझे तो यह बालक पुण्यहीन नहीं दिखता है। कारण यदि यह पुण्यहीन होता, तो इसके कारणसे ऐसे महोत्सव क्यों होते? ॥ १९५–१९६ ॥ जिस वस्तुका चिंतवन करो, वह पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होती है, इस लिये भव्य जीवोंको भवभवान्तरमें सदाकाल पुण्यसंचय करना चाहिये ॥ १९७ ॥ पुण्यके माहात्म्यसे प्रद्युम्नकुमार केवल कनकमाला रानीको ही नहीं, किन्तु राजा कालसंवरकी अन्यान्य समस्त रानियोंको तथा सर्व साधारण स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय हो गया। भावार्थ स्त्रीमात्र उसका प्रेमसे लाड़ करने लगीं। इसी प्रकार स्वजन तथा परजनोंका भी प्रद्युम्नकुमार प्रेमपात्र बन गया ॥ १९८ ॥ पूर्व भवके बैरसे दुष्ट दैत्यने इतने छोटे बालकके साथ कैसा खोटा वर्ताव किया, उसे मारनेमें कमी नहीं की तौ भी देशान्तर मेघकूट नगरमें राजा कालसंवरके यहां वह बड़े

सुखसे बढ़ने लगा, इसमें केवल पुण्य ही कारण है ॥ १९९ ॥ जिनके पास विशेष पुण्यका संचय होता है, उनको सहजमें ही अनेक प्रकारके सुख मिल जाते हैं। ऐसा जानकर हे भव्यजीवो! सदकाल अपना परम हितका करनेवाला धर्म धारण करो ॥ २०० ॥ धर्म ही समस्त प्रकारके सुखोंका करनेवाला है, धर्म ही जीवका भला करनेवालाहै, धर्म ही गुरुओंका गुरु है, धर्मसे ही स्वर्ग मोक्षादिके अनेक प्रकारके मनोवांछित सुख प्राप्त होते हैं और धर्मसे ही सदाकाल चन्द्रमाकी चांदनीके समान निर्मल कीर्ति फैलती है अर्थात् यश दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है। इस लिये हे बुद्धिवान भव्यप्राणियो! जिस जिनधर्मकी उपासना मुनीन्द्रजन करते हैं, उसे तुम धारण करो ॥ २०१ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रंथके नवीन हिन्दीभाषानुवादमे
प्रद्युम्नकुमारके हरण आदिका वर्णनवाला पांचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठः सर्गः।

उधर कालसंवर विद्याधरके स्वर्गके समान सुंदर महलोंमें प्रद्युम्नकुमार अपने (रक्षक) माता पिताओंको सुखी कर रहा था, उनकी मनोवांछाओंको बढ़ा रहा था और स्वयं आनन्दमें मग्न हो रहा था, इधर द्वारिकापुरीमें रानी रुक्मिणीकी बालकका हरण हो जानेसे बड़ी बुरी दशा थी। जिसे सुनकर लोगोंके हृदय भर आवेंगे। यहां संक्षेपमें उसका वर्णन करते हैं:—॥ १–३ ॥

जब दुष्ट दैत्य बालकको हर ले गया, तब रुक्मिणी निद्रासे सचेत होकर अपने सर्वगुणसम्पन्न बालकको चारों ओर देखने लगी ॥ ४ ॥ जब अपनी सेजपर बालकको नहीं पाया, तब वह चकित होकर नौकर चाकरोंसे पूछने लगी, नौकरो! तुम मुझे बहुत जल्दी बताओ, मेरा गुणवान पुत्र कहां गया है? फिर चिन्ताग्रसित होकर विचारने लगी कि, यह देवकृत माया है? अथवा कोई इन्द्रजालका खेल है?

मुझे यह स्वप्न आ रहा है, किंवा मेरी आँखोंमें ही अंधेरा छा रहा है? (जिससे बालक नहीं दिखाई देता) मेरा हृदय ही शून्य हो रहा है ? अथवा वात प्रकृतिमें आकर ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है ? कोई पूर्व-जन्मका वैरी दैत्य मेरे बालकको हरके ले गया है ? अथवा किसी दासीकी गोदमें मेरा बालक खेल रहा है ? धाय दूध पिलानेके लिये उसे अपने पास ले गई है ? अथवा नौकर उसे प्रेमसे खिलानेके लिये कहीं ले गये हैं ?॥ ५-१० ॥ ऐसे नानाप्रकारके संकल्प विकल्प करके अत्यन्त मोह रखनेवाली उस रुक्मिणी-ने फिर विचार किया कि, हाय ! निर्दयी दैवने मुझ अबलाको जल्दी ही नष्ट कर दिया। अब मेरे जीवन-में क्या सार है ? ऐसा सोचकर एक दम पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़ी। यह देखकर नौकरोंने उसे हरिचन्दनादिकके शीतोपचारसे सचेत किया ॥ ११-१३ ॥ सो सचेत होकर वह अपने पुत्रकी यादमें छाती पीटने लगी और डाढ़ें मारमार कर रुदन करने लगी उस विलापको सुनकर नौकरोंका चित्त भी करुणासे भर आया ॥१४॥ हाय ! हाय ! मेरे घुंघरालेबालोंवाले सुन्दर नासिकावाले और पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुख-वाले पुत्र ! तू कहां चला गया ? बेटा ! तेरे नेत्र कमलके समान सुन्दर थे, तेरी भौंहें विकारयुक्त अर्थात् टेढ़ीं थीं, तेरी सुन्दरता कामदेवकी फाँसीके समान मोहक थी, और सबको भ्रमानेके लिए तू कर्मकी फाँसी ही था, तू कहां चला गया ? शंखके समान सुन्दर कण्ठवाले और गजकी सूंडके समान दृढ़ भुजाओंकेधारण करने वाले पुत्र ! तू कहां लोप हो गया ? जब इसप्रकार हाहाकार मचाती हुई रुक्मिणी उच्च स्वरसे रोने लगी, तब कृष्णके रणवासकी समस्त रानियें दासियें आदि भी रुदन करने लगीं ॥१५-१८॥ तथा इसी प्रकार कृष्ण पुत्रके हरण हो जानेके दुःखकारक समाचार सुनकर नगर निवासी जन भी विलाप करने लगे ॥१९॥ सारे यादववंशियोंकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगीं, उनकी धारा प्रवाह आंसुओंकी बूंदें ऐसी जान पड़ती थीं, मानो उन्होंने सूतसे पोई हुई मोतियोंकी मालायें ही धारण कर रक्खी हों॥ २० ॥

अचानक और पहले कभी सुना नहीं, ऐसे दुःखदायी कोलाहलको सुनकर श्रीकृष्ण एकदम नींदसे जाग उठे और पासके नोकरोंसे बोले, देखो तो सही, यह हाहाकारके शब्दोंसे मिला हुआ रात्रिके पिछ-

ले भागमें क्या कोलाहल हो रहा है ? जाओ ! देखके, सुनके तथा चिल्लाहटके कारणको भली भांति जानके मुझे जल्दी खबर दो। कृष्णमहाराजकी आज्ञाको पाते ही एक दण्डधारी सेवक तत्काल बाहर निकला और रणवासमें जाकर उसने इसका मूलकारण समझा, जिससे बहुत दुःखी होकर वह कृष्णजीके पास लौट आया ॥ २१–२४ ॥ और गुपचुप मस्तक झुकाके खड़ा हो गया। जब कृष्णजीने पूछा कि, कहो किस बातका कोलाहल हो रहा था, तब वह नौकर बड़े ही दुःखसे और गद्गदवाणीसे बोला, हे प्रभो ! मैं क्या कहूं ? कुछ कहने योग्य बात नहीं है। तब कृष्णजी बोले, तू इतना व्याकुल क्यों हो रहा है ? वह वार्ता क्या ऐसी दुःखदायिनी है कि, तू उसे कहते भी सकुचाता है ? परन्तु विना कहे कैसे मालूम हो ? तब सेवक हाथ जोड़कर बोला, नाथ ! कहते हुए मेरा हृदय विदीर्ण होता है ॥ २५–२७ ॥ किसी दुष्टने रुक्मिणीमहाराणीके बालकका हरण कर लिया है। वज्रपातके समान ऐसे वचन सुनते ही श्री कृष्णजी, क्या ? क्या ? तू क्या कहता है ? इतना कहकर मूर्च्छित हो गये ॥२८॥ जिस प्रकार वज्रके पड़ते ही वृक्ष पृथ्वीपर टूटकर गिरजाता है, उसी प्रकार ऐसी भयंकर घटनाकी खबर मात्रके सुननेसे उनका चित्त घायल हो गया और वे पछाड़ खाके जमीन पर गिर पड़े, जिससे निकटवर्ती नौकर चाकरोंको ऐसा मालूम हुआ मानो कोई पर्वत ही औंधा हो गया है ॥२९॥ जब नौकरोंने नानाप्रकारके शीतोपचार किये, तब मूर्च्छा दूर हुई। सचेत होनेपर पुत्र हरणकी बातके यादआते ही वे बहुत शोक और विलाप करने लगे तथा डाढ़ें मारकर रोने लगे। नौकर चाकर भी चिन्तातुर होकर आंसू बहाने लगे। ॥ ३०–३१ ॥ हाय ! हाय ! यह क्या हो गया ? प्यारे पुत्र ! तू कहां चला गया ? तेरे विना मेरा जीवन निःसार है। मेरे धन, धान्य, दासी, दास, ग्राम, नगर, कर्वट, खेट, मटंवादिक किस कामके ? मेरे सैकड़ों राजा सेवक हों, तो क्या ? अथवा मेरे पास हजारों हाथी घोड़े रथ आदिक हों, तो क्या ? जब तक तू था, तभी तक ये सब मेरे थे। अब तेरे विना मुझे ये तो क्या सब संसार असार दीख पड़ता है। बेटा ! मुझ पुण्यहीनको यहीं छोड़कर तू कहां चला गया ? मैं तेरे विना दीन और दुःखी हो गया। जब तू ही नहीं है, तो अब मेरा इस

संसारमें कौन बंधु है? पुत्र! शीघ्र आ और दुखरूपी सागरमें डूबते हुए अपने इस पिताको बचा। बेटा! तू हमारा कुलकमलदिवाकर और गुणसमुद्र था। अब तू कहां लोप हो गया? तू यदुवंशियोंके कुलरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाके समान था, तेरा शरीर बहुत सुंदर और तेरी आवाज बड़ी प्यारी वा मीठी थी। अब तू कहां छिप गया? प्रियवत्स! तू बड़ा भाग्यशाली था, स्वजन बन्धुवर्गके चित्तरूप कमलोंपर केलि करनेवाला परम शोभनीक हंस था, अब तू क्यों अदृश्य हो गया?॥ ३२–३८॥ इस प्रकार भांतिभांतिके मर्मभेदीवचनोंको उच्चारण कर कृष्णजीने बड़ी देर तक विलाप किया। उनके होठ टपकते हुए आंसुओंसे धुल रहे थे। कुटुम्बी जनोंने भी बहुत विलाप किया॥ ३९॥ पश्चात् श्रीकृष्ण बन्धुवर्गके साथ दुःखसे अपने मस्तकको धुनते हुए रुक्मिणीके महलको चले। रास्तेमें उन्होंने अपने मन ही मनमें सृष्टिकर्ताको उलाहना दिया कि—हे विधाता! तू क्यों तो ऐसे शुभलक्षणयुक्त चित्तको वशीभूत करनेवाले सुंदर नररत्नको बनाता है, और बनाकर पीछे उसे क्यों हर लेता है? धिक्कार है तेरे पाण्डित्यको (पण्डिताईको), जो मनोहर रूपकी रचना करके उसे फिर हरण कर लेता है॥ ४०–४२॥ इस प्रकार विचार करते और धीरे २ पांव बढ़ाते हुए श्रीकृष्णजी रुक्मिणीके महलमें पहुंचे।

अपने स्वामीको आते देख रुक्मिणी एकदम खड़ी हो गई और कुलीनताका स्वाभाविक लक्षणस्वरूप विनय करके मूर्च्छा खाकर गिर पड़ी। सो देखा ही जाता है कि, अपने हितैषी स्वजनोंको देखते ही मनुष्योंका दुःख उमड़ आता है॥ ४३–४४॥ यह देख श्रीकृष्णजीने शीतोपचारोंद्वारा उसकी मूर्च्छा दूर करनेका प्रयत्न किया। उससे सचेत होकर वह पुनः विलाप करने लगी॥ ४५॥ श्रीकृष्ण भी दुःखित हो उसी के पास बैठ गये और बारंबार पुत्रकी याद करके उस दुःखको और भी बढ़ाने लगे॥ ४६॥ रुदन करती हुई रुक्मिणीने अपने प्राणनाथसे कहा, हे स्वामी! आपके समान सामर्थ्यवानके विद्यमान होते हुए भी मेरा पुत्र कहां चला गया?॥ ४७॥ नाथ! मेरे अभाग्यवश मेरा बालक चला गया। मैं बड़ी मन्दभागिनी हूं। "क्या करूं? अब मैं अपुत्रवती हो गई" ऐसा कहकर भूमिपर गिर पड़ी, विह्वल

चित्त होकर जमीन पर लोटने लगी, अपने हाथोंसे छाती पीटने लगी और केशोंको विखराये हुए वह दुःखिनी बाला डाढ़ें मारकर रोने लगीः—हाय! हाय! अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं और अपने मनको कैसे समझाऊं? विलाप करती हुई रुक्मिणीको देखकर श्रीकृष्ण दुःखी होते हुए अपनी प्राणवल्लभासे बोले, देवी! मेरे ही प्रमादसे बालकका हरण हुआ है। मैं मूढ़बुद्धि अब क्या करूं? विधाताने मुझे बड़ा धोखा दिया॥ ४८–५२॥ जब कृष्ण और रुक्मिणी दोनों पुत्रके मोहसे इसप्रकार दुःखित हो विलाप करने लगे, तब कुलपरम्परासे चले आये ऐसे वृद्ध मंत्रीगण शोक करते हुए उनके पास आये। और राजा रानीको भक्ति वा विनयसे नमस्कार करके गद्गदवाणी से बोलेः—महाराज! आप संसारके स्वरूपको भली भांति जानते हो। जो जीव इस असार संसारमें जन्म लेते हैं, उनका आयुके अन्त समय नियमसे मरण होता है। षट्खण्ड पृथ्वीको वशमें करनेवाले पहले जितने विद्याधर तथा भूमिगोचरी चक्रवर्ती और तीर्थंकर हो गये हैं, उन सबका आयुके अन्त होनेपर कालने कवलाहार कर लिया है। पृथ्वीपर अब उनका नाम मात्र ही सुनाई पड़ता है। धर्म चक्रके प्रवर्तक तीर्थकर भगवान जो सुर असुरकर वंदित हैं, जिन्होंने केवलज्ञानरूपी दीपकसे तीन लोकके पदार्थोंको क्रमरहित प्रत्यक्ष देखा है और जो संसाररूपी समुद्रसे स्वयं तरने और अन्य भव्य जीवोंको तारनेमें समर्थ हैं, उनका भी परमौदारिक शरीर आयुके अन्त समय कालका कवलाहार बन गया। इसी प्रकार महापराक्रम और महाशक्तिके धारक अनेक बलदेव, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण इस पृथ्वीतलपर हो गये हैं, जिनकी रक्षा सहस्रों हाथी, रथ, सुभट, घोड़े आदिसे होती थी, परन्तु वे भी यमराजके कठोर दांतोंसे दले गये और परलोकवासी बन गये। इसी प्रकार अपनी शक्तिका मान करनेवाले अन्यान्य योद्धा और महासत्वके धारक शूरमा, पृथ्वीतल पर हो गये हैं, परन्तु वे भी अपने-२ कर्माधीन अन्तमें प्राणान्त हो गये हैं। सुर, असुर, चक्रवर्ती, विद्याधराधीश, सिंह, अजगर आदि जितने बलिष्ठ और क्रूरतम जीव हुए हैं, सब यमपुरको सिधारे हैं। अरहंत भगवानका यही कथन है कि, जो प्राणी जन्म लेता है, वह नियमसे मरणको प्राप्त

होता है, और प्रत्येक जीव अपने २ कर्मानुसार सुख दुःख भोगता है ॥ ५३–६५ ॥ हे स्वामी! यमराजका छोटे बड़े सभीके साथ समान रूपसे वर्तावा है, ऐसा जानकर शोक और दुःखका त्याग कीजिये। क्यों कि शोक संसारका कारण है ॥ ६६ ॥ शोक करनेसे मनुष्यका दुःख मिटता नहीं, किन्तु बढ़ता है। जो बुद्धिवान पुरुष होते हैं, वे किसी चीजके खो जाने, लोप हो जाने, वा किसी स्वजन परजनके मरण हो जानेपर शोक नहीं करते हैं। कारण, शोक भूख और निद्रा इन तीनोंकी ज्यों ज्यों चिन्ता की जाती है, ज्यों ज्यों इनका विचार किया जाता है, त्यों त्यों इनकी बढ़ती होती है। हे तीन खण्डके स्वामी! यदि आप ही इस प्रकार चिन्ता व शोक करोगे, तो आपकी प्रजा भी दुःखित तथा विकल हो जायगी। ऐसा जानके आपको शोक करना उचित नहीं है। क्या आपके समान ज्ञानवानोंको जो संसारके स्वरूपको भली भांति जानते हैं, इसप्रकार शोक करना चाहिये? कदापि नहीं ॥ ६७–७० ॥ और इसमें सन्देह नहीं है कि, जो बालक यादवकुलमें उत्पन्न होता है, वह प्रायः सौभाग्यवान, बलवान और दीर्घ आयुका धारक होता है ॥ ७१ ॥ इसलिये हे राजन्! आपके पुत्रको कोई बैरी हरके ले गया है, तो भी वह कहीं न कहीं सुखसे तिष्ठा होगा, सो कुछ दिन बाद आपके घर अवश्य आवेगा ॥ ७२ ॥

मंत्रियोंके समझानेसे राजाने शोकका त्याग करके चिन्तातुर रुक्मिणीसे जिसका कि मुख सुन्दर बिखरे बालोंसे ढक रहा था, कहा–हे विचक्षणे! तेरा पुत्र दीर्घ आयु वाला है, इस कारण उसकी अकालमृत्यु कदापि नहीं हो सकती, ऐसा समझकर तुझे धीरज धारण करना ही उचित है। हे मृगनयनी! इसमें मेरा ही प्रमाद हुआ है, जिससे कि मेरा पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर पुत्र वैरीद्वारा हरा गया है। इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है ॥ ७३–७५ ॥ हे सुन्दरमुखे, देख! अभी मैं दशों दिशाओंमें अपने सुभटोंको तेरे पुत्रकी खोज करनेके लिये भेजता हूं, और बहुत जल्दी उसे तेरी गोदमें लाके बिठला देता हूं। इस प्रकार समझाके श्रीकृष्णने रुक्मिणीका, जिसके नेत्र लाल हो रहे थे, रुदन करना बंद किया। और दुर्भेद्य कवचोंके धारण करनेवाले, तेज हथियारोंवाले, नव जवान, कुलीन, और सच्चे बल-

वान घुड़सवारोंको उसी समय सेनाके साथ चारों ओर पुत्रकी खोज करनेके लिये भेज दिया। सो उन्होंने सारी पृथ्वी ढूंढ़ डाली। परन्तु जब कहीं भी उस बालकका पता नहीं लगा, तब खेदखिन्न होकर वे द्वारिका नगरीको लौट आये और कृष्णजीके सन्मुख मौन धारण कर लज्जासे वा शोकसे मस्तक नीचा करके खड़े हो गये। सुभटोंका मुख मलीन देखकर और उससे यह समझकर कि, इनको मेरे पुत्रका पता नहीं लगा है, कृष्णजीने शोकको ज्यों त्यों दबाकर मुख नीचा कर लिया। इसी प्रकार अपने पतिके वचनोंको मानकर रुक्मिणीने भी ज्यों त्यों अपने शोकके उद्वेगको रोका। द्वारिकानगरीके निवासियोंकी भी यही दशा हुई। सारी नगरी उत्साह और उत्सवहीन हो गई। सच है—राजाके स्वाधीन ही राज्यभूमिकी शोभा—अशोभा हुआ करती है ॥ ७६–८४ ॥ यहां तक शोभा नष्ट हो गई कि, कहीं भी कोई उत्सव, बाजोंका शब्द, गीत नृत्यादिक सुनने वा देखनेमें नहीं आते थे। उस पुत्रके विरहमें उस पुरीकी सारी शोभा नष्ट हो गई ॥ ८५ ॥

उसी समय नारद मुनि आकाशमार्गसे आये और द्वारिकाके उपवनमें ठहर गये ॥ ८६ ॥ जब उन्होंने द्वारिकाकी दशा देखी, तो मालूम हुआ कि, न यहां कोई शोभा ही दीखती है और न उत्सव ही कहीं होता है। तब उन्होंने चकित होकर किसी आदमीसे पूछा, जिससे मालूम हुआ कि, रुक्मिणीके पुत्रका हरण हो जानेसे श्रीकृष्णके शोकसे नगरीकी यह अवस्था हुई है। इन कठोर, दुःखदाई वज्रप्रहारके समान वाक्योंको सुनते ही नारद मुनिका हृदय विदीर्ण हो गया, जिससे वे पृथ्वीपर गिरके बेहोश हो गये। थोड़ी देर तक मुनिनायक जमीनपर ही अचेत पड़े रहे। पश्चात् वनकी पवनसे उनकी मूर्च्छा जाती रही। तो भी अतिशय दुःखके कारणसे वे गुणदोषके विचारकी बुद्धिसे शून्य हो गये। थोड़ी देर वहीं ठहरके वे उक्त द्वारिकाकी ओर चले और धीरे २ वहां पहुंचे, जहां कृष्णजी बैठे हुए थे। श्रीकृष्णने नारदजीको आते देख अपने आसनसे खड़े होकर नमस्कार करके आसन दिया। वे शोक करने लगे। और नारदजी दुःखी होकर मौनसे बैठ गये ॥ ८७–९३ ॥ थोड़ी देरके बाद दुःखको दाबकर, संक्लेशसहित,

गद्गदवाणीसे नारदजी बोले:— ॥ ९४ ॥

(आचार्य कहते हैं) देखो! जिनेन्द्रदेवने जिस स्याद्वादवाणीका प्ररूपण किया है, नारदजी उसके ज्ञाता थे, उसके बलसे वे अपने दुःखके स्वरूपको पहिचानते थे (कि यह मोहजाल है), वे सप्त तत्त्वोंके पूरे ज्ञाता थे और दूसरोंको सम्बोधनेमें पूरे प्रवीण पण्डित थे, तो भी कृष्णके दुःखको देखकर दुःखी हो रहे थे—मोहकी लीला अपरम्पार है ॥ ९५–९६ ॥

(नारदजी कहते हैं) कृष्णराज! मेरी बात ध्यानसे सुनो। जो कुछ सर्वज्ञ जिनेश्वरने कहा है, वही मैं तुम्हें कहता हूं:—"जितने संसारी जीव हैं, उनका एक न एक दिन विनाश अवश्य होता है, ऐसा जानकर शास्त्ररहस्यके ज्ञाताओंको शोक नहीं करना चाहिये। चिन्ता करनेसे गई चीज मिलती थोड़ी है। यदि कोई मर जाय और उसकी चिन्ता की जाय, तो वह जीवित पीछा नहीं आसकता है। जिन श्रेष्ठ पुरुषोंने संसारको असार जानकर छोड़ा है और वनमें जाकर तपश्चरण किया है, वे ही धन्य हैं। उन सत्पुरुषोंको माता पिताके वियोगका, वैरीद्वारा पुत्रके हरण होनेका, वा किसीके मरण वा जन्मका, न सुख है न दुःख है ॥ ९७–१०० ॥ यद्यपि मैंने घरद्वार छोड़ रक्खा है, सांसारिक सुखोंको जलांजुली दे रक्खी है, तथा मैं वनमें वास करता हूं, देशव्रत संयमका धारक हूं और सम्यक्त्वसे विभूषित हूं, तथापि केवल तुम्हारे स्नेहके कारणसे तुम्हें दुःखी और चिन्तातुर देखकर मैं भी दुःखी और सचिन्त हो रहा हूं। क्यों कि जीवधारियोंके बन्धुवर्गोंके निमित्तसे ही स्नेह होता है ॥ १०१–१०२ ॥ हे कृष्ण! पुत्रके वियोगसे तुम्हें अप्रमाण दुःख हो रहा है और तुम्हें दुःखी देखकर मैं अपने जीवनको निरर्थक समझ रहा हूं। क्यों कि सिवाय कृतघ्नी पुरुषके ऐसा कौन है, जिसका चित्त अपने भाई बन्धुओंको दुःखी देखकर संक्लेशित न होता हो? जिस प्रकार मैं तुम्हें दुःखी देखकर दुःखी हो रहा हूं, इसी प्रकार जो २ तुम्हारे सच्चे स्वजन मित्रादि हैं, वे भी दुःखित हो रहे हैं, यह तुम सच समझो। परन्तु अब यह जो पुत्रहरणका दुःख हो रहा है, उसे तुम बिलकुल दूर कर दो ॥ ३–५ ॥ जगतमें ऐसा कौन है, जिसे

पुत्रके वियोगसे दुःख न होता हो ? यह दुःख इतना दारुण होता है कि, किसी देवसे वा मंत्रतंत्रके आराधनसे नहीं मिट सकता है ॥ ६ ॥ ऐसा जानकर इस संसारके कारणभूत शोकको छोड़ दो। आप स्वयं सब शास्त्रोंके ज्ञाता हो। जगतमें ऐसा कौन है, जो आपको उपदेश देनेकी सामर्थ्य रखता हो, कारण सूर्यके प्रकाशको दीपक कौन दिखावै ? ॥ ७–८ ॥ ऐसे अनेक प्रकारके वाक्योंसे नारदजीने, श्रीकृष्णजीको समझाया, तब उन्होंने प्रत्युत्तर दिया, भगवन् ! आपका कहना सत्य है। कृपाकर आप रुक्मिणीके पास महलमें पधारो और उसे समझाकर धीरज बँधाओ। कारण उसके दुःखको देखकर मेरा हृदय भर आता है ॥ ९–१० ॥ इस प्रकार कृष्णजीके दुःखको शमन करके उनके दुःखसे दुःखी नारद मुनि रुक्मिणीके महलमें गये ॥ ११ ॥

नारद मुनिको आये देखकर रुक्मिणी खड़ी हो गई। उसने भक्ति भावसे प्रणाम किया और सन्मुख आसन धर दिया, जिसपर मुनि विराज गये। ठीक ही है, दुःखके जालमें फँसे रहनेपर भी महत्पुरुष विनय करना नहीं छोड़ते हैं ॥ १२–१३ ॥ रुक्मिणी नारदजीके चरणोंमें पड़कर रुदन करने लगी। क्योंकि दुःखी अवस्थामें अपने इष्ट मित्रादिकोंके देखनेसे दुःखके कपाट खुल जाते हैं। भूला हुआ दुःख उमड़ उठता है ॥ १३–१४ ॥ मुनि बोले, पुत्री ! कोई पूर्वभवका बैरी तेरे प्राणप्रिय पुत्रको हरके ले गया है, इस कारण मैं भी चिन्ताके सागरमें पड़ा हूं ॥ १५ ॥ रुक्मिणी बोली, महामुने ! मैं क्या करूं ? मेरी सब आशा टूट गई। पुत्रको हरनेवाले दुष्टने बड़ा धोखा दिया। आपके विद्यमान रहते हुए भी मेरे सिरपर ऐसा दुःख टूट पड़ा, यह आश्चर्यकी बात है ! ॥ १६ ॥ नारदजीने ज्यों त्यों अपना दुःख दाबकर रुक्मिणीसे कहा, बेटी ! खड़ी हो जा, दुःख वा चिन्ता रंचमात्र मत कर। कारण जो ज्ञानवान होते हैं, वे गिरी हुई, गुमी हुई वा नाशको प्राप्त हुई चीजकी चिन्ता नहीं करते हैं ॥ १७–१८ ॥ तू ऐसा मत समझ कि, मुझे ही आज ऐसे दारुण दुःखने सताया है, पहले ऐसा दुःख किसीको नहीं हुआ। ऐसा विचार यदि तेरे चित्तमें हो, तो उसे निकाल डाल ॥ १९ ॥ प्राणीमात्रको पुत्रके वियोगसे ऐसा ही दुःख होता है,

जो दुर्निवार है ॥ २० ॥ क्या तूने पुराणोंमें नहीं सुना कि, बड़े २ राजा महाराजाओंको पुत्रके वियोगसे दुःख हुआ है ? ॥ २१ ॥ जिसका तीन खण्डका स्वामी श्रीकृष्ण तो पिता और तेरे जैसी जगद्विख्यात माता है, किसकी सामर्थ्य है कि, उस बालकको मार डाले ? ऐसा बालक छोटी उमरवाला भी क्योंकर हो सकता है ? ॥ २२ ॥ हे पुत्री ! कोई पूर्व जन्मका वैरी तेरे पुत्रको हरके ले गया है, तौ भी वह अनेक प्रकारकी विभूति और सौभाग्यसहित तेरे पास आ जावेगा। जैसा शास्त्रोंमें लेख है कि, सीतासतीका भाई भामण्डल पैदा होते ही पूर्वकर्मके योगसे किसी वैरी द्वारा हरा गया था, तौ भी उसका विद्याधरके महलोंमें पालनपोषण हुआ था। वहीं वह बड़ा हुआ था और पीछे विद्या, विभव, ज्ञान, विज्ञानसे विभूषित होकर अपने घर आकर अपने मातापितासे मिला था। उसीप्रकार तेरा पुत्र भी तेरे पास कालान्तरमें अवश्य आ जायगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३–२६ ॥

तब रुक्मिणी शोकको दूर करके बोली, महाराज! मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं। आप ध्यान देकर सुनें:—मेरे सुभटोंने घोड़ों पर सवार होके बालककी नदी वा समुद्र पर्यन्त तलाशीकी, परन्तु उसका कहीं भी पता नहीं लगा। तो भी मुझे आपके कल्याणकारी वचन प्रमाण हैं। आपने जैसा कहा है, वैसा ही होगा, कारण आप मिथ्यावादी नहीं हैं ॥ २७–२९ ॥ हे स्वामी! आप मेरे मातापिताके समान हितैषी हैं। आज आपके चरणकमलकी रजसे मेरा सब पाप विला गया, ऐसा मैं समझती हूं। भगवन् ! मैं इससंकटमें आपके गुणोंका ही स्मरण कर रही थी और मुझे आपके दर्शनोंकी बड़ी लालसा (पिपासा) लग रही थी। जैसे कि गर्मीके दिनोंमें हरिण प्यासे होके मृगजलकी ओर झांकते हैं। मेरे पुण्योदयसे आप इस नगरीमें पधारे, बड़ी कृपा की ॥ ३०–३२ ॥ नारदजीने पुनः समझाया, पुत्री! चिन्ता मत कर। प्रयत्न तो किया ही जायगा, पश्चात् होनहार बलवान है। मैं पृथ्वीपर सब जगह तलाश करके तेरे पुत्रको ले आऊंगा। मैं तो भला विना कारण ही सब जगह भ्रमण करता रहता हूं, जिसमें मुझे रंचमात्र खेद नहीं होता है। तब यदि तेरे कार्यके लिये मैं पर्यटन करूं, तो मुझे कैसे दुःख हो सकता है ? ॥३३–३५॥

अढ़ाई द्वीपमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहां मेरी गति न हो। मैं समस्त भूमिपर तेरे पुत्रको तलाश करूंगा ॥ ३६ ॥ नारदजीके वचन सुनकर रुक्मिणी बोली, महाराज! उसका पता लगना कठिन है। मैं बड़ी मन्दभागिनी हूं, जो मुझे पुत्रकी वार्ता तक सुननेको नहीं मिल सकती। तो भी प्रभु! आपके वचन मुझे मंगलकारी होवें। नारदजी, रुक्मिणीको मलीन और दीन मुख देखकर बोले, पुत्री! मेरा कहा सत्य मान, किसी पूर्वभवके दुष्ट वैरीने ही तेरा पुत्र हरा है। यदि मैं तेरे पुत्रकी खबर न ला दूं, तो तू मेरे वाक्य झूठ समझना। अतएव तू शोक चिन्ताको दूर करके सावधान हो, मनमें धीरज धारण कर ॥ ३७–३६ ॥ कंसके छोटे भाई श्रीअतिमुक्तक मुनिराज जो केवलज्ञानसे विभूषित थे, तथा तीनलोकके पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखने जाननेवाले थे, वे तो अष्टकर्मरूपी कट्टर शत्रुओंको नाशकरके मोक्षको प्राप्त हो गये, और जो नेमिनाथ तीर्थंकर मतिश्रुतअवधिज्ञानके धारक सत्य २ कहनेवाले हैं, वे कुछ बतावेंगे नहीं। इसकारण मुझे जगत्प्रसिद्ध पूर्व विदेहको जाना होगा, जहांपर एक रमणीक पुण्डरीकिनी नामकी नगरी है, जिसमें श्रीसीमंधरस्वामी समवसरणमें विराजमान हैं। वहां जाकर भगवानको मैं प्रसन्नतापूर्वक नमन करूंगा, उनकी भक्तिभावसे तीन प्रदक्षिणा दूंगा और अष्टाङ्ग प्रणाम कर उनका स्तवन करूंगा, पश्चात् तेरे पुत्रका सम्पूर्ण चरित्र सुनकर मैं तुझे धीरज बँधानेके वास्ते बहुत जल्दी आऊंगा, तू वृथा ही चिन्ता मत कर। संदेह न कर, मैं अवश्य आऊंगा। इसप्रकार नारदजीने रुक्मिणीका समाधान किया ॥ ४०–४५ ॥ उससे मधुर वार्तालाप करके वे देशान्तर को रवाने हो गये।

नौकर चाकरोंने ऊंचा मुंह उठाकर आकाशकी ओर देखा, तो मालूम हुआ कि, नारदजी सूर्यके विमानसे भी दूर निकल गये हैं। पीछे थोड़ी देर बाद लोगोंने देखा, तो नारदजी इतने दूर निकल गये थे कि, किसीको न दिखाई दिये ॥ ४६–४७ ॥

मुनि सुमेरु पर्वतपर पहुंचे। रात्रिका समय निकट आया जान उन्होंने वहीं संध्यावंदना की, प्रफुल्लित चित्त होकर अकृत्रिम चैत्यालयोंके जिनबिम्बोंकी वंदना की, जो चारण ऋद्धिके धारक मुनीश्वर

वहां विराजे थे, उनकी गुरुभक्ति सहित वंदना की ॥ ४८-४९ ॥ और सुमेरुगिरिपर ही रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल होनेपर संध्यावंदनादि नित्यक्रियां तथा जिनमंदिरोंकी वन्दना करके वे वहांसे शीघ्र रवाने हो गये ॥ ५० ॥ और क्षणमात्रमें वे पुण्डरीकणी नगरीमें जा पहुंचे, जिसे देखकर वे चकित हो गये। कारण ऐसी नगरी उन्होंने कभी नहीं देखी थी ॥ ५१ ॥ जहां धर्मचक्रके प्रवर्तक तीर्थंकर सदाकाल विराजमान रहते हैं, जहां छहखण्ड पृथ्वीके स्वामी चक्रवर्ती और बलदेव, वासुदेवादिक सदाकाल विराजते हैं और जहां सुर असुर देवादिक जिनभक्तिपरायणतासे सदैव आया जाया करते हैं, हम उस नगरीकी शोभाको कहांतक वर्णन करैं। नारदजीने दूरसे समवसरणको देखा, जिसमें श्रीसीमंधरस्वामी विराजमान थे, और जिनकी देव, देवेन्द्र, नागेन्द्र, खगेन्द्रादिक, पूजा वंदना कर रहे थे। समवसरणको देखनेसे नारदजीको मालूम हुआ, तीनलोककी सारभूत सामग्री यहीं आकर इकट्ठी हुई है। उन अनेक प्रतिज्ञाओंके पालक ब्रह्मचारी नारदजीने आकाशसे नीचे उतरकर भक्तिपूर्वक समवसरणमें प्रवेश किया ॥ ५२-५७ ॥

सीमंधरस्वामीके दर्शनोंसे नारदजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रदक्षिणा आदि करके वे जिनेश्वरकी इस प्रकार स्तुति करने लगेः—"हे देवाधिदेव आपको मेरा वारम्वार नमस्कार है। आप चतुर्निकायके देवोंकर सेवित हो, कामरूपी गजराजको सिंहके समान तथा भव्यजीवरूपी कमलोंको सूर्यके समान हो, आपके कर्मकलंक क्षीण हो गये हैं और मोह क्षीण हो गया है, अतएव आपको नमस्कार है ॥ ५८-६० ॥ आपके चरणकमल सुर असुर देवोंकर वन्दित हैं, आप मोहरूपी अंधकारको नाशकरनेके लिये अद्वितीय चन्द्रमा हो और संसाररूपी वनको दग्ध करनेके लिये दावानलके समान हो, इस लिये आपको मेरा नमन है। आप मोक्षसुखरूपी फलके अभिलाषी हो, केवलज्ञान नेत्रके धारक हो, स्याद्वादवाणीके प्रकाश हो, धर्मतीर्थके स्वामी हो, और मोक्षपदको प्राप्त करनेवाले हो, इस लिये आपको मेरा अष्टाङ्ग नमस्कार है ॥ ६१-६३ ॥ आप संशय विपर्यय अनध्यवसाय अज्ञानत्रयरूपी समुद्रके पारंगत हो, संसार समुद्रमें

डूबनेवाले भव्यजीवोंकी रक्षा करनेवाले हो, सप्ततत्त्वोंके ज्ञाता दृष्टा हो, अनन्तवीर्यके धारक हो, इस-कारण आपको मेरा सविनय प्रणाम है। आप ही शान्तिके कर्त्ता शंकर हो, पापके हर्ता हरः अर्थात् महादेव हो, भवभवान्तरके संचित पापपुंजको नाश करनेवाले हो, और केवलज्ञानकी मूर्ति हो, इस लिये आपके चरणारविंदमें मेरा नमस्कार है ॥ ६४–६५ ॥ आप गर्भमें आये तब रत्नोंकी वर्षा हुई, अतएव हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) हो, आप ही ज्ञानद्वारा लोकमें व्याप्त होनेसे सत्यार्थ विष्णु हो, आप ही भक्तजीवों-को चिन्तित पदार्थ देनेवाले कल्पवृक्षके समान हो, इसलिये हे जिनेन्द्र ! आपको नमस्कार है ॥ ६६ ॥ इसप्रकार भांति २ के वचनोंसे सीमंधरस्वामीकी स्तुति करके नारदमुनि (बारासभामें) मनुष्योंके कोठे-की तरफ बैठनेके लिये गये। परन्तु वहांकी छविको देख करके विचारने लगे, यहां तो (बड़े लम्बे चौड़े ऊंचे) पांचसौ धनुषकी कायवाले मनुष्य बैठे हुए हैं। और मेरा शरीर केवल दश ही धनुष ऊंचा और शक्तिहीन है। कहीं मैं इनके पांवके नीचे आकर दब गया, तो मेरी मौतकी निशानी है, इसलिये मुझे जिनेन्द्रके चरणकमलके पास ही बैठना ठीक है, ऐसा विचार कर नारद सीमंधरस्वामीके सिंहासनके नीचे जाकर निर्भय बैठ गये ॥ ६७–७० ॥ उसी समय जो चक्रवर्ती जिनेश्वरके साम्हने बैठा हुआ था, उसे नारदको सिंहासनके तले बैठा हुआ देख, बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपना मस्तक वारंवार हिलाकर और बड़ी देरतक सोच विचार करके नारदको उठाकर अपनी हथेलीपर रख लिया ॥ ७१–७२ ॥ यह कौन है? और किस जातिका कीड़ा है? जिसकी देहका आकार मनुष्यके समान है, ऐसा विचार करते २ उस चक्रीको हृदयमें सन्देहको दूर करनेवाली यथार्थ बुद्धि उत्पन्न हुई, कि, जिनेश्वर समक्षमें विराजमान हैं, तो भी मुझे संदेह क्यों हो रहा है? हाथमें पहने हुए कङ्कणको देखनेके लिये आरसीकी तलाशी करनी उचित नहीं है (कर कंघनको आरसी क्या ?) ॥ ७३–७४ ॥ ऐसा विचार कर पद्मनाभि चक्रवर्तीने सीमंधरस्वामीको नमस्कार करके विनयपूर्वक पूछा, भगवन्! मेरे चित्तमें एक भारी संदेह उत्पन्न हुआ है। वह यह है कि:—आपने चार गति वर्णन की हैं, अर्थात् देवगति, मनुष्यगति तिर्यंचगति

और नरकगति, सो इन चारोंमेंसे यह जीव किस गतिका धारक है? ॥ ७५-७६ ॥ तब देवाधिदेवकी दिव्यध्वनि हुई कि, बुद्धिमान राजन्! सुनो—यह मनुष्य है और भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुआ है ॥ ७७ ॥ इसका नाम नारद है, यह पृथ्वीपर विख्यात बड़ा ज्ञानवान और चतुर है, श्रीकृष्णनारायणपर इसका अत्यन्त स्नेह है ॥ ७८ ॥ जिनेन्द्रकी वाणीको सुनकर चक्रवर्तीने पुनः प्रश्न किया, हे नाथ! क्या भरतक्षेत्रमें इसी प्रकारके मनुष्य होते हैं? मैंने तो इसे एक प्रकारका कीड़ा समझा था और आपके सिंहासनके तले बैठा देख कहीं किसीके पांवके तले आकर मर न जाय, ऐसा विचार कर अपने हाथकी हथेलीपर उठाकर रख लिया था ॥ ७९-८० ॥ तब जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनि खिरी कि, हे राजन्! भरतक्षेत्रमें इस समय अवसर्पणीकाल वरत रहा है, इसके पीछे वहां जैसा होगा, सो सुनोः— ॥ ८१ ॥

भरतक्षेत्रमें उत्सर्पणी और अवसर्पणी कालका परिवर्तन हुआ करता है। इनमें प्रत्येकके अवान्तर छह २ काल हैं। जिसमें अवसर्पणीके पहलेकालमें मनुष्योंका शरीर तीन कोसका और आयु तीन पल्यकी होती है। दूसरे कालमें मनुष्योंका शरीर दो कोसका और आयु दो पल्यकी होती है। तीसरे कालमें शरीर १ कोस ऊंचा और आयु एक पल्यकी होती है। (वर्तमान) चौथे कालमें युगकी आदिमें प्रथमतीर्थंकर श्रीऋषभनाथ जिनेश्वर हुए थे, जिनकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी और शरीर ५०० धनुष ऊंचा था। इनके पीछे बहुतसा समय व्यतीत होनेपर श्रीअजितनाथादि मोक्षमार्गके परमोपदेशक २१ तीर्थंकर हुए हैं और उनके पश्चात् अब अवसर्पिणीके चौथे कालमें जो कि भारतवर्षमें प्रवर्त रहा है, हरिवंशकी शोभाको बढ़ानेवाले श्रीनेमिनाथस्वामी २२ वें तीर्थंकर जन्मे हैं। इनके समयमें मनुष्योंकी देह १० धनुष ऊंची है ॥ ८२-८९ ॥ हे राजन्! यह देशव्रतका धारक नारद वहींसे मेरे पास आया है। चतुर्थकालके बीत जानेपर पांचवा काल आवेगा, जिसमें मनुष्योंका शरीर ७॥ हाथ ऊंचा होगा और आयु १०० वर्षकी होगी। पश्चात् छठाकाल आवेगा जिसमें मनुष्योंका शरीर १ हाथ ऊंचा होगा और आयु १६ वर्षकी होगी ॥ ९०-९२ ॥ यह सब कालचक्रके अनुसार घटा बढ़ी हुआ करती है।

भगवानकी वाणी सुनकर पद्मनाभि चक्रवर्तीने पुनः प्रश्न किया:—भगवन्! ये नारद इतने २ बड़े पर्वतादिको उल्लंघनकर जिसका संकल्प भी नहीं किया जा सकता, ऐसे कठिनतासे प्राप्त होनेवाले विदेहक्षेत्रमें कैसे किस कामके लिये और किसके पास आया है, सो आप दयाकर प्रकट कीजिये। इस प्रकार जब रथाङ्गके स्वामी पद्मनाभिचक्रवर्तीने प्रश्न किया, तब सीमंधरस्वामीकी बारहसभाके प्राणियोंकी धार्मिक रुचिको बढ़ानेवाली मनोहर दिव्यध्वनि खिरी:— ॥ ९३–९६ ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे यह नारद हरिवंशके राजा कृष्णनारायणके पुत्रकी खोजमें निकला है और उसका पता पूंछनेके लिये मेरे पास आया है। श्रीकृष्णसे इसकी इतनी गाढ़ी प्रीति है कि, इसका चित्त उनके पुत्रके हरणकी खबर सुनकर बहुत ही आकुलित हो रहा है। इसने कृष्णपुत्रकी खोज अनेक जगह की है, परन्तु कहीं भी ठिकाना नहीं लगनेसे यह मेरे पास पूछनेको आया है ॥ ९७–९८ ॥

जिनेश्वरके वचनोंको सुनकर चक्रवर्तीने पुनः प्रश्न किया, भगवन्! आपने जिस कृष्णका नाम लिया है, उसका पराक्रम, बल, कुलादि कैसा है? निवासस्थान कहां है? उसका पुत्र कहां है? किस वैरीने उसका हरणकिया है? वह अपने पिताके पास लौटकर कब आवेगा? ये समस्त वृत्तान्त आप वर्णन कीजिये ॥ ९९–२०० ॥ तब अनन्त लक्ष्मीके स्वामी श्रीसीमंधर जिनेन्द्रने दिव्यध्वनि द्वारा उत्तर दिया, बुद्धिशाली राजन्! तूने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है, जिसके वृत्तान्तको सुननेसे श्रोतागणोंका पाप नाशको प्राप्त होता है। अतएव एकाग्र चित्त होकर सुनो, मैं वर्णन करता हूं:— ॥ २०१ ॥

भरतक्षेत्रमें द्वारिका नामकी एक नगरी है, जिसमें तीनखण्डका स्वामी (अर्द्धचक्री) कृष्णनारायण राज्य करता है। यह राजा यादववंशियोंका शृङ्गार है और हरिवंशमें शिरोमणि है। इसकी प्राणप्रिया रुक्मिणी रानी है। इतना सुनकर चक्रवर्तीने पुनः निवेदन किया, भगवन्! आप प्राणियोंकी वांछा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षके समान हो, और मेरी अभिलाषा कृष्णनारायणके पुत्रके चरित्रको श्रवण करनेकी है। इसलिये दयाकरके उसीका चरित्र आदिसे अन्ततक वर्णन करें। चक्रीकी प्रार्थनाको सुनकर सीमंधर

स्वामीने कहा, हे भूपाल ! मैं कृष्णपुत्रका (प्रद्युम्नका) पापका नाश करनेवाला चरित्र वर्णन करता हूं, ध्यानसे सुनोः— ॥ २-६ ॥

द्वारिकापुरीमें यदुवंशियोंके कुलमें विचक्षण श्रीकृष्णनारायण राज्य करते हैं, जिनकी रुक्मिणी नामकी जगद्विख्यात रानी है। रानीको एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे वह साथमें लेकर जन्मसे छट्ठे दिन रात्रिके समय महलमें सो रही थी। उस समय पूर्वभवका एक दुष्ट वैरी दैत्य उस बालकको हरकर ले गया सो उसने तक्षक पर्वतपर खदिरा अटिवीमें ले जाकर तथा पुरातन वैरको चितारकर एक बड़ी भारी शिलाके नीचे दाब दिया। पीछे उसी जगह विद्याधरोंका राजा कालसंवर अपनी कनकमाला रानी सहित आया। सो उसने शिलको हिलती देखकर उठाई। उसके नीचे एक मुसकराते हुए बालकको देखकर राजाने उसे अपने हाथोंमें ले लिया और रानी सहित उसको विमानमें बैठाकर अपने घर ले आया। वहां वह बालक बड़ा हो रहा है ॥ ७-११ ॥ जिसप्रकार शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला प्रति दिन बढ़ती है, उसीप्रकार उस बालकका कलाकौशल्य दिनोंदिन बढ़ता जाता है। वह बालक प्रद्युम्न नामसे जगतमें विख्यात है ॥ १२ ॥ जब वह शुभ लक्षणोंका धारक सोलहवर्षका हो जायगा, तब सोलहप्रकारके लाभ और दो विद्याओं सहित द्वारकाको आवेगा और अपने मातापितासे मिलेगा। प्रद्युम्नकुमारके घर आते समय जो २ शुभसूचक घटनायें होंगी, सो इस प्रकार हैं:—रुक्मिणीके स्तनोंमेंसे आपसे आप दूध झरने लग जायगा, बनके वृक्षोंमें सब जातिके फल फूल आ जायंगे, कमलोंके समूह प्रफुल्लित हो जायंगे, घरकी बावड़ी जो सूख रही है, जलसे भर जायगी, घरके साम्हने जो अशोकवृक्ष सूखा खड़ा हुआ है, सो भी ऊपरसे नीचे तक हराभरा हो जायगा और पुष्पोंके गुच्छों वा फलोंके भारसे झुक जायगा। उसपर सुगंधलोलुपी भ्रमरगण गुंजार करेंगे। इसी प्रकार दूसरे वृक्ष भी जो घरके बगीचेमें लग रहे हैं, अपनी २ ऋतुका समय उल्लंघनकर एकदम फूल फल उठैंगे। कोयलके मीठे मनोहर शब्द सुनाई देंगे, नाचते हुए मोर ऐसे सुशोभित होंगे, मानों ताण्डव नृत्य ही करते हों, उपवनोंमें आमके

वृक्षोंमें मौर आ जायगा और फल भी लग जायंगे। जिनको देखकर सबका चित्त प्रफुल्लित होजायगा। गूंगे आश्चर्यजनक वाणी बोलने लगेंगे, कुबड़े (कुब्ज) मनुष्योंका शरीर सीधा हो जायगा, काने और अंधे दोनों आंखोंसे भली भांति देखने लग जायंगे, कुत्सित (विकराल) नेत्रवाली स्त्रियें मृगलोचनी बन जांयगी; कर्कशकंठवालोंका गला सुरीला हो जायगा, कुरूप पुरुष रूपवान हो जांयगे, अशुभ लक्षणधारक शुभ लक्षणवाले बन जाँयगे, बेडौल मनुष्य सुडौल होजाँयगे, बहरे सुनने लग जाँयगे, और रुक्मिणीरानीके शरीर भरमें रोमांच होने लगेगा। हे राजन्! जब प्रद्युम्नकुमार अपने घर आवेगा, तब उपर्युक्त सब घटना होंगी इन सूचकों द्वारा समझ लेना कि ॥ १३–२५ ॥ उसका समागम होनेवाला है। और जो तेरी मनोहर हथेलीपर बैठा हुआ है वह जगन्मुन्य प्रसिद्ध नारद मुनि है। यह नवमा अधोवदन नामका नारद मोक्षमार्गमें निपुण है, देशव्रतका धारक है और यहां कृष्णनारायणके हितार्थ उसके पुत्रकी वार्ता सुननेको आया है, सो मैंने संक्षेपमें वर्णन की है ॥ २६–२८ ॥

तब पद्मनाभि चक्रवर्तीने सीमंधर स्वामीको नमस्कार करके निवेदन किया, हे कृपासिन्धु! आप दया करके कृष्णपुत्र प्रद्युम्नकुमारका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाइये कि, उसका जन्मान्तरमें दैत्यसे वैर होनेका क्या कारण है, और उसने उस समय क्या २ पुण्य पाप उपार्जन किये हैं ॥ २९–३० ॥ तब सीमंधरस्वामीने सप्तभङ्गीस्वरूप दिव्यध्वनिसे उत्तर दिया:— ॥ ३१ ॥

जम्बूद्वीपमें जगत्प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है, जिसमें मगधनामका रमणीय देश है। उस देशमें शालिग्राम नामका एक विख्यात नगर है। एक समय इसी नगरमें सोमदत्त नामका एक रूपवान ब्राह्मण रहता था, जिसको अपनी जाति और कुलका बड़ा घमण्ड था। उसकी अग्निला नामकी सुप्रसिद्ध रूपवती स्त्री थी ॥ ३२–३४ ॥ इनके दो पुत्र थे जो, वेदशास्त्रके पारगामी, नवजवान, धनधान्यसम्पन्न, बलवान, अपनी जाति वा कुलका घमण्ड रखनेवाले, तीन जगतको तृणके समान गिननेवाले और विद्याविभवसंयुक्त थे। प्रथम पुत्रका नाम अग्निभूति और दूसरेका वायुभूति था। ये दोनों भाई मिथ्यामतावलम्बी

और जैन धर्मसे सर्वथा पराङ्मुख थे ॥ ३५–३७ ॥ इन्होंने बहुतसे अज्ञानी भोलेभाले जीवोंको बहका करके अपने धर्ममें शामिल कर लिया था। कारण ये स्वभावसे ही पदार्थोंके स्वरूपको विपरीत घटित करनेमें निपुण थे ॥ ३८ ॥ ये दोनों भाई प्रसन्नचित्त, स्मृतिशास्त्रके ज्ञाता और धर्मतीर्थके प्रवर्तक श्रीवासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें हुए थे। जब ये घमंडी अग्निभूति वायुभूति मगधदेशमें तिष्टे थे, उसी समय एक दूसरी मनोहर घटना हुई, जो इस प्रकार है:— ॥ ३९–४० ॥

मगधदेशके बाहर रमणीक वनमें श्रीनंदिवर्द्धन नामा मुनीश्वर शिष्यवर्ग सहित पधारे, जो कामके नाश करनेवाले, सर्वशास्त्रोंके पारगामी, ज्ञाननेत्रके धारक, गंभीर वाणीके बोलनेवाले, अनेक प्रकारकी लब्धिकर शोभायमान, और मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्तिके पालनेवाले थे ॥ ४१–४२ ॥ वे यथोचित क्रिया कर्म करनेके बाद वनमालीसे बिना पूछे, वहां जो अशोक वृक्षके नीचे एक निर्जन्तु स्वच्छ शिला पड़ी हुई थी उसपर विराज गये और पठन पाठन करने लगे ॥ ४३–४४ ॥ इतनेमें वनमाली आया और बगीचेकी अद्भुत शोभाको देखकर वह अचंभित हो गया। परन्तु तत्काल ही उसने अशोक वृक्षके नीचे विराजे हुए मुनिराजको देखकर निश्चय कर लिया कि, यह सब इन्हींका प्रभाव है। मालीने मुनि महाराजको प्रणाम कर गुरुभक्तिसहित उनकी प्रदक्षिणा की ॥ ४५–४७ ॥ इसप्रकार जब नंदिवर्द्धन यतीश्वर सर्व शुभ लक्षणोंके धारक, समुद्रके समान गंभीर बुद्धिवाले, सुमेरुके समान स्थिर, पापरूपी वृक्षको उखाड़नेवाले-अष्टमदरूपी गजको सिंहके समान, परीषिहरूपी बड़े २ बैरियोंको जीतनेके लिये महासुभटके समान, सर्व परिग्रहकर रहित, गुणसम्पदासहित, यथार्थ मोक्षमार्गके दर्शानेवाले, मतिश्रुतअवधि ज्ञानत्रयसे सुशोभित, वहीं विराजे ॥ ४८–५० ॥ जब मगध निवासियोंको मालूम हुआ कि, मुनि महाराज उपवन में पधारे हैं, तब वहांके जिनधर्मधुरंधर तथा जिनशासनश्रद्धालु सज्जन भक्तिभावसे वंदनाके लिये आये। उनके सिवाय बहुतसे लोग लोकलाजसे गये, बहुतसे दूसरोंके बुलानेके कारणसे गये, और बहुतसे माध्यस्थ भावसे (समभावसे) कौतूहल देखनेके लिये गये। सो ठीक ही है, समस्त

प्राणियोंके चित्तकी वृत्ति एक सी नहीं रहती ॥ ५१-५३ ॥

अच्छे २ वस्त्रपहने हुए और अनेक प्रकारके उत्सव करते हुए नगर निवासियोंको वनके तरफ जाते देखकर ब्राह्मणपुत्र अग्निभूति और वायुभूतिने विनोदके साथ किसी श्रावकसे पूछा, कहो ! आज सब लोग बढ़ियां २ वस्त्राभूषण पहन २ कर वनके तरफ कहां जा रहे हैं ? तब उस श्रावकोत्तमने उत्तर दिया, क्या तुम अभी आकाशसे पृथ्वी पर पड़े हो, जो यह नहीं जानते कि सर्व शास्त्रके पारगामी अनेक ऋद्धिके धारक, मनुष्य वा देवोंके पूजने योग्य मुनि महाराज वनमें पधारे हैं और उन्हींकी वन्दनाको सर्व सज्जन जा रहे हैं। श्रावकके वचनों को सुनकर द्विजपुत्र बोल उठे;—अरे मूर्ख शिरोमणि ! तू क्या निंदाके योग्य वाक्य मुँहसे निकालता है। दिगंबर तो जगत्‌निंद्य होते हैं, उनका शरीर मलीन होता है, वे मूर्ख होते हैं, वेद शास्त्रको बिलकुल नहीं जानते हैं, उनको साधु कैसे कह सकते हैं ? जो ब्राह्मणोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हो, वेदोंका पाठी हो, बुद्धिवान हो, तरणतारण समर्थ हो, वही साधु कहा जा सकता है ॥ ५४-६१ ॥ हे शठ ! इस लिए पृथ्वीतलपर हम ही पूज्य हैं, मूर्ख मनुष्य दिगम्बरोंकी वंदनाको वृथा ही क्यों जाते हैं ? ॥ ६२ ॥ तब श्रावकने, जिसका हृदय मुनिभक्तिसे भींजा हुआ था, उत्तर दियाः—अरे दुष्टो ! तुम धर्मकर्मकी क्रियासे रहित हो, गृहस्थदशामें पड़े हुए हो, स्त्रियोंके मोहमें फँसे हुए हो, निंदाके पात्र हो, भला तुम कैसे साधु कहलाये जा सकते हो ? ॥ ६३-६४ ॥ जिनकी चरण कमलकी रजसे भव्यजीवोंने अपनी देह पवित्र की है, तथा जो निःसन्देह स्वर्गादिकके सुख भोग-कर परम्परासे मोक्षको प्राप्त होते हैं, वे ही सच्चे साधु जगत्‌पूज्य हैं। सर्व प्राणियोंके हितके कर्ता हैं, लोक-निंदामें मौन धारण करनेवाले हैं और कामवार्तासे रहित हैं। ऐसे साधु ही जगतसे स्वयं तिरने और दूसरोंको तारनेमें समर्थ हैं। पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त तुम्हारे समान ब्राह्मण कदापि साधु नहीं कहे जा सकते ॥ ६५-६७ ॥ हे द्विजपुत्रो ! साधुकी निंदा करते हुए तुम्हारी जिव्हाके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो गये ? इसका हमको बड़ा आश्चर्य है ॥ ६८ ॥ श्रावकके ऐसे वचन सुनते ही द्विजपुत्र बड़े

कुपित हुए। क्रोधसे उनकी आँखें वा नेत्र लाल हो गये। जोशमें आके वे बोले:—"इस मूर्खसे वाद विवाद करनेमें क्या फायदा है? हम दिगम्बरोंसे ही जाकर वाद करेंगे" ऐसा कहके वे तो अपने घर आये और श्रावक वनकी ओर चला गया ॥ ६९–७१ ॥

घरमें आके द्विजपुत्रोंने अपने मातापिताके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा "पिताजी! अपने शहर के निकट वनमें मूर्ख दिगम्बर आये हैं, सो उनसे वादविवाद करनेके लिये हम जाते हैं। कारण यदि वे जिनधर्मके प्रकाशक वेदशास्त्रके शत्रु दो तीन दिन भी वनमें रहेंगे, तो अनेक मनुष्य वेद शास्त्रसे विमुख हो जाँयगे। क्यों कि वे जैन शास्त्रको अच्छी तरह जानते हैं, इससे वेद शास्त्रोंकी बातोंको मूलसे उखाड़ देंगे। इसलिये हमारा विचार है कि, हम वेद शास्त्रके बलसे उन्हें वादविवादमें हरा देवें। फिर वे वनमें क्षणमात्र भी नहीं ठहरेंगे" ॥ ७२–७५ ॥ तब माता पिताने कहा "पुत्रो! तुम वनमें मत जाओ, कारण दिगम्बर साधु बड़े चतुर होते हैं, नाना देशोंमें विहार करते रहनेसे वे बड़े अनुभवी हो जाते हैं, सर्व शास्त्रोंके पारगामी होनेसे वे शास्त्रार्थमें निपुण होते हैं, और प्रति दिन पठन पाठनमें लगे रहते हैं। इससे जगतमें किसकी सामर्थ्य है, जो ऐसे दिगम्बर साधुओंसे विवाद करे?" ॥ ७६–७७ ॥ गर्वसे भरे हुए पुत्रोंने माता पिताके उक्त वचनोंपर ध्यान नहीं दिया। वे मूर्खतासे घमण्डमें चकचूर होकर बोल-उठे:—"हम दोनोंको विद्या वा वादमें जीतनेवाला पृथ्वीपर है ही कौन? आप ऐसे दीन वचन क्यों कहते हो? देखो! हम अभी वनमें जाते हैं और उन्हें वादमें जीत लौटकर आते हैं" ऐसा कहकर वे दोनों द्विज पुत्र माता पिताके समझाने और मना करनेपर भी घरसे बाहर निकलकर वनकी ओर चले ही गये ॥ ७८–८० ॥

जो श्रीनन्दिवर्द्धन मुनिराज वनमें विराजे हुए थे और जिन्हें शिष्यगण सुंदर श्रृंखलाके समान घेरे बैठे हुए थे, उनको वादमें जीतनेकी अभिलाषासे अग्निभूति वायुभूति द्विजपुत्र वनकी तरफ जा रहे थे। रास्तेमें वे परस्पर बड़े अभिमानसे बातचीत करते जाते थे (कि हम मुनियोंसे ऐसा कड़ा प्रश्न करेंगे,

देखें कैसा उत्तर देते हैं) ॥ ८१–८२ ॥ रास्तेमें एक पहाड़ी पड़ती थी, जिसकी तलैटीमें एक सात्विक मुनि तिष्ठे हुए थे। उन्होंने जब द्विजपुत्रोंको घमण्डमें बड़बड़ाते हुए जाते देखा, तब पूछा, कहो तुम दोनों बड़े अभिमानसे कहां जा रहे हो? तब ब्राह्मणोंने बड़े जोशसे जवाब दिया "हम नन्दिवर्द्धन नामके यतिको वादमें जीतनेके लिए जा रहे हैं" ॥ ८३–८५ ॥ तब सात्विकि मुनिने विचारा कि, नन्दिवर्द्धन मुनिवर दयाके सरोवर हैं, अनेक यतिरूपी हंसोंकर सेवित हैं, और तपश्चरणकर अत्यन्त निर्मल हैं। उस सरोवरको गंदला करनेके वास्ते ये दोनों भैंसे घमण्डमें चकचूर होकर जा रहे हैं, यह ठीक नहीं है। इन्हें किसी तरहसे यहीं रोक देना चाहिये। ऐसा विचारकर उन्होंने कहा, द्विजपुत्रो! इधर मेरे पास आओ और जो कुछ वाद-विवाद तुम्हें करना हो, मुझसे करो। मैं बहुत शीघ्र तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा ॥ ८६–८८ ॥ जब विप्रपुत्रोंने मुनिके शास्त्रार्थ करनेके वचन सुने, तब वे मदोन्मत्त होकर उनके पास आये और बोले, अरे लज्जाहीन! वेदशास्त्रपराङ्मुख! तू क्या निंद्य वचन निकालता है? यदि तू ज्ञानवान, गुणवान, विद्यावान हो, तो हमसे वाद विवाद करनेके लिये तयार हो जा ॥ ८९–९१ ॥ क्रोधमें लाल ताते होकर ब्राह्मण फिर बोले, रे मूढ़! गर्वके वचन मुँहसे निकालनेमें क्या सार है? विद्वानोंकी मण्डलीके बीचमें तू हमें विवादमें परास्त करेगा ऐसी कल्पना भी करनी निरर्थक है। कारण हम पहले ही कह चुके हैं कि, तेरी क्या सामर्थ्य है? दूसरी बात यह है कि, जब अपना विवाद होने ही वाला है, तो जो हारेगा उसपर क्या दण्ड किया जायगा? इस बातका भी निश्चय प्रथम ही सज्जन मण्डलीमें हो जाना आवश्यक है। कारण बिना किसीकी साक्षीके विद्वज्जनोंको विवाद करना उचित नहीं है ॥९२–९५॥ तब सात्विकि मुनिने उत्तर दिया, द्विजपुत्रो! तुम्हें जो रुचे, सो प्रतिज्ञा विद्वानोंकी सभामें करो, मुझे वह स्वीकार है ॥ ९६ ॥ तब द्विजोंने जोरसे उत्तर दिया, हे शठ! "यदि विद्वानोंके साम्हने तू हम दोनोंको विवादमें हरा देगा, तो हम इस बातका नियम करते हैं कि, तुम्हारे चेले बन जाँयगे और यदि हम दोनों भाई तुम्हें हरा देंगे, तो सच समझो तुम इस देशकी सरहद्दसे बाहर निकाल दिये जाओगे, क्षण

मात्र नगरमें नहीं रहने पाओगे," तब सात्विकि मुनिराजने कहा,- विप्रो! जो कुछ तुम दोनोंने कहा है, वह मुझे अक्षरशः प्रमाण है। इसप्रकार द्विजपुत्र और मुनिराज सभाके साम्हने वचनवद्ध हुए और स्पर्द्धा करते हुए तिष्ठे ॥ ६७-३०१ ॥

जब नगरनिवासियोंने सुना कि मुनि और द्विजपुत्रोंका विवाद होनेवाला है, तब वे दौड़े चले आये। शास्त्रार्थके सुननेकी अभिलाषासे मनुष्योंकी भीड़ लग गई। चहुँ ओरकी जगह खूब भर गई। जब सभामें सब लोग अच्छी तरहसे बैठ गये, तब प्रसंग देखकर मुनिराज योग्यतासे और सरसतासे बोले, द्विजपुत्रो! उद्धततताको छोड़कर प्रथम तुमही मुझसे कोई प्रश्न करो। यदि किसी शास्त्रमें कहीं भी किसी प्रकारका तुम्हें संदेह रहा हो तो, अपनी शंका प्रगट करो, मैं उसका उत्तर दूंगा ॥ २-५ ॥ द्विजपुत्रोंने मुनिके वाक्य बड़े घमण्डसे सुने और अभिमानके आवेशमें आके मुसकराके कहाः—रे मूढ़! पहले हमको नमस्कार कर और फिर यदि तेरे दिलमें किसी पदार्थके स्वरूपके समझनेमें संदेह रहा हो, तो हम से पूछ। यदि तू हमारे चरणोंमें झुकेगा और अपना संदेह प्रगट करेगा, तो हम अवश्य तेरे प्रश्नका उत्तर देंगे ॥ ६-८ ॥ मुनिवर इन (असभ्यताके) वचनोंको सुनकर रंचमात्र क्रोधित नहीं हुए और बोलेः—"ठीक है, मैं तुमसे पहले एक बात पूछता हूं—कि, तुम दोनों कहांसे आये हो?" ॥ ९ ॥ मुनिके प्रश्नको सुनते ही द्विजपुत्र हँसे और बोले, रे मूढ़! क्या तू इतना भी न जान सका कि हम ग्रामसे आये हैं? यदि तूने इतनी मोटी बात भी न जानी, तो कुछ न जाना। मालूम होता है कि, तू सूर्य चन्द्रमाको भी नहीं जानता है! ॥ १०-११ ॥ तब सात्विकि मुनिराजने जवाब दियाः—मैं यह अच्छी तरहसे जानता हूं कि, तुम दोनों ग्रामसे आये हो और सोमशर्मा ब्राह्मणके पुत्र हो, इत्यादि तुम दोनोंके विषयमें मैं सब कुछ जानता हूं। परन्तु मेरा यह प्रश्न नहीं है, मैंने तो यह पूछा है कि "परभवकी किस पर्यायको छोड़कर तुम दोनों यहां आये हो?" ॥ १२-१३ ॥ तब विप्रपुत्र बोलेः—क्या कोई ऐसा ज्ञानवान है, जो पूर्व भवकी बात बता सके? जो तू भरी सभाके भीतर ऐसा प्रश्न करता है।

इसीसे जाना जाता है कि, हमारे कहे अनुसार वास्तवमें तू शठ ही है ॥ १४–१५ ॥ तब मुनिमहाराज बोले, ब्राह्मणो ! यदि तुम अपनी ही बात नहीं बता सकते हो, तो दूसरेकी बात क्या बता सकोगे? हम तुम्हारे साथ क्या विवाद करें ? ॥ १६ ॥ तब ब्राह्मणोंने उत्तर दिया, हम तो परभवकी बात कुछ कह नहीं सकते हैं। हे मूढ़ ! यदि तू जानता हो, तो जल्दी कह ! ॥ १७ ॥ तब मुनिराजने कहा, द्विजपुत्रो ! मैं समस्त सभाके समक्षमें तुम दोनोंके भवान्तर वर्णन करता हूं। तब ब्राह्मण कुपित हुए और बोले, हे दिगम्बर शठ ! यदि तू यथार्थ जानता हो, तो कह ? तब सात्विकि मुनिराजने समस्त सज्जन मण्डलीमें कहा कि, मैं इनदोनों ब्राह्मणपुत्रोंकी भवान्तरकी वार्ता कहता हूं, जो विश्वास करनेके योग्य है, अतएव ध्यानसे सुनो:— ॥ १८–२० ॥

पहले इस शालिग्राम नामके गांवमें प्रवर नामका एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था, जिसका खेती करनेका धंधा था ॥ २१ ॥ उसके पास एक बड़का वृक्ष (वटवृक्ष) था, जिसके नीचे कर्मके योगसे दो श्याल रहा करते थे ॥ २२ ॥ मृतकोंका मांस खाकर वे अपनी गुजर करते थे और आनन्दसे रहते थे। कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् एक दिन प्रवर ब्राह्मण (किसान) जब जलवृष्टि होनेके आसार दिखाई पड़ते थे, हलबखर आदि खेतीके सामानकी चीजें और नौकर चाकरों समेत खेतके तरफ जा रहा था। जब रास्तेमें उसने आकाशकी ओर दृष्टि की, तब बादल घटाटोप बाँधे हुए गड़गड़ाटकी आवाज करते हुए गरज रहे थे, और रंगबिरंगे इन्द्रधनुष्यको खींच रहे थे। मानो वे संसारको ताप करनेवाले शत्रुस्वरूप ग्रीष्म ऋतुको ही घुड़का रहे हैं। सीत्कार शब्दमिश्रित सनसनाट शब्द करती हुई पवनने पृथ्वीतल कंपायमान कर रक्खा था। इतनेहीमें मेघोंसे लगातार पानी बरसने लगा। जिससे प्रवर ब्राह्मण पानीसे बिलकुल भीज गया। उसे बड़ा दुःख हुआ। उसके हाथ पांव ढीले पड़ गये, इस कारण वह खेतका सामान वहीं पटकके कांपता हुआ अपने घर लौट आया। उसी समयसे सात दिनतक लगातार मूसलाधार जलवृष्टि होती रही। पानीके मारे आजीविकाके साधनके लिये बाहर न निकलनेके कारणसे

प्राणीमात्र भूखसे व्याकुल हो रहे थे। श्यालका जोड़ा भी भूखसे अतीव दुःखी हो रहा था। जब आठवें दिन पानी कम हुआ, तब दोनों श्याल वहांसे निकले। उन्होंने खेतमें पड़ी हुई और पानीमें भीजी हुई एक रस्सी देखी। कड़ी भूखके मारे वे उसे खा गये, जिससे उनके उदरमें शूलकी बड़ी भारी वेदना उठी और अन्तमें चारोंदिशाओंमें पैर तानके वे मरणको प्राप्त हो गये। और उन्हीं दोनोंके जीव सोमशर्मा ब्राह्मणके यहां (तुम दोनों) पुत्रस्वरूप उत्पन्न हुए हो ॥ २३–३३ ॥ इस प्रकार पूर्वभवके श्याल इस भवमें द्विज हुए हैं, इसी लिये कहते हैं कि, संसारमें न किसी मनुष्यकी उत्तम जाति है और न किसी की नीच। ये प्राणी अपना भोगा हुआ सुखदुःख भी तो जानते नहीं हैं और जातिका मद करते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥ ३४–३५ ॥ देखो! पूर्वभवमें श्यालकी पर्यायमें जो अशुद्ध रस्सीका भक्षण करके प्राणान्त हुए हैं, वे ही द्विजपुत्र विद्वानोंके सन्मुख मान शिखरपर चढ़ रहे हैं ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो! जो तुम्हारे वैराग्यका कारण है, उसे तुमने क्यों विसार दिया? क्योंकि यह जीव भवभवान्तरमें जैसा पुण्यका संचय करता है, उसीके अनुसार मिष्ट फलको भोगता है ॥ ३७ ॥ जो जीव समीचीन (यथार्थ) धर्मसे विमुख रहता है, वह जाति, रूप, कुल, सौभाग्य, धन, धान्यसे भी वर्जित रहता है और उसे विद्या, यश, बल, लाभ आदि उत्तमोत्तम पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती। धर्मविहीन प्राणी उत्तम सुखका भागी नहीं होता ॥ ३८–३९ ॥ सत्यार्थ धर्मके प्रभावसे यह जीव उत्तम अंगका, उच्चकुलमें जन्म लेनेवाला, विद्यावान, धनवान, सुखी, देवपूजामें तत्पर रहनेवाला, सर्वजीवोंपर दया करनेवाला, सर्वका हितैषी और क्रोध मान कषायकर रहित होता है ॥ ४०–४१ ॥ इसलिये तत्त्वज्ञानियोंको प्रथम ही धर्म अधर्मका स्वरूप भलीभांति समझ लेना चाहिये और पापको दूर हीसे छोड़कर अपने चित्तको धर्ममें लगाना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे द्विजपुत्रो! यदि तुम यों कहो कि परभवकी वार्ता जो वर्णन की गई है हमें याद नहीं आती, तो मैं सब मनुष्योंके साम्हने उसे प्रत्यक्ष किये देता हूं ॥ ४४ ॥

प्रवर किसान, जिसका ऊपर वर्णन कर चुके हैं, पानी वरसना बन्द होनेके पश्चात् अपने खेतकी

दशा देखनेके लिये गया तो उसे मालूम हुआ कि हल आदि खेतीका सामान प्रचंड पवनके झकोरेसे इधर उधर बिखरा पड़ा हुआ है और रस्सी आधी कुचली वा खाई हुई पड़ी है। फिर वहीं कुछ आगे उसने गिरे हुए प्राणरहित दो श्याल देखे। तब वह ब्राह्मण निर्दयतासे उनपर कुपित हुआ और उनकी खाल खिचाकर तथा भस्त्रा (भातड़ी) बनाके अपने घर ले आया तथा अपने घरके छप्परकी खूंटीसे कसके बांध कर निश्चिन्त हो गया ॥ ४४–४८ ॥ वह खाल अभी तक वहीं बँधी हुई है। यदि किसीको विश्वास न हो, तो इस गूंगेके घर जाकर यह कौतुक देख आओ ॥ ४९ ॥ जो प्रवर नामका ब्राह्मण था, उसने अनेक यज्ञ होम जाप्यादि किये थे। इस कारण आयुके अन्तमें मरकर वह मोहके वशसे अपने पुत्रकी स्त्रीके उदरसे उत्पन्न हुआ। सो इस बालकको अपने घरकी जमीन देखते ही जाति स्मरण हो गया। पूर्व भवकी बात याद आनेसे विषाद करके वह विचारने लगाः—अब मैं क्या करूं? मेरी सब आशा नष्ट हो गई। मोहकी पाशमें फँसके मैं अपने ही पुत्रका पुत्र हुआ हूं। यह पापका ही प्रभाव है। अब मैं अपने ही पुत्रको पिता और पुत्रवधूको माता कैसे कहूं? ऐसी बात बोलते मुझे लज्जा आती है अब क्या करूं और क्या कहूं, ऐसी चिन्ता करते २ उसे एक विचार उत्पन्न हुआ कि गूंगा बनकर मैं अपनी लज्जाको निभा सकूंगा। तदनुसार बाल्यावस्थासे ही उस बालकने मौन धारण कर लिया और वैसी ही गूंगी अवस्थामें बढ़ते हुए वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ है ॥ ५०–५७ ॥ हे द्विजपुत्रो! अपना वादविवाद सुननेकी अभिलाषासे वही मूक ब्राह्मण मनुष्योंके साथमें यहां आया है और इस सभामें देखो, वह बैठा हुआ है ॥ ५८ ॥ तब दयासिन्धु श्रीसात्विकिमुनि महाराजने सब मनुष्योंके साम्हने उस मूक ब्राह्मणको बुलायाः—हे प्रवरके पुत्र! इधर आ! तूने अज्ञानतासे वृथा ही क्यों मौन धारण कर रक्खा है? उसे छोड़ दे ॥ ५९–६० ॥ और अपने अमृतस्वरूप वचनोंसे बंधुवर्गोंको आश्वासन दे। संसारकी ऐसी ही विचित्र लीला है कि, जो अपनी पुत्री है वह माता हो जाती है, पिता पुत्र हो जाता है, मालिक सेवक हो जाता है, सेवक मालिक बन जाता है, पुत्रवधू पुत्री हो जाती है, पुत्री माता हो जाती

है धनवान निर्धन होजाता है, दरिद्री धनाढ्य हो जाता है। कुत्ता देव और देव कुत्ता हो जाता है, यह सब कर्मकी विचित्रता है, ऐसा जानकर बुद्धिवानोंको हर्ष तथा शोक, नहीं करना चाहिये ॥ ६१–६४ ॥ अब सर्वत्र सुखका देनेवाला और संसारके भयको नष्ट करनेवाला एक धर्म ही करना चाहिये, जिससे अन्य जन्ममें पापके फलसे उत्पन्न होनेवाले और बंधुओंका वियोग करनेवाले भयंकर दुःख फिर न देखना पड़ें ॥ ६५–६६ ॥

श्रीसात्विकि मुनिराजके वचन सुनके गूंगे ब्राह्मणने उनका बहुतवार अभिनंदन किया। उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा निकलकर टपकने लगी। वह अपने दोनों हाथ जोड़कर मुनिवरके चरणोंमें मस्तक धर कर बड़े विनयसे बोलाः—"हे कामरूपी गजेन्द्रको सिंहके समान साधुशिरोमणि! आप मेरी प्रार्थना सुनियेः—हे स्वामी! संसार समुद्रसे पार करनेवाली जिनदीक्षा मुझे शीघ्र ग्रहण कराइये। मुझे इस असार संसारके बन्धुजन, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धान्यसे कुछ प्रयोजन नहीं है। हे भगवन्! मैंने अच्छी तरह इस बातका अनुभव कर लिया है कि, यह संसार तृणके समान त्यागने योग्य है, इसलिये जिससे भववास बसेरा मिट जाय, ऐसी जिनदीक्षा मुझे प्रदान करिये" ॥ ६७–७१ ॥

सात्विकि मुनिराजने बोलते हुए मूकब्राह्मणको दीक्षा लेनेमें तत्पर देखकर कहा—"पहले तुम अपने माता पिता वा कुटुम्बियोंसे मिलो। उनकी आज्ञा ले आवो तत्पश्चात् तुम्हें दीक्षा दी जावेगी"। मुनिराजके वचनोंका उल्लंघन करना ठीक नहीं है, ऐसा जानकर तत्काल वह मूकब्राह्मण अपने घर गया। अपने कुटुम्बियोंसे मिला और बात चीत करने लगा। उसको देखकर माता पितादिक सब रोने लगे कि, बेटा! तू किसके वहकानेमें आ गया था, जो आज पर्यन्त मौन साधके गूंगा बन रहा था? ॥ ७२–७४ ॥ तब वह सबसे क्षमा मांगकर बोला कि, पहले मैंने मोहकर्मको उत्पन्न करनेवाली अनेक चेष्टायें की थीं, जिससे मरके मैं अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ हूं। जाति स्मरण होनेसे मैंने यह बात जानी, तब लज्जावश मैंने यह समझके चुपकी साध ली कि, मैं अपने पूर्वभवके पुत्र वा पुत्रवधूको अब पिता वा

माता नहीं कह सकता ॥ ३७५ ॥ अब मैं संसारका विनाश करनेवाली जिनदीक्षा स्वीकार करूंगा। कारण जब तक यह प्राणी संसारके जालमें फँसा रहता है, तब तक अनेक प्रकारके सुख दुःख उच्च नीचपनेको प्राप्त होता रहता है ॥ ७६ ॥ यह जीव अकेला ही अपने कमाये हुए पुण्य पापके अनुसार सुख दुःख पाता है, अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरणको प्राप्त होता है, ऐसा जानकर संसारका कारण मोह कदापि नहीं करना चाहिये। इसी लिये मैं अपने आत्मकल्याणके लिये वीतराग दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करूंगा ॥ ७७–७८ ॥ ऐसा कहके उस ब्राह्मण पुत्रने अपने कुटुम्बियोंसे क्षमा मांगी और उसने भी सबपर क्षमा की और वहांसे वनको रवाने हो गया।

बनमें जाके मूक ब्राह्मणपुत्रने सात्विकि मुनिराजके चरण कमलमें नमस्कार किया और उस बुद्धिशालीने गुरुकी आज्ञासे बड़ी रुचिके साथ व्रत ग्रहण किये ॥ ७९ ॥ जब सभामें बैठे हुए सभ्य पुरुषोंने ब्राह्मणको जिनदीक्षा लेते देखा, तब कई भव्यजीवोंको सम्यक्त हो गया, कई सज्जनोंने गार्हस्थ्य-धर्म अंगीकार किया। भावार्थः—कई सत्पुरुषोंने महाव्रत धारण किया और कई धर्मानुरागियोंने बारह प्रकारका गृहस्थियोंका व्रत स्वीकार किया। कई भाईयोंने जिनपूजनकी प्रतिज्ञा ली और कई महानु-भावोंने ब्रह्मचर्य ग्रहण किया ॥ ८०–८१ ॥ इसप्रकार इधर तो अनेक सज्जनोंने धर्म ग्रहण किया और उधर जो कौतुकी श्रावक लोग मुनिके वाक्योंको सुनकर प्रवर ब्राह्मणके घर गये थे, वे शीघ्र ही उसके घरसे चमड़ेके भस्त्रे (भाथडी) ले आये और उन्हें सब मनुष्योंको दिखाये, जिनको देखकर मुनिवाक्यों-में सबको दृढ़ श्रद्धान हो गया। उन भस्त्राओंको देखते ही अग्निभूति और वायुभूति दोनों घमण्डी द्विज-पुत्रोंका मान गलित हो गया—मुँह उतर गया, उन्होंने लज्जासे अपना मस्तक नीचा कर लिया, उनका कला कौशल्य और वाकप्रपंच सब उड़ गया ॥ ८२–८४ ॥ और सब लोगोंने उन्हें धिक्कार ! धिक्कार ! किया। तब वे अपना मुँह छुपाके चुपचाप अपने घर चले गये।

जब द्विजपुत्रोंके माबापने (सोमशर्मा और अग्निलाने) अपने पुत्रोंको आया जाना, तब वे क्रोधसे

तप्तायमान होकर जोरसे बोले, रे रे ! पापी कुपुत्रो ! तुम हारकर आये हो, यहांसे चले जाओ, हमें मुंह न दिखाओ ॥ ८५–८६ ॥ हमने तुम्हें बहुत द्रव्य व्यय करके अनेक शास्त्र पढ़वाये, तो भी तुम दिगम्बरसे वनमें शास्त्रार्थमें हार गये ? रे रे मूढ़ ! कुलक्षणधारी पुत्रो ! तुम्हारे निमित्तसे पढ़ाने लिखाने पालने पोषनेमें जो द्रव्य हमने खर्च किया है, वह सब व्यर्थ ही गया । तुम दोनोंको हमने पहले ही मना कर दिया था कि, वनमें मत जाओ । परन्तु तुमने हमारा कहा नहीं सुना । यदि वनमें गये थे, तो हारके मुँह दिखाने इस नगरमें क्यों आये ? रे मूर्खो ! यदि तुम मुनिको शास्त्रार्थमें न जीत सके थे, तो शस्त्रसे (हथियारसे) तो जीतना था ! परन्तु तुमसे यह भी नहीं बना, धिक्कार है तुम्हें ! ॥ ८७–९० ॥ माता पिताके वचनोंको सुनकर अग्निभूति वायुभूति लज्जित और कुछ संतोषित हुए तथा उनके साम्हनेसे मुँह छुपाकर अलग चले गये और परस्पर विचारने लगे कि, शास्त्रार्थमें हारनेके पश्चात् अपना भी ऐसा ही विचार था कि मुनिका काम तमाम कर देना ही ठीक है, परन्तु अपन विना माता पिताकी सम्मतिके उस समय ऐसा न कर सके । अब इनकी भी ऐसी ही सलाह है, तो आज ही रात्रिको वनमें जाकर दिगम्बर मुनिको प्राणान्त कर डालना चाहिये ॥ ९१–९२ ॥ ऐसा विचार कर जब तक रात्रिका समय नहीं आया दोनों द्विजपुत्र अपने ही घर ठहरे । ज्यों ही रात्रि पड़ने लगी, दोनोंने अपनी २ कमर कस ली । इच्छा की पूर्ण करनेवाली एक २ कामधेनु तलवार प्रत्येकने अपने बांये हाथमें ले ली और बांई बाजूके कानके ऊपर चोटी बांध ली तथा क्रोधसे अपने नेत्र लाल करके वे नगरके बाहर निकल आये और जहां सात्विकि मुनिराजसे वादविवाद हुआ था, उसी दिशाकी ओर रवाने हो गये ॥ ९३–९५ ॥

उधर सात्विकि मुनिराजने द्विजपुत्रोंसे शास्त्रार्थ करनेके बाद क्या किया, सो वर्णन किया जाता है:— जब द्विजपुत्रोंको मुनिवरने वादमें परास्त कर दिया, तब वे अपने गुरु नन्दिवर्द्धन मुनीन्द्रके पास आये । उन्होंने उनके चरणकमलोंमें नमस्कार किया और बहुत विनयसे कहा, भगवन् ! मेरी प्रार्थना पर

कृपाकर यथोचित प्रायश्चित बताइये ॥ ९६–९८ ॥ तब नन्दिवर्द्धन मुनिराजने अपना मस्तक हिलाया और कहा, हे वत्स ! तुमने वादविवाद किया, यह काम ठीक नहीं किया । कारण इससे मुनियोंका संघ नाशको प्राप्त होगा । क्योंकि वे दुष्ट द्विजपुत्र जिनका मान खण्डन हो गया है जिन्हें माता पिताने भी तिरस्कृत किया है, और जिनकी सब इच्छायें नष्ट हो गई हैं, वे कुपित होकर आज रात्रिको अपने २ हाथमें तलवार लेकर वनमें आवेंगे और सर्व मुनियोंका वध करेंगे ॥९९–४०१॥ गुरुके वचनोंको सुनते ही सात्विकि मुनिका चित्त कम्पायमान हो गया और मुनियोंकी होनहार मृत्युको सुनकर उनका चित्त अत्यन्त संक्लेशित हुआ ॥ ४०२ ॥ उन्होंने श्रीनंदिवर्द्धन मुनिनायकसे निवेदन किया कि, हे कृपासिंधु मेरी यह प्रार्थना है कि, जिसप्रकार मुनिसंघकी रक्षा होती हो, वही उपाय कृपाकर मुझे प्रगट करो । यदि मेरे अपराधसे ही मुनियोंका वध होता हो, तो मेरे जीवनको धिक्कार है। और मरने पर भी कौन गति होगी, नहीं कहा जा सकता ॥ ३–४ ॥ तब गुरुने कहा, वत्स ! मैं एक उपाय बताता हूं । वह यह है कि, जिस स्थानमें द्विजपुत्रोंसे तूने वाद विवाद किया हो, वहीं तू रात्रिके पड़ते ही पहुंच जा और उस स्थानके रक्षक क्षेत्रपालकी आराधना करके उससे दो पैंड़ जमीन ले ले । उसीमें तू बैठ जा और मरण पर्यन्त सन्यास धारण कर आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें लवलीन हो जा । वहां वे ही द्विजपुत्र आवेंगे और प्रथम ही वादमें जीतनेवाले तुझे देखकर आग बबूला हो जायँगे और वध करनेको तुझपर ही तलवार चलावेंगे। तब वही क्षेत्रका रक्षक देव अपनी सामर्थ्यसे उन दोनोंको ज्योंके त्यों कील देगा अर्थात् काठके समान हलन चलन क्रियासे रहित कर देगा ॥ ५–७ ॥ ऐसा करनेसे निःसन्देह मुनिसंघकी रक्षा होगी । गुरुके मुखारविंदसे इन वचनोंको सुनकर सात्विकि मुनि बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने वारंवार गुरुके चरणोंमें नमस्कार किया और उनसे क्षमा मांगी । इसी प्रकार उसने समस्त मुनिसंघसे भक्तिपूर्वक क्षमा याचना की और निःशल्य होकर उनपर क्षमा की। पश्चात् उसने समस्त संघसे कहा—, यदि मेरी रात्रि कुशलतासे व्यतीत हो जावेगी, तो मैं सवेरे ही आकर आपसे मिलूंगा। ऐसा कहकर श्रीसात्विकिमुनि वहांसे रवाने

हो गये ॥ ८–१० ॥

श्रीनन्दिवर्द्धन मुनिराजकी आज्ञानुसार सात्विकि मुनि बहुत शीघ्र उस स्थानपर पहुँच गये, जहां द्विजपुत्रोंसे विवाद हुआ था। संध्याका समय था, इसकारण प्रथम उन्होंने वहां संध्यावंदन किया। पश्चात् क्षेत्रपालकी आराधना पूर्वक उन्होंने दो पैंड़ जमीन ले ली और उसमें वे सावधानचित्त होकर सन्यास धारणकर ध्यानमें तिष्ठ गये ॥ ११–१२ ॥ जब इस प्रकार समताके धारक और इन्द्रियोंको दमन करनेवाले योगीश्वर ध्यानमें लवलीन हो रहे थे, उसी समय दुष्टात्मा अग्निभूति और वायुभूति द्विजपुत्र नंगी तलवार लिये हुए वहां आ पहुंचे। उन दोनोंकी दृष्टि सात्विकी मुनिपर पड़ी। उन्हें बैठा देखकर दुष्ट द्विजोंका चित्त हरा भरा हो गया। वे विचारने लगे, ठीक है, अब तो अपना मनोरथ सफल हो गया। कारण अपनेको सहजमें ही पहले वही मानखण्डन करनेवाला शत्रु मिल गया। ऐसा सोचकर वे दोनों मुनिके समीप आये और उन्हें ध्यानमें निश्चल अंग देखकर बोले ॥ १३–१६ ॥ रे रे दुष्ट! महा-पापी! विद्वानोंकी सभामें तूने वादविवादमें अन्याय किया। और हमारा मान गलित किया। उस अपराधको तू यादकर और अब उसका फल चाख! ॥ १७ ॥ बड़े भाई–अग्निभूतिने अपने छोटे भाई वायुभूतिसे कहा,—भाई! क्या देखता है, तू झपाटेसे अपनी तलवार चलाकर इसके प्राण ले ले, जिस-से अपना चित्त शान्त हो जाय। तब वायुभूतिने जवाब दियाः—"भाईसाहब! मेरी बात सुनो, ये मुनि ध्यान कर रहे हैं। मैं इन्हें हनूंगा, तो मुझे मुनिघातका वज्रपाप लगेगा।" तब बड़ा भाई बोला "मैं भी प्रथम तलवार नहीं चला सकता, जिससे मुनिघातिकीके वज्रपापका भागी मुझे होना पड़े।" इस-प्रकार शास्त्रके बलसे दोनोंमें बहुत समयतक विवाद होता रहा। सो ठीक ही है "मूर्ख हितैषी मित्रकी अपेक्षा विद्वान शत्रु भी अच्छा होता है"। अन्तमें दोनों क्रोधी ब्राह्मणोंने यही विचार किया कि—अपन दोनों जने एकसाथ मुनिपर अपनी २ तलवार चलावें। इसी विचारसे वे आगे बढ़े और मुनिकी दोनों तरफ खड़े हो गये। दोनोंने दुर्बुद्धिसे अपने नेत्र लाल कर लिये, भ्रुकुटी (भौंहें) चढ़ा लीं और यमराजका

रूप धारणकर दुष्टोंने मुनिके प्राण लेनेके लिये उनके मस्तकपर तलवार सहित हाथ उठाये। उसी समय आकाशसे एक यक्षाधीश क्षेत्रपाल क्रीड़ा करता हुआ जा रहा था। ब्राह्मणपुत्र मुनिवध करनेको उतारू हो रहे हैं, यह देखकर उसका हृदय करुणासे भींज गया। वह विचारने लगा कि, विचारे मुनिराज तो ध्यानमें तिष्ठे हुए हैं। इन्होंने कोई अपराध नहीं किया है परन्तु ये दुष्ट, पापी, नीच इन्हें मारनेको क्यों तयार खड़े हैं? जो योगीश्वर शत्रुमित्रको समान दृष्टिसे देखते हैं और जो प्राणी मात्रके हितके कर्ता हैं, वे ही क्या आज इन पापी हत्यारों द्वारा हते जावें? यदि मैं ऐसे महामुनिकी रक्षा न करूं, तो मेरा इस क्षेत्रका रक्षक देवता होना ही वृथा है। अभी मैं इन पापियोंके सैकड़ों टुकड़े किये डालता हूं। ऐसा विचारकर वह यक्षराज उनके निकट आया ॥ ४१८–३० ॥ उन्हें देखते ही उसके चित्तमें एक विचार उत्पन्न हुआ कि, अभी इन पुत्रोंका वध करना भी ठीक नहीं है। कारण इन दोनोंको कतल हुए सुनकर जगतमें अपकीर्ति फैल जायगी। क्योंकि प्रातःकाल होते ही कई मनुष्य यहां आवेंगे और इन दोनोंको मरे हुए देखकर कहने लग जावेंगे कि, मुनिने ही इनका वध किया है। इस प्रकार वृथा ही दिगम्बर मुनियोंका अपयश जगतमें फैल जायगा। यदि मैं इन द्विज पुत्रोंके शतखण्ड करूं तो यह बाधा खड़ी होती है। विवेकी पुरुषों को ऐसा वर्तावा करना चाहिये, जिससे बिलकुल बदनामी न होवे। इसलिए मैं इन दोनों दुष्टात्माओंको राजा तथा अन्य मनुष्योंके साम्हने आग्रहपूर्वक मारूंगा। अभी इनको मारना ठीक नहीं है। कारण इनकी दुष्टता भी जगतमें प्रगट होनी चाहिये। ऐसा विचारकर अग्निभूति वायुभूति नामके दुष्ट द्विजपुत्रोंको तलवार उठाये हुए जैसेके तैसे ही कील कर वह यक्षाधीश अपने स्थानको चला गया ॥ ३१–३५ ॥

दूसरे दिन सूर्योदयके समय कई श्रावक वा इतर नगरनिवासी मुनिदर्शनोंको वनमें गये। तब उन्होंने देखा कि दो मनुष्य अपने हाथमें तलवार लिये हुए मुनिके प्राण लेनेको खड़े हुए हैं। परन्तु क्षेत्रपालने उन्हें हतवीर्य करके वहांके वहां कील दिये हैं, जिससे उनका हलना चलना भी बंद हो गया

है। इस आश्चर्यजनक तमाशेको देखनेके लिये नरनारी दौड़े चले आते थे, क्योंकि ग्राममें चारों ओर इसकी खबर फैल रही थी। द्विजपुत्रोंके दुष्ट कर्मको देखकर सब लोगोंने उनकी बड़ी निन्दा की कि,—अरे! पापी दुष्टो! तुमने यह क्या असुहावना कार्य करना विचारा? कल तो तुम विद्वानोंके साम्हने शास्त्रार्थमें हार गये थे और तुम्हारे चेहरेका पानी उतर गया था, अब हत्यारो! तुमसे कुछ न बन सका तो इनको मारकर बदला लेना चाहते थे? तुम्हें धिक्कार है! धिक्कार है! ॥ ३६–३९ ॥

जब नगरके बाहर कलकलाट मच रहा था। राजाने भी इसकी आवाज सुनी। वह विचारने लगा, क्या बात है? तब किसी सज्जनने निवेदन किया कि,—हे राजन्! कल वनमें सोमशर्मा ब्राह्मणके पुत्रोंने मुनिसे शास्त्रार्थ किया था, वे समस्त विद्वानोंके साम्हने शास्त्रार्थमें हार गये थे और लज्जित होकर अपने घर लौट आये थे। पश्चात् वे ही दुष्ट कल रातको मुनिराजको मारनेके लिये वनमें गये थे। ज्यों ही उन्होंने मुनिपर तलवार उठाई, त्यों ही क्षेत्रपालने उन्हें वहीं कील दिया। यह वार्ता सुनते ही राजा अचंभित होता हुआ अपने स्वजनोंसहित देखनेको वनमें गया। जब उसने द्विजपुत्रोंको वैसे ही कीलित देखा, तब चकित हो गया। उस समय वहां मनुष्य इसप्रकार वचन बोल रहे थे,—देखो! इन दुष्टोंको क्या सूझी थी, जो सर्वप्राणियोंके हितकर्त्ता, धर्म्मधुराके आधार, जिनेन्द्रके मुखारविंदसे समुत्पन्न धर्मके स्तम्भ, दयामूर्त्ति ऐसे मुनिका ही वध करनेको उतारू हो रहे थे। इन्हें धिक्कार है। इत्यादि ॥ ४०–४५ ॥

कई मनुष्य द्विजपुत्रोंके घर गये और उनके माता पितासे बोले:—जरा वनमें जाकर अपने पुत्रोंकी दशा तो देखो! उन्होंने कैसा घोर अन्याय करना विचारा था, तुमने भी उनके जगन्निंद्य कर्मको सुना होगा? ऐसे वचन सुनते ही वे चौंक पड़े और पूछने लगे, कहो तो सही हमारे पुत्रोंने क्या किया है? तब मनुष्योंने जवाब दिया, लो! तुम अपने पुत्रोंकी करतूत सुनो;—वे दोनों दुष्ट वनमें गये और मुनिपर तलवार चलाने लगे! उसी समय यक्षराजने पापियोंको जहांका तहां कील दिया है। यह सुनते ही माता पिता बहुत घबराये और तत्काल वनको गये ॥ ४६–४९ ॥

अपने अग्निभूति वायुभूति पुत्रोंको कीलित देखते ही सोमशर्मा और अग्निलाका चित्त दुःखसे भर आया। उनके नेत्रोंसे धाराप्रवाह आँसुओंकी झड़ी लग गई। वे बोलेः—"हाय! हाय! पुत्रो! तुम कैसी दुःखकी दशामें पड़े हुए हो!" इतना कहकर वे माता पिता सात्विकि मुनिराजके चरणकमलोंमें पड़ गये और इस प्रकार विनती करने लगेः—हे स्वामी! आप जीव मात्रपर दया करनेवाले हो, कृपा-कर मेरे पुत्रोंको जीवन दान दो, यही भिक्षा हम मांगते हैं ॥ ५०–५२ ॥ जो अपने उपकारीपर ही भलाई करता है उसे साधु नहीं कहते किन्तु जो बुराईके बदले दूसरेकी भलाई करता है, उसीको सत्पुरुष सच्चा साधु कहते हैं ॥ ५३ ॥ जब द्विजपुत्रोंके माता पिता इसप्रकार रोदन कर रहे थे, उसी समय मुनिराजकी ध्यानमुद्रा समाप्त हुई। उन्होंने अपने नेत्र उघाड़े तो देखा कि, द्विजपुत्र काठके समान कीलित खड़े हुये हैं। मुनिवरने इस बातपर रंचमात्र भी रोष न किया कि ये तो मेरेपर ही खड्ग प्रहार करनेवाले थे। किन्तु उन्होंने दयाभावसे अपने मुखारविंदसे ये वचन कहे कि,—जिस दयालु यक्षराजने यह चमत्कार किया है, वह अपने रूपको प्रगट करै और इन द्विजपुत्रोंको इस बंधनसे छोड़ देवै ॥ ५४–५६ ॥

सात्विकि मुनिराजकी आज्ञानुसार उनके पुण्योदयसे तत्काल ही यक्षराज हाथमें दण्ड लेकर प्रगट हुआ और प्रणाम करके बोला, हे महाराज! आप इस विषयमें रंचमात्र चिन्ता न करें, संतोषसे विराजे रहें। यदि मैं विना कारण किसीका वध करूं, तो आपका मना करना ठीक है ॥ ५७–५८ ॥ कल रात्रिको जब ये दोनों दुष्ट ब्राह्मण आपपर तलवार चलानेवाले थे। उसी समय इनको नष्ट कर डालनेका मेरा विचार था, परन्तु आपने ही इनको प्राणान्त किया है, इसप्रकार वृथा लोकनिंदा न फैल जावे, ऐसा जानकर मैंने इन्हें ज्योंके त्यों कील दिया, जिससे कि सवेरेके समय सब लोग इनकी दुष्टताका फल प्रत्यक्ष देख लेवें। हे नाथ! अब मैं सबके साम्हने इन मदोन्मत्त द्विजपुत्रोंको मारके बिछा देता हूं। इतना कहकर यक्षराज दण्ड लेकर पहले राजाको मारनेको आगे बढ़ा और बोला,—अरे! दुष्ट राजन्!

क्या तेरे राज्यमें ऐसे २ हत्यारे अनाड़ी ब्राह्मण रहते हैं, जिनके हृदयमें रंचमात्र दया नहीं है और जो मुनीश्वरोंको भी मारनेसे नहीं डरते हैं? ॥ ५९–६१ ॥ तब राजा बहुत घबराया और (हाथ जोड़कर) बोला,—यक्षराज! मुझे इस बातकी बिलकुल खबर नहीं थी कि, ये, दुष्टात्मा मुनिराजके वधकरनेको उतारू हुए हैं। यदि मैं यह वृत्तान्त जानता होता और इन्हें इस घोर वज्रपाप कर्मसे नहीं रोकता, तो मैं अपराधी ठहरता। तब सात्विकि मुनिराजने यक्षसे कहा:— राजाको इस बातकी खबर तक नहीं थी। इसमें इनका कोई अपराध नहीं है। तब मुनिराजके वचनोंको सुनकर देव राजाको छोड़कर दण्ड हाथमें लेकर तथा कुपित होकर दोनों द्विजपुत्रोंको मारनेके लिये झपटा। तब मुनि बोले, यक्षेन्द्र! तुम्हें मेरे वास्ते इनके प्राण हरने उचित नहीं हैं। कारण समभावसे उपसर्ग सहना, यह मुनियोंका कर्तव्य है। यतिधर्म जिनेन्द्रदेवने इसी प्रकार वर्णन किया है। उपसर्गका जीतना यही तप है ॥ ६२–६७ ॥ उपसर्ग सहनेसे कर्मरूपी शत्रुओंका विनाश होता है। जब तक उपसर्ग न सहेंगे, तब तक पापका नाश किसप्रकार हो सकता है? ॥ ६८ ॥ तब यक्ष बोला, हे दयासिंधु! आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि, आप मुझे अपराधीको दण्ड देनेसे न रोकें। आप अपने धर्मकर्म कीजिये, इस ओर ध्यान न दीजिये। मैं अभी इन मुनिहिंसक दुराचारियोंको यमराजके यहां भेज देता हूं। जब मुनिराजने देखा कि, यह द्विजपुत्रोंको जीता छोड़ता ही नहीं है, तब वे बोले-यक्षराज! एक बात और सुनो। इनको जीवनदान देनेका एक दूसरा कारण है कि, ये दोनों श्रीनेमिनाथ स्वामी बाईसवें तीर्थंकरके वंशमें श्रीकृष्णनारायणके पुत्र होवेंगे और उसी भवसे कर्मोंको नाशकर मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ६९–७२ ॥ इसकारण इनका विनाश करना उचित नहीं है। तब यक्षेन्द्रने मारनेके संकल्पको छोड़ कर मुनिराजको नमस्कार किया और राजा तथा समस्त मनुष्योंके सन्मुख अग्निभूति वायुभूति द्विजपुत्रोंको कीलित दशासे मुक्त कर दिया। इसप्रकार जैनधर्मकी प्रभावना करके यक्षराज वहांसे लोप हो गया। राजादिकोंको यह चमत्कार देखकर जैनधर्ममें बड़ी श्रद्धा हो गई और वे अतीव प्रफुल्लित हुए। सो ठीक ही है "धर्मकी प्रभावना देखकर कौन प्रसन्न

नहीं होता है ?" ॥ ७३–७५ ॥

बन्धनसे छूटते ही द्विजपुत्र अग्निभूति, वायुभूतिने श्रीसात्विकि मुनिराजको साम्हने खड़े होकर नमस्कार करके बड़े विनयसे कहा,—"हे कृपासिंधु ! हमने घोर अन्याय किया, आप क्षमा करो। आपके समान साधुओंको हम सरीखे अज्ञानी बालकोंपर कोप नहीं करना चाहिये।" तब मुनिराजने उत्तर दिया "पुत्रो ! मैंने प्रथमहीसे क्षमा धारण कर रक्खी है, सदाकाल जीवमात्रसे मेरी क्षमा है, अब कहो कौन सी नवीन क्षमा मैं धारण करूं ? संसारमें यह जीव अपने कर्मानुसार सुखदुःख पाता है। जिसने जिसे पूर्वजन्ममें दुःख दिया है, वह उसे इस जन्ममें (पलटेमें) दुःख देता है और जिसने पूर्वभवमें जिस जीवका उपकार किया है वह इस भवमें उसका प्रत्युपकार करता है। यह यथार्थ बात है। पूर्व भवमें जो कर्म उपार्जन किया है वही सुख दुःख, लाभ अलाभ, जय पराजय करनेमें कारणभूत होता है, ऐसा जानकर किसी जीवको किसी प्रकारका दोष नहीं देना चाहिये। पुत्रो ! तुमने मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं किया है, इस कारण इस बातकी तुम रंचमात्र भी चिन्ता मत करो।" मुनिराजके वचनामृतको सुनते ही दोनों ब्राह्मण-पुत्र ज्ञान वैराग्यसे विभूषित हो गये उन्होंने वारंवार मुनिराजको नमस्कार करके कहा, हे दयासागर ! हमारी यही प्रार्थना है कि आप धर्मरूपी गृहके सुदृढ़ स्तम्भ हो, आपका शरीर धर्मसाधन और आत्मकल्याणका साधनभूत है और हमने दुर्बुद्धिसे आपके ऐसे पूज्य शरीरको विनाश करनेका विचार किया था, जिसका वज्र पापबंध हुआ होगा इसमें सन्देह नहीं इसलिये कृपाकर हमें कोई ऐसा व्रत, जप, तप बताओ, जिसके पुण्योदयसे हमारा यह कर्मबंधन शिथिल हो जाय ॥ ७६–९० ॥

तब सात्विकि मुनिराजने उत्तर दिया, द्विजपुत्रो ! मैं तुम्हें धर्मके कारण व्रतादि सुनाता हूं, जो पापरूपी वृक्षको कुल्हाड़ीके समान काट डालते हैं और जो धर्म महावृक्षके बीजभूत हैं ॥ ९१ ॥ रत्नत्रय धर्ममें प्रधान-भूत प्रथम सम्यग्दर्शन है, जो पचीस दोषोंकर रहित और निःशंका, निःकांक्षा आदि आठ अंगोंसहित होता है। अणुव्रत पांच प्रकारका है,—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहपरिमाण।

शिक्षाव्रत चार प्रकारका है:-देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्त्य। गुणव्रत तीन प्रकारका है,-दिग्व्रत, अनर्थदंडव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत। इसप्रकार गृहस्थी श्रावकोंके पालने योग्य सागारधर्म १२ प्रकारका है। इसके सिवाय रात्रिभोजनत्याग और दिवसमैथुनत्याग करना चाहिये, षट्कर्म अर्थात् देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान भी प्रतिदिन करना चाहिये। तीन मकार अर्थात् मद्य मांस मधुका त्याग अतीचाररहित करना चाहिये। आचार तथा कन्दमूलादि नहीं खाना चाहिये। सब प्रकारके फूल तथा और भी जो जैनशासनमें दूषित बतलाये हैं, ऐसे निन्द्य तथा पाप करनेवाले घुने धान्य और पुष्पित वस्तुएं भी त्याग करना चाहिये। बुद्धिवानोंको सदाकाल परोपकार करना चाहिये और परनिंदारूपी पातकको मन वचन कायसे त्याग देना चाहिये। इसी प्रकार जिनेन्द्रदेवने उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच्य, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य ये दशधर्म वर्णन किये हैं, जो भव्य जीवोंको संसार समुद्रसे पार कर देते हैं। ऐसा जानकर द्विजपुत्रो! तुम सर्व पापके नाश करनेवाले धर्मको संचय करो यही सार वस्तु है॥ ९२-९९॥

मुनिराजके मुखारविंदसे धर्मका स्वरूप सुनकर अग्निभूति और वायुभूति दोनों द्विजपुत्रोंने अपने माता पिताके सहित भक्तिपूर्वक गृहस्थधर्म धारण किया॥ ५००॥ और जिनभाषित सम्यक्त्वको पाके वे द्विजपुत्र अपने मातापितासहित चित्तमें अतीव प्रसन्न हुए। सो ठीक ही है, "धर्मरूपी रत्नको पाकर किसका चित्त सन्तुष्ट नहीं होता है।" जो अमृतपान करते हैं, उन्हें सन्तोष होता ही है॥५०१-५०२॥ द्विजपुत्र, जिनकी कई मनुष्य तो प्रशंसा करते थे और कई निंदा करते थे, बन्धुओं सहित श्रीसात्विकि मुनिराजको नमस्कार करके अपने घर चले आये॥ ५०३॥ वे जिनेन्द्रके चरणकमलकी रजसे अपना मस्तक पवित्र करके और जिनधर्ममें अपने चित्तको लवलीन करके सुखसे तिष्ठे॥ ५०३-५०४॥ जिन-चैत्यालयोंमें जिनधर्मके महान उत्सव कराने वा गुरुवन्दनामें ये दोनों द्विजपुत्र नगरनिवासी जनोंमें अग्रसर गिने जाने लगे॥ ५०५॥ इसप्रकार ये तो धर्मध्यानसे अपने दिन व्यतीत करने लगे, परन्तु

मिथ्यात्व परणतिके प्रभावसे कुछ दिनोंमें उनके मातापिताओंने अपना चित्त जिनधर्मसे पराङ्मुख कर लिया।

एक दिन उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा, बेटो! अब तुम्हें वेदमार्गसे विपरीत जिनधर्मके व्रतादिक पालन करना ठीक नहीं हैं। उस समय ऐसा ही मौका आन पड़ा था, जिससे जिनधर्म ग्रहण करना पड़ा था, परन्तु अब अपना कार्य तो सिद्ध हो ही गया इसलिये वेदशास्त्रसे विरुद्ध धर्मको पालन करनेकी जरूरत नहीं है, जिससे प्राणियोंकी नीचगति होती है ॥ ५०६–५०९ ॥ अग्निभूति और वायुभूति चुपचाप अपने मातापिताकी बात सुनकर उसे पी गये, कुछ भी जवाब नहीं दिया। उन्होंने समझ लिया कि, हमारे मातापिताकी रुचि अभीतक कुधर्ममें ही लगी हुई है ॥ ५१० ॥ वे सचिन्त होकर विचारने लगे, अब हम क्या करें? किससे कहें? हमारे मातापिताका चित्त पापमें लिप्त हो रहा है। इस कारण उनका चित्त कुछ समय व्याकुल रहा, परन्तु पीछे उन्होंने संतोष लाभ करके गृहस्थोंके बारह प्रकारके व्रत और सम्यक्त्व भली भांति पालन किया, मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकारूप चार प्रकारके संघको नवधा भक्तिसे दान दिया, जिनमन्दिरोंमें विधिपूर्वक अष्टद्रव्यसे जिनपूजनकी और अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्गलोकको गमन किया ॥ ५११–५१३ ॥

अग्निभूति वायुभूतिके जीव स्वर्गमें उपपाद शय्यापर उत्पन्न हुए। वहां देवाङ्गनाओंके गीत, नृत्यादि सुनकर वे शय्यापरसे एकदम जाग उठे और विचारने लगे, हम कहां आ गये? स्वर्गकी विभूतिको देखकर चकित होकर वे कहने लगे। यह अद्भुत जयजयकारका शब्द काहेका है? इतनेमें ही उन्हें अवधिज्ञानसे प्रगट हुआ कि, हम सौधर्म नामके पहले स्वर्गमें इन्द्र उपेन्द्र हुए हैं। यह जिनधर्मके धारण करनेका वा विशेष पुण्यका ही माहात्म्य है, जिससे हमें शय्या, विमानादि अनेक प्रकारकी भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त हुई है। भाग्यहीन प्राणियोंको स्वर्गोंके सुख नहीं मिल सकते ॥५१४–५१७॥ इसप्रकार विचारकर देवगतिमें उन्होंने प्रसन्न चित्तसे जैनधर्मको पालन किया। और चित्तमें निर्मल सम्यग्दर्शनको

निरन्तर धारण किया। अपने पूर्वभवकी वार्ताको स्मरणकर उन्होंने जिनधर्ममें दृढ़ श्रद्धान ठानकर पांच पल्य पर्यन्त वहांके ऐसे सुख भोगे, जिन्हें कोई उपमा नहीं दी जा सकती ॥ ५१८ ॥ धर्मके प्रभावसे मनोवांछित उपमारहित पदार्थ, सुन्दररूप, गंभीर बुद्धि, वचनकला, (वाक्पटुता) चतुराई, चित्तकी निर्मलता, धनधान्यादिक तीन लोककी प्रसिद्ध २ वस्तुएं और चन्द्रके समान निर्मल यश इस प्राणीको सहजमें ही प्राप्त होता है। यह सब पूर्वभवके संचित पुण्यका ही प्रभाव है, ऐसा जानकर भव्य जीवोंको रुचिपूर्वक धर्मधन संचय करना चाहिये ॥ ५१९ ॥

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीन भाषानुवादमें नारदमुनिका महाविदेहमे जाना, श्रीसीमंधर स्वामीके समवसरणमें पहुंचना, चक्रवर्तीके प्रश्नानुसार दिव्यध्वनिद्वारा प्रद्युम्नके पूर्वभवसम्बन्धी अग्निभूति वायुभूतिका स्वर्गको प्राप्त होना इत्यादि वर्णनवाला छट्ठा सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तमः सर्गः।

भरतक्षेत्रमें कौशल नामका एक देश है जो स्वर्गके समान सुशोभित है। क्योंकि स्वर्गमें अप्सरसः अर्थात् देवाङ्गनाएं हैं और इस देशमें भी अप्सरसः अर्थात् स्वच्छ जलके सरोवर हैं ॥ १ ॥ जहांके बगीचोंमें चम्पक, अशोक, पुंनाग, नारिंग आदि तरह तरहके वृक्ष लगे हुए हैं, जो फूलोंके भारसे लद रहे हैं ॥ २ ॥ जहांकी बावड़ी निर्मल जलसे भरी हुई हैं जिनमें सुवर्णकी बनी हुई सुन्दर सीढ़ियें हैं और कमल खिले हुए हैं ॥ ३ ॥ जहांके तालाब, हंस वा सारस पक्षियोंके शब्दोंसे मानसरोवरके समान शोभायमान मालूम पड़ते हैं ॥ ४ ॥ जहांकी नदियोंमें खूब पानीका पूर आ रहा है, जिनमें गंभीर भँवरें आती हैं, जिनसे वे ऐसी सुन्दर मालूम पड़ती हैं, जैसे मनोहर बुद्धि शोभायमान होती है ॥ ५ ॥ जिनका मध्यभाग गहरे पानीके नादसे शब्दायमान रहता है, और जिनकी किसीको कभी थाह नहीं मिली, ऐसे बड़े २ उज्ज्वल जलके भरे सरोवर शोभित हो रहे हैं ॥ ६ ॥ जहांकी भूमि सांठोंकी (गन्नोंकी)

बाड़ियोंसे सघन हो रही है, और स्थान २ में दानशालायें खुली हुई हैं ॥७॥ जहांके मनोहर ग्राम इतने निकट २ हैं कि, मुर्गा (कुर्कुट) एक गांवसे उड़कर दूसरे गांवमें पहुंच जाता है। जहां धनधान्यकी कमी वा शत्रुका उपद्रव नहीं है॥८॥ जहां स्वप्नमें भी दुर्भिक्ष पड़नेकी वार्ता नहीं सुनाई पड़ती और न सात प्रकारकी ईतियोंका तथा चोर आदिकोंका उपद्रव होता है॥९॥ जहां कोई भी किसीका तिरस्कार नहीं करता और आतंक व्याधि आदि नामनिशानको भी नहीं हैं॥१०॥ इस कौशलदेशके निवासी सज्जन कुवेरके समान धनवान, धर्मकर्मको भलीभांति आचरनेवाले, न्यायमार्गसे चलनेवाले और प्रभावशाली गुणोंके धारक थे॥११॥

ऐसे कोशलदेशमें अयोध्या नामकी एक प्रख्यात नगरी है, जो स्वर्गपुरीके समान रमणीक थी तथा देव पूजादिक पुण्यकर्मोंकर बड़ी सुन्दर दीख पड़ती थी॥१२॥ जिसे श्रीनाभिराजके पुत्र ऋषभनाथ स्वामी प्रथम तीर्थंकरके जन्मोत्सवमें कुवेरने रची थी। जिसके चहुँओर मजबूत किला होनेसे उसमें शत्रुओंका प्रवेश नहीं हो सकता था। जिसमें ओरसे छोरतक पुण्यात्माजीव बसते थे तथा कोई भी पापात्मा नहीं दिखाई देता था ॥१३-१४॥ जहांके मनुष्य पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान शोभायमान थे। इतनी विशेषता थी कि चन्द्रमा सुवृत्त अर्थात् गोल होता है और वहांके निवासी सुवृत्त अर्थात् शुद्धव्रतादिकके पालनेवाले थे, चन्द्रमा कलंक सहित है और वे मनुष्य निष्कलंक अर्थात् निर्दोष थे, चन्द्रमा सोलह कलाओंका धारक होता है और वे बहत्तर कलाके धारक थे, चन्द्रमा कृष्णपक्षमें घटता है, परन्तु वहांके मनुष्योंके गुण सदा बढ़ते रहते थे, चन्द्रमा दोषाकर अर्थात् रात्रिका करनेवाला होता है, परन्तु मनुष्य दोषाकर अर्थात् अवगुणी नहीं थे॥१५॥ जहांके प्रत्येक घरोंमें गीत, नृत्य, कला, केलि, लीला, कटाक्ष-विक्षेपादि विभ्रमसे सुशोभित और रूपवती स्त्रियां थीं॥१६॥ जहांकी निपुण प्रजा षट्कर्मको पालन करती थी और जहां त्यागी, गुणी, शूरवीर, जिनधर्म परायण धर्मात्माओंकी बड़ी संख्या पाई जाती थी ॥१७॥ जिस अयोध्यापुरीमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महान् पुरुषोंका जन्म होता है और जहां चतुर्नि-

कायके देव आकर जन्मकल्याणकादि महोत्सव करते हैं, उसकी शोभा हम कहां तक वर्णन करें ? ॥१८॥

इस अयोध्यापुरीमें अरिंजय नामका राजा राज्य करता था, जो यथार्थमें 'अरिंजय' अर्थात् शत्रुओंका जीतनेवाला, वैरियोंका नाश करनेवाला और शरणागत प्राणियोंकी रक्षा करनेवाला था ॥ १९ ॥ जिसके पास हजारों हाथी थे और अनेक प्रकारके घोड़े रथादिक थे जिनकी संख्याका कुछ पार न था ॥ २० ॥ जिसके नौकर चाकर भक्तिवान, शक्तिवान, कुलीन, कुलपरंपरासे कार्य करनेवाले और शत्रुराशिके विध्वंस करनेवाले थे ॥ २१ ॥ वह राजा उत्तमोत्तम गुण वा शुभलक्षणोंका धारक, कुवेरके समान द्रव्यवान, प्रजा पालनमें तत्पर, और निर्दोष था ॥ २२ ॥ इसके दान देनेकी उदारताको देखकर कल्पवृक्ष लज्जित हो गये और इसप्रकार मुँह छिपाकर चले गये कि, आज तक पृथ्वीपर पीछे न आये ॥ २३ ॥ प्रजाका पालन करनेमें प्रवीण, स्त्रियोंके नेत्र वा मनको चोरने वाले, कामदेवके समान सुन्दर देहवाले इस राजाने भली-भांति पृथ्वीपर राज्य किया ॥ २४ ॥ इस राजाकी प्रियंवदा नामकी गुणवती रानी थी, जो अपने भर्तारको ऐसी प्यारी थी जैसे इन्द्रको इन्द्राणी और चन्द्रमाको रोहिणी ॥ २५ ॥ यह रानी अरिंजय राजाकी बड़ी भक्त थी और बड़ी धर्मात्मा, प्रेमकर्ममें आसक्त, पतिव्रता, सर्वगुणसम्पन्न, शुभलक्षणोंकी धारक, अमृतके समान मीठे वचन बोलनेवाली और सुन्दरताके सर्वलक्षणोंसे मण्डित थी ॥ २६–२७ ॥

अयोध्यापुरीमें एक समुद्रदत्त नामका शेठ रहता था, जो पुण्यात्मा श्रावकोत्तम, निर्दोषवंशसे उत्पन्न गुणवान, शीलवान, शंका कांक्षादि पचीस दोषवर्जित सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान वा सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयसे मण्डित, षट्कर्मको नित्य पालनेवाला, इन्द्रकेसमान भक्तिसे जिनपूजा करनेवाला, श्रावकोंकी त्रेपन क्रिया पालनेवाला और क्षमा मार्दव आर्जव आदि दशधर्मोंको धारण करनेवाला था ॥ २८–३० ॥ वह गृहस्थोंके देशव्रत पालता, मिथ्यात्वको टालता और सर्वदा उत्तम मध्यम जघन्य पात्रोंको नवधा भक्तिसे दान दिया करता था ॥ ३१ ॥ इसके सिवाय वह शेठ गृहस्थधर्मकी क्रियाके आचरणमें बड़ा चतुर था, जैन शास्त्रोंके रहस्यको जाननेवाला था, देवशास्त्रगुरुका उपासक और दयालु था ॥ ३२ ॥ उसकी

धारिणी नामकी सेठानी थी, जो रूपवती, शुभलक्षणोंकी धारिका, सुन्दरतारूपी जलकी वापिका, उज्वल उच्चकुलसे उत्पन्न हुई, गुणोंके भार वा विनयसे नम्र रहनेवाली, पतिके चित्तको कामरूपी धनुषके तीरसे भेदनेवाली, देवशास्त्रगुरुका आदर करनेवाली, सतशील और सम्यक्त्वकी धारनेवाली, पतिव्रता, उत्तम आचरणवाली और दोनों कुलोंको विशुद्ध करनेवाली थी। समुद्रदत्त शेठने धारिणी शेठानीके साथ अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते हुए और सुखसागरमें मग्न रहते हुए कितना समय व्यतीत कर दिया, यह नहीं जाना गया ॥ ३३–३६ ॥

कुछ समय व्यतीत होने पर पुत्रकी इच्छा करनेवाले उन स्त्रीपुरुषोंके पूर्वमें कहे हुए अग्निभूति वायुभूतिके जीवोंने जो पहले स्वर्गमें इन्द्र उपेन्द्र हुए थे, पुण्यके प्रभावसे जन्मधारण किया। स्वजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यके समान उन पुत्रोंके जन्मके समय समुद्रदत्त शेठने खुशीमें बड़ा भारी उत्सव कराया, याचकोंको जी खोलकर दान दिया, स्वजनोंका आदर सन्मान किया, जिनमंदिरोंमें पूजा विधान कराया, और नगरभरमें अभयदान दिलवाया अर्थात् यथाशक्ति पशु, पक्षी, मनुष्यादिक जो बंधनमें पड़े हुए थे उन्हें छुड़वा दिये। इस प्रकार छह दिन तक समुद्रदत्त शेठने अपनी शक्तिके अनुसार महान् उत्सव किया ॥ ३७–४० ॥ सातवें दिन अपने कुटुम्बी वा इतर सत्पुरुषोंको आमन्त्रण देकर बुलवाया और विधिपूर्वक अपने दोनों पुत्रोंका नामकरण करवाया। जो पहले जन्मा उसका नाम मणिभद्र और जो पीछे जन्मा उसका नाम पूर्णभद्र रक्खा गया। जिसप्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमा प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है, उसीप्रकार चन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले वे दोनों श्रेष्ठिपुत्र बड़े होने लगे ॥ ४१–४२ ॥ जब लड़कोंकी अवस्था पांच वर्षकी हुई, तब समुद्रदत्त सेठने उन्हें जिनमंदिरमें ले जाकर विधिपूर्वक देवशास्त्रगुरुकी भक्तिभावसे पूजा की। पश्चात् जैन उपाध्यायके पास अपने दोनों पुत्रोंको विद्याभ्यास करानेके लिये बिठादिया। सो पूर्वपुण्यके प्रभावसे उन दोनोंने श्रीजिनमंदिरकी पाठशालामें विद्याभ्यास किया। जब वे अनेक शास्त्र, पुराण, सिद्धान्त ग्रन्थ सीखकर विद्या वा कलामें प्रवीण हो

गये और सोलह वर्षकी अवस्थाको प्राप्त हो गये, तब मातापिताने अपने नवयौवनसम्पन्न तथा स्वजनोंको आनन्दकारी पुत्रोंका उन्हें युवा अवस्थाको प्राप्त हुए देखकर अपने कुलके योग्य उत्तम कन्याओंके साथ विवाह कर दिया। इससे माता पिताको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। इसप्रकार धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंको निरंतर पालन करते हुए तथा सुखसागरमें निमग्न रहते हुए उन दोनों पुत्रोंने अपना काल व्यतीत होता न जाना॥ ४३–४८॥

कुछ दिन बाद नगरके निकटवर्ती प्रमद उद्यानमें महेन्द्रसूरि नामके जगत्प्रसिद्ध मुनिराज पधारे, जो निर्दोष थे, मति श्रुत अवधि ज्ञानके धारक थे और अनेक कलाओंमें कुशल थे। उनके संग और भी बहुत मुनिजन थे॥ ४९–५०॥ मुनिवरके शुभागमनसे बगीचेकी अनोखी शोभा हो गई, तरह २ के वृक्ष उत्तम पत्तों फूलों और फलोंसे लद गये॥ ५१॥ झाड़ोंमें षट्ऋतुके फूल लग गये, और उनपर भ्रमर गुंजारने लगे, मानों मुनिराजके समागम होनेसे वे धनी हो गये॥ ५२॥ गाय और व्याघ्रके बच्चे, बिल्ली और हंसके बच्चे, हरिणी और सिंहके बच्चे मोर और सांपके बच्चे इसी प्रकार और भी विरोधी जन्तु अपनी जातिका स्वाभाविक वैरभाव भूलकर मुनिमहाराजके संगके कारण हिल मिलकर क्रीड़ा करने लगे॥ ५३–५४॥ थोड़ी देरमें उस उपवनकी रक्षा करनेवाला माली वहां आया और ऋतुसमयको उल्लंघनकर फूले फले वृक्षोंको देखकर चकित हो विचारने लगा कि, ये परिवर्तन कुछ न कुछ शुभ अशुभ सूचक हैं॥ ५५–५६॥ इसके कारणकी तलाशीमें वह सचिन्त हो चहुँओर घूमकर देखने लगा, तब उसे मालूम हुआ कि, एक मुनिराज संघसहित विराजे हुए हैं। मालीने मुनिवरके दर्शनसे आनन्दित होकर निश्चय कर लिया कि, यह सब इन्हींका माहात्म्य है, जिससे बगीचेकी विचित्र शोभाको देखकर अचंभा होता है॥ ५७–५८॥

इस बातकी खबर देनेके लिये वह माली शीघ्र ही बगीचेमेंसे सर्व ऋतुके फलफूल लेकर राजा अरिंजयके पास पहुंचा। राजद्वारपर द्वारपालकी आज्ञा लेकर माली भीतर गया। सो पहले उसने दूरसे

ही महाराजको नमस्कार किया और फिर द्वारपालकी आज्ञासे सन्मुख जाकर फलफूलादि भेंट किये। ॥ ५९–६० ॥ फिर बोला हे राजन्! अपने रमणीक बगीचेमें, जिसमें मत्त कोयलें कूकतीं हैं एक संयम रत्नसे सुशोभित महासाधु पधारे हैं। जिनके शुभागमनसे वृक्षोंमें सर्व ऋतुके फलपुष्पादि आ गये हैं। उन प्रभावशाली मुनिराजकी कृपासे महाराज! आप चिरकाल राज्य करो, और सुखसे विराजो। मालीके मुखसे ऐसे समाचार सुनते ही राजा अरिंजयका हृदय प्रफुल्लित एवं हराभरा हो गया। उसने उसी समय अपने सिंहासनसे उठ, जिस दिशामें मुनि विराजे थे, सातपैंड़ आगे जा विनयपूर्वक परोक्षरूप प्रणाम किया। फिर मालीको पंचांग प्रसाद (पांचों कपड़े?) तथा षोडश आभरण उतारकर दे दिये और उसे प्रसन्न करके वनको विदा कर दिया। पश्चात् राजाने आनन्दभेरी बजवाकर नगरभरमें यह वार्ता प्रगट करा दी। ज्यों ही सत्पुरुषोंको खबर मिली, त्यों ही वे बड़ी प्रसन्नतासे पूजाकी सामग्री लेकर जिनभक्तिके वशीभूत हो मुनिवंदनार्थ राजाके दरवाजेपर आ गये। जब राजाने देखा कि, बहुतसे भाई एकत्र हो गये हैं, तब वह कुटुम्बसहित हाथीपर असवार होकर मुनिवंदनाको रवाने हुआ ॥ ६१–६७ ॥ और सब जिनधर्म परायण लोग राजाके साथ २ चले। जब राजा अरिंजय प्रमद उद्यानके पास पहुंचा, तब हाथीसे नीचे उतर आया। उसने मुनिभक्तिसे राज्यविभवको शरीरपरसे उतार दिया, और नम्रतासे महेन्द्रसूरि मुनिराजके पास जाकर नमस्कार करके गुरुभक्ति सहित तीन प्रदक्षिणा दी पश्चात् संघके समस्त मुनियोंके सहित गुरुको पचाङ्ग नमस्कार करके वह साम्हने बैठ गया ॥ ६८–७० ॥

जब सब भव्यजीव यथोचित स्थानमें बैठगये, तब राजा अरिंजयने हाथ जोड़ और मस्तक नमाकर श्रीमहेन्द्रसूरि मुनिराजसे प्रश्न किया:—हे स्वामी! बंध और मोक्षका स्वरूप क्या है? संसारी जीवोंको कैसे कारणोंसे बंध होता है और किस उपायसे कर्मबंधनको तोड़कर वे अत्यन्त दुर्लभ मोक्षको प्राप्त करते हैं? कृपाकर इस विषयको समझाइये ॥ ७१–७२ ॥

तब श्रीमहेन्द्रसूरि मुनिराज बोले, हे भूपाल! मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर संक्षेपमें वर्णन करता हूं,

सुनोः-जिनेन्द्र भगवानने बंधके मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच कारण बतलाये हैं— तत्त्वोंका तथा पदार्थोंका अश्रद्धान करना सो मिथ्यात्वनामा कर्मके योगसे निश्चय करके बंधका कारण है। उस मिथ्यात्वके जिनेन्द्र भगवानने दो भेद कहे हैं एक निसर्गज अर्थात् अगृहीत मिथ्यात्व और दूसरा गृहीत मिथ्यात्व। गृहीत मिथ्यात्वके एकान्तमिथ्यात्व, विपिरीतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, और अज्ञान मिथ्यात्व ऐसे पांच भेद हैं। सो मिथ्यात्वनामा कर्मके योगसे पापाश्रवका कारण होनेसे तथा आठों ही प्रकारके कर्मोंको उत्पन्न करनेका कारण होनेसे जिनेन्द्र भगवान्ने इनको बंधस्वरूप कहा है। हे राजन्। इन मिथ्यात्वोंके फलस्वरूप इस समय तीनसौ तिरेसठ प्रकारके मत फैले हुए हैं ॥ ७३-७९ ॥ हे नराधिप! षट्कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग नहीं करना और पांच इंद्रिय तथा मनको वशमें नहीं करना सो बारह प्रकारकी अविरति हैं। स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा और देशकथा ये ४ विकथा और क्रोध मान माया लोभ ये ४ कषाय तथा ५ इंद्रियें, निद्रा और राग इस प्रकार पंद्रह प्रमाद हैं। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलनके भेदसे क्रोध, मान, माया, लोभरूप १६ भेद तथा नौ हास्य, रति, अरति, आदि कषाय, सब मिलकर २५ कषाय हैं। चार मनोयोग, चार वाग्योग, पांच काययोग, एक आहारक काययोग और एक आहारक मिश्रयोग ऐसे १५ योग हैं। ये सब ही बंधके कारण होनेसे बंधस्वरूप हैं ॥ ८० ॥ इस जीवको जो कर्मबंधनसे छुड़ाता है, ऐसा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका समुदाय ही एक मोक्षका कारण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सप्ततत्त्वोंका जो श्रद्धान करना है, उसीको सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन कहते हैं? सम्यक्त्व विना न आजतक किसीकी मुक्ति हुई और न होवेगी ॥ ८१-८३ ॥ शुक्लध्यानरूपी अग्निके योगसे कर्मरूपी ईंधनका क्षय होता है। इसमें यह चिंतवन करना पड़ता है कि, कर्म भिन्न हैं और आत्मा भिन्न पदार्थ है, कर्म जड़ हैं और आत्मा चैतन्यस्वरूप है। सम्यग्दर्शन जिनागममें दो प्रकारका कहा गया है, एक निसर्गज और दूसरा अधिगमज। निसर्गज सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, जो विना गुरुआदिके उपदेशके स्वयं

होता है और अधिगमज सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, जो उपदेशादिक सुननेसे हो जाता है। जिनेन्द्रने सम्यक्त्व तीनप्रकारका भी वर्णन किया है अर्थात् उपशमसम्यक्त्व क्षयोपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व। इसप्रकार विवक्षासे सम्यक्त्व एकप्रकार, दोप्रकार, तीनप्रकार आदि भेदरूप वर्णन किया है। जो नवपदार्थ अर्थात् सप्ततत्त्व और पुण्यपापके स्वरूपको (अन्यून, यथार्थ, अधिकतारहित, विपरीततारहित) जाने उसे जिनागममें—सम्यग्ज्ञान कहते हैं॥ ८४–८६॥ सम्यग्ज्ञान पांच प्रकारका है अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। मतिज्ञानावरणीके क्षयोपशमसे मतिज्ञान इसीप्रकार अपने २ कर्मके क्षयोपशमसे श्रुत अवधि और मनःपर्ययज्ञान होते हैं और केवलज्ञानावरणीके सर्वथा क्षयसे अथवा चार घातिया कर्मके नाश करनेसे केवलज्ञान होता है। सम्यक्चारित्र जिनेन्द्रने तेरह-प्रकारका वर्णन किया है, जिसका ग्रहण प्राणियोंको अवश्य ही करना चाहिये (वह इस प्रकार है ५ समिति, ३ गुप्ति और ५ महाव्रत।) इसप्रकार जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका वर्णन किया गया है, उसीका समुदाय ही मोक्षका मार्ग है। तत्त्वार्थका जो श्रद्धान अर्थात् यथार्थ रुचि वा प्रतीति उसीको सम्यग्दर्शन कहते हैं॥ ८७–८९॥ भव्यजीवोंको सदाकाल ऐसा चिंतवन करना चाहिये कि, ये शरीर भिन्न है और मेरा आत्मा चैतन्यघन इससे भिन्न है। यह आत्मा कर्मके वशसे जैसे शरीरको प्राप्त होता है, उसी शरीरके आकारका हो जाता है। भावार्थ—आत्मा लोकाकाशके समान असंख्यात प्रदेशी है, आकाशके समान अमूर्तीक है और कर्म लेपकर रहित सिद्धस्वरूप है॥ ९०॥ आत्माका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि यह नित्य, विनाशरहित, वृद्धावस्थारहित, जन्मरहित, कर्मकलंकरहित, बाधारहित, गुणरहित वा गुणसहित है॥ ९१॥ जब आत्माको हृदयमें कर्मोंसे रहित ध्याते हैं, तब निश्चयसे कर्मोंका क्षय होता है और जो सर्व कर्मोंका क्षय हो जाना है, वही मोक्ष है। इसप्रकार हे राजन्! तेरे प्रश्नानुसार मैंने संक्षेपसे बंध और मोक्षका स्वरूप वर्णन किया है। इसका भावार्थ यह है कि कर्मबंधनकी प्रेरणासे यह जीव नरकादि गतिको प्राप्त होता है और वहांके घोर दुःख सहता है और

जय कर्म बंधनसे सर्वथा छूट जाता है, तव मोक्षावस्थामें विनाश, भय, जरा, जन्म, वियोग, रोग, शोकादिसे वर्जित हो जाता है ॥ ९२-९५ ॥ इसप्रकार शुद्ध शान्त स्वभावके धारक, हितमितभाषी मुनिवर श्रीनंदिवर्द्धन महाराज राजाके प्रश्नोंका उत्तर कहके मौनसे तिष्ठे। राजाको मुनिराजके वचनोंसे अपार आनन्द हुआ ॥ ९६ ॥

अथानन्तर-राजा अरिंजयने प्रसन्नचित्तसे अपने हाथ जोड़े और मुनिराजसे निवेदन किया, हे प्रभो! प्राणीमात्रके हितैषी! आपके वचनानुसार मैंने संसारका स्वरूप स्पष्ट रीतिसे जान लिया है कि, यह संसार क्षणभंगुर और साररहित है। इसमें प्रीति करना अनुचित है। शरीर सैकड़ों रोगोंसे भरा हुआ है, पंचेन्द्रियके विषय विषके समान हैं ॥ ९७-९९ ॥ यौवन क्षणस्थायी है, संयोग स्वप्नके समान निःसार है और सुखदुःखमयी जीवन शरदऋतुके मेघके समान तत्काल नष्ट हो जानेवाला है ॥ १०० ॥ शरीर-सम्बन्धी भोग किंपाक (इन्द्रायण) फलके समान अन्तमें बड़े दुखदाई हैं और लक्ष्मी-धनसम्पत्ति हाथीके कानोंके समान चंचल है, ऐसा मुझे निश्चय हो गया है। इसलिये हे महामुने! संसार शरीर भोगादिसे मेरा चित्त विरक्त हो गया है और आपके चरण कमलके प्रसादसे मैं जिनदीक्षा लेना चाहता हूं, जो संसार समुद्रसे पार उतारनेवाली है ॥ १०१-१०२ ॥ हे प्रभो! आप मुझपर कृपा करो और जिनदीक्षा ग्रहण कराओ, जिससे संसारके जन्ममरणकी झंझटसे छूटकर मैं निराकुल अवस्थाको प्राप्त हो जाऊं ॥ १०३ ॥

राजा अरिंजयके वचनोंको सुनकर श्रीमहेन्द्रसूरि मुनिराजने कहा, हे नृपति! तूने दीक्षा ग्रहण करनेका बहुत उत्तम विचार किया है ॥ १०४ ॥ ऐसा विचार पुण्यवानोंके सिवाय दूसरोंके चित्तमें उत्पन्न नहीं होता। जिनदीक्षाके प्रभावसे यह जीव कर्म काटके मोक्ष पदको भी प्राप्त कर सकता है—फिर स्वर्गादिककी तो कथा ही क्या है? ॥ १०५ ॥ तुम्हें ऐसा दृढ़ निश्चय करके जैनी दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करना चाहिये। मुनिराजके मुखारविंदसे राजा अरिंजयने ऐसे वचन सुनकर अपने पुत्रको राज्यका

कारभार सौंप दिया ॥ १०६ ॥ और अनेक राजाओंके साथ सर्व प्राणियोंकी हितकारिणी, स्वर्गमोक्षकी देनेवाली दीक्षा ग्रहण की ॥ १०७ ॥ राजाकी वैराग्यपरणति और मुनिराजका धर्मोपदेश सुनकर विचक्षण बुद्धिके धारक समुद्रदत्त शेठको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। सो उसने भी संसारकी लीला समझकर अपने दोनों पुत्रोंको घरका कारभार सौंप दिया और सर्व परिग्रहसे रहित होकर जिनदीक्षा धारण कर ली ॥ १०८-१०९ ॥

तत्पश्चात् समुद्रदत्त शेठके माणिभद्राख्य और पूर्णभद्र नामके दोनों श्रेष्ठ तथा चतुर पुत्रोंने मुनिराजको नमस्कार किया और सर्व हितकारी गृहस्थोंका धर्म पूछा कि, ॥ ११० ॥ हे महाराज! हम अभी आपकी उपदेशी हुई जिनदीक्षा ग्रहण करनेको असमर्थ हैं, इसलिये कृपाकरके गृहस्थियोंका धर्म, जो कल्पवृक्षके समान स्वर्गादिक तथा परम्परासे मोक्षका देनेवाला है, हमें बताइये ॥ १११ ॥ तब मुनिराजने कहा, हे श्रेष्ठिपुत्रो! आदरपूर्वक एकचित्त होकर सुनो, मैं संक्षेपमें गृहस्थ धर्मका वर्णन करता हूं ॥११२॥ जो संसार कूपमें गिरनेवाले जीवोंको हस्तावलम्बन देकर शीघ्र ही धारयति अर्थात् धारण करता है—बचा लेता है, उसे धर्म कहते हैं ॥ ११३ ॥ जो सर्व प्राणियोंको अपनी आत्माके समान समझता है, पर द्रव्यको मिट्टीके ढेलेके तुल्य गिनता है और दूसरेकी स्त्रीको माताके सदृश समझता है, उसीका नाम धर्मात्मा है ॥११४॥ जिनेन्द्रदेवने धर्म दो प्रकारका वर्णन किया है एक अनागारधर्म और दूसरा सागारधर्म। अनागार धर्म तपस्वियोंके आचरने योग्य है और सागारधर्म गृहस्थियोंके धारण करने योग्य है ॥ ११५ ॥ इनमेंसे प्रथम ही गृहस्थोंके धर्मका वर्णन करता हूं, जो कि सम्यग्दर्शन सहित पांच अणुव्रत और सात शीलोंवाला होता है। गृहस्थोंको मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकारूप चार प्रकारके संघको आहार औषध, शास्त्र (ज्ञान) और अभयदान दान देना चाहिये और सम्यक्त्वका नाश करनेवाले मिथ्यात्वका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ १६-१७ ॥ तथा श्रीजिनेन्द्रने जो श्रावकोंके अष्ट मूलगुण (पांच उदुम्बर और तीन मकारका त्याग) वर्णन किये हैं, उनको धारण करनेके लिये उदुम्बरादिका त्याग करना चहिये ॥ १८ ॥

इसके सिवाय किसी प्राणीकी निंदा नहीं करना चाहिये, कारण यह दुर्गतिको ले जाती है। किसीका विश्वासघात नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह बड़ा पापका कारण है ॥ १९ ॥ प्रत्येक मासकी २ चतुर्दशी और २ अष्टमी–इन चार पर्वके दिनोंमें उपवास धारण करना चाहिये, निःशंका, निःकांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इस प्रकार ८ अङ्गसहित चन्द्रमाके समान निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ जिसप्रकार समुद्रमें गिरे हुए रत्नका मिलना अत्यन्त कठिन है, उसीप्रकार अत्यन्त दुर्लभ धर्मरत्न जो हाथ लगता है, मिथ्यात्वके संसर्गसे मूलसे नष्ट हो जाता है और पीछे उसका मिलना दुष्कर हो जाता है ॥ २१ ॥ इस कारण मिथ्यात्वको जड़ मूलसे उखाड़कर फेंक देना चाहिये और सर्वोत्कृष्ट सम्यक्त्वको ही धारना चाहिये। मिथ्यात्वसे नरकमें पतन होता है और सम्यक्त्वके प्रभावसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जहां सर्वप्रकारके मनोज्ञ इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त होते हैं और अनेक देवी देव सेवा करते हैं ॥ २२–२३ ॥ भयंकर लड़ाईमें धर्म कवचके समान रक्षा करता है और दुस्तर संसार समुद्रसे पार होनेको नावके समान होता है ॥ २४ ॥ इस लोकमें धर्म ही कल्पवृक्ष है, धर्म ही चिन्तामणि रत्न है, धर्म ही कामधेनु है और हरएक चिंतित पदार्थको देनेवाला एक धर्म ही है ॥ २५ ॥ भवभवान्तरमें परिभ्रमण करनेवाले पथिकस्वरूप संसारी जीवको मार्गमें आश्रयभूत धर्म ही एक प्रकारका पाथेय (कलेवा) है। धर्मसे भव्यको कभी कष्ट नहीं होता है धर्मके प्रभावसे संसारमें भटकता हुआ भी यह जीव सब जगह सुखी ही रहता है ॥ २६ ॥ जिसका चित्त धर्ममें लवलीन रहता है, उसको ग्रह, भूत, पिशाच, शाकिनी, सर्पादि किसी प्रकारकी बाधा नहीं करते ॥ २७ ॥ धर्मके प्रभावसे जीव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, राजा तथा चरमशरीरी (तद्भवमोक्षगामी) होता है ॥ २८ ॥ धर्मात्मा पुरुषोंको सात सात मंजिलवाले, ऊंचे सुन्दर महल, हाथी रथादि प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ धर्मकी सेवा करनेसे रूपवान स्त्री, सुपुत्र, स्नेहीभाई, और धनधन्यादिकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ जो वस्तु देश-देशान्तरोंमें तथा समुद्रोंके परली पार पाई जाती है, वह भी धर्मके प्रभावसे अपने घर आ जाती है

॥ ३१ ॥ धर्मके समान कोई बन्धु नहीं, धर्मके समान कोई मित्र नहीं और धर्मके समान कोई स्वामी
नहीं, ऐसा जानकर भव्य जीवोंको अपना चित्त धर्ममें लगाना चाहिये ॥ ३२ ॥

श्रीमहेन्द्रसूरि मुनीन्द्रके मुखारविंदसे धर्मका स्वरूप सुनकर माणिभद्र और पूर्णभद्र दोनों श्रेष्ठि-पुत्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुनीश्वरको नमस्कार किया, सम्यक्त्व धारण किया और गृहस्थोंके बारह प्रकारके व्रत ग्रहण किये ॥ ३३–३४ ॥ पश्चात् मुनिराजको नमस्कार करके वे दोनों विचक्षण अपने घर लौट आये और जीवदयाको पालते हुए धर्म ध्यानसे तिष्ठे ॥ ३५ ॥ जिनमंदिरोंमें उन्होंने अष्टद्रव्यसे पूजा की तथा भक्तिभावसे प्रभावना भी की ॥ ३६ ॥ उत्तम पात्रोंको चार प्रकारका दान दिया, इसप्रकार उन्होंने धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ सिद्ध किये, परन्तु उनका चित्त पापकार्यमें रंचमात्र भी आंसक्त न हुआ ॥ ३७ ॥ धर्मके प्रभावसे लीलामात्रमें प्राप्त होनेवाले भोगउपभोगकी सामग्रीसे आनन्द लूटते हुये और सुखसागरमें डूबे हुए उन्होंने अपना बीतता हुआ समय न जाना ॥ ३८ ॥

कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् एक दिन वनमें मुनिमहाराज पधारे। उनकी वन्दनाके लिये दोनों श्रेष्ठिपुत्र (भाई) धर्मवासनासहित अष्टद्रव्य लेकर चले ॥ ३९–४० ॥ दैवयोगसे उन्हें मार्गमें एक कुरूप चांडाल और उसकेसाथ एक कुत्ती दीख पड़ी ॥ ४१ ॥ उनके देखतेही दोनोंके हृदयमें बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई। सो ठीक ही है अन्तरात्मा बड़ा ज्ञानवान होता है, जिससे शुभाशुभकी समझ स्वयं उत्पन्न हो जाती है ॥ ४२ ॥ इनको देखते ही चांडाल और कुत्ती दोनोंका चित्त भी बहुत प्रसन्न हुआ। इस प्रकार इन चारों प्राणियोंमें परस्पर गाढ़ी प्रीति उत्पन्न हुई। यहां तक कि, मोहके उदयसे ये अपने जीमें एक दूसरेको आलिंगन करने की इच्छा करने लगे ॥ ४३–४४ ॥ तब वे चारों जल्दीसे मुनिराजके पास गये। वहां श्रद्धावान शेठके पुत्र नमस्कार करके मुनिके समीप बैठ गये ॥ ४५ ॥ और भक्तिसहित बोले, हे कृपासिंधु ! इस चांडाल और कुत्तीसे हम दोनों को इतना मोह उत्पन्न हुआ, सो इसका क्या कारण है ? कृपाकर वर्णन कीजिये। तब मुनिराज बोले, पुत्रो ! एकाग्रचित्त होकर सुनो, मैं कहता हूं ॥ ४६–४७

कारण बिना कार्यकी उत्पत्ति कदापि नहीं होती है। ये कुत्ती और चांडाल पूर्वभवमें तुम्हारे माता पिता थे, इसीसे तुम्हें इनको देखते ही स्नेह उत्पन्न हुआ है। क्योंकि सम्पूर्ण देहधारियोंका अन्तरात्मा निश्चय-पूर्वक ज्ञानी होता है। उसे अपने पूर्वके सम्बन्धका अनुभव हो जाता है ॥ ४८–४६ ॥ मुनिराजके ऐसे वचनोंको सुनकर श्रेष्ठिपुत्रोंने पुनः प्रश्न किया, कि हे प्रभु ! पूर्वभवमें ये हमारे माता पिता किसप्र-कार थे, सो भी आप सुनाइये। तब मुनिवर बोले, पुत्रो ! सुनो— ॥ ५०–५१ ॥

पहले यह चाण्डाल शालिग्राम नगरमें ब्राह्मण कुलसे उत्पन्न हुआ सोमशर्मा नामका ब्राह्मण था, और यह कुत्ती अग्निला नामकी उसकी स्त्री थी। ये दोनों ही वेदशास्त्रके जाननेवाले थे ॥ ५२ ॥ खोटे देवकी आराधनामें इनका चित्त लगा रहता था, यज्ञके लिये ये पशुवध करते थे, जिनधर्मसे बड़ा द्वेष रखते थे, और हिंसा तथा अन्य २ निन्दित कार्योंमें दत्तचित्त रहते थे ॥ ५३ ॥ इस जन्मसे पहले तीसरे भवमें तुम दोनों इनके पुत्र थे। उस समय तुममेंसे एकका नाम अग्निभूति था और दूसरेका वायुभूति ॥ ५४ ॥ एकवार कारणवश सोमशर्मा वा अग्निलाको जिनधर्मका प्रभाव प्रगट हुआ था और उनकी उस धर्ममें प्रतीति भी उत्पन्न हुई थी। परन्तु अपनी जातिके घमण्डमें चकचूर होके जीवमात्रको तृणके समान गिनते हुए उन पापाचारियोंने दुर्लभतासे प्राप्त हुए जिनधर्मको त्याग दिया, जिस पापके कारण मरकर उन दोनोंका नरकमें पतन हुआ ॥५५–५६॥ सो वहाँ उन्होंने पांच पल्य पर्यन्त छेदन, भेदन, ताड़न, पीलन तापन आदि नानाप्रकारके घोर दुःख सहे ॥ ५७ ॥ पापकर्मसे प्रथम नरकके ऐसे दुःख सहके आयु पूरी होनेपर जिनधर्मकी निन्दा तथा मिथ्यात्वके उदयसे कौशल देशमें सोमशर्मा नामका तुम्हारा पूर्वभवका पिता तो चांडाल हुआ और तुम्हारी अग्निला नामकी माता कुत्ती हुई है। उस समय तुम दोनों इनके पुत्र थे, अतएव तुमपर इनका अगाध स्नेह था। यही कारण है कि, इन्हें भी तुम्हें इस भवमें देखते ही मोह उत्पन्न हुआ है ॥ ५८–६० ॥ जिनधर्मका तिरस्कार करना कालकूट विषवृक्षके समान है, जिसमें मिथ्यात्वरूपी जलसिंचन होनेसे अनेक अशुभ २ फल उत्पन्न होते हैं ॥ ६१ ॥ तुमने पूर्वभवमें भलीप्रकार

जिनधर्मको पालन किया था, जिससे तुम मरणकर स्वर्गको प्राप्त हुए थे। वहां अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम सुख भोग वहांसे चयकर तुम दोनों जिनधर्मके प्रभावसे शेठके पुत्र हुए हो। हे पुत्रो! ये सब पुण्य पापके फल हैं, ऐसा चित्तमें दृढ़ श्रद्धान करो ॥ ६२–६३ ॥

इसप्रकार श्रेष्ठिपुत्रोंने मुनिराजके कथनसे अपने स्नेह सम्बन्धका निश्चय किया और धर्म स्नेहके वशीभूत होकर उन्होंने उस चांडाल वा कुत्तीको भी व्रत ग्रहण कराया ॥ ६४–६५ ॥ धर्मको ग्रहण करके वह चांडाल मुनिराजसे बोला, "हे स्वामिन्! आपकी कृपासे आपके कहे अनुसार मुझे पूर्वजन्मका स्मरण होनेसे सर्व वृत्तान्त प्रगट हुआ है ॥ ६६ ॥ सो ब्राह्मणकी उत्तम जाति तो कहां और चांडालका नीच कुल कहां, इसका विचार करते ही मेरा चित्त शोकचिन्तासे ग्रसित हो रहा है ॥ ६७ ॥ इसलिये आप मुझे शोक, रोग, भयसे आकुलित तथा जन्म, जरा मरणकी वेदनासहित इस संसार सागरसे पार होनेकी तदबीर बताओ ॥ ६८ ॥ तब मुनिराजने उन्हें निःशंकादि अष्टांगसहित सम्यक्त्व ग्रहण कराया और गृहस्थोंका बारह प्रकारका धर्म भी धारण कराया ॥ ६९ ॥ कुत्ती वा चांडालने बड़ी प्रसन्नतासे व्रत ग्रहण कर लिये। पश्चात् वह चांडाल तो धर्म वासनासहित एक महीनेमें ही सन्यासपूर्वक मरणको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ सो जिनधर्मके प्रभावसे नंदीश्वर द्वीपमें अनेक देवोंकर सन्मानित पांच पल्यकी आयुवाला देव हुआ ॥ ७१ ॥ और कुत्ती सातदिनतक व्रत पालन करके मरनेपर उसी देशके राजाकी मनोहर पुत्री हुई ॥७२॥ वह अनेक प्रकारके शास्त्र और उपशास्त्र पढ़कर पंडिता हो गई। उसके शरीरके सम्पूर्ण अवयव बड़े ही सुन्दर थे। एकदिन वह उपवनमें क्रीड़ा करनेके लिये गई। सो वहां राजाने उसके यौवनसम्पन्न रूपको देखकर देश देशान्तरके राजाओंके पास दूतद्वारा सुन्दर पत्र भेजकर उन्हें बुलाये ॥ ७३–७४ ॥ और अनेक उत्सवसहित, स्वयंवरमंडप सजाया। जब स्वयंवरमंडप भर गया, तब राजकन्याने सोलह प्रकारके आभूषण पहनकर स्वयंवरमण्डपमें प्रवेश किया ॥७५॥ उसी समय नंदीश्वर द्वीपके देवने (चांडालके जीवने) जो जिनवंदनाके लिये जा रहा था, राजकन्याका स्वयंवर देखा ॥७६॥ ज्यों ही वह वहां आया और राजकन्या-

को देखा, त्यों ही उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया कि यह तो मेरी ही अग्निला नामकी स्त्री है। इसको अब समझाना चाहिये। ऐसा विचारकर उसने अपने स्वरूपको गुप्त रखके कहा, राजकन्ये! क्या तू अपने पूर्वभवकी दशाको भूल गई? जो तूने मोह कर्मके उदयसे कुत्तीकी पर्यायमें कष्ट भोगे हैं। अब तूने पाणिग्रहण करनेकी लालसासे यह निरर्थक क्यों रचा है? जो संसारका कारण है। क्योंकि भोग संसारके बढ़ानेवाले ही होते हैं ॥ ७७-८० ॥ और क्या तू पहले तीन भवोंके दुःख भूल गई जो नरकमें, तथा कुत्ती और चांडालके भवमें अपन दोनोंने भोगे हैं? ॥ ८१ ॥ देवके वाक्योंको सुनते ही राजकन्याको पूर्वभवका स्मरण हुआ और वह उसी समय वैराग्य परिणामसहित स्वयंवरसे बाहर निकल आई ॥८२॥ और तत्काल ही वनमें जाकर उस वैराग्य विभूषिता राजकन्याने श्रीश्रुतसागर मुनिराजके पास निर्मल जिनदीक्षा ले ली ॥ ८३ ॥ स्वयंवरमें तिष्ठे हुए राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ कि, विनाकरण उदासीन होकर राजकन्या कैसे चली गई? ॥ ८४ ॥ राजा भी अपनी पुत्रीके उदासीन होनेका कुछ भी कारण न जान सका। इसप्रकार राजकन्याको सम्बोधित करके वह देव अपने मनोवांछित स्थानको चला गया ॥ ८५ ॥ राजकन्याने चिरकाल पर्यन्त अर्जिकाके महाव्रत पालन किये और आयुके अन्तमें शरीरको छोड़कर स्त्रीलिङ्ग छेदकर स्वर्गलोक प्राप्त किया ॥ ८६ ॥ जिनधर्मके प्रभावसे इस जीवको क्या प्राप्त नहीं होता? अर्थात् मनोवांछित सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसा जानकर जिन भाषित धर्मका सदाकाल पालन करना योग्य है ॥ ८७ ॥

इसप्रकार मुनिराजने कथाके प्रसङ्गानुसार कुत्ती और चांडालका वृत्तान्त जो पूर्वभवमें श्रेष्ठिपुत्रोंके माता पिता थे, संक्षेपसे कह सुनाया ॥ ८८ ॥ तब दोनों शेठके पुत्र मुनिवरको अष्टाङ्ग नमस्कार करके प्रसन्नता पूर्वक अपने घर गये, और जिनपूजनादि धर्मकृत्य करने लगे ॥ ८९ ॥ पश्चात् सम्यक्त्वको पालते हुए वे उत्तम सन्याससहित मरके सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥ ९० ॥ जिस प्रकार आकाशमें पवनके सहारेसे मेघ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार प्रथम स्वर्गमें उपपाद शय्यासे वे उत्पन्न हुए ॥९१॥ जिसप्रकार

एकदम आकाशमें इन्द्र धनुष तथा विजुली सर्वाङ्गसुन्दर पूर्णरूपसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पुण्योदयसे शेठके पुत्र स्वर्गमें पूर्ण अवयवसहित वैक्रियक शरीरवाले उत्पन्न हो गये ॥ ९२–९३ ॥ उसी समय देवाङ्गनायें आईं और आरती आदिसे पूजा करने लगीं ॥ ९४ ॥ देवी देवताओंने स्वर्गके दिव्यवस्त्राभरण पहननेको दिये और अनेक प्रकारकी असवारी आदिसे उनकी सेवा की ॥ ९५ ॥ इसप्रकार माणिभद्र और पूर्णभद्र श्रेष्ठिपुत्र सर्व शुभ लक्षणोंके धारक, सर्व वस्त्राभूषणभूषित और विमान असवारीपर आरूढ़ ऐसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥ ९६ ॥ सो ठीक ही है, पुण्यके प्रभावसे यह प्राणी स्वर्गको प्राप्त होता है। वहां जिन चैत्यालयोंकी वंदना वा जिनधर्म की प्रभावना करता है और देवाङ्गनाओंके मुख कमलका भ्रमर बनता है। स्वर्गके देव सदाकाल सुख समुद्रमें मग्न रहते हैं, नव यौवन अवस्थामें बने रहते हैं, चर्मसङ्कोच (बली) तथा सफेद बालकर रहित, सप्तधातु वर्जित उनका शरीर रहता है, और पदार्थकी इच्छा होते ही कण्ठमेंसे अमृत झरता है, जिससे तृप्ति हो जाती है ॥ ९७–९९ ॥ पुण्यके उदयसे स्वर्गसम्बन्धी भोग भोगते हुए बहुतसा समय व्यतीत हो जाता है, जो मालूम भी नहीं पड़ता है ॥ २०० ॥ इसी पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें देव होकर वा वहांसे चयकर ढाई द्वीपमें राजादिक होकर सम्यक्त्वसहित यह प्राणी सुख चैनसे रहता है और परम्परासे मोक्षका अधिकारी भी बन जाता है ॥ २०१ ॥ पुण्यके प्रभावसे उत्तम पर्यायको धारणकर यह प्राणी कामदेवके समान सुन्दर, बड़े राज्यका स्वामी, अनेक गुणोंका धारक, ज्ञानवान, प्रतापवान, कीर्तिवान, कान्तिवान, धैर्यवान, भाग्यवान और शूरवीर होता है और कहांतक कहा जाय, तीन लोकमें जितने उत्तम पदस्थ वा जितनी शुभसामग्री हैं, वह सहजमें ही पुण्यात्मा जीवको प्राप्त होती हैं, ऐसा जानकर भव्य जीवोंको निरंतर पुण्यका संचय करना चाहिये ॥ २०२ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें प्रद्युम्नकुमारके तीसरे भव सम्बन्धी माणिभद्र, पूर्णभद्र श्रेष्ठिपुत्रोंका धर्मस्वरूपश्रवण, स्वर्गलोकगमन आदिके वर्णनवाला सातवां सर्ग समाप्त हुआ।

अष्टमः सर्गः ।

जिस सुप्रसिद्ध कौशल देशका ऊपर वर्णन कर आये हैं, उसी देवदानव-सेवित नगरमें पद्मनाभ नामका राजा राज्य करता था, जो रूपवान और प्रख्यात था, तथा जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको जीतकर दशोंदिशाओंमें अपनी कीर्ति फैला दी थी ॥ १-२ ॥ जिसप्रकार स्वर्गमें इन्द्र और पातालमें शेषनाग राज्य करता है, उसी प्रकार यह बलाढ्य राजा न्याय नीतिसे भूतलपर राज्य करता था ॥ ३ ॥ जिसकी रूपवती, श्यामवर्णा, गजगामिनी, नवयौवनसम्पन्न, सर्वाङ्गसुंदर, चित्तको चुरानेवाली, धारिणी नामकी रानी थी। जिसप्रकार इन्द्रको इन्द्राणी और महादेवको पार्वती अत्यन्त प्रिया थी, उसी प्रकार राजा पद्मनाभको धारिणी अत्यन्त प्रिया थी ॥ ४-५ ॥ इस रानीके साथ राजाने पूर्व पुण्यके प्रभावसे इच्छानुसार भोग-उपभोगकी सामग्री पाकर आनन्द लूटा और राज्यका कारबार उत्तम रीतिसे चलाया ॥ ६ ॥ इस प्रकार राज्य करते २ रानीके गर्भसे स्वर्गलोकसे चयकर दो पुत्रोंने अवतार लिया ॥ ७ ॥ उस रानीकी कुक्षिसे सर्व शुभ लक्षणोंके धारक उन दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई, सो ठीक ही है। क्योंकि पूर्वपुण्यके प्रभावसे मनोवांछित पदार्थकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥ राजा पद्मनाभने पहले पुत्रका नाम मधु और दूसरेका कैटभ रक्खा। पुत्रोत्पत्तिकी खुशीमें राजाने बड़ा उत्सव किया ॥ ९ ॥ जब वे रूपवान पुत्र सर्व शुभ लक्षणोंके धारक, सर्वाङ्गसुंदर, यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए, तब राजाने कुलवती, रूपवती, गुणवती कन्याओंके साथ उनका विवाह (लग्न) कर दिया ॥ १०-११ ॥ एकदिन पद्मनाभ राजाने अपने नवयौवनसम्पन्न मनोहर मधु वा कैटभ पुत्रोंको देखकर विचार किया कि प्रथम तो मनुष्य जन्म ही पाना दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम उच्च कुलमें जन्म लेना, राज्यसुख, पराक्रम, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, शूरता, स्त्री, पुत्र, पौत्रादिका पाना बहुत ही दुर्लभ है। इससे भी जैनधर्मका पाना पुण्यहीनोंके लिये अत्यन्त कठिन है। परन्तु पुण्योदयसे ये सर्व सामग्री मुझे प्राप्त हुई हैं ॥ १२-१५ ॥ जो कुछ संसारमें प्राणियों-

को भोग उपभोगकी वस्तुएँ मिलती दीख पड़ती हैं, वे सब पुण्यके प्रभावसे मुझे प्राप्त हुई हैं ॥ १६ ॥ इसलिये अब मुझे आत्म कल्याण करना चाहिये, जिससे मैं अजर अमर स्वरूप मोक्षकी नित्य अवस्था-को प्राप्त कर सकूं ॥ १७ ॥ इसप्रकार बहुत देरतक विचार करनेके पश्चात् राजा पद्मनाभके हृदयमें वैराग्यकी छटा प्रकाशमान हुई। उसने सामन्तोंके साम्हने अपने मधु नामके प्रथम पुत्रको राज्याभिषेक पूर्वक राजतिलक करा कैटभको युवराज बना दिया ॥ १८ ॥ तत्पश्चात् वह राजा हजारों स्त्रियोंके परि-ग्रहको छोड़कर वैराग्यभूषित अनेक राजपुत्रोंके साथ श्रीनिर्ग्रन्थ गुरुके चरण शरणको प्राप्त हुआ, और वहां उसने आलोचनाकरके भक्तिपूर्वक जिनदीक्षा ले ली। इसप्रकार पद्मनाभ राजा शीलधारक यतिके पदस्थको प्राप्त हुआ ॥ १९–२० ॥

मधु राजा और कैटभ युवराजने कुलक्रमसे प्राप्त हुए राज्यको चन्द्र और सूर्यके समान प्रजाके सुखकी अभिलाषा करते हुऐ भलीभांति चलाया ॥ २१ ॥ वे दोनों प्रताप, शूरवीरता तथा पराक्रमसे शोभायमान राजा, अपने अनुचर लोगोंके साथ बन्धुके समान वर्ताव करते थे और शरणागतोंकी रक्षा करते थे ॥ २२ ॥ इनके दोनों चरणोंको शत्रु तथा मित्रोंके राजागण भी अपने मस्तकपर धारन करते थे, और इनका पराक्रम जगतमें फैल रहा था ॥ २३ ॥ एकदिन सामन्तराजाओंकी मण्डलीके बीचमें विराजमान मधु-राजाने एकाएक नगर के बाहर से आते हुए कोलाहलके शब्द सुने ॥ २४ ॥ तब उसने द्वारपालसे पूछा-कि, यह क्या कलकलाट सुनाई पड़रहा है। मैंने ऐसा कोलाहल नगर वा देशमें आजतक नहीं सुना यह क्या मामला है, ॥ २५ ॥ तब द्वारपालने विनयसे मस्तक नमाया और हाथ जोड़के निवेदन किया कि, हे राजन्! ॥ २६ ॥ यह एक दुष्ट राजा है, जिसकी बड़ी सेना तथा मजबूत किला है। वह आपके सारे देश को विध्वंस किये डालता है। क्योंकि वह प्रतिदिन धूर्ततासे आता है, और मनुष्य तथा पशुओंके झुंड झुंड पकड़के लेजाता है। तथा नगर और ग्रामों में आग लगा जाता है ॥ २७–२८ ॥ जब कभी उसका साम्हना करनेको बड़ी सेना जाती है, तब वह अपने नगरके किलेमें जाकर छिप जाता है और

वहींसे निर्भय होकर गर्जता है ॥ २६ ॥ वह अयोध्या नगरीके बाहिरकी सर्व वस्तुएँ हरके ले जाता है, इसी कारण वहांके रहनेवालोंको अपने २ प्राणों की चिन्ता पड़ रही है, और वे यह हल्ला मचा रहे हैं ॥ ३० ॥ सभाके बीचमें द्वारपालके मुखसे कोलाहलका कारण सुनतेही राजा मधु कोपको प्राप्त हुआ । उसने अपनी भौहें चढ़ालीं और लालमुँह करके बोला, हे कुलीन मंत्रियो ! तुमने आजपर्यन्त मुझे यह वार्ता क्यों नहीं सुनाई ? ॥३१–३२॥ तब मंत्रियोंने उत्तर दिया, हे राजन् ! आपकी बाल्यावस्था थी और वह शत्रु किला सेनादिके कारणसे अनेक राजाओंसे भी जीता नहीं जाता था, ऐसा जानकर हमने आपके समक्ष इसकी चरचा नहीं की थी ॥ ३३ ॥

तब मधुराजने उत्तर दिया सुनो ? क्या सूर्य उदय होतेही रात्रिके अन्धकार को नाश नहीं कर डालता है ? उसीप्रकार मेरी छोटी अवस्था भी हुई तो क्या हुआ, ये तुम्हारी बड़ी बे समझी है जो इस कारणसे तुमने आजतक मुझे इसबातकी खबरतक नहीं दी अस्तु ! ॥ ३४–३५ ॥ अब तुम शत्रु पर चढ़ाई करनेके लिये अपनी सर्व सेना तयार करो, मैं जातेही किलेको तोड़ डालता हूं और मूर्ख वैरीका विनाश कर डालता हूं ॥ ३६ ॥ आज्ञा पातेही मंत्रियोंने संग्रामके लिए इकट्ठे होनेके वास्ते रणभेरी (संग्रामार्थ तुरही) बजवाई, जिससे सब सेना एकत्र होगई ॥ ३७ ॥ तब राजा मधु सेनासहित रवाने हुआ, मार्ग मे हाथियोंके दांतोंसे अनेक वृक्ष टूट २ कर गिरपड़े नानाप्रकारके चक्रोंसे मार्गमें आने जानेको रस्ता नहीं रहा, घोड़ोंके खुरोंसे पृथ्वी खण्डित होती चली, जिन नदी नालोंका जल सेनाकी दृष्टिमें अगाध दीख पड़ता था, उनमें सेनाके उस पार चले जानेपर कीचड़मात्र दीख पड़ने लगा ! ॥ ३८–४० ॥ जिस जिस स्थानकी जमीन ऊंची नीची थी, सब सेनाके जोरसे सम होगई और जो स्थानसम था वह विषम हो गया ॥ ४१ ॥ रास्तेमें राजा मधु वटपुरके पास पहुंचा । ज्योंही उस शहरके हेमरथ नामके राजाको खबर मिली, त्योंही वह मिलनेके वास्ते आया और उसने बड़ी भक्तिके साथ मस्तक नमाके मधुको प्रणाम किया । तब राजा मधुने भी आलिंगन करके कुशलादि पूछा । पुनः विनयपूर्वक सिर झुकाके राजा हेम-

रथ बोला,—हे स्वामी ! प्रसन्न होकर आप अपने चरण कमलकी रजसे सेवकके घरको पवित्र करें, हे कृपानिधि ! आप एक दिन मेरी राजधानीमें मुकाम करें और दया दृष्टिसे मेरी राज्यविभूति देखकर पश्चात् देशान्तरको गमन करें ॥ ४२–४६ ॥ मधुराजाने उसके नगरमें प्रवेश करना स्वीकार किया विशेष आदरको प्राप्तकर कौन मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥ राजा हेमरथ यह देखकर कि राजा मधुने मेरे सत्कारको स्वीकार किया है, शहरको शृङ्गारित करनेके लिए नगरमें गया, स्थान २ में ध्वजा तोरणादिक बंधाये, मार्गमें पुष्पसमूह बिखरा दिए और गाजोंबाजोंके साथ तथा भाटोंके जय ! जय ! के शब्दोंके साथ पूर्ण महोत्सवसे राजा मधुका वटपुरमें प्रवेश कराया ॥ ४८–५० ॥ पश्चात् उन्हें अपने महलमें ले गया, और रत्नोंका चौक पूरके सुवर्णके सिंहासनपर बिठाया ॥ ५१ ॥

तब हेमरथ राजाने अपनी चन्द्रप्रभा रानीसे कहा, हे मृगेक्षणे ! तू स्वयं जा और राजा मधुका सत्कार कर मंगल आरती उतार ! ॥ ५२ ॥ तब इन्द्रप्रभा बोली, हे नाथ ! मेरी प्रार्थना सुनो,—ऐसी नीति है कि, जो अपनी मनोहर चीज हो, उसे राजाओंको न दिखाना चाहिये, कारण उस वस्तुको देखकर राजाओंका चित्त सचमुचमें चलायमान हो जाता है इसकारण आप दूसरी रानीको वहां भेजकर यह कार्य करालेवें मुझसे यह काम न करावें ॥ ५३–५४ ॥ तब राजा हेमरथ बोला,—हे देवी ! तू बड़ी भोली है उसके यहां तेरे समान रूपवान सैकड़ों दासी हैं, इसलिये हे शुभमुखे ! वह तुझपर रंचमात्र भी पापदृष्टि न धरेगा, तू अपने चित्तकी शल्यको निकाल डाल, और तूही मेरेसाथ चल और राजा मधुकी आरती उतारकर सन्मानकर ॥ ५५–५६ ॥ अपने भर्तारका अत्यन्त आग्रह देखकर रानी चन्द्रप्रभाने एक सुवर्णके मनोहर थालमें उत्तमोत्तम बहु मूल्य मोती धरे और दधि–अक्षत मोतीआदि मंगलीक द्रव्यभी उसमें रखलिये और राजा हेमरथकी आज्ञासे सोलह शृङ्गार करके वह मधुराजाकेपास गई । राजा हेमरथ और चन्द्रप्रभा रानीने तंदुल मौक्तिक आदिसे बड़े विनय और भक्तिसे मधुराजाकी आरती की ॥ ५७–५९ ॥

राजा मधु अपने साम्हने उस सर्व शुभ लक्षणोंकी धारक, सर्वाङ्ग सुन्दर, मनोहर रानी चन्द्रप्रभाको देखकर कामबाणसे घायल हो गया ॥ ६०-६१ ॥ और मनमें विचारने लगा यह लक्ष्मी है, कि इन्द्राणी है, पार्वती है, कि चन्द्रकी स्त्री रोहिणी है, कामकी वल्लभा रति है, कि यशकी मूर्ति है, कि कीर्तिकी छबि है ? यह क्या है ? कौन है ? ॥ ६२-६३ ॥ लोगोंका कहना है कि, 'चन्द्रमा सागरसे उत्पन्न हुआ है, परन्तु मैं नो केवल इसके गालोंपर पसीनेके बिन्दुही चन्द्रमा जैसे देखता हूं ॥ ६४ ॥ ऐसा मालूम होता है कि, ब्रह्मा ने चन्द्रका सार ग्रहण करके इसका मुख बनाया है, कमलसे इसके हाथ पांव बनाये हैं, हस्तीके कुंभस्थल लेकर दोनों स्तन बनाये हैं, मृगीके नेत्रोंसे नेत्र बनाये हैं और हंसनीकी चाल लेकर इसकी गति बनाई है ! ॥ ६५-६६ ॥ अथवा विधाताने किस प्रकार इसकी रचना की है, कुछ समझमें नहीं आती। इसके समान रूपवान सुन्दराङ्गी जगतमें न कोई है, न हुई है और न कभी होवेगी ॥ ६७ ॥ चन्द्रप्रभाको इसप्रकार चिन्तवन करते हुए राजामधुका चित्त कामबाणसे वेधागया और वह शून्य हृदय होकर चित्रामके समान हलन चलन क्रियासे रहित होकर उसके सौन्दर्य को देखतेही रहा, मानो सुन्दरीने उसके चित्तको चुराही लिया हो। पुनः राजा विचारने लगा कि ॥ ६८ ॥ उसहीका जन्म सफल है, उसीका मनुष्य भव पाना सार्थक है, तथा वही धरातलपर कृतकृत्य है, उसीका पूर्ण भाग्योदय है और उसीके पूर्व भवके प्रबल पुण्यका इस समय उदय है, जिसकी यह मनोहर सुन्दरी प्राणवल्लभा है ॥६९-७०॥ जिस समय राजा मधु इसप्रकार मोहपाशमें फँसे हुए थे और चिन्ताचक्रमें गोते लगा रहेथे उसी समय रानी चन्द्रप्रभा-अपने प्राणनाथ हेमरथके साथ राजा मधुकी आरती करके अपने स्थानको गई। परन्तु अपनेसाथ राजा मधुका चित्तभी चुराये लिये गई ॥ ७१ ॥

अयोध्याके स्वामी राजा मधुका चित्त ठगाया जानेसे-छला जानेसे शून्य जैसा हो गया। उसके विरह दुःखसे वह अतिशय चिन्तातुर हो गये। शय्याको पाकर उसपर पड़गये। मानसिक दुःखके मारे उन्होंने खाना पीना, सोना, बोलना छोड़ दिया ॥ ७२-७३ ॥ राजाकी ऐसी दशा देखकर एक सुचतुर मंत्री-पास

आया। उसने राजाको उदास देखकर अनुमान किया कि ये किसी गुप्त चिन्तामें पड़ेहुए हैं ॥ ७४ ॥ और स्नेहपूर्वक पूछा, महाराज! आप ऐसे विकल और चिन्तातुर क्यों हो रहे हैं? आपपूर्वके समान न तो वस्त्राभूषण शरीरपर धारण करते हो, और न आपकी देहकी चेष्टाही जैसी पहले थी अब दीख पड़ती है। स्वामिन्! क्या आपके चित्तमें उस दुष्ट बैरीका खटका लगा हुआ है? ॥ ७५–७६ ॥ शत्रुविषयक रंचमात्र भी चिन्ता आप मत करो कारण मैं आपके शठ शत्रुको देखते २ क्षणमात्रमें जीत लूंगा ॥ ७७ ॥ यदि आप चित्त प्रसन्न न रखोगे, तो अपनी सबसेना मनमें यह समझेगी कि, राजा मधुका चित्त शत्रुसे भयभीत होकर उदास होरहा है ॥ ७८ ॥ मंत्रीके ऐसे वचनोंको सुनकर राजा मधु बोला, मुझे शत्रुका किंचित् भी दुःख नहीं है ॥ ७९ ॥ तब मंत्रीने फिर पूछा, महाराज! तो फिर कौनसा कारण है, जिससे आप इतने दुखित और सचिन्त हो रहे हैं? ॥ ८० ॥ तब मधुने पास बुलाकर कहा, हे मंत्रीशिरोमणि! मैं अपने दुःखका कारण तुम्हें कहता हूं, वह यह है कि राजा हेमरथकी चन्द्रप्रभा रानीके लिये मेरा जी तड़फ रहा है ॥ ८१ ॥ जिस घड़ीसे मैंने उस रूप-यौवन-शालिनीको देखा है, मेरा चित्त कामाग्निसे तप्तायमान हो रहा है और मुझे पलभर चैन नहीं पड़ती है ॥ ८२ ॥ राजाके वचन सुनकर वह प्रधान-मंत्री बोला, हे स्वामिन्! आपने अपने चित्तमें यह बहुतही अनुचित विचार किया है। यह कार्य इस-लोक और परलोक दोनोंके विरुद्ध और निंदनीक है। इसको सुनते ही जगतमें आपका अपयश फैल जायगा। और सेनाके सुभटोंका चित्त बिगड़ जायगा। नीतिका वाक्य है कि "लोक निंदित कार्यको मनसे भी नहीं विचारना चाहिये" ॥ ८३–८५ ॥ मंत्रीके वचनोंको सुनकर राजाने कहा, (तुम्हारा कहना तो ठीक है, परन्तु) इसके विना तो मैं एकक्षण भी नहीं जी सकूंगा ॥ ८६ ॥ यदि मेरे जीवनसे कुछ प्रयोजन हो अर्थात् यदि तुम चाहते हो कि मैं जीता रहूं तो बने जिस प्रकारसे ऐसा उपाय करो, जिस-से वह सुन्दरी मुझको प्राप्त हो सके। बिना चन्द्रप्रभाके राज्य, धन, सेना, रत्न, परिवारादिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ८७–८८ ॥ जब मंत्रीने देखाकि, मधुका चित्त चन्द्रप्रभामें बिलकुल आसक्त हो रहा है,

तव अपने कर्तव्यको दृढ़तासे हृदयमें धारण करके राजासे वारंवार कहा, कि, महाराज! चित्त समाधान करके मेरी वात सुनो, इस समय जो प्रेमसम्बन्धी चिन्ता आपके चित्तमें उत्पन्न हुई है, उसे अभी छोड़ दो। कारण दूसरे सामन्त राजागण आपको परस्त्री अभिलाषी जानेंगे, तो उनका चित्त विगड़ जायगा और वे अपने २ घर लौट जावेंगे। और संग्राम करनेकी जो तयारी की गई है, वह निष्फल हो जायगी। यदि ये सुभट माण्डलिक राजादिक विकल चित्त होनेपर तुम्हारे साथ संग्राममें गये, तो कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा इसलिये आपको यह वात अपने मनमें गुप्तही रखना उचित है ॥८९-९२॥ पहले सामन्त राजाओंकी सेनाकी सहायतासे वैरीको परास्त करो, पश्चात् मैं आपका मनोवांछित कार्य सिद्ध करूंगा, इसमें संदेह नहीं है। शत्रुके जीतनेपर जो आप कहोगे वह वन सकेगा। इसप्रकार मंत्रीके मनोहर वचनोंको सुनकर राजा मधुने अपने चित्तमें धैर्य धारण किया कि, मेरा मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा। राजाने मंत्रीसे कहा, तुम्हें मेरे कार्यको सर्वथा सफल करना होगा, मेरे चित्तको विश्वास उत्पन्न करनेके लिये तुम मुझे वचन दो, जिससे मेरे चित्तमें चैन उपजै तव मंत्रीने राजाकी इच्छानुसार इस ध्यानका वचन दिया ॥ ९३-९६ ॥

मंत्रीके मनोहर वचनोंको सुनकर राजा मधु स्वस्थचित्त होकर वैरीको परास्त करनेकी उत्कण्ठासे सर्व सेनासहित रवाने होनेको तयार हो गया ॥ ९७ ॥ मंत्रीके आग्रहसे वह राजा हेमरथ भी अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ वटपुरसे चल पड़ा ॥ ९८ ॥ सो मार्गमें सेनाकी सघनता और वेगसे पर्वतके शिखरोंको गिराते, नदियोंके जल सुखाते, और वृक्षोंका नाश करते हुए रात्रिके समय राजा मधुने उस महती सेनासे राजा भीमके नगरको आघेरा ॥ ९९-१०० ॥ वाजोंकी आवाज सुनकर उस नगरमें कलकलाट मचने लगा—वहांकी प्रजाका शरीर भयसे थरथराने लगा और सवको वड़ी भारी चिन्ता उत्पन्न हो गई ॥ १०१ ॥ राजा भीमने यह कोलाहल सुनकर मंत्रीसे पूछा, नगर निवासी इतना हल्ला क्यों मचा रहे हैं? ॥ १०२ ॥ मंत्री बोला,—महाराज! मधुराजा वड़ी सेना लेकर चढ़ आया है ॥ १०३ ॥ इसपर

राजा भीमने कहा; तुम विना निश्चय किये क्या बोलते हो? क्या इस जगतमें कोई भी ऐसा बलवान है जो मेरा साम्हना कर सके?॥ १०४ ॥ क्या किसीने कभी देखा वा सुना है कि, सिंहके ऊपर मृगसमूह कूद पड़ा है, अथवा यमराजपर प्राणधारी आ झपटे हैं, अथवा गरुड़के ऊपर सर्प इकट्ठे होकर आ पड़े हैं ॥ १०५ ॥ तब मंत्रीने मस्तक नमाकर निवेदन किया, महाराज सचमुचमें राजा मधु बड़ी जंगी सेना लेकर आया है और उसने नगरको वेढ़ लिया है ॥ १०६ ॥ उसके भयसे मनुष्योंने शहर कोटके कपाट जड़ लिये हैं और वह अपनी सेनासहित नगरके बाहर डटाहुआ गर्ज रहा है, ॥१०७॥ यह समाचार सुनते ही भीमराज कोपायमान हुआ और घमण्डमें चकचूर होकर बोला, मंत्री! मेरे नगरके निवासी क्या इतने कायर और डरपोक हैं? उनसे कह दो कि, कपाट न जड़ें ॥ १०८ ॥ ऐसे क्षुद्रके आनेपर कपाट जड़ देना निपट अनाड़ीपना है! मैं अभी शहरके बाहर जाकर उससे युद्ध करता हूं ॥१०९॥ ऐसा कहकर और तत्काल बड़ी सेना साथमें लेकर शूरवीरताके शब्दोंकी गर्जना करनेवाला राजा भीम झपाटेसे नगरके बाहर निकल पड़ा ॥ ११० ॥

चार प्रकारकी सेना (हाथी सवार, घोड़े सवार, रथ सवार, और प्यादे) सहित राजा भीमको नगरके बाहर आया देखकर महापराक्रमी बलवान् राजा मधु अपनी सेनासहित तयार हो गया, ॥ १११ ॥ थोड़ी ही देरमें दोनों ओरकी अतिशय उद्धत, मदोन्मत्त, और शूरवीर घटाटोप सेना सुसज्जित होकर खड़ी हो गई! ॥ ११२ ॥ दोनों ओरके बाजोंके उच्चशब्दोंसे बन्दि जनों (भाटों) के जयजयकारके शब्दोंसे, रथोंके चीत्कार शब्दोंसे घोड़ोंके हिनहिनानेसे, हाथियोंकी गर्जनासे! सुभटोंकी खिलखिलार हंसोसे और धनुषोंके टंकोरके शब्दोंसे, वहां कानोंसे कुछभी सुनाई नहीं पड़ता था ॥ ११३–११४ ॥ ऐसे महाविकराल युद्धके भयंकर शब्दोंको सुनकर कायर पुरुषोंके हाथमेंसे युद्धके शस्त्र गिरने लगे, और शूरवीरोंके शरीरमें हर्षके रोमांच उठने लगे ॥ ११५ ॥ दोनों सेनामें परस्पर हुंकारके शब्दोंसे, बध करनेसे तथा चोट मारनेसे घोर युद्ध हुवा ॥ ११६ ॥ खड्ग, कुंत, बाण, तीर, चक्र, मुद्गर, किर्चा, नाराच, (लोहम-

यीबाण) भिंदिपाल, (गोफण,) गदा, हल, शक्ति, मूशल, भाला, तलवार, लाठी, मुष्ठी इत्यादिसे बड़ा भयानक युद्ध हुआ ॥ ११७–११८ ॥ जिससे संग्रामकी भूमि समुद्रको उपमाको प्राप्त हुई, ! समुद्रमें मनोहर जल तरंगें उठती हैं और संग्राममें घोड़े क्रीड़ा करते हैं, समुद्रमें लहरोंके उछलनेसे फेन उत्पन्न होते हैं और संग्राममें स्वच्छ–श्वेत–चमर ढुलरहे हैं, समुद्र, किनारेके पर्वतोंके टुकड़े २ कर डालता है. और संग्राममें पर्वतके समान उन्नत हाथियोंके शस्त्रोंद्वारा खण्ड २ होरहे हैं, समुद्रमें अनेक प्रकारके मोती निकलते हैं और संग्राममें हाथियोंके मस्तक खण्ड खण्ड होनेसे गजमुक्ता (मोती) निकल रहे हैं, समुद्रमें अनेक रत्न उत्पन्न होते हैं और संग्राममें योद्धाओंके मुकटोंमेंसे टूटकर अनेक रत्न गिररहे हैं, समुद्रमें मगरमच्छ होते हैं और संग्राममें हाथियोंके कटेहुए पांव हैं वेही मगरमच्छ सदृश हैं। समुद्रमें मछलियां होती हैं और संग्राममें घोड़ोंके छिन्नभिन्न चरण हैं, वेही मीनके समान हैं, समुद्रमें कछुवे होते हैं और संग्राममें सुभटोंके कटे हुए मस्तक जो लोहूमें गिर रहे हैं वेही कछुवे हैं, समुद्रमें काई होती है और संग्राममें सुभटोंकी आंतें मांस अस्थिआदिही सेवाल हैं, समुद्र जलसे भरपूर रहता है और संग्रामभूमि रुधिरसे डवाडव भर रही है ॥ ११९–१२२ ॥ इन सबपदार्थोंसे समस्त सेना महासमुद्रकी समानताको प्राप्त हुई और उसमें अनेक सुभटोंके प्राण विनाशको प्राप्त हुए ॥ १२३ ॥ इसप्रकार महायुद्धमें अयोध्यापति महाराज मधुने भीमराजका पराजय किया–और उसे दैवयोगसे जीवित बांधलिया !, चारों ओर जयजयकार होने लगा ! राजा मधु शत्रुको वशकरके और फिर उसे दूसरे देशमें छोड़कर तथा उसके स्थानमें अपने शूरवीर कुलागत सामन्तोंको छोड़कर अपनेको कृतार्थ समझता हुआ अयोध्यापुरीकी ओर रवाने हुआ ॥ १२४–१२६ ॥

संग्राम भूमिसे लौटते समय मार्गमें अनेक देशोंके राजा मधु महाराजाके पुण्यके प्रभावसे अनेक प्रकारकी भेटें ले लेकर मिलानेको आये, सो उन्हें अपना शासन स्वीकार कराके आज्ञाकारी बनाके निज-निज देशमें स्थापित करके मधु राजा आगे बढ़े। उस समय राजा मधुने पहली बात याद करके अपने

मंत्रीसे कहा, कि मैं अब वटपुरको सेना सहित अवश्य जाऊंगा, जहां कि चित्तको हरनेवाली चन्द्रप्रभा सुन्दरी विद्यमान है ॥ १२७–१२९ ॥ तब मंत्री चित्तमें विचारने लगा, क्या किया जावे ? राजा अभी-तक चन्द्रप्रभाको नहीं भूला है। अब मैं क्या करूं ? वास्तवमें यह परस्त्रीपर अत्यन्त मोहित हो रहा है ॥ १३० ॥ तब मंत्रीने उत्तर दिया, महाराज ! जो हुकुम, सेनासहित वटपुरको ही चलते हैं, आप चित्त-में चिन्ता न करें ॥ ३१ ॥ तब मंत्रीने सेनापतिको अलग बुलाकर कहा कि रात्रिको तुम वटपुरको दूर एक बाजूही छोड़कर सीधे सेनाको कोशलापुरी (अयोध्या) के तरफ ले जाना ॥ ३२ ॥ सेनापतिने वैसा ही किया। अर्थात् रात्रिके समय राजा मधुसहित समस्त सेनाको वटपुरके रास्तेको छोड़कर कौशल नगरीके तरफ ले गया ॥ ३३ ॥

प्रातःकाल होते ही अयोध्या नगरीके पास पहुंचे। जब नगर निवासियोंको मधुराजाके शुभागमन होनेके समाचार पहुँचे, तब वे तोरण–ध्वजादिकसे नगरको सुशोभित करने लगे ॥ ३४ ॥ सब दूकानें सजाई गईं और मार्गमें पुष्प फैलाये गये। अयोध्याके अनेक शेठ साहूकार मंगलीक सामग्री भेंटमें लेकर राजाके सन्मुख आये और नयरूपी लक्ष्मीसे युक्त मधुराजासे मिले ॥ ३५–३६ ॥ जब राजाने उन्हें अपने नगर निवासी देखकर विचारा तो मालूम हुआ कि यह तो अयोध्यापुरी है, इससे राजाके चित्तमें अत्यन्त दुःख चिन्ता और कोप उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ उन्मत्त होकर वह अपने मंत्रीसे बोला, हे मूढ़ ! तूने मेरेसाथ यह क्या छलवाली बात दुश्चरित्र किया ॥ ३८ ॥ जो खोटा अभिप्रायकर वटपुरको छोड़कर मुझे यहां ले आया। यह तूने बड़ा प्रपंच रचा। तू बड़ा असत्यवादी जान पड़ता है ॥ ३९ ॥ यह सुनकर प्रधान मंत्रीने सेनापतिको बुलाकर पूछाकि–तुम वटपुरके रास्तेको छोड़कर इस रास्तेसे अपनी सेना बिना आज्ञाके कैसे ले आये ? ॥ ४० ॥ तब सेनापति कांपने लगा और हाथ जोड़कर विनयसे बोला, स्वामिन् ! क्षमा करो, मैं रात्रिके अंधकारके कारणसे मार्ग भूल गया ॥ ४१ ॥ मैं अजान-पनेसे सेना अयोध्याके रास्तेसे ले आया मैंने यह जान बूझकर अपराध नहीं किया है। इसलिये मेरी

भूलको आप क्षमा करो ॥ ४२ ॥ राजा सेनापतिके वचन सुनकर चुप हो रहा उसका अन्तरंग चिन्ता-ज्वालासे दग्ध हुआ, बाहर वन्दियोंकी जय ! जय ! ध्वनि होने लगी । इसप्रकार राजाने महान् उत्सव-सहित राजमार्गसे अयोध्यानगरीमें प्रवेश कर अपने महलमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥

राजाको आया देखकर नगरवासिनी तथा महलकी सुहागन स्त्रियोंने गीत नृत्यादि सैंकड़ों प्रकारके उत्सव किये । परन्तु उनसे शून्य हृदय राजाका मन रंजायमान न हुआ ॥ ४४-४५ ॥ आसन, भूषण, शयन, अशन, पान, सुगंधी, पुष्पोंकी माला तथा अनेक प्रकारके अत्तर फुलेलादि और नवयौवनशालिनी, सर्व शुभलक्षण धारिणी हाव भाव विलास विभ्रम मण्डित उन्नत कुचवाली, विनयसहित मस्तक झुकाईहुईं स्त्रियां ये सब वस्तुएँ राजा मधुको चन्द्रप्रभा मोहनीके वियोगमें हालाहल-विषके समान दीख पड़ती थीं ॥ ४६-४८ ॥ इसप्रकार राजातो अपने महलमें तिष्ठा और मंत्रीगण अपने २ घरमें चुपचाप बैठ गये । राजाके पास जावेंगे तो वह उसी चन्द्रप्रभाके गीत गायेगा और हमें उलहने देगा, ऐसा जानके उसकेपास न जाना ही उन्होंने ठीक समझा ॥ ४९ ॥ चिन्ताके मारे राजा मधुका शरीर दुर्बल हो गया और उसे रोगोंसे पीड़ा होने लगी । कामज्वरसे तप्तायमान होनेके कारण उसे कहीं क्षणमात्र भी साता न हुई ॥ ५० ॥

अथानन्तर सर्व ऋतुओंमें श्रेष्ठ वसन्त ऋतुका आगमन हुआ । राजा मधुको चन्द्रप्रभाके वियोगमें यह ऋतु घावपर नमक छिड़कनेके समान मालूम हुई ॥ ५१ ॥ वनमें माकन्द जातिके (आम) वृक्षोंमें मंजरी आगई और कदम्बके झाड़ोंमें फूलोंके गुच्छेके गुच्छे लटकने लगे ॥ ५२ ॥ इसी प्रकार अशोक बकुलआदि नानावृक्ष अपने समयानुकूल भलीभांति फूल गये ॥ ५३ ॥ सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं, और उनपर भ्रमर समूह गुंजायमान होरहे हैं । वे त्रिलोकविजयी कामदेवके छत्रके समान शोभित होते हैं ॥ ५४ ॥ कोयलका कूकना वही वाजोंका शब्द है, भ्रमरोंकी झंकार वही गीतोंकी सुरीली आवाज है, और मलयाचलका सुगन्धित वायु है, सो ही गन्धर्व गुरु बनकर मानो वनकी श्रेणियोंको

नृत्य कराता है ॥ ५५–५६ ॥ ऐसा कोई भी वृक्ष नहीं दीख पड़ता था, जिसमें पुष्प न लगे हों, और ऐसे कोई पुष्प न थे, जिनपर भ्रमर गुंजायमान न हों ॥ ५७ ॥ इसप्रकार जब वसन्तऋतु पृथ्वीपर फैल रही थी तब राजा मधु कामके बाणोंसे सर्वथा घायल हो रहा था ॥ ५८ ॥ उसकी कामाग्निको मोतियोंके हार, घनसार, कमल, केलेके पत्ते, तथा ताड़पत्रके पंखेकी हवा, चंदन, चन्द्रमाकी चांदनी आदि संसारमें जितने शीतोपचार हैं, कोई भी शमन न कर सके ॥ ५९–६० ॥ सो ठीक ही है कामिनीकी विरहज्वालासे संतप्त पुरुषके लिये कमल–चन्दनादि कौन २ औषधियां विषके सदृश नहीं हो जाती हैं? ॥ ६१ ॥ राजा मधुको, चन्द्रप्रभाकी वियोग अग्निमें इसप्रकार तप्तायमान देखकर कुटुम्ब–परिवारके सब मनुष्य शोक करने लगे ॥ ६२ ॥ परन्तु मंत्रीने लज्जा वा भयके वशसे राजाको मुंहतक नहीं दिखाया उधर राजाने वियोगकी आगसे पीडित हो खानापीना सब छोड़ दिया ॥ ६३ ॥

एकदिन राजा मधुके जीवनकी आशा न देखकर कुटुम्बी जनोंने उसे जमीनपर सुला दिया। जब किसीने जाकर प्रधान मंत्रीसे ये समाचार कहे ॥ ६४ ॥ और मंत्रीने ज्योंही यह वृत्तान्त सुना, त्योंही उसस्थानपर आया, जहां धरनीपर राजा बेचैन पड़े हुए थे ॥ ६५ ॥ निकट जाकर मंत्रीने विनयसे नमस्कार किया और सम्मुख बैठ गया यह देख राजाने उसके गलेमें अपनी दोनों भुजायें डाल दी, और पूछा मंत्री! मेरे मरनेपर तेरे चित्तका समाधान कैसे होगा? ॥ ६६–६७ ॥ तब वह चतुर मंत्री चिन्ता करने लगा, कि राजा घोर दुःखमें पड़ा हुआ है, अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं? किससे पूछूं? और क्या कहूं? ॥ ६८ ॥ यदि मैं छलबल करके हेमरथ राजाकी चन्द्रप्रभा प्रियाको उड़ाके ले आऊं, तो यह बनीबात है कि, राजा मधुकी अपकीर्ति जगतमें फैल जायगी ॥ ६९ ॥ और यदि मैं उस नवयौवनाको लाकर इससे न मिलाऊं, तो राजा प्राण तज देगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७० ॥ जब ये दोनों ही कार्य विरुद्ध हैं, तब मुझे क्या करना चाहिये? इसप्रकार बहुत समयतक चिन्तवन करके यह निश्चय किया कि, बने जिस तरह मुझे राजाकी इच्छा पूरी करनी चाहिये। क्योंकि जब राजाका ही विनाश हो

जायगा, तो मेरा सब कार्य बिगड़ जायगा ॥ ७१-७२ ॥ कोई न कोई उपाय करके मुझे चन्द्रप्रभाको ले आना ठीक है। इसका पूरा २ विचार करके सचिव शिरोमणिने मधुनृपतिसे कहा ॥ ७३ ॥ महाराज ! आप क्यों इतने दुःखित, चिन्ताक्रान्त और उदासीन होरहे हो ? शोच फिकर छोड़ो, सचेत और स्वस्थ हो जाओ, मेरे वचनोंपर विश्वास रक्खो मैं आपकी मनमोहनी हृदयवासिनी चन्द्रप्रभाको अवश्य मिलाऊंगा ॥ ७४ ॥ मैंने यह समझा था कि, अपने घर आके राजकार्यमें रत होके आप इस अपयशके कार्यको भूल जाओगे, परन्तु हेमरथकी प्राण वल्लभाको आप अभीतक नहीं भूले और मुझे दीखता है कि उसके विना आपके प्राणपर बड़ाभारी विघ्न उपस्थित होगा ॥ ७५-७६ ॥ इससे अब मैंने निश्चय करलिया है कि, महाराजकी इच्छा पूरी करनीही होगी, जो कुछ दैवयोगसे यश अपयश होगा, सहलिया जावेगा ॥ ७७ ॥ परन्तु प्रभो ! अब आपको धीरज धारणकर सुखसे तिष्ठना उचित है, क्योंकि जो कार्य स्वस्थतासे होता है वही कुछ शोभनीक दीखता है ॥ ७८ ॥ मंत्रीके मनोहर वचन सुनतेही राजाके चित्तमें कुछ शान्ति हुई उसने चन्द्रप्रभाके विरहसे उत्पन्न होते हुए दुःखको दबा लिया ॥ ७९ ॥ मंत्रीने भी राजाके कार्यको सिद्ध करनेका दृढ़ संकल्प करके सारी पृथ्वीमें अपने दूत भेजे और उनके द्वारा कहला भेजा कि—जो २ राजा, मधुराजाधिराजके शासनको पालन करनेवाले हैं उन्हें अपनी रानियोंके सहित शीघ्र आना चाहिये कारण राजा मधु इस वसन्त ऋतुमें सस्त्रीक राजाओं और अपनी रानियोंसहित उपवनमें जाकर क्रीड़ा करेंगे ॥ ८०-८२ ॥ उस नृपचन्द्र अर्थात् मधुराजाके आमंत्रणको पाय और उनकी आज्ञाको सिरपर धारणकरके सम्पूर्ण राजागण अपनी २ प्राणप्यारियोंसहित हर्षित हृदयसे अयोध्या नगरीमें आ पहुंचे ॥ ८३ ॥

इसके पश्चात् एक पत्र प्रेमके सुन्दर अक्षरोंसे लिखकर परम विचक्षण दूतके हाथ राजा हेमरथके पास भेजा गया ॥ ८४ ॥ जिसे पढ़कर और राजा मधुके स्वयं हाथका लिखा हुआ जानकर राजा हेमरथ बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपनी चन्द्रप्रभा रानीको बुलाकर बोला, देखो ! देखो ! प्रिये ! राजाधिराज मधु निश्चयकर

मेरी भक्तिसे अत्यन्त संतुष्ट हैं, इसी लिये उसने मुझपर कृपादृष्टिकर दूतके हाथ यह प्रेम पत्र भेजा है सो तुम भी इसे अपने हाथमें लेकर बांचो तब रानी चन्द्रप्रभाने उस पत्रको अपने हाथमें लिया और बांचा ॥ ८५–८७ ॥ पत्रमें इसप्रकार लिखा थाः—

"स्वस्तिश्री वटपुर रमणीक नगर विराजमान सर्वोपमायोग्य राजा हेमरथके प्रति कुशल प्रश्नके पश्चात् (राजाधिराज मधु) लिखते हैं कि, तुम्हारी भक्तिसे हम बहुत प्रसन्न हैं। तुम हमारे प्रियमित्र हो, इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हारे समान हितैषी मेरे राज्यमें दूसरा सामन्त नहीं है। जो मेरा राज्य है, उसे तुम अपना ही समझो। तुम संकोच छोड़ो और हमसे रंचमात्र भी भेदभाव मत रक्खो। ऐसा जानकर और हमपर प्रेमभाव धारणकर तुम्हें अपनी प्राणप्रियाके साथ यहां अवश्य आना चाहिये। कारण हमारा इस वसन्त ऋतुमें महोत्सवके साथ वनमें जाकर राजपुत्रोंके साथ एक मास पर्यन्त क्रीड़ा करनेका पक्का विचार है। तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषासे यहां अनेक राजा अपनी २ प्राणवल्लभा सहित पधारे हैं। इसलिये बहुत शीघ्र अपनी चन्द्रप्रभा प्रियाको साथमें लेकर आपको यहां आना चाहिये" इति ॥ ८८–९४ ॥

पत्र पढ़नेपर चन्द्रप्रभाने विनयके साथ राजा हेमरथसे विनतीकी कि, हे स्वामिन्! मेरी बात ध्यान-से सुनो? राजाओंका सेवकोंपर अत्यन्त आदरका दिखाना भी ठीक नहीं होता है (यह कोई जाल रचा गया है, राजा गूढ़ नीतिमें गोता मारते हैं, उनका कोई भी कार्य बिना प्रयोजन नहीं होता) ॥ ९५ ॥ इसलिये हे नाथ! आप चाहें तो पधारें परन्तु मुझे साथ न लेचलें, कारण (आरती उतारते समयही मैं राजाकी अनीति दृष्टि जानगई हूं) मैं वहां जाऊंगी तो वह हरण किये बिना नहीं छोड़ेगा ॥ ९६ ॥ तब राजा हेमरथने उत्तर दिया, हे मूढ़मते! तूं क्या ऐसा निन्दित वाक्य कहती है? तेरेसमान सुन्दर, राजा मधुके यहाँ हजारों दासियें हैं ॥ ९७ ॥ तब दूरदर्शी रानीने प्रत्युत्तर दिया, स्वामिन्! मैंने जो उचित समझा सो कह दिया,। जो भवितव्यमें लिखा है वह आगे तुम्हें मालूम होजायगा, ऐसा कहकर चुप

होगई ॥ ९८ ॥ तब राजा बोला हे मृगेक्षणे! सब अच्छा ही होगा; तू विकल्प न कर मेरेसाथ अवश्य चल ॥ ९९ ॥ इस प्रकार राजा हेमरथ चन्द्रप्रभाको समझा बुझाके और अनेक दासी दास परिवार अपनेसाथ लेकर बहुत जल्दी वटपुरसे अयोध्याको रवाने हो गया। चलते समय अनेक अनिष्ट शकुन हुए, तौ भी "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" होनेके कारणसे राजाने उस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥ २०० ॥

जब राजा हेमरथ अयोध्या नगरीके पास पहुंचे, तब राजा मधुने बड़े विनयके साथ अपने परिवार सहित उसके सन्मुख जाकर अत्यन्त प्रेमसे हेमरथको गले लगा लिया और बहुत बढ़िया सजे धजे स्थानमें उसे रानी चन्द्रप्रभा सहित ठहरा दिया ॥ २०१-२०२ ॥ और षट्रसके व्यंजनोंसे वा आदर सत्कारसे राजा हेमरथको अतिशय प्रसन्न किया। उसके अन्य सब लोगोंका भी अच्छा सन्मान किया गया ॥ ३ ॥

राजा मधुने यह देखकर कि बहुतसे राजा आ गये हैं बनको शृङ्गारित कराया। राजाओंको फँसानेके लिये यह सब जाल फैलाया गया सो ठीकही है ऐसा कौनसा कार्य है जो मायाकेद्वारा सिद्ध नहीं होता? ॥ ४ ॥ वह वन फूलोंकी परागरजसे सुगंधित और मदोन्मत्त कोयलकी कूक तथा भौंरोंकी झंकारसे सुशोभित हो गया। सिंदूरादि पदार्थोंसे रचे हुए बनावटी पर्वतोंसे रमणीक दीखने लगा। सुगंधित रजके बिखरानेसे उसकी शोभा बढ़ गई। इसके सिवाय हरिचन्दनकी कीचड़से, कपूर केशरादि सुगंधित वस्तुओंसे भरी हुई सैंकड़ों वापिकाओंसे, सोने चांदीके रंगबिरंगे बंधनवारोंसे तथा और भी नानाप्रकारोंसे वह उत्तम वन विभूषित किया गया ॥ ५-८ ॥

जब राजा मधुने सुनाकि, बन सज धजके तयार हो गया तब वह अपनी रनवासकी रानियोंसहित तथा सामन्तों वा उनकी स्त्रियोंसहित परम प्रसन्न चित्तसे वन क्रीड़ाको रवाने हुवा ॥ ९ ॥ सो वहां लताओंके रमणीय पत्तोंसे, फूलोंके पतनसे, भौंरोंकी झंकारसे, कोयलोंकी मधुरध्वनिसे, मंजरी (मौर)

युक्त आमके वृक्षों और मुकुलित कलियोंसे, वह वन राजाको आया जान विविध अर्घ देरहा है, ऐसा जान पड़ने लगा ॥ १०–११ ॥ इसी वनमें राजा मधुने केशर मिश्रित जल पिचकारियोंमें भरकर अतिशय मनोहर क्रीड़ा की, तो भी उस विरहीको कहीं रंचमात्र सुख न हुआ ॥१२–१३॥ अन्य जो २ राजा थे, वे भी अपनी २ रानियोंके साथ अनेक प्रकारकी रंगबिरंगी क्रीड़ा करने लगे ॥ १४ ॥ इसप्रकार राजा मधु उस वसन्तके श्रेष्ठ समयमें सब लोगोंके साथ एक मास पर्यन्त खूब क्रीड़ा करता रहा ॥ १५ ॥ पश्चात् महोत्सवके साथ अयोध्या नगरीमें आकर वह अपने महलमें तिष्ठा ॥ १६ ॥ और समस्त राजाओंको वस्त्र असवारी आभूषणादिकसे संतुष्ट करके स्त्रियोंसहित शीघ्रतासे विदा करने लगा ॥ १७ ॥ अन्तमें उसने राजा हेमरथसे बुलाकर कहा, मित्र! अभी मेरेपास तुम्हारे तथा तुम्हारी रानीके लायक गहने तयार नहीं हैं, इसलिये तुम अपने नगरको शीघ्र चले जाओ। कारण, विना स्वामीके देशको सूना देखकर वैरी अपना अधिकार कर लेते हैं ॥ १८–१९ ॥ हे मित्र! जब मैं तुम्हारे वटपुरमें आया था, तब तुमने मुझे जी जानसे सन्तोषित वा सन्मानित किया था! इसलिये मेरी भी ऐसी इच्छा है, मैं तुम्हारे वा तुम्हारी रानीके योग्य आभूषणादि भेंटमें प्रदान करूं ॥ २० ॥ इसलिये तुम बेखटके अपनी चन्द्रप्रभा रानीको यहीं छोड़जाओ मैं उत्तम आभूषण देकर उसे तुम्हारे पीछे शीघ्रही विदा करदूंगा ॥२१॥ आपके तथा आपकी प्रियाके योग्य अलंकार तयार नहीं हैं, सुनार गढ़ रहे हैं सो बहुत जल्दी बने जाते हैं ॥ २२ ॥ भोले राजा हेमरथने, उस कामीके वचन सच्चे जानकर कहा, बहुत अच्छा! जैसी आपकी इच्छा, और नमस्कार करके वह अपनी प्रिया चन्द्रप्रभाके पास आकर बोला, हे देवी! मेरी बात सुन, राजा मधुने मुझे तो विदाकर दिया है, इसकारण मैं तो वटपुरको जाता हूं और तुझे विश्वासपात्र वृद्ध मंत्री नौकर चाकरोंकी निगरानीमें यहीं छोड़ जाता हूं। सो हे प्रिये! तू आभूषणादि लेकर जल्दी चली आना। राजा मधु अपनी पहली भक्तिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न है। इसीलिये उसने तुझे यहां छोड़ जानेके लिये कहा है, ॥ २३–२६ ॥ सो तू यहीं ठहर, मैं जाता हूं। राजाके वचनोंको सुनकर रानी चन्द्र-

प्रभाने दुःखित हृदय होकर उत्तर दिया ॥ २७ ॥ हे नाथ! मैं समझ चुकी कि, एक तो आप अपने अभाग्यके वशसे मुझे यहां ले आये हैं, और दूसरे अकेली छोड़कर घर जाते हैं। इससे अब आप निश्चय समझ लो, कि राजा मधुने मुझे अपनी स्त्री बनाकर अपने महलमें ही स्थापित कर ली है! अर्थात् राजा मधु बलात्कार मुझे अपने रणवासमें दाखिल कर लेगा और अपनी स्त्री बना लेगा। पीछे आप बहुत पछताओगे तब राजा हेमरथने कहा, हे मूढ़मती, तू बड़ी भोली दीख पड़ती है, तू जीमेंसे ऐसा सन्देह निकाल डाल, जैसा तू समझ रही है, वैसा उनका दुष्ट अभिप्राय नहीं है। राजा इस समय मेरेपर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। मैंने इसके जीकी खोटी चेष्टा आजतक नहीं देखी है। इसलिये चिन्ता न करके यहां सुखसे रहना। और मेरे वटपुर पहुंचते ही शीघ्रही आ जाना ॥ २८–३२ ॥ रानी चन्द्रप्रभाने फिर कहा, हे स्वामी! आप मधुके मीठे २ वचनोंमें मत फँसो—इसका फल बहुत ही कटुक होगा उस पीछे आपकी आंखें खुलेंगी और हाथ मल मलकर पछताओगे। इसप्रकार रानी चन्द्रप्रभाने बहुत कुछ समझाया, परन्तु राजा हेमरथकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, वह रानीके वचनोंपर बिलकुल ध्यान न देकर उसे वहीं छोड़कर अनेक अपशकुन होने परभी वटपुरको चला गया। सो ठीक ही है होनहारका कोई प्रतीकार नहीं है ॥ ३३–३५ ॥

राजा हेमरथके चले जानेपर क्या हुआ, सो सुनो। राजा मधुने अपने मंत्रीको बुलाया और मोहान्ध होकर उससे कहा—मेरी प्राणप्यारी कमलनयनी चन्द्रप्रभाको ले आओ, देर न करो। तब मंत्रीने उत्तर दिया, महाराज! कुछ देर और ठहरिये, जरा रात्रिका समय तो होने दीजिये। तब राजाके चित्तमें कुछ सन्तोष हुआ और ज्यों त्यों उसने दिवसकी घड़ियां पूरी की ॥ ३६–३८॥ अथानन्तर सूर्य राजा मधुको दुःखी देखकर उसपर कृपा करके मानो वह धीरे २ अस्ताचलकी ओर चला॥ ३९ ॥ और चकवा चकवीका वियोग करता हुआ, कमलोंको संकोचित करता हुआ, कामी जनोंको संतोषित करता हुआ तथा पश्चिम दिशाको रक्त करता हुआ, सूर्य अस्त हो गया। उसके अस्त होनेपर संध्याने आकाशरूपी

आंगनमें पांच रंग धारण कर लिये ॥ ४०–४१ ॥ और जो अंधकार सूर्यके प्रतापके कारण डरकर पहाड़की गुफाओंमें छुप गया था, सो मौकापाकर अपना राज्य जमानेके लिये निःशंक बाहर निकला और दशों दिशाओंमें फैल गया ॥ २४२ ॥ जिससे ऊंचा, नीचा, चलायमान, स्थिर, सम, विषम तथा सब प्रकारके वर्ण अंधकारके फैलावसे समान हो गये एकसे दिखने लगे जैसे निंदित राजाके आगे बुरे भले, ऊंचे नीचे सब समान होजाते हैं ॥४३–४४॥ रात्रिसमय आकाशमें तारागण दीखने लगे, सो ऐसे शोभायमान हुए मानों नीलमणिकी भूमिपर मालतीके फूल विखरे हुए हैं ॥ ४५ ॥ और चन्द्रमाका उदय हुआ जिसने केतकीके पुष्पके समान श्वेतता युक्त अपनी चांदनी चहुंओर फैलाकर पृथ्वीको सफेदकरदिया। चंद्र महाराजने जगतको अंधकारसे पीड़ित देखकर प्रजाके हितार्थ अपने किरणरूपी बाण चहुँओर छोड़े ॥ ४६–४७ ॥ इसप्रकार जब रात्रिके पहले पहरमें चन्द्रमाकी चांदनी खिल रही थी, तब मंत्रीकी आज्ञासे राजाने एक दूतीको बुलाकर अपनी प्रियाकेपास भेजी ॥ ४८ ॥

जब चतुरदूती राजा हेमरथकी रानी चन्द्रप्रभाके पास पहुंची, तब उसने पास जाकर विनय सहित प्रणाम किया और कहा, हे देवी ! सावधान चित्त होकर राजा मधुने जो सुन्दर वचन मेरेद्वारा कहला भेजा है, सो सुनो ॥ ४९–५० ॥ तब रानी चन्द्रप्रभा बोली—कि ! जो कुछ तुम्हारे स्वामीने कहा हो, सुनाओ। दूती विनयपूर्वक बोली, ॥ ५१ ॥ राजा मधु महलमें विराजे थे, कि अकस्मात् राजा हेमरथके दूतने आकर सविनय निवेदन किया कि, राजा हेमरथने मेरे मुखसे यह कहलाया है कि, मेरी रानी चन्द्रप्रभाको बने जिसप्रकार मेरे पिछलग वस्त्राभरणसे सुसज्जित करके रवाना कर दो। यदि मुझपर आपका सच्चा स्नेह है, तो विलम्ब न करो ॥ ५२–५३ ॥ सो दूतके वचन सुनकर राजा मधुने आपको आजही विदाकर देना उचित समझा है और मेरे साथ आपको वहां बुलाया है, जो गहने आपके लिये बनवाये हैं, सो तो अभी तयार नहीं हैं; इसलिये राजा मधु अपनी स्त्रियोंके गहनेही आपको भेंटमें देंगे और आपको ॥ ५४ ॥ अपने प्रीतमके पास सबेरेही भेज देंगे। इसलिये—मेरे साथ राजा मधुके महलमें

शीघ्रही चलो ॥ ५५ ॥ दूतीके वचन सुनकर रानी चन्द्रप्रभा चिन्ता करने लगी कि, अब मैं क्या करूं ? यदि मैं राजा मधुकेपास जाती हूं, तो वह अपना मनोरथ सिद्ध करेगा अर्थात् मुझे अपनी स्त्री बना डालेगा । और यदि नहीं जाती हूं, तो राजा क्रोध करेगा । इसकारण चलनाही ठीक है । लाचार ठंडी सांस खींचती, आंसू टपकाती हुई अपने वृद्ध नौकरों तथा उस दूतीके संग वह मृगाक्षी राजाके महलको रवाने हुई ॥ ५६–५८ ॥

उससमय राजा मधु महलके सातवें खण्डमें तिष्ठे थे । इसकारण दूतीने रानीके नौकर चाकरोंको तो नीचेही छोड़ दिया और वह चन्द्रप्रभाको लेकर महलके ऊपर गई और राजासे मिलाकर अपने लौट आई ॥ ५९–६० ॥ रानी राजाको अकेला बैठा देखकर बड़ी चिन्तातुर हुई । उसका शरीर थर थर कांपने लगा । लज्जाके कारण उसने राजासे कुछ न कहा । (मौन धारणकर खड़ी रही) तब राजाने स्वयं उसे हाथ पकड़कर जबरदस्ती अपनी सेजपर बिठालिया । और मनोहर परिहासयुक्त चापलूसीके वचन कहना प्रारंभ किया । हे सुन्दरी ! ठंडी हो ! प्रसन्न हो ! इससमय तू हर्षके स्थानमें सोच क्यों करती है ? ॥ ६१–६४ ॥ जो तेरा हेमरथ राजा है, वह मेरा ही आज्ञाकारी अनुचर है । यह तेरा बड़ा सौभाग्य है, जो तू नीची दशाको छोड़कर अब मेरी प्राणप्यारी बनती है । इस बातकी तो तुझे बड़ी खुशी मनानी चाहिये । राजा मधुके ऐसे वचन सुनतेही रानी चन्द्रप्रभाने उत्तर दिया ॥ ६५–६६ ॥ हे महाराज ! आप उत्तम कुलके उपजे, धर्मात्मा, न्यायवन्त और जगत्प्रसिद्ध होकर ऐसा महानिंद्य कार्य क्यों करना चाहते हो जब बाड़ ही खेतको खाने लगी, तब कौन रक्षा कर सकता है ? ॥ ६७ ॥ दूसरेकी स्त्रीका सेवन जगत्निंद्य है । ऐसे कार्यको ज्ञानवान वा न्यायवान पुरुष कदापि स्वीकार नहीं करते । और जो कुलीन सती स्त्रियें हैं, वे परपुरुषको, (चाहे वह कामदेवके तुल्य रूपवान क्यों न हो) कभी अंगीकार नहीं करेंगी और दुराचारकर अपने भर्तारको कभी नहीं ठगेंगी ॥६८॥ ऐसे नानाप्रकार के वचनोंसे रानी चन्द्रप्रभाने राजा मधुको समझाया, परन्तु उस कामबाणसे बेधित होकर कामान्ध राजा जबरदस्ती

रानी चन्द्रप्रभासे रमण करने लगा ॥ ६९ ॥ जब राजाने अपने मनोहर वचनोंसे, हँसी मस्करीसे, चुम्बन, विरुत, रत, कुटिलदृष्टिआदि कामचेष्टाओंसे रानी चन्द्रप्रभाको कामासक्त करदिया, तब वह भी अपने भर्तार हेमरथकी याद भूलगई और आनन्दमें मग्न होकर उसने अंगोंके संकोच, किङ्किणीके शब्द, मनोहर हावभाव विलास, विभ्रम, गीत, नृत्य, कथादिसे राजा मधुके चित्तको रंजायमान करदिया तथा सुरत लीलाके गाथा दोधक आदि कहकर भांति २ के विनोदसे राजाने भी उस भामिनीको तल्लीनकर डाली ॥ ७०–७२ ॥ और मोहके वशीभूत होकर उसने चन्द्रप्रभाको अपने महलमें रख लिया, तथा इस इच्छित पदार्थको प्राप्तकर अपने राज्यको सार्थक गिनने लगा ॥ ७३ ॥ उसने चन्दन अगुरुआदि शीतल पदार्थोंसे जलकी वापिका सुगंधित कराई और उसमें रानी चन्द्रप्रभाके साथ मनोवांछित मनोहर क्रीड़ाकी और इसी प्रकार इनका अनेक वनों उपवनोंमें, नदियोंके निकट पर्वतोंकी तलहटीमें, विहार करते, मौज उड़ाते और सुन्दर झूलोंमें झूलते हुए, बहुतसा समय व्यतीत हो गया । परन्तु—सुखसागरमें मग्न होनेसे उन्होंने उस बीतते हुए कालको न जाना निदान अतीव मोहित होकर मधुराजाने चन्द्रप्रभाको अपनी पटरानी बनाली ॥ ७४–७६ ॥

अब राजा हेमरथकी क्या दशा हुई सो सुनो:—जिन मंत्री वा वृद्ध नौकरोंको, राजा हेमरथ वटपुरको जाते समय रानी चन्द्रप्रभाके साथ अयोध्यामें छोड़गया था, वे यह देखकर कि मधुने चन्द्रप्रभाको अपनी रानी बना लिया है, निराश होकर वटपुरको चले आये ॥ ७७ ॥ और राजा हेमरथको सब वृत्तान्त कह सुनाया । जब राजाने अपनी प्राणप्यारीका हरण सुना, तब उसका हृदय विदीर्ण होगया—मूर्च्छा खाकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, और कुछ देरतक अचेत पड़ा रहा । तब मंत्रीआदिकोंने शीतोपचार द्वारा राजाको सचेत किया ॥ ७८–७९ ॥ ज्योंही राजा सचेत हुआ, उसने क्रोधसे अपने नेत्र लालकर लिये और मंत्रियोंको हुकुम दिया, सेना तयार करो, तयार करो ॥ ८० ॥ मैं अभी अयोध्याको जाता हूं और राजा मधुको जीतकर अपनी प्राणप्यारी चन्द्रप्रभाको ले आता हूं ॥ ८१ ॥ तब मंत्रियोंने उत्तर

दिया, महाराज ! आपका जाना ठीक नहीं है । कारण मधु बड़ा बलवान है, वह अपनेसे नहीं जीता जा सकता है ॥ ८२ ॥ मंत्रियोंकी बात सुनकर राजा हेमरथ मनमें यह विचार करके कि सचमुचमें मधुका जीतना अत्यन्त कठिन है । उद्यम रहित होगया, ठंडी सांस खीचने लगा और काम पिशाचके वशीभूत हो रानी चन्द्रप्रभाको बारम्बार यादकर खेदखिन्न हो सेजपर जा पड़ा और विह्वल चित्त होगया ॥ ८३-८४ ॥ शून्यचित्त होकर कभी हंसने लगा, कभी महलमें जाने लगा, कभी सभामें आकर गाने वा रोने लगा, कभी जीमें कुछ विचारकर घर आता, और खिड़कीमेंसे इधर उधर झांकता, कभी झरोकेपर चढ़कर देखता, परन्तु उसे सब शून्यही दीखता था । रानी चन्द्रप्रभाके बिना घर सूना देखकर वह गला फाड़ २ कर रोने लग जाता । हाय हाय ! प्रिये ! दयिते ! प्राणवल्लभे ! मेरेही प्रमादसे उस दुष्टात्माने तुझे हरी है । अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किससे क्या पूछूं ? और क्या कहूं ? ऐसे तरह २ के विकल्पोंसे उसकी बुद्धि मारी गई और विचारहीन पागल होकर वह अपनी पुरीमें भ्रमण करने लगा । दुष्ट काम पिशाचके वशीभूत होकर उसने अपने कुटुम्ब, बन्धुगण, राजकाजको छोड़दिया और लड़कोंकी टोलीमें वह अकेला डांवाडोल फिरने लगा ॥ ८५-९० ॥ नगरकी गलियोंमें तथा वनमें हाय प्रिये ! हाय प्रिये ! करता हुआ चक्कर लगाने लगा, मूढ़बुद्धिको अपने वस्त्र वा वेषकी रंचमात्र सुधबुध न रही । योंही इतस्ततः भटकने लगा ॥ ९१ ॥ बिना वस्त्रके धूलिसे जिसका शरीर मलीन होरहा है, जिसके बाल रूखे हो रहे हैं । जिसके मुखकी कान्ति जाती रही है, और जिसने कंधेपर फटे वस्त्र धारण कर रक्खे हैं, ऐसी दशाको प्राप्त हो राजा हेमरथके अनेक नगरोंमें अनेक गलियोंमें फिरते २ मोहके वशीभूत होकर दैवयोगसे अयोध्यामें पहुँचा ॥ ९२-९३ ॥ वहां रास्तेमें जाती हुई स्त्रियोंको देखकर उनके पीछे दौड़ने लगता और कहने लगता, हे चन्द्रप्रभा ! हे चन्द्रप्रभा ! जरा ठहर ! जरा ठहर ! मेरी बात तो सुन ! ॥ ९४ ॥ ऐसे वचन सुनकर उसे उन्मत्त, पागल जानकर, स्त्रियें कंकर पत्थर फेंक फेंककर मारने लगीं और कई स्त्रियें डरकर दूर भागनें लगीं । जिधर जिसके पास वह जावे, वे सब इसे दूरहीसे धुत-

कार देते थे। इसप्रकार गली गलीमें, बाजारमें पागल हेमरथ डांवाडोल फिरने लगा ॥ ९५–९६ ॥

एकदिन जब रानी चन्द्रप्रभा झरोखेमें बैठी थी, तब उसकी धायने राजा हेमरथका राजमहलकी तरफ दौड़ते और हाय २ जोरजोरसे चिल्लाते हुए देखा और पहचान लिया कि, ये तो राजा हेमरथ है। उसकी निपट बुरी दशा देखकर वह अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगी ॥ ९७–९८ ॥ यह देखकर चन्द्रप्रभा बोली, हे माता! मैं तेरे रुदनको देखकर बड़ी व्याकुल हो रही हूं। इसकारण तू मुझे शीघ्र बता किस दुष्टने तेरा अपमान किया है? बिना कारण तू क्यों रोती है? ॥ ९९–३०० ॥ तब धायने उत्तर दिया, पुत्रिके! कुछभी कारण नहीं है। योंही मेरी आंखोंमें आंसू आगये हैं। जब रानीने बहुत आग्रह किया और कारण पूछा, तब धायने गद्गदवाणीसे कहा, पुत्री! तूतो सुखमें मग्न होकर अपने भर्तारको भूलगई। परन्तु तेरे प्राणप्यारे राजा हेमरथकी यह दशा हुई है कि वह तेरे वियोगमें पागल हो गया है और राज-काज छोड़कर इधर उधर मारा मारा फिर रहा है उसके साथमें नीच जातिके लड़के हैं मुझसे राजाकी ऐसी दुर्दशा देखी सुनी नहीं गई इसीसे मैं दुःखित होकर रोने लगी और कोई कारण नहीं है ॥ ३०१–३०३ ॥ रानी चन्द्रप्रभा ऐसे वाक्योंको सुनकर, जिन्हें उसने पहले कभी नहीं सुनेथे, कुपित हुई और बोली, माता! तूने अच्छा न किया, इसप्रकारके असुहावने वाक्य जिनको सुनकर मुझे दुःख उपजे, तुझे कहना उचित न था। भूलेहुए दुःखकी याद दिलाकर तू मुझे विशेष दुःखी क्यों करती है? ॥ ३०४–३०५ ॥ तू नीच कुलकी दासी है, इसमें सन्देह नहीं ऐसा नहीं होता तो तू भूलेहुए दुःखको याद दिला-कर क्यों उभाड़ती और मुझे दुःखित करती? ॥ ३०६ ॥ तूने मुझे दूध पिलाया है, इसलिये तू मेरी माताके समान है। यदि ऐसा न होता तो मैं तेरा बहुत बड़ा अनिष्ट करती ॥ ७ ॥ जिसका मुख पूर्ण-मासीके चन्द्रमाके समान है, जिसके नेत्र चंचल हैं, जिसकी आकृति सुन्दर है, जिसकी दीर्घ और सुपुष्ट भुजा हैं, जिसने अपने रूपसे कामदेवको भी जीता है और अनेक राजा जिसकी आज्ञा सिरपर धारण करते हैं, ऐसे मेरे पतिकी तू मेरे सामने निन्दा करती है ॥ ८–९ ॥ चन्द्रप्रभाकी धायने समझा

कि, रानीने मेरी बात झूठ समझ ली है। ऐसा समझनेसे यह आगे भी मुझपर संताप करेगी, इसलिये इसे राजा हेमरथको साक्षात् दिखा देना चाहिये, जिससे इसके चित्तका सन्देह दूर होजाय ॥ १०-११ ॥ ऐसा विचारकर उस चतुर धायने चन्द्रप्रभासे कहा, पुत्री! देख अभीमैं तुझे तेरे-सुन्दर पतिको दिखाती हूं। तब चन्द्रप्रभा बोली, अच्छा बता कहां हैं? उसी समय जब पागल राजा, राजमहलके झरोकेके नीचे आया, तब धायने उस बुरे वेष धारण किये हुए राजाको दिखाया और कहा, पुत्री! तूने देखा, गतिसे, लक्षणसे, चेष्टासे, यह राजा हेमरथही मालूम पड़ता है? रानीने उसके लक्षणोंसे और चेष्टासे जान लिया कि, यह मेरा प्यारा पति ही है, जो पदपदपर हाय प्रिये! हाय प्रिये! करता हुआ चिल्ला रहा है! ॥ १२-१५ ॥ अपने भर्तारकी ऐसी दशाको देखकर वह शोक करने लगी और उसके दुःखको देखकर स्वयं दुःखित होती हुई विचारने लगी;—धिक्कार है, मेरे जोवनको, मैं महापापिनी हूं, जो मेरे वियोगमें मेरे पतिकी ऐसी दशा हो रही है और मैं राजा मधुमें रम रही हूं। धिक्कार है, इस स्त्रीपर्यायको जिसमें सदाकाल परवश रहना पड़ता है। इसप्रकार जिस समय धायके साथ महलमें रानी चन्द्रप्रभा अपनेको वारम्बार निंद रही थी, उसी समय वहां राजा मधु आ पहुँचा ॥ १६-१९ ॥

रानी चन्द्रप्रभा अपने गूढ़ दुःखको छुपाकर उसके सम्मुख खड़ी हो गई और अपने हाथोंसे उसके हाथ पकड़कर प्रेम संभाषण किया। राजा भी पूर्वके समान स्नेहसे उस गौरव शालिनी रानीको लेकर महलके ऊपर छतपर ले गया ॥ २०-२१ ॥ जिस समय, राजा, चन्द्रप्रभा सहित आनन्दसे शरदृतु सम्बन्धी चांदनीकी शोभा देख रहा था, उसी समय एक दूसरी घटना हुई, सो इसप्रकार है कि,— नगरका चंडकर्मा नामका कोटवाल एक पुरुषको दृढ़तासे बांधकर लाया और राजमहलके ऊपर जाकर राजाको नमस्कार करके बोला, महाराज! इस युवा पुरुषने परस्त्रीका सेवन किया है, इसकारण मैं इसे बांधकर आपके पास लाया हूं, इसने जैसा अपराध किया है वैसा इसे दण्ड मिलना चाहिये। ऐसा कहकर और हाथ जोड़कर कोटवाल खड़ा रहा ॥ २२-२५ ॥ तब क्रोधायमान होकर राजा मधुने हुकुम

दिया, कि, कोटवाल ! जल्दी जाओ और इस पापीको शूलीपर चढ़ा दो। जो पापोंसे डरनेवाले राजाओंके आगे दोष करना तो दूर रहो, दोष करनेवालोंकी वार्ताभी विवेकी जन नहीं कर सकते हैं ॥२६–२७॥ राजाके वचन सुनकर और जीमें अत्यन्त क्रोधित होकर रानी चन्द्रप्रभा विनयसे बोली, हे नाथ ! मेरी बात सुनो। यह पुरुष रूपवान् और युवा है। इसको आप क्यों प्राणरहित करनेकी आज्ञा देते हो? इसने ऐसा क्या अपराध किया है? ॥ २८–२९ ॥ मधुने उत्तर दिया,—हे विचक्षण देवी ! इस पापीने पराई स्त्रीका सेवन किया है। और इस पापका यही दण्ड है दूसरा नहीं है। तब रानी मुसकुराकर विनयसे बोली, हे स्वामी! परस्त्री गमनमें कौनसा ऐसा बड़ा पाप है, जो यह बेचारा रूपयौवनसम्पन्न पुरुष शूलीपर चढ़ाया जाता है? ॥ ३०–३२ ॥ राजा मधु अपने कुकर्मकी याद भूलकर बोला–प्रिये ! यह महान् वज्रपाप है। इससे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं हैं ॥ ३३ ॥ यह सुनकर चन्द्रप्रभाने फिर कहा, मुझे तो यह पापका काम नहीं दीखता। आप वृथाही विचारेको शूली देते हो। तब राजा मधुने शास्त्रप्रमाण सहित प्रत्युत्तर दिया कि,—

श्लोकः—परस्त्रीगमने नूनं देवद्रव्यस्य भक्षणे। सप्तमं नरकं यांति प्राणिनो नात्र संशयः ॥ अर्थात्—परस्त्री सेवन करनेसे और देवद्रव्यको हजम करजानेसे मनुष्य सातवें नरकको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४–३५ ॥ यदि समस्त पाप एकतरफ रक्खे जावें और परस्त्रीसंगमरूप पाप दूसरी बाजू रक्खा जाय, तो परदारासेवनका पाप समस्त पापोंकी अपेक्षा वजनदार निकलेगा, ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। इसलिये निश्चय जानों कि, इससे बढ़कर महान् पाप नहीं है। परस्त्रीके लम्पटी इसलोकमें कलङ्कित होते हैं, राजद्वारा वध बन्धनके दण्डको पाते हैं, और परलोकमें नरकको प्राप्त होते हैं। इसलिये पराई स्त्री सर्वथा त्यागने योग्य है ॥ ३६–३७ ॥ पराई स्त्री, भोगी हुई वस्तु अर्थात् उच्छिष्टके समान है तथा बुद्धिमानोंका निंदित धनधान्यका विनाश करनेवाली, पापकी खानि और लड़ाईकी जड़ है अतएव परनारीसेवन सर्वथा त्यागने योग्य है ॥ ३८ ॥

राजा मधुके ऐसे वचन सुनकर रानी चन्द्रप्रभा बोली:—यदि परस्त्रीसेवन करना सचमुचमें पातक है और आप पुण्य पापके स्वरूपको भली भांति जाननेवाले हैं, तो हे नाथ! मुझ पराई स्त्रीको आपने छल करके क्यों हरी?॥ ३९–४० ॥ आपने न मेरी मेरे पिताके घर जाकर कुँवारी अवस्थामें मंगनी की। और न मेरे साथ विवाह किया फिर आपने मेरा हरण क्यों किया, मेरा शीलभंग क्यों किया? ॥ ४१ ॥ चन्द्रप्रभाके ऐसे वचन सुनकर राजा मधु बहुतही लज्जित हुआ और उत्कृष्ट वैराग्यको प्राप्त होकर विचारने लगा:—हाय! हाय! मुझ पापीने ऐसा जगन्निंद्यकर्म क्यों किया? धर्मात्माओंको परस्त्रीहरण तथा परस्त्रीसेवन करना सर्वथा अनुचित है ॥ ४२–४३ ॥ मैं तो धम अधर्म कर्मोंको वा उनके फलोंको अच्छी तरह जानता था, फिर भी मोहके वशीभूत होकर मैं अंधा कैसे हो गया? ॥ ४४ ॥ जो असत्य है वह कभी सत्य नहीं हो सकता और जो अधर्म है वह त्रिकालमें कभी धर्म नहीं हो सकता। ऐसा जानकार ज्ञानवानोंको अधार्मिक सकल निंदनीक कार्य कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥ यह शरीर माताके रुधिर और पिताके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। मल मूत्रादि अशुच पदार्थयुक्त गर्भस्थानमें रहा है। माताके उगालसे बढ़ा है, अतिशय निंद्यद्वारसे बाहर निकला है, अपवित्र सप्तधातुमयी है, और चर्मसे आच्छादित अस्थि तथा जालका पिंड है। ऐसे शरीरको देखकर मोह कैसे किया जाता है? ॥ ४६–४७ ॥ हाय! यह जीव संसारकी दशाको इन्द्रजालके समान अस्थिर जानता बूझता हुआभी मूढ़ होकर क्यों इसीमें मोहित होता है बड़ी विचित्रता है ॥ ४८ ॥ मेरे घरमें क्या मनोहर सुन्दर रानियां नहीं थी? फिर मुझ जड़मतिने इस पराङ्गनाका हरण वा सेवन क्यों किया? ॥ ४९ ॥ जैसा मैंने इस भवमें पापकर्म उपार्जन किया है, वैसा ही मुझे फल भोगना पड़ेगा। क्योंकि जैसा बीज बोते हैं, वैसा ही फल उत्पन्न होता है ॥ ५० ॥ क्या मेरे पास रूपयौवनसम्पन्ना, बड़े और उन्नत कुच धारण करनेवाली, चित्तको चुराकर वशीभूत करनेवाली स्त्रियां नहीं थीं, जो मैंने मोहके जालमें फँसकर परवनितासेवनरूप घृणित कर्म किया? यह मोह ही नरकका ले जानेवाला और संसारका कारण है ॥ ५१–५२ ॥ धन,

धान्य, स्त्री, यौवन, पंचेन्द्रीके विषय, सेना, बन्धुवर्ग, पुत्र, मित्रादिक तथा यह जीवन कोई भी स्थिर नहीं है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार जिससमय विषयाभिलाषसे विरक्त होकर राजा मधु संसारकी असारताका विचार करते हुए उत्तरोत्तर वैराग्य परणतिको प्राप्त हो रहे थे, तथा उस परस्त्रीसेवन करनेवाले पुरुषको छोड़नेकी आज्ञा देकर अपने अपने महलमें बैठे थे, उसी समय एक मुनिराज आहार लेनेके लिये महल की तरफ आये। उन्हें आते देखकर राजा मधु और चन्द्रप्रभा हर्षित होते हुए सम्मुख गये ॥ ५४–५६ ॥ ऋषीश्वरकी अतिशय भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर राजाने कहा, "भगवन्! तिष्ठो! तिष्ठो! अहार पानी शुद्ध है" ॥ ५७ ॥ फिर उन्होंने मुनिराजको जन्तुरहित आसनपर बिठाया, आचमन कराया, उनके भक्तिभावसे चरण प्रक्षालन किये और चरणोदकको नमन करके अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥ ५८ ॥ फिर मन वचन कायकी शुद्धिसहित मुनिराजके चरण कमलोंकी पूजा की, वंदना की और अपनेको पवित्र किया ॥ ५९ ॥ पश्चात् राजा मधुन उसी चन्द्रप्रभारानीके सहित कुशीलादि पापोंका प्रत्याख्यान करके–त्याग करके शुद्ध परिणामोंसे नवधा भक्तिपूर्वक मुनिराजको आहार दान दिया और महान् पुण्य उपार्जन किया ॥ ६०–६१ ॥ जब अन्तरायको टालकर मुनिवरने निर्विघ्न पारणा कर लिया, तब उन्होंने "अक्षय दान-हो" ऐसा आशीर्वाद दिया ॥ ६२ ॥ जिसके प्रभावसे राजाके यहांपर पंचाश्चर्य हुए। सो ठीक ही है "जो कार्य भावसे किया जाता है, वह निश्चयसे सफल होता है" ॥ ६३ ॥ ध्यान तथा शास्त्राभ्यासमें परायण रहनेवाले तथा पर—पदार्थ मात्रमें ममत्व भावको न धारणकरनेवाले वे मुनिराज आहार ग्रहण कर लेनेके बाद बनमें विहार कर गये और वहां आत्मस्वरूपके ध्यानमें दत्तचित्त हो गये, जिसके प्रभावसे उन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाशकरके सुर असुरोंद्वारा पूज्य दिव्य केवलज्ञानको प्राप्त किया ॥ ६४–६५ ॥ वनपालके मुखसे यह शुभ संवाद पाकर राजामधुने आनन्दभेरी बजवाकर सारे नगर निवासियोंको सचेत कर दिया और गजपर सवार होकर अपने कुटुम्बी तथा परिजनोंके साथ भक्तिपूर्वक वन्दनाके लिये चल पड़ा। जब उसने दूरसे केवली भगवानको देखा, तब हाथीसे उतर कर और राज्य-

चिह्नोंको छोड़कर अष्टांग नमस्कार किया। जिसके उत्तरमें मुनिराजने "धर्मवृद्धि हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। मधु महाराजने विनयपूर्वक धरतीमें बैठकर और हाथ जोड़कर निवेदन किया कि, हे प्रभो! मेरे ऊपर कृपा करके मुझे जिनधर्मका स्वरूप समझाइये ॥ ६९–७० ॥ राजाके प्रश्नको सुनकर मुनि भगवान बोले, हे महामति राजा! जिनभगवानके कहे हुए दशप्रकारके धर्मको मैं संक्षेपरूपमें कहता हूं, जिसके प्रभावसे भव्य जीवोंको स्वर्ग मोक्षका सुख सहजमें मिल सकता है, अन्य सामान्य वस्तुओंकी तो वार्ता ही क्या है? ॥ ७१–७२ ॥ जो विवेकी जीव हैं, उन्हें सम्यक्त्व सहित दश प्रकारका धर्म तथा बारहों-व्रत बड़ी भक्तिसे धारण करना चाहिये ॥ ७३ ॥ इस संसार के चरित्रको दुःखदाई और असार जानकर जिनेन्द्रकथित दशप्रकारके धर्मका ही शरण लेना उचित है। धन, धान्य, कोश, रत्न, कुटुम्बादिक किसीमें सार नहीं है ॥ ७४–७५ ॥ धर्मका स्वरूप सुनते ही राजा मधु परम वैराग्यको प्राप्त हुआ। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्रको विधिपूर्वक राज्यका कार्यभार सौंपकर दिगम्बर मुनियोंकी पदवीको प्राप्त कर ली। अर्थात् उसने दिगम्बरी दीक्षा ले ली! उसकी परिणीता पट्टरानीने भी आर्यिकाका व्रत अंगीकार किया ॥ ७६–७७ ॥ इसी प्रकार कैटभने भी जो कि मधुका छोटा भाई था, अपनी स्त्रीसहित दीक्षा धारण कर ली अर्थात् कैटभ मुनि हो गया और उसकी पत्नी आर्यिका हो गई ॥ ७८ ॥ जब चन्द्रप्रभाने देखा कि, मैं दोनों ओरसे भ्रष्ट हुई अर्थात् मेरा पति तो राजकाज छोड़कर मेरे विरहमें पागल हो गया और राजा मधु दीक्षा धारणकर नग्न दिगम्बर हो गया। तब वह भी अतिशय भक्ति भावसे आर्यिका हो गई ॥७९॥

इस प्रकार इन सर्व जीवोंने वैराग्यसहित दुर्धर तपश्चरण किया और गुरुभक्तिमें परायण होकर अनेक जैनशास्त्र पठन किये, जिससे शास्त्र रहस्यके पूर्णवेत्ता होकर पुण्ययोगसे समाधिमरण करके वे सबके सब स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ८०–८१ ॥ चन्द्रप्रभाका जीव देवाङ्गनाकी अवस्थामें राजा मधुके जीवके साथ चिरकाल तक सुख भोगकर मलिन कर्मके योगसे अच्युत स्वर्गसे चयकर विजयार्द्धपर्वतपर गिरिपत्तन नामके नगरमें जो हरि नामका राजा और हरिवती नामकी रानी थी, उनके कनकमाला

नामकी पुत्री हुआ ॥ ८२–८४ ॥ सो यही कनकमाला मेघकूट नामके रमणीक नगरके राजा! कालसंवर-की रानी हुई है ॥ ८५ ॥ और जो राजा मधुका जीव तपश्चरणके प्रभावसे सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ था, वह देवगतिके दिव्यसुख भोगकर और आयुके अन्तमें वहांसे चयकर पूर्व पुण्यके प्रभावसे द्वारिका नगरीमें यादवोंके श्रेष्ठ कुलमें कृष्णनारायणकी रानी रुक्मिणीके गर्भमें आया है ॥ ८६–८७ ॥ और कैटभका जीव कुछ दिन पश्चात् कृष्णकी जाम्ववती रानीके गर्भमें आया है ॥ ८८ ॥ और जो राजा हेमरथ अपनी चन्द्रप्रभा रानीके वियोगमें पागल हो गया था, वह दुःखसागररूप संसारमें चिरकालपर्यन्त नीच योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ कर्मयोगसे मनुष्य होकर और फिर कुतपसे मरकर धूमकेतु नामका असुरोंका नायक देव हुआ है ॥ ८९–९० ॥ यही दैत्य विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे क्रीड़ा करता हुआ जा रहा था, सो दैवयोगसे रात्रिके समय उसका विमान द्वारिकानगरीमें रुक्मिणीके महल पर, जिसमें कि बालक था, आते ही कुण्ठित हो गया। तब उसे ज्ञानसे प्रगट हुआ कि, पूर्वभवमें जिस मधुराजाने छलबलसे मेरी स्त्रीको हरा था, वही मेरा बैरी यहां जन्मा है। तब बैर भँजानेके विचारमें वह दुष्ट दैत्य बेचारे छहदिनके छोटे बालकको हरकर ले गया, ऐसा जानकर हे नृपति! किसीसे बैर कदापि नहीं करना चाहिये ॥ ९१–९३ ॥ इस संसारमें बैर भयंकर दुःखका देनेवाला है। इससे धर्मका विनाश होता है और नरकादि कुगतिमें घोर वेदना सहनी पड़ती है ॥ ९४ ॥ ज्ञानवानोंको संसारके कारणभूत वैर विरोधका ऐसा कटुक परिणाम जानकर उसे सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ ९५ ॥

इसप्रकार श्रीसीमंधरस्वामीकी दिव्यध्वनिसे पद्मनाभि चक्रवर्ती आदि श्रोतागणोंने प्रद्युम्नकुमारका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना, जिससे सर्व जीवोंके परिणामोंमें अतिशय शान्ति स्थापन हो गई ॥ ९६ ॥ कृष्ण-पुत्रका वृत्तान्त सुनकर नारद मुनि अत्यन्त प्रफुल्लित हुए और अपने कार्यकी सिद्धि हुई जानकर, तीर्थेश्वरको अष्टाङ्ग नमस्कार करके समवसरणसे बाहर निकल आये ॥ ९७ ॥ श्रीकृष्णके प्रेमबन्धनकी प्रेरणासे उनके पुत्रको देखनेकी अभिलाषासे विजयार्ध पर्वतके मेघकूट नामक नगरको प्राप्त हुए। और वहां के

राजा कालसंवरकी सभामें जाकर पहुंचे ॥ ९८-९९ ॥ नारदमुनिको आता देख राजाने अपने सिंहासनसे उठ सन्मुख जाकर और भक्तिपूर्वक अर्घपाद्यादि देकर उनका यथोचित सन्मान किया। तब नारदजी आशीर्वाद देकर सुन्दर आसनपर विराज गये और थोड़ी देरतक प्रेमभावसे राजा कालसंवरसे वार्तालाप करते रहे। पश्चात् वे बोलेः—राजन्! मैं तुम्हारा शुद्ध अन्तःपुर (रणवास) देखना चाहता हूं ॥ ४००-२ ॥ राजाने उत्तर दिया, हे स्वामिन! बहुत अच्छा, आप अपने चरणकमलकी रजसे मेरे गृहको पवित्र कीजिये ॥ ३ ॥ तब नारदजी तत्कालही कृष्णपुत्रको देखनेकी उत्कण्ठासे रणवासमें चले गये ॥ ४ ।

रानी कनकमालाने नारद मुनिको आया देखकर, भक्तिपूर्वक नमस्कार किया, और अर्घपाद्य तथा आसन देकर उनका सत्कार किया। थोड़ी देर बैठकर मुनि बोले, रानी! मैंने सुना है कि, तेरे गूढ़गर्भसे पुत्रकी उत्पत्ति हुई है? तब वह बोली, हे नाथ! आपके चरणकमलोंके प्रसादसे हुआ तो है। यह सुनकर नारदजी बोले, देवी! तू अपने सुखकारी पुत्रको दिखा तो सही, कहां है? तब रानी कनकमालाने प्रद्युम्नकुमारको लाकर मुनिके चरणोंमें डाल दिया। मुनिने उसके सिरपर हाथ रखके आशीर्वाद दिया कि, "हे पुत्र! तू चिरंजीव रह! चिरकाल सुखी रह! और अपने माता पिताओंके मनोरथको सफल कर।" ॥ ५-९ ॥ नारदजीने फिर रानीसे कहा, हे देवी! तू वड़ी भाग्यशालिनी है, जो तेरे ऐसा भव्य और सर्व शुभलक्षणोंका धारक पुत्र उत्पन्न हुआ है। मेरी अभिलाषासे तेरा यह पुत्र चिरकाल जीवित रहै ॥ १० ॥ इसप्रकार कृष्णपुत्रको जी भर देखकर प्रफुल्लितवदन नारदजी अन्तःपुरसे बाहर निकल आये और रुक्मिणीके महलको जानेके मनोरथसे द्वारिकाको रवाने हो गये ॥ ११ ॥ द्वारिकामें पहुंचते ही नारदजी पहले मधुसूदन श्रीकृष्णनारायणसे मिले और पीछे रुक्मिणीसे मिले। रुक्मिणीको प्रद्युम्नविषयक सम्पूर्ण वृत्तान्त, जो सीमंधरस्वामीने दिव्य ध्वनिसे वर्णन किया था, कह सुनाया। अर्थात् प्रद्युम्नका स्थान, उसकी पूर्वभवकी वार्ता, वय, रूप, लक्षण, उसके आगमनका काल वा चिन्ह कह सुनाये और यह भी प्रगट कर दिया कि, वह सोलहलाभ तथा दो विद्याओं सहित द्वारिकामें आवेगा।

॥ १२-१४ ॥ यह वृत्तान्त सुनकर रुक्मिणीको अथाह आनन्द हुआ। इस प्रकार पुत्रवार्ताको सुनाकर और कृष्णनारायण तथा रुक्मिणीको प्रसन्न करके नारदजी अपने यथोचित स्थानको चले गये ॥ १५ ॥ नारदजीकी वाक्योंसे प्रीतियुक्ता रुक्मिणी अपने चिरजीव पुत्रकी याद करती हुई और उसके आगमनकी वाट देखती हुई सुखसे रहने लगी ॥ १६ ॥

आचार्य कहते हैं;—इसप्रकार संसारी जीव कर्मके बंधनमें पड़े हुए चारों गति सम्बन्धी सुख दुःखादिके योगसे निरन्तर नाना योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं। इस लिये निर्मल बुद्धिके धारक अपने हिताभिलाषी भव्यजीवोंको स्वर्गमोक्षका दाता जिनेश्वरप्रणीत सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान निर्मल "धर्म" सदाकाल धारण करना चाहिये ॥ ४१७ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें प्रद्युम्नकुमारके पूर्वभवकी वार्ताका तथा नारदकथित कृष्णपुत्रकी वार्तासे रुक्मिणीकी प्रसन्नताका वर्णनवाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ।

नवमः सर्गः।

पूर्वपुण्यके प्रभावसे श्रीप्रद्युम्नकुमारने राजा कालसंवरके महलमें अपनी सुन्दरतासे मनुष्यमात्रके चित्तको वशीभूत कर लिया। वह ज्यों २ बाल्यावस्थासे बड़ा होता गया, त्यों २ उसका कलाकौशल्य इसप्रकार बढ़ता गया, जैसे दोयजके चन्द्रमाकी कला दिनोंदिन बढ़ती जाती है ॥ १ ॥ सर्व स्त्रीपुरुष उस मनोहर बालकको बड़ी प्रसन्नतासे प्यार करने लगे और हाथोंहाथ खिलाने लगे। क्योंकि, पुण्यवान जीव सबको प्यारा लगता है ॥ २ ॥ ज्यों २ प्रद्युम्नकुमार बड़ा होता गया, त्यों २ राजा कालसंवरकी ऋद्धिसिद्धि धनधान्यादिक समस्त वृद्धिको प्राप्त होती गई ॥ ३ ॥ यह कुमार राजा और रानी दोनोंको प्राणसे प्यारा लगने लगा। सो ठीक ही है, सौभाग्य और प्रेमपात्रता पूर्वपुण्यके उदयसे प्राप्त होती है ॥ ४ ॥ यह कुमार बाल्यावस्थाको उल्लंघनकर क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ। परन्तु युवावस्था-

के साथ २ उसे कामविकार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ५ ॥ थोड़े कालमें ही प्रद्युम्नकुमार शास्त्रोंमें वा शस्त्रविद्यामें प्रवीण हो गया, अनेक प्रकारकी कलामें कुशल हो गया, गुणगणसम्पन्न हो गया और साहस धीरता वीरतामें सब शूरवीरोंमें अग्रसर हो गया ॥ ६ ॥ जो शत्रुगण महासाधनसहित अपने बलके घमण्डमें चकचूर होकर जंगी सेनालेकर राजा कालसंवरपर चढ़ाई करनेको आते थे, उनसे प्रद्युम्नकुमार सेनासहित स्वयं युद्ध करता था और उन्हें जीतकर उनकी सेनाको दशोंदिशाओंमें भगा देता था। क्योंकि उसका पुण्य प्रबल था और यह निश्चय है कि, पुण्यके योगसे जीत ही होती है ॥ ७–८ ॥ इसप्रकार प्रद्युम्नकुमारने चढ़ाई करके आये हुए अनेक शत्रुओंको परास्तकरके उज्ज्वल कीर्तिको सम्पादन की, और फिर बड़ी भारी सेना और साधनोंके सहित दिग्विजय करनेके लिये कूच किया ॥ ९ ॥ और संग्राममें धीरता, वीरताको धारण करनेवाले वा महती सेनाके अधीश्वर जो २ विद्याधर थे, उन सबके देशोंमें सेनासहित गमन किया ॥ १० ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण शत्रुओंको परास्त करके–दिग्विजयकरके कुछ दिनोंमें प्रद्युम्नकुमार बड़ी भारी विभूतिकेसहित अपने नगरको लौट आये ॥ ११ ॥ जब राजा कालसंवरने सुना कि, प्रद्युम्नकुमार दिग्विजय करके आ गया है, तब उसने अपने मंत्रीआदिकोंको आज्ञा देकर नगरी को नानाप्रकारके ध्वजातोरणादिकोंसे श्रृंगारित कराई ॥ १२ ॥ और महोत्सवसहित कुमारका नगरमें प्रवेश कराया। कुमारने पिताको देखकर उन्हें विनय वा भक्तिसहित नमस्कार किया। उससमय राजा कालसंवरने अपने विजयी पुत्रको देखकर आनन्दमें मग्न होकर विचार किया कि, मैंने पहले इसे वनमें यद्यपि युवराजपद दे दिया है, परन्तु वह बात सबको प्रगट नहीं है। इसलिये अब मैं इसे सर्व मनुष्योंके साम्हने युवराजपद प्रदान कर दूं, तो अच्छा हो ॥ १३–१४ ॥ ऐसा विचारकर इस कार्यके लिये राजा कालसंवरने शुभमुहूर्त वा शुभयोगमें देशदेशान्तरके राजाओंको आमंत्रणदेकर बुलवाया और समस्त मण्डलीके समक्षमें प्रद्युम्नकुमारसे कहा, हे पुत्र! मेरी बात ध्यान देकर सुनः—जिस समय तू वनमें अपनी माताके गूढ़गर्भसे उत्पन्न हुआ था, उसी समय मैंने तेरे शुभलक्षणोंको देखकर तुझे

प्रसन्नतासे युवराजपद प्रदान कर दिया था ॥ १६–१७ ॥ परन्तु वह बात सबको प्रगट नहीं है। इसकारण अब मैं सबकी साक्षीसे तुझे युवराजके पदपर स्थापित करता हूं। सो तू इसे हर्षसे स्वीकार कर ॥ १८॥ तब प्रद्युम्नकुमारने पिताकी आज्ञानुसार बड़ी प्रसन्नतासे युवराजपद अंगीकार किया। क्योंकि राज्य पाना किसे प्रिय नहीं होता ॥ १९ ॥ इस महोत्सवकी खुशीमें राजा कालसंवरने याचकोंको बहुतसा दान दिया स्वजनोंमित्रवर्गोंके तथा अन्यान्यलोगोंके सब मनोरथ पूरे किये ॥ २० ॥ इससे प्रद्युम्नकुमारकी कीर्ति सारी पृथिवीमें फैल गई। और वह नगर तो प्रद्युम्नकी कथासे ही सब ओरसे परिपूर्ण हो गया ॥२१॥

रानी कनकमालाके सिवाय, राजा कालसंवरकी अन्य पांचसौ रानियें थीं, जिनसे पांचसौ विद्याविशारद पुत्र हुए थे ॥ २२ ॥ वे नित्य प्रातःकाल उठकर अपनी २ माताको विनयसहित प्रणाम (पांवाढोक) करते थे ॥ २३ ॥ एकदिन माताओंने अपने पुत्रोंसे क्रोधित होकर कहा, हे शक्तिहीन कुपुत्रो! तुम हुए जैसे न हुए। तुम्हारी उत्पत्तिसे क्या लाभ हुआ? जब तुम्हारे देखते २ जिसकी जातिपांतिका कुछ पता नहीं है, उस पापी दुष्टात्माने तुम्हारा राज्य अर्थात् युवराजपद ले लिया और तुम कोरे रह गये, तब तुम्हारे जीने से क्या? इससे तो मरे ही अच्छे थे ॥ २४–२५ ॥ तुम सबको चाहिये कि, एकत्रहोकर उसे जितनी जल्दी हो सके धोखेसे मार डालो। क्योंकि इसके जीते जी तुम्हारा कुछ भी नहीं है, अर्थात् तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा ॥ २६ ॥ दुष्टपुत्रोंने अपनी माताओंके अभिप्रायको समझ लिया और सबने मिलकर यह निश्चय कर लिया कि, बने जिस उपायसे प्रद्युम्नके प्राण ले लेना चाहिये ॥ २७ ॥ उन्होंने तत्काल अपनी माताओंसे कहा कि, जैसी आपकी आज्ञा है, वैसा ही हम शीघ्र प्रयत्न करेंगे और नमस्कार करके वे बाहर निकल आये ॥ २८ ॥ पश्चात् वे सबके सब दुष्ट मायाचारकरके कामदेवसे आकरके मिल गये और शीघ्र ही उससे ऊपरी प्रीति करने लगे ॥ २९ ॥ वे सदाकाल प्रद्युम्नके खान, पान, शयन, आसनादिकमें घातका मौका देखने लगे। यहां तक कि, वे दुष्ट प्रद्युम्नके भोजन, पानके पदार्थोंमें विष मिलाने लगे। परन्तु दैवयोगसे वह विष अमृतरूप परिणमने लगा। पूर्वपुण्यके प्रभावसे दुःखकारी

पदार्थ भी सुखकारी हो जाते हैं ॥ ३०–३१ ॥
जब दुष्टोंने देखा कि, हमने हजारों उपाय रचे, परन्तु पुण्ययोगसे प्रद्युम्नका कुछ भी बिगाड़ न हुआ,
तब कुपितहोकर उन्होंने उसे नष्ट करनेका एक दूसरा उपाय अपने मनमें स्थिर किया ॥३२॥ तदनुसार
वे दुष्ट भ्राता वज्रदंष्ट्रको अपना अगुआ बनाकर और विश्वास दिलाकर प्रद्युम्नकुमारको विजयार्द्ध शिखरपर
ले गये ॥ ३३ ॥ वहां उन्होंने जिनेन्द्रभगवानका शुभ्र शरदऋतुके बादलोंके आकारको धारण करने-
वाला, हजार शिखरोंवाला, मनोहर, रत्नसुवर्णमयी जिनमंदिर देखा। उसके भीतर जाकर उन सबने
जिनभगवानकी वंदना की ॥ ३४–३५ ॥ पश्चात् वे सब जिनमंदिरसे बाहर निकलकर द्वारपर खड़े हो
गये ॥ ३६ ॥ जब सबने गिरिशिखरपर गोपुर देखा, तब वज्रदंष्ट्र महाधूर्त बोला, भाइयो! मैं तुम्हें एक
बड़ी अच्छी बात बताता हूं, जिसे बड़े विद्याधर कहते चले आये हैं। वह यह है कि, जो कोई इस
गोपुरके भीतर जायगा, उसे सुख वा राज्यका देनेवाला मनोवांछित लाभ होवेगा। पश्चात् वह कुशलता
से लौट आवेगा। यह बात किसी सामान्य पुरुषकी कही हुई नहीं है। किन्तु वृद्ध विद्याधरोंका ऐसा कथन
है। यह कदापि असत्यार्थ नहीं है। सो तुम सब यहीं तिष्ठो, मैं जाता हूं और तुम्हारे लिये शीघ्र लाभ
लेकर आता हूं ॥ ३७–४० ॥
तब पराक्रमी प्रद्युम्नकुमार वज्रदंष्ट्रसे बोला, भाई! कृपाकर मुझे आज्ञा दो, तो मैं इस गोपुरमें
जाकर लाभ ले आता हूं ॥ ४१ ॥ तब कुटिल आशयका धारक वज्रदंष्ट्र बोला, प्रद्युम्न! तू मुझसे क्या
पूछता है! अच्छी बात है तू ही जा ॥४२॥ तब सन्तुष्ट होकर सरलचित्त प्रद्युम्नकुमार शीघ्र ही उस
गोपुरमें चला गया। जैसे कोई निःशंक होकर अपने घरमें घुसता है ॥४३॥ कुमार वेगसे आगे बढ़ा और
बीचमें पहुँचते ही उसने जोरसे शब्द किया तथा पैरोंसे द्वारको धक्का दिया ॥४४॥ शब्दको सुनते ही भुजंग-
नामा देव जाग उठा और क्रोध से लाल होकर प्रद्युम्नकुमारपर झपटके बोला:—अरे! पापी! दुराचारी
अधम मनुष्य! तूने मेरा दिव्यस्थान क्यों अपवित्र किया? ॥ ४५–४६ ॥ क्या तूने नहीं सुना है कि जो

मेरे घरमें पाँव भी रखता है, उसको मैं देखते ही मार डालता हूँ! तेरी क्या मौत आ गई है? अथवा किसीने तुझे बहका दिया है? तब प्रद्युम्नकुमार धीरवीरतासे बोला, रे असुराधम! मूढ़! तू क्यों वृथा ही गरज रहा है? तुझमें कुछ बल हो, तो मेरे साम्हने आ और मुझसे युद्ध कर, जिससे तुझे अभी मालूम हो जाय कि, शूरता किसे कहते हैं और कायरता (डरपोंकपन) किसे कहते हैं ॥ ४७–४९ ॥ ज्यों ही देवने ऐसे शब्द सुने, त्योंही वह क्रोधित होकर प्रद्युम्नकुमार पर उछला। तब दोनों शूरवीरोंका महाभयंकर मल्लयुद्ध हुआ। दोनों घुस्सा, मुठी, चपेट, वा हुंकारकी ध्वनिसे चिरकाल तक लड़ते रहे ॥ ५०–५१ ॥ अन्तमें भुजंग नामा देव हार गया और वह कुमारके चरणोंमें गिरकर नमस्कार करके बोला, हे नाथ! मैं आपका चाकर हूं और आप मेरे स्वामी हो। इसलिये मुझपर कृपा करो और मेरा अपराध क्षमा करो ॥ ५२–५३ ॥ इस प्रकार विनयसे प्रसन्न करके देवने श्री प्रद्युम्नकुमारको एक सुवर्णमय रत्नजटित सिंहासनपर बिठादिया। उसपर विराजमान होकर उन्होंने देवसे पूछा, तुम कौन हो, और किस वास्ते इस पर्वतकी गुफामें रहते हो? तब विनयसे अपने शरीरको झुकाकर देव बोला, स्वामी! मैं सत्य २ निवेदन करता हूं, आप ध्यानसे सुनें,—मैं यहां आपके लिये ही चिरकालसे निवास करता हूं। इसका खुलासा हाल इस प्रकार है कि,— ॥ ५४–५६ ॥

इसी विजयार्द्धपर्वतपर अलंकार नामका एक उत्तम नगर है, जो समृद्धशाली लोगोंसे सधन हो रहा है। उसमें एक गुणोंका सागर कनकनाभि नामका राजा राज्य करना था, जिसकी अनिला नामकी रानी पातिव्रतकी धुरीको धारण करनेवाली थी ॥ ५७–५८ ॥ राजा रानी इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए सुखसे राज्य करते थे, जिससे आनन्दमें मग्नहोकर उन्होंने व्यतीत होता हुआ समय नहीं जाना ॥ ५९ ॥ कुछ दिनोंमें स्वर्गसे चयकर एक अतिशय सुन्दर और गुणवान पुत्रने जो कि देवोंके समान था, उनके यहां अवतार लिया। उसका हिरण्यनाभि नाम रक्खा गया। राजा कनकनाभिने चिरकाल पर्यन्त राज्य करके और निरन्तर सुख भोगकर एक दिन राज्यलक्ष्मीको विनाशीक और यौवनको क्षणभंगुर जानकर

विषयोंसे विरक्तचित्त हो वैराग्यसे अपने हृदयको विभूषित किया। और अपना सारा राज्य पुत्रको सौंप दिया तथा परम उदासीनता सहित वनमें जाकर श्रीपिहिताश्रव मुनिराजको परम भक्तिसे अष्टाङ्ग नमस्कार किया और उनसे दिगम्बरी दीक्षा ले ली ॥ ६०–६३ ॥ पश्चात् गुरुके पास द्वादशाङ्ग पठन किया और घोर तपश्चरण किया, जिससे घातिया कर्मोंका विनाशकर श्रीकनकनाभिने केवलज्ञानको प्राप्त किया ॥ ६४ ॥ भव्यजीवोंको उपदेश दिया और चार अघातिया कर्म नष्ट कर मुक्तिलक्ष्मीके गृहको प्राप्त किया, जहां अनन्ते सिद्ध विराजे हैं और अनन्त आत्मीक सुखका अनुभव करते हैं ॥ ६५ ॥

तदनन्तर राजा हिरण्यनाभि कंटकरहित और शत्रुओंसे रहित होकर राज्यका कारभार उत्तमतासे चलाने लगा ॥ ६६ ॥ एक दिन जब हिरण्यनाभि राजा अपने महलके ऊपर तिष्ठा हुआ था, उससमय उसने बड़ी भारी विभूति और बड़ी भारी सेनासहित किसी दैत्येन्द्रके राज्यको देखा। उस आश्चर्यकारक राज्य सम्पदाको देखकर उसने अपने मनमें सोचा कि, मेरी राज्य सम्पदा इससे बिलकुल हीन है। इस लिये धिक्कार है, मेरे जीवनको वा मेरी राज्य विभूतिको ॥ ६७–६८ ॥ मैं भी ऐसी ही कोई विद्या साधन करूं, जिससे मुझे मनोवांछित राज्य विभव प्राप्त हो। बहुतवार विचारकर उसने इसी बात का दृढ़ संकल्प कर लिया और अपने छोटे भाईको राज्यका कारवार सम्हलाकर आप विद्यासाधनार्थ सिद्ध नामक वन को चला गया। और तपस्या करनेको उद्यत हो गया। वहां उसने गुरुके द्वारा पाई हुई उत्कृष्ट विद्याओंका साधन किया। पश्चात् पुण्यके प्रभावसे रोहिणी विद्याका साधन करके और उसकी सिद्धिसे अतिशय प्रसन्न होकर महान् उत्सवके सहित वह अपने अलंकार नामक नगरको लौट आया ॥ ६९–७१ ॥ तथा छोटे भाईसे राज्यका कारवार अपने हाथमें लेकर अंकुशरहित स्वतंत्र होकर राज्य करने लगा। विद्याओंके द्वारा साधन किये हुए वैभवसे वह इन्द्रके समान शोभित होता था। इस प्रकार राजा हिरण्यनाभिने पुण्यके प्रभावसे चिरकाल तक राज्यसुख भोगे ॥ ७२ ॥

एक दिन वह राजा संसारको निःसार जानकर वैराग्यको प्राप्त हो गया। और तत्काल ही राज्याभि-

षेक पूर्वक अपने पुत्रको विभूतिसम्पन्न राज्य सौंप कर श्री नमिनाथ स्वामीके समवसरणमें गया ॥ ७३-७४ ॥ उसने जिनेश्वरको नमस्कार कर परम भक्तिसे हाथ जोड़कर विनती की कि,:—हे भगवन्! यह संसार असार है, मुझे इस बातका भली भांति श्रद्धान होगया है। मैं अनादिकालसे संसार में रुल रहा हूं, अतएव हे तीन भवनके नाथ! संसारका नाश करनेवाला कोई उत्कृष्ट व्रत मुझे प्रदान करो ॥७५-७६ ॥ तब नमिनाथ स्वामीने उत्तर दिया, हे भव्य! तूने भला विचार किया। जिनेश्वरी दीक्षा अभागियोंको प्राप्त नहीं होती है। इसलिये तू सहर्ष महाव्रत अंगीकार कर। जिस समय राजा हिरण्यनाभि दीक्षा ग्रहण करने को तत्पर हुआ, उसी समय विद्याओंने हाथ जोड़कर विनती की कि, हे नाथ! आप तो अब जिनेन्द्रभाषित दीक्षा लेते हो, हम आपके विना अनाथ हो जावेंगी, बतलाओ कि, हम क्या करैं ॥ ७७-७९ ॥ यह सुनकर राजा हिरण्यनाभिने श्री नमिनाथ स्वामीसे पूछा, हे भगवन्! इन विद्याओं का क्या करना चाहिये? इनका स्वामी कौन होगा? आप दयाकर प्रगट कीजिये ॥ ८० ॥ तब जिनेंद्रकी दिव्यध्वनि खिरी कि:—हे वत्स! इन विद्याओंका जो स्वामी होनहार है, उसे मैं पहले ही बताता हूं, ध्यान देकर सुनो:—॥८१-८२ ॥

हरिवंशशिरोमणि श्री नेमनाथ तीर्थंकरके जो जेष्ठ भ्राता, नववें नारायण, द्वारिकानाथ, श्रीकृष्णराज होंगे, तथा उनकी जो गुणवती, रुक्मिणी नामकी रानी होगी, उसके गर्भसे पुण्यके प्रभावसे प्रद्युम्न नामका महाबली पुत्र होगा। सो जब वह मणिगोपुरमें आवेगा, तब वही बलवान, पराक्रमी, धीर, गंभीर, रूपवान कुमार इन विद्याओंका स्वामी होगा। जिन भगवानके मुखसे ऐसी वार्ता सुनकर राजा हिरण्यनाभिने मुझसे कहा कि, जो कोई गर्वशाली, बलवान, तथा सर्वमान्य पुरुष, मणिगोपुरमें आवे और तुझसे युद्ध करनेको कमर कसके तयार हो जावे, वही इन सब विद्याओंका नायक होगा, इसलिये तुम "गोपुर" में जाओ और वहीं तिष्ठो। इतना कहकर राजा हिरण्यनाभिने दीक्षा ग्रहण करली ॥८३-८८ ॥ अनेक शास्त्र पठन किये, आत्म स्वरूपका ध्यान किया, घातिया कर्मोंका विनाश कर केवलज्ञान

प्राप्त किया और अन्तमें अघातिया कर्मोंको निर्मूल कर वे परमपदको प्राप्त हुए ॥ ८९ ॥ आज्ञानुसार मंत्र मण्डलकी रक्षा करता हुआ और आपकी बाट देखता हुआ, हे महाभाग्य! उसके कहनेके कारण मैं इस गीपुरमें रहता हूं ॥९०॥ अब आप इन मंत्रगणोंको (विद्याओं को) ग्रहण करो, ये निधि तथा कोश भी अंगीकार करो, क्योंकि हे विभो! मुझे यहां रहते बहुत समय बीत गया है। पश्चात् अमोलकरत्नों का बना हुआ मुकुट और दिव्य आभरण देकर और प्रद्युम्नकी पूजा करके वे विद्यायें बोलीं, ॥९१-९२॥ हे महराज! श्री नमिनाथ स्वामीकी दिव्यध्वनिसे हमने जैसी आपकी शोभा सुनी थी, वैसी ही आज साक्षात् देखी। आपही हमारे स्वामी हो, इसमें संदेह नहीं। हम सब आपकी किंकरी हैं, हमारे लायक चाकरी हो, सो कहो ॥ ९३॥ तब श्री प्रद्युम्नकुमार बोलेः—आजसे हमने तुम्हें अपना किंकर किया, यह निश्चय समझो। अब जब हम याद करें, तब हाजिर होना ॥ ९४ ॥

उधर जब वज्रदंष्ट्र धूर्तने देखा कि, गोपुर गुफाके भीतर प्रद्युम्नको बड़ी देर लग गई है, तब वह प्रसन्न होकर अपने भाइयों से बोलाः—भ्रातागण! सच समझो, आज दैत्यके द्वारा प्रद्युम्न मारा गया। चलो, अब आनन्दके साथ घर चलें। ऐसा कहकर ज्यों ही वे लोग घर चलनेके लिये उठे, त्यों ही उन्होंने गुफासे निकलते हुए प्रद्युम्नको देखा ॥९५-९७॥ उसे उत्तमोत्तम आभूषण पहने हुए और देवोंसे पूजित देखकर, वे सब राजकुमार गर्वगलित हो गये। परन्तु अपने मनके भावको छुपाकर मायाचारीसे उससे मिले और फिर उस भोले किन्तु बलवान प्रद्युम्नको कालगुफाकी ओर ले चले ॥९८-९९॥ गुफासे कुछ दूर सब खड़े हो गये, तब वज्रदंष्ट्र धूर्तेश बोला,—जो कोई धीरवीर इस गुफामें जावेगा, उसे अनेक सुखदायक इष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होगी, इस लिये हे भ्रातागण! तुम किंचित् काल यहीं ठहरो, मैं गुफामें जाता हूं और अभी कार्य सिद्ध करके लौट आता हूं ॥१००-१०१॥ तब सरलस्वभावी प्रद्युम्नकुमार बोला, भाई-साहब! कृपाकर मुझे ही गुफामें भेजो, तो अच्छा हो ॥ १०२ ॥ यह सुनकर वज्रदंष्ट्रने खुशीसे उसे जानेकी आज्ञा दे दी। तब भोला प्रद्युम्न शीघ्र ही गुफामें इस प्रकार चला गया, जैसे कोई मनुष्य प्रसन्न-

तासे निडर होकर अपने घरमें प्रवेश करता है ॥ १०३ ॥

कालगुफाके भीतर धँसते ही श्रीप्रद्युम्नने एक वज्रपातके समान अतिशय डरावना, कानोंको बुरा लगनेवाला कर्कश शब्द किया ॥ १०४ ॥ जिसके सुनते ही गुफानिवासी राक्षसेन्द्र चौंक उठा, और क्रोधसे अरुण नेत्र किये हुए तत्काल प्रगट हो गया। प्रद्युम्नसे बोलाः—अरे पापी ! दुराचारी ! नराधम ! तूने मेरे पावन स्थानको भ्रष्ट क्यों किया ? क्या तूने इस गुफाका हाल पहले नहीं सुना था, जो यमराजके घर जानेके लिये यहां आया है ॥ १०५-१०७ ॥ उसके उक्त वचन सुनकर बलवान प्रद्युम्न बोले, रे नीच ! केवल बकनेसे ही यहां पुरुषार्थ प्राप्त नहीं होगा। यदि तुझमें अद्भुत शक्ति है, तो मुझसे आकर युद्ध कर। रे नीच जिनका केवल नीच पुरुषोंमें व्यवहार होता है, ऐसी गाली वृथा क्यों देता है ? ॥ १०८-१०९ ॥ रे शठ ! यदि तू शूरवीर है, धीर है, और रणकलामें चतुर है, तो शीघ्र ही मुझसे युद्ध कर ! विलम्ब क्यों कर रहा है ? उसके तेजस्वी वाक्योंको सुनकर वह राक्षसराज़ क्रोधित होकर चला, उधर प्रद्युम्न भी कुपित होकर साम्हना करने लगा। दोनों ओरसे वल्गना, तर्जना चपेटिका और मुष्टियोंसे चिरकाल तक मल्लयुद्ध हुआ। परन्तु जब राक्षसने देखा कि, प्रद्युम्न अजेय है, जीता नहीं जा सकता है, तब उसके पूर्व पुण्यके प्रभावसे वह भक्तिपूर्वक चरणोंमें गिर पड़ा ॥ ११०-११३ ॥ पश्चात् उसने कमल नालिके तंतुओंके समान दो बारीक चँवर, एक निर्मल छत्र, एक पवित्र रत्न, एक सुन्दर तलवार, वस्त्राभूषण वा पुष्प इतने पदार्थ प्रद्युम्नकुमारकी भेटमें दिये और कहा,—॥ ११४-११५ ॥ हे नाथ ! मैं आपका किंकर हूं, आप मेरे स्वामी हो। तब कुमार उसे वहीं स्थापन करके छत्र चँवरादि साथमें लेकर उस विकराल कालगुफासे बाहिर निकल आया ॥ ११६ ॥

जब दुष्ट भ्राताओंने देखा कि, प्रद्युम्न फिर भी दैवयोगसे बच गया और दिव्य वस्त्राभरण पहने हुए, देवसे पूजित होकर, सूर्यके समान प्रतापपुंज दिखाता हुआ, प्रसन्नतासे चला आ रहा है, तब उनका मुख उदास पड़ गया ॥ ११७ ॥ इस प्रकार जब द्वितीय लाभसहित पुण्यात्मा प्रद्युम्न भाइयोंके पास

आया, तब वे ऊपरी प्रसन्नतासे फिर मिले और उस भोले स्वभाववाले राजकुमारको तीसरी नाग नामकी गुफाकी तरफ ले गये ॥ ११८ ॥ गुफासे दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र धूर्तेश पूर्ववत् मायाचारीसे बोलाः—जो कोई इस गुफामें शीघ्रतासे प्रवेश करेगा, उसे चिन्तित पदार्थ प्राप्त होगा ॥११९॥ इस कारण अबकी वार तो मैं ही जाता हूं और शीघ्र देवदत्त लाभ लेकर लौट आता हूं । तुम यहीं ठहरो ॥ १२० ॥ तब विनयसहित प्रद्युम्न कामदेव बोले, भाईसाहब ! कृपाकर पहलेके समान अबकी वार भी मुझे आज्ञा दो, तो लाभके लिये मैं इस गुफामें भी जाऊं ॥ १२१ ॥ तब वज्रदंष्ट्र बोलाः—इसमें क्या पूछते हो ? तुमसे मैं क्या कहूं, जैसे तुम हमें प्रिय हो, वैसा कोई दूसरा नहीं है ॥ १२२ ॥ अतएव तुमही खुशीसे जाओ और पूर्व पुण्यके प्रभावसे जयसहित मनोहर लाभ ले आओ ॥१२३॥ तब कुमार प्रसन्नतासे तत्काल ही उस गुफामें निर्भय होकर चला गया। और वहां उसने उस गुफाके स्वामी नागराजके साथ भयंकर युद्ध करके उसे अपने वशमें कर लिया, अर्थात् उसे जीत लिया।

तब सर्पराजने नमस्कार किया और सन्तुष्ट होकर उसे एक नागशय्या, वीणा, कोमल आसन, सिंहासन, वस्त्र, आभूषण तथा गृहकारिका और सैन्यरक्षिका ये दो विद्यायें दक्षिणामें दी। जिन्हें कुमारने ग्रहण कीं ॥ १२४–१२७ ॥ इस प्रकारसे उस देवको अपना आज्ञाकारी बनाकर उसे वहीं छोड़कर, और भेटके पदार्थ साथ लेकर वह देवपूज्य प्रद्युम्नकुमार गुफामेंसे बाहर निकलकर अपने भाइयोंके समीप आया। इसे देखकर वे भी मायाचारसे प्रसन्नता पूर्वक मिले ॥ १२८–१२९ ॥

इसके पीछे वे सब प्रद्युम्नकुमारको एक भयंकर, देवरक्षित बावड़ी दिखानेको ले गये। उससे कुछ दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोलाः—जो पुरुष शंकारहित होकर इस वापिकामें स्नान करता है, वह सुभग, रूपसम्पन्न तथा जगतका पति होता है ॥ १३०–१३१ ॥ भाईके वचन सुनते ही वह भयरहित तथा बुद्धिमान कुमार वेगसे जाकर बावड़ीमें कूद पड़ा ॥ १३२ ॥ और गजेन्द्रके समान निर्भय होकर पानीमें मज्जन करने लगा। उसके दोनो हाथोंसे वापिकाके जलके बलपूर्वक आलोड़ित तथा ताड़ित होनेसे वापिका-

रक्षक देव बहुत क्रोधित हुआ। इसके मृदंगके, समान जल ताड़नके शब्दको सुनकर वह बाहर निकल आया और बोला, अरे पापी! नराधम! तूने इस सुरेन्द्रकी पवित्र जलकी वापिका जिसमें निर्मल कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं, अपने हाथ पांवके संचालन वा आघातसे क्यों अपवित्र की? ॥ १३३-१३६ ॥ रे दुराचारी! तूने यह अन्याय रूप वृक्षका बीज बोया, अब उसका फल चाख! देख तुझे मैं अभी यमपुरीको पहुंचा देता हूं ॥ १३७ ॥ ऐसे निंद्य वचन सुनते ही क्रोधसे संतप्त होकर प्रद्युम्न बोले:—रे असुराधम! वृथा ही क्यों बड़बड़ाता है, तुझे अपनी शूरताका घमंड हो, तो उसे लड़ाईमें प्रगट करना। यदि शूरवीर हो, तथा कृतकृत्य हो, तो आ मेरे साम्हने ॥ १३८-१३९ ॥ उसके इन वचनोंसे क्रुद्धित होकर राक्षस भी युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गया। दोनोंका घोर युद्ध हुआ। परन्तु अन्तमें प्रद्युम्नने असुरको हरा दिया। वह चरणोंमें गिरकर बोला, महाराज! निःसन्देह मैं आपका किंकर हूं, आप मेरे स्वामी हो ॥ १४०-१४१ ॥ पश्चात् देवने प्रद्युम्नकी पूजा की, और एक मकरकी ध्वजा उन्हें प्रदान की। उसी समयसे संसारमें प्रद्युम्नका मकरकेतु नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ १४२ ॥ प्रद्युम्नकुमारको लाभ लेकर आता देख भाइयोंका काला मुँह पड़ गया। तो भी वे ऊपरी प्रसन्नता प्रगट करके मायाचारीसे उससे मिले, और फिर एक जलते हुए अग्निकुंडको दिखानेके लिये ले गये। कुंडसे दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला:—भ्रातागण! एक बात सुनो। वृद्ध विद्याधरोंने एक सबको हितकारी बात बताई है कि, जो कोई पुरुष इस प्रज्वलित अग्निकुंडमें प्रवेश करेगा, उसको मनोवांछित पदार्थ मिलेगा, तथा वह राजा भी हो जायगा ॥ १४३-१४६ ॥ यह बात सुनते ही प्रद्युम्न सन्तुष्ट होकर साहससे निःशंक होकर अग्निकुंडके समीप आया और उस असुरसेवित कुंडमें कूद पड़ा। जब प्रद्युम्नने उसे चहुँओरसे दलमलित किया, तब वहांका देव क्रोधसे लाल मुख करके प्रगट हुआ ॥ १४७-१४९ ॥ स्मर अर्थात् प्रद्युम्न कामदेव और दैत्यका घोर युद्ध हुआ। अन्तमें देवका पराजय हुआ। वह सन्तुष्ट होकर प्रद्युम्नके पांव पड़ने लगा और मनोहर वचन बोला, महाराज! मुझपर प्रसन्न होओ,—और कृपा करके ये अग्निके धोये हुए तथा सुवर्ण तंतुके बने हुए दो

वस्त्र आप ग्रहण करो ॥१५०–१५१॥ हे महावली ! आजसे मैं आपका दास बन गया। ऐसा कहकर जब देवने विदा किया, तब कुमार भेंट लेकर कुण्डके बाहर निकल आया ॥१५२॥ उसे देखतेही वे सबके सब भाई अपने मनमें अतिशय क्रुद्ध हुए और अपनी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसे एक मेषाकार पर्वतपर ले गये। पर्वतके निकट खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला, जो कोई धीरवीर, और बलवान पुरुष निःशंक होकर इस पर्वतपर जावेगा, वह मनोवांछित पदार्थ पावेगा, ऐसा अनुभवी विद्याधर कहते हैं ॥ १५३–१५४ ॥ तब भाईको नमस्कार करके पुण्यवान प्रद्युम्नकुमार प्रसन्न होकर शीघ्र ही मेषाकार पर्वतपर गया ॥ १५५ ॥ जब वह सरल परिणामी मदनकुमार पर्वतके दोनों शिखरोंके बीचमें जाकर खड़ा हुआ, तब वे दोनों दिव्यशिखर दोनों ओरसे झुककर आपसमें मिलने लगे और कुमारको बीचमें ही दाबने (चपेटने) लगे ॥ १५६ ॥ कुमार समझ गया कि, यह कोई देवकी माया है, इसलिये उसने दोनों शिखरोंको अपने हाथसे रोककर अपनी कुहनियोंका ठूंसा लगाया ॥ १५७ ॥ तब एक वहांका रहनेवाला महा असुर प्रगट हुआ। वह कर्कशध्वनिसे अंडबंड बकने लगा, जिससे प्रद्युम्न उसके साथ युद्ध करने लगा। अन्तमें हारकर असुरने हाथ जोड़े, और कहा ॥ १५८–१५९ ॥ हे नाथ ! क्षमा करो ! मैं आपका दास हूं। ऐसा कहकर देवने कुमारको दो रत्नोंके कुण्डल दिये ॥ १६० ॥ जब कुंडल लेकर प्रद्युम्नको आता देखा, तब दुष्ट बन्धुगण कुपित हुए और वज्रदंष्ट्रसे बोले ॥ १६१ ॥ इस दुष्टबलवाले प्रद्युम्नको हम सब मारेंगे। क्योंकि यह पापी जहां जाता है, वहींसे महालाभ लेकर वापिस आता है। यदि इस समय इसका निवारण नहीं किया जावेगा, तो पीछे कठिनाई होगी। क्योंकि, व्याधियां और वैरी जड़ पकड़ लेनेपर दुर्जय हो जाते हैं ॥ १६२–१६३ ॥ तब वज्रदंष्ट्रने उत्तर दिया, भ्रातृगण ! निराश मत होओ, उत्साह भंग न करो, अभी तो सैकड़ों उपाय उसको मारनेके हैं ॥ १६४ ॥ किसी न किसी जगह लोभयुक्त प्रद्युम्न फँस जायगा और प्राण तज देगा। क्योंकि लोभी किसी न किसी संकटमें पड़कर मरणको प्राप्त हो जाता है और निर्लोभी सुखको प्राप्त होता है। इतनेमें प्रद्युम्न आ पहुंचा, सब मायावी भ्राता उससे

मिले। वह वज्रदंष्ट्रके चरणोंमें नम्रीभूत हो गया, तब वे सब मिलकर उसे सब ओरसे रमणीय और नाना कौतुकोंसे भरे हुए विजयार्द्ध पर्वतको देखनेके लिये गये।

उक्त वनमें एक आम्रवृक्ष (सहकार) लगा हुआ था। उससे दूर खड़े होकर पापात्मा वज्रदंष्ट्र बोला ॥ १६५–१६८ ॥ जो कोई महानुभाव इस आम्रवृक्षके अमृततुल्य फल भक्षण करे, सो सदा यौवनयुक्त रहे, जरावर्जित रहे और सौभाग्यशाली होवे ॥ १६९ ॥ तब बली प्रद्युम्न बड़े भ्रातासे बोले, भाई! यदि आप आज्ञा करो, तो मैं वृक्षके फल आस्वादन करूं ॥ १७० ॥ आज्ञा मिलते ही प्रद्युम्न शीघ्र ही वृक्षके पास गया, निःशंक वृक्षपर चढ़ गया और उसकी डालियां जोरसे हिलाने लगा ॥ १७१ ॥ तब वहां रहनेवाला देव बन्दरका रूप धारण कर प्रगट हुआ, जिसका मुख लाल हो रहा था, नेत्र क्रोधसे सुर्ख हो रहे थे, भौंहें टेढ़ी हो रहीं थीं, और रूप महा भयानक दीख पड़ता था। वह प्रद्युम्नसे निंद्य वचन बोलने लगा,—अरे दुराचारी नीच मानव! तू मेरे सहकार वृक्षपर क्यों चढ़ा? और डालियोंको हिलाकर तू फलोंको पृथ्वीपर क्यों गिरा रहा है? ॥ १७२–१७४ ॥ बंदरके दुर्वचन सुनते ही कुमार कुपित हुआ और उससे लड़नेको उद्यत हुआ। दोनोंमें बहुत समय तक युद्ध हुआ। अन्तमें जब प्रद्युम्नने उसे पूंछ पकड़कर जमीनमें पटकना चाहा, तब वह भयभीत होकर प्रगट हो गया और बोला, मुझे छोड़ दो, मुझ दीनपर कृपा करो ॥ १७५–१७७ ॥ ऐसा कहकर देवने एक मुकुट, एक अमृतमाला, और दो आकाशगामिनी पादुका कुमारको भेंट कीं ॥ १७८ ॥ उस दैत्यको अपना बनाकर और उससे पूजित हुआ प्रद्युम्नकुमार झाड़से उतरकर आने लगा। यह देखकर वे सब भाई क्रोधित हुए और कहने लगे, हम इसे अभी मारेंगे। वज्रदंष्ट्र बोला, भाइयो! उतावली मत करो, स्वस्थ होकर बैठो। इतनेमें प्रद्युम्न आ पहुंचा। तब वे सब कुटिल अभिप्राय धारण करनेवाले उससे मिले और फिर उसे कपिल नामके वनमें ले गये।

उस कपित्थवनसे कुछ दूरीपर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला, जो मनुष्य इस सुन्दर वनमें प्रवेश करता

है, वह अपने इच्छित पदार्थोंको पाकर पृथिवीका स्वामी होता है। विजयार्द्धके रहनेवाले वृद्ध विद्याधरोंके मुंहसे यह बात सुनते आते हैं, इसलिये तुम सब यहीं ठहरो, मैं शीघ्रतासे जाकर मनचिंतित पदार्थोंको प्राप्त करके आता हूं ॥ १७६–१८४ ॥ उसके इस वचनसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नकुमार प्रसन्नतासे उस वनमें घुस गया और वृक्षपर चढ़ गया। इतनेमें वहांपर एक असुर अंजनके समान काले हाथीका आकार धारण करके आया, उसके साथ प्रद्युम्नने बड़ा विषम युद्ध किया। और उसे वल्गन तर्जनमें मदरहित कर दिया। तब वह गज विनयपूर्वक बोला, हे नाथ! मैं आपका सेवक कामगज हूं। समय पड़नेपर मुझे स्मरण कीजिये। ऐसा कहकर उसने कामदेवकी पूजा की। कामकुमार इस तरह देवपूजित होकर लौट आये। तब वे सबके सब राजकुमार उन्हें अनुवालक शिखर पर ले चले। वहां दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र फिर बोला, इस पर्वतपर जो शूरवीर आरोहण करता है, वह पृथ्वीका एकाधिपति होता है। उसके वचनसे संतुष्ट होकर विनयी प्रद्युम्नकुमार साहसपूर्वक शिखरपर चढ़ गया। वहां भी पहलेकी नाईं चरणोंके प्रहारसे सर्पके आकारको धारण करनेवाला दैत्य सचेत हो गया। जिससे वह बड़े वेगसे क्रोधित होकर साम्हने आया। उसने ताड़ना और दुर्वचनोंसे बड़ा भारी युद्ध किया। परन्तु अन्तमें उसे प्रद्युम्नने बहुत जल्दी जीत लिया। तब उस दैत्यनाथने संतुष्ट होकर अश्वरत्न (घोड़ा) छुरी, कवच (जिरहवख्तर) और मुद्रिका ये दिव्य चीजें भेंट कीं और भक्तिपूर्वक प्रद्युम्नकी पूजा की। इस प्रकारसे वह नवमें लाभकी प्राप्ति करके लौट आया। उसे आता देखकर वे मूर्ख विद्याधरकुमार आपसमें विचार करने लगे कि, यह पापी फिर बड़ा भारी लाभ लेकर आ गया। अब इस दुष्टका क्या करना चाहिये? ॥ १८५–१९६ ॥

इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारको वे सब शरावास्य नामके महापर्वतपर ले गये। उस पर्वतको देखकर बड़ा भाई बोला, हे भाइयो! मेरे वचन सुनो,—॥ १९७ ॥ जो बलवान मनुष्य निःशंक और निडर होकर इस पर्वतपर चढ़ता है, वह निश्चयपूर्वक सम्पूर्ण विद्याधरोंकी राज्य लक्ष्मीको प्राप्त करता है ॥ १९८ ॥

इसलिये तुम सब भाई यहीं ठहरो, मैं वहां जाकर और अपना इच्छित लाभ लेकर शीघ्र ही आता हूं ॥ १९९ ॥ उसके इसप्रकार वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बड़े भाईसे बोला कि, नहीं, आप न जावें, शरावाकार पर्वतपरमैं ही जाता हूं ॥ २०० ॥ बड़े भाईकी आज्ञा लेकर प्रद्युम्नकुमार शीघ्र ही गया और पर्वतपर चढ़कर सहसा उसके शिखरको कंपायमान करने लगा ॥ १ ॥ इतनेमें वहांका रहनेवाला देव प्रगट हुआ और कुपित होकर प्रद्युम्नके साथ युद्ध करने लगा। लड़ाईमें उसे जीतकर विजयी प्रद्युम्नने उससे कंठी, बाजूबंद, दो कड़े और कटिसूत्र (करधनी) ये दिव्य आभूषण प्राप्त किये। इसके सिवाय उस असुरने इनकी भले प्रकार पूजा की। इसप्रकार सन्मान प्राप्त करके राजकुमार शीघ्र ही लौट आया। उसे देखकर वे सब राजपुत्र जीके जीमें कुढ़कर रह गये और कुपित होकर 'बराहाकार' पर्वतपर ले गये। दूर खड़े होकर विद्याधरपुत्र बोले;— ॥ २–५ ॥

इस शूकराकार पर्वतमें जिसका आकार शूकरके ही समान है, जो कोई प्रवेश करता है, वह शूरवीर पृथ्वीका स्वामी होता है ॥ ६ ॥ इस वाक्यसे उत्साहित होकर प्रद्युम्नकुमार शीघ्रतासे दौड़ता हुआ पर्वतपर चढ़ गया। उसके चढ़नेपर पर्वतका शूकरके समान मुख मिलने लगा, तब उसे इसने अपनी कुहनियोंसे विदारण कर डाला ॥ ७ ॥ यह देख बराहमुख नामका महाबली देव प्रद्युम्नके साथ भयंकर युद्ध करने लगा ॥ ८ ॥ सो पूर्व पुण्यके बलसे प्रद्युम्नने उसे भी जीत लिया। संसारमें जितनी सुखकारी वस्तुएँ हैं, वे सब पुण्यवानोंको सुलभतासे प्राप्त हो सकती हैं। दुष्कर नहीं हैं ॥ ९ ॥ उस देवने जय शंख नामका शंख, और पुष्पमयी धनुष्य, ये दो दिव्य वस्तुएं प्रद्युम्नकी पूजा करके प्रदान कीं ॥१०॥

लाभ लेकर आते हुए विजयी प्रद्युम्नकुमारको देखकर वे मूर्ख फिर क्रोधित हुए और उसे पद्म नामके वनमें ले चले ॥ ११ ॥ पहलेकी नाईं दूर खड़े होकर वज्रमुख बोला, यह पद्मवन पृथ्वीमें अतिशय प्रसिद्ध और रमणीय है ॥ १२ ॥ इसमें जो कोई जाता है, और शीघ्रतासे भयरहित होकर लौट आता है, उसके हाथमें निश्चय समझो कि, संसारका आधिपत्य आ जाता है ॥ १३ ॥ उसके वचनोंसे संतुष्ट

होकर बलवान प्रद्युम्नकुमार बड़े वेगसे वहां गया। क्योंकि लाभकी आशासे ही उद्यम होता है। पद्मवन में जानेसे लाभ होगा, इस विचारसे उसने वहां जानेमें क्षणमात्र भी विलम्ब न किया ॥ १४ ॥ उस वनमें पहुँचकर धीरवीर कुमारने देखा कि, एक मनोजव नामका विख्यात विद्याधर एक वृक्षके नीचे बँधा हुआ है ॥ १५ ॥ उसे देखकर कुमारने निडर होकर पूछा कि, हे विद्याधर! इस जनशून्य वनमें तुझे किसने बाँधा है? ॥ १६ ॥ मनोजवने उत्तर दिया, हे नाथ! मेरे वचन सुनिये। वसन्त नामके विद्याधरने जो कि मेरा पूर्वका वैरी है, मुझे बांधा है ॥ १७ ॥ हे विभो! अब मैं तुम्हारी शरणमें आया हूं। मेरा शत्रु इसी वृक्षपर है। मैं आपका किंकर हूं, इसलिये मुझे शीघ्रतासे छोड़ दो ॥ १८ ॥ यह सुन-कर कुमारने कहा, हे भाई! तू व्यर्थ भय मत कर, मैं तुझे बहुत जल्दी छोड़ देता हूं ॥ १९ ॥ कुमारने ज्यों ही विद्याधरको छोड़ा, त्यों ही वह इनसे विना कुछ बातचीत किये, धीरे २ शत्रुके पीछे गया, और शीघ्र ही उसे बांधकर कुमारके साम्हने ले आया और बोला,—उपकारके समुद्रस्वरूप आपसे विना पूछे ही जो मैं यहांसे शीघ्र ही चला गया था, सो हे नाथ! इस रिपुके पकड़नेके लिये चला गया था। अब मैं आपके ही प्रसादसे जीता हूं ॥ २०–२२ ॥ ऐसा कहकर उस विद्याधरने कुमारको दो विद्याएँ एक बहु-मूल्यहार और एक इन्द्रजाल नामकी विद्या संतुष्ट करनेके लिये दी इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारने मनोजव और वसन्तक इन दोनों विद्याधरोंका विरोध मिटाकर उनमें खूब मित्रता करा दी। इससे संतुष्ट होकर वसन्तक विद्याधरने कुमारको अपनी नवीन यौवनकी धारण करनेवाली और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंवाली, एक अतिशय सुन्दरी कन्या दे दी। आचार्य महाराज कहते हैं कि, पुण्यसे क्या २ वस्तुएं प्राप्त नहीं होतीं? अर्थात् पुण्यसे सभी कुछ प्राप्त हो सकता है ॥ २३–२५ ॥

इस प्रकार अनेक लाभोंको लेकर आते हुए प्रद्युम्नकुमारको देखकर वे मूर्ख राजकुमार मन ही मन जल गये। और क्रोधित होकर प्रद्युम्नको कालवन नामके वनको ले गये। वनसे कुछ दूर खड़े होकर वज्रमुखने फिर भी पहलेकी नाईं कहा कि, इस वनमें भी जो कोई प्रवेश करेगा, वह उत्तम लाभको

प्राप्त करेगा ॥ २६–२७ ॥ तब उसके वचन सुनकर वह बलवान कुमार जिसका चित्त लाभके लोभसे प्रसन्न हो रहा था, शीघ्रतासे उस वनमें पैठ गया ॥ २८ ॥ और वहां पहुंचकर उसने वहांके महाबल नामके दुष्ट दैत्यको जीत लिया। जिससे संतुष्ट होकर उसने मदन, मोहन, तापन, शोषण, और उन्मादन इन पांच विख्यात पुष्पबाणोंके सहित एक पुष्पधनुष्य दिया। पूर्व पुण्यके प्रभावसे उसी समयसे मनुष्योंको मोहित करनेवाला और स्त्रियों को उन्मादनकरनेवाला वह कुमार यथार्थमें मदन अर्थात् कामदेव नामको धारण करनेवाला हुआ ॥ २९–३१ ॥

इस लाभको लेकर आते हुए देखकर वे सबके सब विद्याधरकुमार दुखी हुए और फिर क्रोधके वशसे उसे भीमा नामकी दुष्ट गुफामें जो कि भयंकर सर्पका रूप धारण करनेवाली थी, पहले जैसी छल कपट की बातें करके ले गये। सो प्रद्युम्नने उस गुफामें भी शीघ्रतासे जाकर उसके अधिकारी देवको जीत लिया और उससे भी एक पुष्पमयी छत्र और एक पुष्पमयी सुन्दर शय्या ये दो चीजें भेंटमें प्राप्त कीं ॥ ३२–३४ ॥ उस देवने इनकी पूजा मानना करके और नमस्कार करके इन्हें विदा कर दिया, सो ये शीघ्रतासे लौट आये। मनुष्योंको पुण्यके प्रभावसे निरन्तर सुख ही प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

प्रद्युम्नको लाभसहित लौटा देखकर वे दुष्टबुद्धि राजकुमार अपने बड़े भाईसे बोले, अब हम लोग प्रद्युम्नको अवश्य मारेंगे। क्योंकि इस तरह यह दुराचारी जहां जाता है, वहांसे कुशलपूर्वक लाभ सहित लौट आता है। दैवसे भी यह नहीं मारा जाता है ॥ ३६–३७ ॥ अतएव अब हम इसे खड्गकी चोटसे मार डालते हैं। इसमें संशय नहीं है। आप एक ओर मौन धारण करके बैठे रहें, और हमको न रोकें ॥ ३८ ॥ तब वज्रदंष्ट्र बोला, मेरी बात सुनो। अब भी शत्रुका घात होने योग्य दो स्थान बाकी हैं। सो वहां ले जाकर हम इस दुष्टको अवश्य मार डालेंगे। तब तक दुष्टचित्त प्रद्युम्नके विषयमें कुछ भी नहीं करना चाहिये ॥ ३९–४० ॥ इतनेमें प्रद्युम्न आ गया और उससे सब भाई मिले। पश्चात् उसे छल करके विपुलनामके वनमें ले गये ॥ ४१ ॥ जहां श्रीजयन्तनामका नानाप्रकारके वृक्षोंसे तथा लतावल्लीसे सुशो-

भित अतिशय ऊंचा पर्वत था। उसे दूरसे देखकर वज्रमुख बोला, जो धीर वीर इसमें प्रवेश करके-तथा रमण करके शीघ्र ही लौट आता है वह चिन्तित पदार्थोंको पाकर देवोंके द्वारा पूजनीय होता है। उसके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार शीघ्रतासे चला ॥ ४२-४४ ॥ और ज्यों ही उस विचक्षणने वनमें प्रवेश किया, त्योंही जयन्तक पर्वतपर उसकी दृष्टि पड़ी ॥ ४५ ॥ जिसके पसवाड़ेमें जलसे परिपूर्ण और वेगसे वहनेवाली नदी वह रही थी, और जिसके किनारेरूप कंठ तमालादि वृक्षोंसे शोभायमान हो रहे थे ॥ ४६ ॥ वहां एक तमालवृक्षके नीचे पड़ी हुई शिलाके फलकपर एक कामिनी आसन लगाए हुए ध्यानमें मग्न हो रही थी। वह रूप और यौवनसे लवालव भरी थी, नासिकाके अग्रभागमें अपनी दृष्टिको जमाये हुए थी, नानाप्रकारके लक्षणोंसे युक्त और गुणोंके पार पहुंची हुई थी, तांवेके समान लाल नखोंसे पाटलके समान स्फटिककी मालाका ध्यानपूर्वक जाप करती थी, रेशमका सफेद धोया हुआ वस्त्र पहने थी, छूटे हुए वालोंसे उसकी दोनों भौंहें ढक रही थी, मुखकमलसे निकलती हुई सुगंधिके कारण भौंरोंके झुंडके झुंड भ्रमण करते हुए उसके मुखकी सेवा करते थे। उन्नत सघन कुचोंके भारसे उसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था, जंघाओंसे आलसयुक्त थी, और स्वभावसे कृश अर्थात् पतली थी। जिसने हाथीकी चालको अपनी गतिसे जीत ली थी, वीणाके समान जिसकी आवाज थी, शंखके समान जिसका कंठ था, सुन्दर नुकीली नासिका थी, कमलके समान सुन्दर और चंचल जिसके नेत्र थे, अधिक क्या कहें, जिसनें अपने रूपसे तीन लोककी स्त्रियोंके रूपको जीत लिया था, उस सर्वलक्षण युक्ता, सर्वांगसुन्दरा सर्व विद्याओंमें निपुण और स्त्रियोंके सम्पूर्ण उत्तम गुणोंसे शोभायमान सुन्दरीको देखकर प्रद्युम्नकुमार चकित हो गया और विचारने लगा,—॥ ४७-५५ ॥ क्या यह सूर्यकी स्त्री है? अथवा चन्द्रमाकी कामिनी है? अथवा इन्द्राणी ही देखनेके लिये आई है? कामकी स्त्री रति है, अथवा कांति, कीर्ति, किन्नरी, और धरणेन्द्रकी स्त्री, इनमेंसे कोई है?॥ ५६-५७ ॥ लोककी उत्कृष्ट कान्ति इसहीमें है, इसीमें मनको रमानेवाला रूप है, इसीमें भव्यता है और इसीमें सारा लावण्य भर दिया गया है ॥ ५८ ॥ इसीहीमें

सारे गुणोंका घर है, और इसीमें कलाओंका समूह है, अधिक क्या कहा जावै, सारी महिमा इसीमें मुद्रित की गई है ॥ ५९–६० ॥ इसप्रकार ध्यानके योगसे निश्चल हुई उस त्रैलोक्यसुन्दरियोंके रूपको जीतने वाली सुन्दरीको देखकर मदन (प्रद्युम्नकुमार) मदन अर्थात् कामदेवसे विह्वल हो गया। तत्काल ही कामदेवके पांचों बाणोंसे घायल होकर व्यग्रचित्त हो गया और वहीं बैठ गया। इतनेहीमें वहां वसन्त नामके देवका आगमन हुआ ॥ ६१–६३ ॥ वह प्रद्युम्नके चरण कमलोंको नमस्कार करके उनके समीप ही बैठ गया। तब कुमारने उस सुन्दरी कन्याके विषयमें पूछा;—॥ ६४ ॥ हे महाभाग! मेरे आश्चर्यका कारण शीघ्र कहो कि, यह परमसुन्दरी इस निर्जन वनमें किसलिये रहती है? ॥ ६५ ॥ यह किसकी पुत्री है, और किसलिये तपस्या करती है? यह नव यौवनसे परिपूर्ण और स्त्रियोंमें जितने गुण होने चाहिये, उनकी घर है ॥ ६६ ॥ यह सुनकर वसन्तकने कहा; हे नाथ! मेरे वचन सुनो;—एक प्रभंजन नामका विद्याधरोंका स्वामी है। उसकी वाक् नामकी स्त्री है, जो गुणोंकी सागर है। उसके उदरसे रति नामकी विख्यात कन्या उत्पन्न हुई, जो इस समय नवीन यौवनको धारण किये हुए तपस्या कर रही है। यह सुनकर प्रद्युम्नने पूछा, यह किस कारणसे यह कष्ट उठा रही है? ॥६७–६९ ॥ तब वह देव बोला, इसका कारण मैं कहता हूं, आप सुनें। एक दिन इसके पिताके घर एक योगी आया। आहार ग्रहण करनेके पीछे राजाने विनयसे पूछा, हे स्वामिन्! मेरी रति नामा पुत्रीका होनहार पति कौन है? ॥ ७० ॥ तब मुनिराजने उत्तर दिया, राजन्! सुनो,—द्वारिकानगरीके राजा कृष्णकी रुक्मिणी रानीका जो प्रद्युम्न नामका सर्वलक्षणसम्पन्न, और सर्वविद्यानिधान पुत्र है, वही तेरी पुत्रीका होनहार पति है। वह बड़े भारी साहससे इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त होकर विपुल नामके भयंकर वनमें आवेगा। वही तेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करेगा ॥ २७१–२७३ ॥ सो उन्हींके वचनोंपर विश्वास करके यह रति नामकी कन्या उत्कृष्ट पतिके प्राप्त करनेकी इच्छासे इस वनमें तप कर रही है ॥ २७४ ॥ जिसके विषयमें मुनिराजने कहा था, लक्षणोंसे और गुणोंसे वे तुम ही मालूम होते हो, इसमें अब संशय नहीं रहा है। इस

कन्याके पुण्यके प्रभावसे आप यहां पधारे हो। आप दोनोंका जैसा रूप है, वैसा पृथ्वीतलपर दूसरेका नहीं है। आप दोनोंका सम्बन्ध होनेसे ही विधाता का श्रम सफल गिना जायगा ॥ २७५-२७६ ॥ देवके ऐसे वचन सुनते ही प्रद्युम्नकुमार बहुत प्रसन्न हुए। हर्ष और लज्जासे नीचेको मुख किये हुए वे इस प्रकार सुन्दर वचन बोले:—मैं तो पुण्ययोगसे भ्रमण करता हुआ इस वनमें चला आया था, सो इस सुंदरीको देखते ही कामबाणोंसे वेधित हो गया हूं ॥ २७७-२७८ ॥ अतएव तुम्हारे प्रसादसे हम दोनोंका सम्बन्ध हो जाय, तो अच्छा हो। क्योंकि उत्तमोंके संयोगसे ही देहधारियोंके दुःखकी शान्ति होती है ॥ २७६ ॥ प्रद्युम्नकुमारके ऐसे वचन सुनकर वसन्तध्वज देवको संतोष हुआ। इसलिये उसने तत्काल ही उन दोनोंका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करा दिया ॥ २८०-२८१ ॥ स्त्रीके परम लाभको प्राप्त करके प्रद्युम्नकुमारको बहुत संतोष हुआ। उसके पश्चात् ही उन्होंने पूर्वके बड़े भारी पुण्यके उदयसे एक दूसरा भी लाभ प्राप्त किया ॥ ८२ ॥ जो इस प्रकार है;—

पाणिग्रहण हो चुकनेके पश्चात् उसी मनोहर वनमें एक सकट नामका असुर कुमारसे आकर मिला ॥ ८३ ॥ उसने भी प्रद्युम्नको प्रणामकरके हर्षके वेगमें कामधेनु, और वसन्तके समान सुन्दर फूलोंका रथ ये दो दिव्य वस्तुएं भेंट कीं ॥ ८४ ॥ इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारने उसी पुष्परथपर अपनी प्राणप्यारी रतिके सहित उस वनसे कूच कर दिया। सो तत्काल ही लीला मात्रमें वे उस वनसे बाहर निकल आये ॥ ८५ ॥ जब भाइयोंने सोलहों लाभोंको प्राप्त करनेवाले कुमारको देखा, तब वे सबके सब मलीनमुख हो गये ॥ ८६ ॥

वह सुन्दर मदनकुमार अपनी रतिके साथ रथमें आरूढ़ होकर आनन्दसे चला! उसके आगे आगे वे सब विद्याधर भाई चले! जिस समय वह नगरकी ओर चला, उस समय वे सब भाई भी जिनके कि मलिनमुख थे, नगरकी ओर आगे २ दौड़ने लगे ॥ ८७-८८ ॥ इस उदाहरणसे विद्वानोंके आगे पुण्य और पापके फल ऐसे प्रगट हुए, जैसे वे स्वयं (पुण्यपाप) बोल रहे हों कि, पुण्यका फल यह है और

पापका फल यह है। यह दृष्टान्त नगरनिवासियोंने प्रत्यक्ष देखा ॥ ८९ ॥

रतिके सहित कामदेवका आगमन सुनकर उस नगरकी स्त्रियां देखनेके लिये बाहर निकल आईं ॥ ९० ॥ कौतुक देखनेके लिये आकुल हुईं उन सब सरला और चपला दृष्टिवाली स्त्रियोंने अपने मुख-चन्द्रोंसे झरोखोंको ढँक दिया ॥ ९१ ॥ कामदेवकी रूपपाशमें विंधी हुई अनेक श्रेष्ठ वनितायें अपने २ घरोंके काम काज छोड़कर परस्पर झगड़ने लगीं ॥ ९२ ॥ कोई एक स्त्री दूसरीसे बोली, तू अपने खुले हुए केशोंको फैलाकर मुझे आगेकी ओर क्यों नहीं देखने देती है? मेरे साम्हनेकी दिशाको तूने क्यों रोक रक्खी है ॥ ९३ ॥ और तूने ये अपनी भुजायें मेरे साम्हने क्यों फैला रक्खी हैं? मेरे आगेसे शीघ्र हट जा और मुझे देखने दे ॥ ९४ ॥ कोई एक अपनी सखीसे कहती है, हे आलि! जब प्रद्युम्नकुमारका नयनोंको अमृतके समान लगनेवाला रूप ही नहीं देखा, तब जीवतव्यसे और इस मनुष्य जन्मसे क्या? नेत्रोंके पानेकी सफलता तभी है, जब ये दर्शन हों, नहीं तो इनका पाना ही व्यर्थ है ॥ ९५-९६ ॥ एक और स्त्री जो कुचोंके भारसे झुक रही थी, और नितम्बोंके भारसे आलसयुक्त हो रही थी और इस-लिये एकाएक चलनेके लिये असमर्थ थी, प्रद्युम्नकुमारके देखनेके लिये आई और अपनी सखीसे हर्षित होकर बोली, इस कुमारका शरीर जिन परमाणुओंसे बना है, वे ही उत्तम परमाणु हैं ॥ ९७-९८ ॥ उसी माताको धन्य है, जिसने इसे अपने उदरमें धारण किया होगा। और कोई एक युवती रतिके साथ कामदेवको देखकर अपनी बराबरी वालीसे बोली, इस मदनालसा सुन्दरीको धन्य है, जो इसके अंकमें (गोदमें) सुशोभित होती होगी ॥ ९९-३०० ॥ कई एक ऐसी स्त्रियां जिनके वस्त्र शिथिल हो गये थे, बाल बिखर रहे थे, और कुचोंपरसे हार टूटकर झड़ रहे थे, अपने शरीरकी सुध बुध भूलकर अर्थात् कपड़े, बाल और हार न सम्हालकर प्रद्युम्नको देखनेके लिये दौड़ीं ॥ १ ॥ किसी किसीने कड़ोंको कानोंमें पहन लिये, किसीने कटिसूत्रको गलेमें पहन लिया, किसीने हारको कमरमें पहिन लिया, और मेखलाको सिरमें डाल ली, नेत्रोंमें केसर लगा ली, और कपोलोंमें कज्जल लगा लिया। इस प्रकार

विह्वल होकर अपने आपेको भूलकर प्रद्युम्नको देखनेके लिये दौड़ीं। ठीक ही है, साक्षात मदनके दृष्टिगोचर होनेपर योग्य अयोग्यका विचार कहां रह सकता है? ॥ २-३ ॥ कोई एक स्त्री रूप और यौवनसे परिपूर्ण प्रद्युम्नको देखकर कामदेवके शरसे विद्ध हो गई, जिससे उसके सारे शरीरमें रोमांच हो आया ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे प्रद्युम्नकुमारके आनेपर नगरकी स्त्रियोंने नानाप्रकारकी चेष्टायें कीं। ठीक ही है, जो जीव कामकी फाँसीमें फँस जाते हैं, वे क्या क्या चेष्टायें नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

इस प्रकार नगर निवासिनी स्त्रियोंको दर्शन देता हुआ प्रद्युम्नकुमार राजमहलमें पहुंचा, जहां कि, कालसंवर विराजमान थे ॥ ६ ॥ उसने उनके चरणकमलोंको अपने मस्तकके केशोंसे मार्जन करके बड़ी विनय तथा भक्तिके साथ प्रणाम किया ॥ ७ ॥ पिताने भी पुत्रका आलिंगन किया और उसके मुख तथा मस्तकको चूमा। फिर शरीरादिकी कुशलता पूछी ॥ ८ ॥ प्रद्युम्नकुमारने कहा, प्रभो! आपके चरणकमलोंके प्रसादसे तथा आपकी कृपासे मेरी निरन्तर ही कुशल रहती है ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर और थोड़ी देर बैठकर प्रद्युम्नकुमार अपने पिताकी आज्ञा लेकर लीला करता हुआ माताके मंदिरमें गया ॥ १० ॥ सो जननीका आलिंगन करके और चरणकमलोंको विनयपूर्वक नमस्कार करके उसके साम्हने बैठ गया ॥ ११ ॥ कनकमालाने भी सोलह लाभोंको प्राप्त करके आये हुए अपने श्रेष्ठपुत्रको आशीर्वाद दिया ॥ १२ ॥ वह कुमार सम्पूर्ण लक्षणोंसहित, नवीन यौवनका धारण करनेवाला, अपने यशसे संसारको व्याप्त करनेवाला, और सम्पूर्ण गुणोंका स्थान था। उसका मस्तक कोमल, काले, घुंघराले, तथा विस्तृत केशोंसे बहुत सुन्दर था, नेत्र काले सफेद लाल और बड़े बड़े थे, चन्द्रमाके समान सौम्य मुख था, शंखके समान मनोहर कंठ था, सुमेरुकी भीतके समान वक्षःस्थल था, सिंहके समान कमर थी, हाथीके समान चाल थी, तपाये हुए सोनेके समान सुन्दर शरीर था। इस प्रकार अनेक उपमान समूहसे जो संयुक्त था, ऐसे सम्पूर्ण गुणोंवाले उस प्रद्युम्नके रूपको देखकर कामकी प्रेरी हुई कनकमाला मर्मका भेदन करनेवाले कामदेवके बाणसे विद्ध होकर ऐसी दीनमुख हो गई, जैसे तुषारका लगा हुआ कमल

हो जाता है ॥ १३–१६ ॥ विरहकी आगसे उसका शरीर संतप्त होने लगा। दुःखके मारे वह अपने हाथ-पर कपोल रखकर चिंता करने लगी ॥ २० ॥ विरहसे आर्द्रित होकर वह नयनोंसे आँसू बहाने लगी और विचारने लगी, हाय! मैं क्या करूं? कहां जाऊं? क्या पूंछूं और क्या कहूं? ॥ २१ ॥ लावण्यसे भरा हुआ मेरा यह नवीन यौवन, मेरा रूप, मेरी कान्ति, और मेरे गुण धैर्य, विभव, कला, आदि तब ही सफल होंगे, जब मैं इस सर्व विद्याओंसे युक्त और सुन्दर कुमारका सेवन करूंगी। अन्यथा ये सब विफल हैं। इनका होना न होना बराबर है ॥ २२–२३ ॥ जिसने इसके मुख कमलके मधुर मधुका पान न किया, और अपनी आँखोंसे इसके मुख पंकजको नहीं देखा, प्रणयसे कुपित होकर कमलसे इसे नहीं मारा, प्रेमसे इसका आलिंगन नहीं किया, तिरछे कटाक्षोंसे इसको नहीं देखा, और सुरति क्रीड़ाके समय किंकिणीका मनोहर शब्द न किया, उस स्त्रीके विफल जीवनसे क्या? अर्थात् इसको पाये विना कोई भी स्त्री भाग्यशालिनी नहीं हो सकती है ॥ २४–२६ ॥ जबतक कनकमाला इन विचारोंमें उलझी रही, तबतक प्रद्युम्नकुमार नमस्कार करके अपने महलको चला गया ॥ २७ ॥

प्रद्युम्नके चले जानेपर कनकमाला दुःखी होती हुई सोचने लगी, हाय! मुझे यह क्या हो गया है? कामके बाणोंसे मेरा सारा शरीर घायल हो गया है। मुझसे उसकी विरहवेदना नहीं सही जाती है ॥ २८ ॥ उस समय कनकमाला निर्लज्ज होकर नानाप्रकारकी विकारचेष्टायें करने लगी। वारंवार अपने कुचोंको देखने लगी, और वारंवार जिम्हाई लेने लगी ॥ २९ ॥ शरीरमें जो आभूषण पहने हुए थी, उन सबको अलग करके अपने शरीरकी निंदा करने लगी ॥ ३० ॥ केशोंको खोलकर फिर बांधने लगी, तथा उतारे हुए भूषणोंको फिर पहनने लगी ॥ ३१ ॥ कामदेवकी तपनसे वह ऐसी तप्त हुई कि, केलेके पत्तोंकी हवा, चन्दन, काजल, चन्द्रमाकी किरणें, शीतल हार, और घनसार चन्दनका लेप भी उसे शान्तिदायक न हुआ। उससे कामाग्नि शान्त नहीं हुई ॥ ३२–३३ ॥ विरहसे व्याकुल हुई उस विद्याधरीकी भूख प्यास निद्रा जाती रही। कोई भी शारीरिक सुख नहीं रहा। बहुतसे वैद्योंने आकर उसे

देखी, परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। क्योंकि उसका विरहसे उत्पन्न हुआ रोग साध्य नहीं था ॥३४-३५॥

एक दिन राजसभामें बैठे हुए राजा कालसंवरने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, बेटा! मेरी एक बात सुन ॥ ३६ ॥ तेरी माता तो रोगसे अतिशय पीड़ित है, उसके जीनेमें भी सन्देह हो रहा है, फिर तू उसके पास अभीतक क्यों नहीं गया है? ॥ ३७ ॥ तब प्रद्युम्नकुमारने विनयपूर्वक अपने पितासे कहा, मैंने माताकी बीमारीकी बात न तो सुनी और न जानी। इसलिये नहीं गया। अब आपकी आज्ञासे हे विभो! मैं माताके महलमें अभी जाता हूं। ऐसा कहकर वह शीघ्र ही कनकमालाके महलमें गया। वहां जाके उसने बड़े दुःखसे देखा कि, वह खाली भूमिपर सो रही है। उसका शरीर विरहसे घायल हो रहा है ॥३८-४०॥ माताको दुःखी देखकर प्रद्युम्न विनयपूर्वक प्रणाम करके और उसके आगे नीचा मस्तक कर के बैठ गया ॥४१॥ उसके शरीरकी चेष्टा और स्वरूपको देखकर प्रद्युम्नकुमार रोगका कारण विचारने लगा कि, मुझे यह रोग तो बात पित्त कफजनित दिखता नहीं है। परन्तु इसके शरीरमें वेदना अवश्य ही बड़ी भारी हो रही है ॥ ४२-४३ ॥ माताके शरीरमें यह रोग किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, और अब इसकी शान्ति कैसे होगी? ॥ ४४ ॥ जबतक कुमारने नीचा मुंह किये हुए दुःखके साथ इस प्रकार अनेक चिन्तायें कीं, और रोगके कारणका विचार किया, तबतक वह कामवती कनकमाला बड़े आलस्यसे जम्हाई लेती हुई क्षणभरमें उठ बैठी, और परिवारके लोगोंको अर्थात् दासदासियोंको दूर करके अँगड़ाती हुई प्रद्युम्नकुमारसे मीठे शब्दोंमें बोली, ॥ ४५-४७ ॥ हे मदन! एकाग्रचित्तहोकर मेरी बातको सुनो। क्या तुम्हें मालूम है कि, यथार्थमें तुम्हारी माता कौन है और पिता कौन है? ॥ ४८ ॥ प्रद्युम्नने कहा, तुम मुझसे ऐसा क्यों पूछती हो? मेरी समझमें तो निश्चय करके तुम ही मेरी माता हो, और कालसंवर महाराज मेरे पिता हैं ॥ ४९ ॥ यह सुनकर कनकमाला रानी बोली, तुम अपनी आदि मध्य और अन्तकी सब कथासुनो,—॥ ५० ॥

एक वार मैं अपने स्वामीके साथ वनक्रीड़ा करनेके लिये गई थी। सो नदी, नद, तालाब, और कैला-

शपर्वतके शिखरोंपर बहुत कालतक रमण करके हम खदिरा नामकी बड़ी भारी अटवीमें पहुँचे, जिसके बीचमें तक्षक नामका बड़ा भारी पर्वत शोभित है। जब हमारा विमान उक्त पर्वतके ऊपर पहुंचा तब आकाशमें तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे वह अटक रहा ॥ ५१-५३ ॥ यह देख हम दोनों पर्वतपर उतरे, तो देखा कि, एक बड़ी भारी शिला तुम्हारी स्वासके जोरसे हिल रही है। अचरज होनेसे उसे उठाई, तो सुन्दर आकार और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंके धारण करनेवाले तुम दिखलाई दिये। सो तुम्हें मैंने तत्काल ही स्नेहके वश उठा लिये, और अपने हृदयमें निश्चय करके कि, तरुण होनेपर तुम्हें ही मैं अपना पति बनाऊंगी, तुम्हें घर ले आई और पालन पोषण करके बढ़ाने लगी ॥ ५४-५६ ॥ अब तुम कामके योग्य हो गये हो, मेरे अतिशय प्यारे हो, इसलिये मेरे साथ भोगोंको भोगो। यदि ऐसा नहीं करोगे, तो मैं मर जाऊंगी और तुम्हारे सिरपर स्त्रीहत्याका बड़ा भारी पाप लगेगा ॥५७॥ माताके मुंहसे इस प्रकार दोनों लोकोंसे विरुद्ध वचन सुनकर प्रद्युम्नका मस्तक दुःखसे ठनक उठा। वह बोला, हे माता! तूने यह निंद्यसे भी अतिशय निंद्य बात क्या कही? क्या उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंको ऐसा कार्य शोभा देता है? ॥५८-५९॥ हे माता! कुमार्गमें गये हुए अपने चित्तको तुझे रोकना चाहिये, जिससे कुलमार्गमें अर्थात् शीलव्रतमें रक्त रहते हुए, तेरी प्रशंसा होवै ॥६०॥ इस प्रकार वह माताको वारंवार समझाकर शीघ्र ही उसके महलसे निकल आया और चिन्तित होकर घर छोड़कर वनको चला गया। वहां एक मन्दिरमें मुनिराज विराजमान थे, जो द्वादशांगके धारण करनेवाले अवधिज्ञानी, धीरवीर और मुनियोंके एक संघके नायक थे। उनका नाम श्रीवरसागर था। प्रद्युम्नने उनके दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया और भक्तिपूर्वक आगे बैठकर दुःखसे मलीन मुख किये हुए अपनी माताके चित्तके विकारकी बात जो कि अतिशय गोप्य थी, एकान्तमें मुनि महाराजसे निवेदन की। और पूछा, हे नाथ कृपा करके कहो कि, वह नानाप्रकारके विकारोंको प्राप्त होकर और कामसे आकुलित होकर मुझमें क्यों आसक्त हुई है ॥६१-६६॥ प्रद्युम्नके वचन सुनकर यति महाराज बोले; हे बुद्धिवान कुमार!

संसारकी विचित्र चेष्टाओंका श्रवण करो। कारणके विना कभी कोई भी कार्य नहीं होता है। स्नेह अथवा वैर सब पूर्वजन्मके सम्बन्धसे होते हैं ॥ ६७–६८ ॥ हे वत्स! पूर्वजन्ममें जब तू मधु नामका राजा था, तब तूने राजा हेमरथकी इन्दुप्रभा नामकी रानीको मोहके वश हरण कर ली थी। सो वह दीक्षा लेकर और उत्कृष्ट तप करके तेरे ही साथ सोलहवें स्वर्गमें उत्पन्न हुई थी। वहांपर बावीस सागर-तक उत्कृष्ट सौख्य भोगकर और आयुके अन्तमें चयकर विजयार्द्धगिरिमें कालसंवरकी प्यारी रानी कनकमाला हुई है। और तू स्वर्गमें अपने छोटे भाई कैटभके साथ चिरकालतक सुख भोगकर द्वारिका नगरीमें यदुवंशतिलक श्रीकृष्णनारायणका पुत्र हुआ है ॥ ६९–७३ ॥ सो जिस समय तू अपनी माता रुक्मिणीके साथ सोता था, उस समय पूर्वके वैरी दैत्यने हरण करके क्रोधमें आकर तक्षक पर्वतकी एक शिलाके नीचे तुझे दबा दिया था ॥ ७४ ॥ वहां राजा कालसंवर और रानी कनकमालाने पहुंच-कर शीघ्र ही निकाल लिया और स्नेहके साथ तुझे बड़ा किया ॥ ७५ ॥ इस समय पूर्व मोहके वशसे तुझे देखकर कनकमाला कामसे अतिशय संतप्त हुई है। क्योंकि मोह बड़ी कठिनाईसे छोड़ा जाता है ॥ ७६ ॥ वह तुझे मोहके वशसे दो विद्यायें देना चाहती है, सो तुझे वहां शीघ्र ही जाकर छल करके उन्हें ले लेना चाहिये ॥ ७७ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्नने हर्षित होकर मुनिराजसे कहा, हे नाथ! आपके वचनोंका मैं पालन करूंगा। आप जीवधारियोंके अकारणबंधु हैं। इस लिये मेरे चित्तमें जो एक बड़ा भारी विस्मय हो रहा है, उसके विषयमें और भी कुछ पूंछता हूं कि, मेरी माताके (रुक्मिणीके) साथ जो बाल्यावस्थामें ही अतिशय दुःसह विरह हुआ है, वह मेरी माताके कर्मोंके दोषसे हुआ है अथवा मेरे पापके उदयसे हुआ है ॥ ७८–८० ॥ यह सुनकर मुनिराज बोले, हे वत्स! सुनो, यह तुम्हारा वियोग तुम्हारी माताके ही कर्मके दोषसे हुआ है। उसका कारण मैं कहता हूं। क्योंकि पूर्वमें संचित किये हुए पुण्य और पापसे ही सुख और दुःख भोगना पड़ते हैं ॥ ८१–८२ ॥

जम्बूद्वीपमें भरत नामका प्रख्यात क्षेत्र है और उसमें मगध नामका उत्तम देश है, जो प्रसिद्ध २

मनुष्योंसे भरा हुआ है। उसमें एक लक्ष्मी नामका ग्राम है। वह पृथ्वीमें प्रसिद्ध है। उसमें सोमशर्मा नामका ब्राह्मण राजा था, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला, श्रुतिस्मृतिके अनुसार चलनेवाला, जप होम आदि कर्मोंमें तत्पर रहनेवाला और ब्रह्मकर्मके विचारोंका ज्ञाता था ॥ ८३–८५ ॥ उसकी कमला नामकी भार्या थी, जिसके पास मायाचार बिलकुल नहीं था। उसके उदरसे रूप और गुणोंकी घर लक्ष्मीवती नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ८६ ॥ लक्ष्मीवती सभी लक्षणोंसे परिपूर्ण थी। जब वह यौवनभूषित हुई, तब अपने रूपके आगे तीन जगतको तृणके समान गिनने लगी ॥ ८७ ॥ एक दिन उसके घर एक महीनेका उपवास किये हुए एक योगिराज आहार करनेके लिये–पारणा करनेके लिये आये। वे निर्मल अवधिज्ञानके धारण करनेवाले, सर्व शास्त्रोंके पारगामी, कामदेवरूपी महाशत्रुको जीतनेवाले, और रत्नत्रयरूपी विभूषणके धारण करनेवाले थे। परन्तु उनका शरीर धूल वगैरहसे मलिन हो रहा था ॥ ८८–८९ ॥ जिस समय वह रूपशालिनी लक्ष्मीवती अपने सर्व सुन्दर रूपको दर्पणमेंसे देख रही थी, उसी समय वे ज्ञानी मुनिराज पीछेसे आये और दर्पणमें उनका स्वरूप दिखलाई दिया। जब उसने अपने रूपके समीप मुनिके रूपको देखा, तब बड़े भारी घमंडके साथ उसने अपने मनमें विचार किया कि, कहां तो मेरा सम्पूर्ण लोगोंके मनको हरण करनेवाला मनोज्ञरूप और कहां इस मुनिका निंदनीयरूप ? मुनिके इस रूपको धिक्कार है ! धिक्कार है ! इस प्रकारसे उस पापिनीने उक्त मुनिचन्द्रके उत्तम रूपकी नानाप्रकारसे निन्दा करके बड़ा भारी पाप कमाया ॥ ९०–९४ ॥ उस पापके उदयसे वह पापिनी थोड़े ही समयमें कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गई। उसके सारे शरीरमें घिनावना कोढ़ हो गया। ठीक ही है, निन्दा कर्मके प्रभावसे कहीं भी सुख नहीं मिलता है ॥ ९५–९६ ॥ उस कोढ़के कारण उसके शरीरमें बहुत दुःख होने लगे, जिसके सहनेमें असमर्थ होकर वह आगमें गिर पड़ी। और विवश होकर आर्तध्यानसे मरकर उस बड़े भारी पापके फलसे निंदनीय शरीरको धारण करनेवाली गर्दभी (गधी) हुई। सो घोर दुःख सहकर मरी और गृहशूकरी हुई। वह भी कौटपालके मारनेसे प्राण छोड़कर कुत्ती हुई ॥ ९७–९८ ॥ एकदिन शीत-

कालमें वह कुत्ती अपने बच्चोंके साथ किसी बगीचेके समीप एक घासकी गंजीमें बैठी हुई थी। सो घासमें आग लगनेसे उसीमें जल गई। बच्चोंके मोहके मारे निकलकर भाग नहीं सकी। वह मरकर पापके फलसे भेकनिगम नगरमें किसी धीवरकी पुत्री हुई। उसका शरीर अतिशय निन्द्य और दुर्गन्धि-युक्त हुआ। उसके शरीरकी बुरी गंध उसके कुटुम्बके लोगोंसे भी नहीं सही गई, इसलिये उन्होंने उस पापिनीको घरसे निकाल दी। ठीक ही है, पापी पुरुषोंकोसुख कहां मिल सकता है? ॥ ३९९–४०२ ॥ परिवारके लोगोंके द्वारा भी निंद्य ठहराई हुई, वह धीवरी घरसे निकलकर गंगाके समीप एक सैकड़ों छेदवाली घासकी झोपड़ी बनाकर रहने लगी ॥ ३ ॥ और लोगोंको डोंगीके द्वारा पार उतारकर उनसे पाये हुए पैसोंसे अपना उदर पोषण करने लगी ॥४॥ वहां रहकर वह अपने कमाये हुए द्रव्यमेंसे थोड़ा बहुत द्रव्य अपने पिताके घर भी भेज दिया करती थी। इस तरह वहां वह अपने पापका फल प्रगट करती हुई रहने लगीऔर उसका नाम दुर्गंधा पड़ गया ॥ ५ ॥ इस प्रकारसे वह अपने दिन काटती हुई रहती थी कि, एकदिन माघके महीनेमें संध्याके समय जब कि शीत पड़ रहा था, उस नदीके तीरपर वही मुनिराज आये, जिनकी इसने पूर्वमें निन्दा की थी और वे जाप करते हुए एक स्थानमें विराजमान हो गये ॥६–७॥ उसने उन्हें देखकर मनमें विचार किया कि, ये योगीन्द्र ऐसे जाड़ेमें इस नदीके किनारे कैसे ठहरेंगे? मैं अग्नि जलाकर और कपड़े ओढ़कर अपनी कुटीरमें बैठती हूं, तौ भी मुझे ठंड लगती है! फिर यहां ये कैसे रहेंगे? ऐसा विचार करके वह रातको मुनिराजके पास गई और आग जलाकर तथा वस्त्र ओढ़ाकर उनका शीत निवारण करने लगी ॥८–१०॥ सबेरा होने तक वह उसी प्रकारसे शीत निवारण करती हुई और विह्वलकी तरह यह कहती हुई कि, इधर शीत है! इधर शीत है! बैठी रही ॥ ११ ॥ जब सबेरा हुआ, तब योगिराजने ध्यानको छोड़कर उससे पूछा, सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्रा बेटी लक्ष्मीवती! तू कुशलसे तो है? धीवरीने अपना कुछका कुछ नाम सुनकर मनमें सोचा, ये सत्यवचनके बोलनेवाले योगीन्द्र क्या कहते हैं? जैनशासनको धारण करनेवाले तो कभी झूठ नहीं बोलते हैं, फिर यह क्या

कारण है ? इस प्रकार बहुत विचार करनेसे वह मूर्च्छित हो गई। और उसी समय उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसके द्वारा वह अपने पूर्व भवोंका चिन्तवन करने लगी ॥ १२–१५ ॥ थोड़ी देरमें ठंडी हवाके लगनेसे उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। इसलिये उसने उठकर मुनिके चरणोंको नमस्कार किया और विनयपूर्वक अतिशय रोदन करते हुए कहा, हे नाथोंके नाथ! इस जन्ममें यह मेरी क्या दशा हुई ? कहां तो ब्राह्मणका जन्म और कहां यह धीवरका जन्म ? ॥ १६–१७ ॥ हे विभो! मुनिनिन्दाके प्रभावसे जो मैंने बड़ा भारी पाप कमाया था, उसी पापके फलसे मैं भ्रमण कर रही हूं ॥१८॥ हे नाथ! पूर्व भवमें मैंने भारी पापके उदयसे तुम्हारी ही निन्दाकी थी, इसलिये अब मुझपर कृपाकरके क्षमा करो ॥१९॥ और वह धर्म मुझे सुनाओ, जिससे मेरा इस पापसे छुटकारा हो। आप सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाले हैं, और आपही जीवों का उपकार करने वाले हैं ॥ २० ॥ यह सुनकर उस रोती हुई धीवरीसे वे दयावान योगी बोले, हे बेटी! तू दुःख मत कर क्योंकि यह दुःख ही संसारका करनेवाला है ॥२१॥ "यह बात सब ही लोग जानते हैं कि, रोनेसे राज्य नहीं मिलता है" इसलिये अब तू अपना रोना पूर्ण कर, बहुत रो चुकी, और जिन भगवानके कहे हुए धर्मको धारण कर ॥ २२ ॥ ये प्राणी पूर्व जन्मके कमाये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं। इसलिये मुनिनिंदा करनेके पापसे तू निन्द्य कुलमें उत्पन्न हुई है ॥ २३ ॥ अब तू गृहस्थधर्ममें अनुरक्त होकर दयामयी धर्मको धारण कर। यह सुनकर धीवरीबोली, हे प्रभो! उस धर्मका स्वरूप मुझे समझाओ ॥ २४ ॥ तब मुनि महाराजने सम्यक्त्वसहित बारह प्रकारका गृहस्थधर्म उस धीवरीको समझाया ॥ २५ ॥ तब जिनेन्द्रदेवका भाषण किया हुआ वह सद्धर्म ग्रहण करके धीवरीने पापके नाश करनेवाले मुनिराजके चरणोंको नमस्कार किया ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् दयालु मुनि महाराज तो तपस्याके योग्य स्थानको चले गये और वह धीवरी नवीन पापके आश्रवसे वर्जित तथा जिनधर्ममें सदा अनुरक्त रहकर कुछकाल तक उसी झोपड़ीमें रही। पश्चात् वह जिनधर्ममें लवलीन रहनेवाली बाला प्रसन्नतासहित कौशला नगरीको गई ॥ २७–२८ ॥ वहां वह जब हर्षके साथ जिनेन्द्रभग-

वानके मन्दिरमें गई तब उसका धर्मपालिनी नामकी अर्जिकासे मिलाप हुआ, जो गणिनी अर्थात् अनेक अर्जिकाओंके संघकी स्वामिनी थी ॥ २९ ॥ उस अर्जिकाने बहुतसा धर्मोपदेश दिया, जिससे वह धीवरी धर्मध्यानमें और भी अधिक परायण हो गई ॥ ३० ॥ वह उसके पीछे पीछे रहने लगी और नानाप्रकारके तप करने लगी, जिससे उसका शरीर कृश हो गया ॥ ३१ ॥ एक दिन वह धीवरी अर्जिकाके साथ राजगृह नामके श्रेष्ठ नगरको गई। वहां उसने जिनमन्दिरमें जाकर नमस्कार किया। और फिर रातको उसी अर्जिकाके साथ नगरके बाहिर जो गोपुर था, वहां जाकर जब वह अर्जिका गोपुरकी गुफामें प्रवेश करके ध्यानस्थ हो गई, तब गुफाके बाहिर ही एकस्थानमें उपवास धारण किये हुए जिनदेवके नामका जप करनेमें ध्यान लगा दिया ॥ ३२-३४ ॥ उसी रात्रिको दैवयोगसे वहां एक भयंकर व्याघ्र आया और इस धीवरकी लड़कीको भक्षण कर गया! ॥ ३५ ॥ सो जिनधर्मके प्रभावसे उसका ध्यानयोग धारण किये हुए ही मरण हो गया। उस समय वह व्रतोंका पालन भी करती थी, इसलिए शरीर छोड़कर सोलहवें स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। वहां उसने पूर्व पुण्यके प्रभावसे चिरकाल तक सुख भोगे ॥ ३६-३७ ॥

धीवरीका जीव आयुके अन्तमें स्वर्गसे चयकर कुंडनपुर नामके श्रेष्ठ नगरके राजा भीष्मके गुणवती पुत्री हुआ। पूर्व पुण्यके प्रभावसे उसका रुक्मिणी नाम हुआ। रुक्मिणीको उसके बड़े भाईने पहले दमघोषके पुत्र शिशुपालको देनी कही थी ॥ ३८-३९ ॥ परन्तु पीछे नारदके मुँहसे श्री कृष्ण नारायणकी प्रशंसा सुनकर वह उन्हींमें अनुरक्त हो गई। और इसलिये उसने अपना दूत श्रीकृष्णजीके पास भेजा। दूतके वचनोंसे संतुष्ट होकर श्रीकृष्ण अपने भाई बलभद्रके साथ कुंडनपुर आये और वहां लड़ाईमें चन्देरीके राजा शिशुपालको मारकर रुक्मिणीको ले आये और एक वनमें उसके साथ स्वयं विवाहकरके उसे पट्टराणीका पद देकर द्वारिकामें ले आये ॥ ४०-४२ ॥ उसी रुक्मिणी महाराणीके उदरसे तू सम्पूर्ण अंग उपांगोंसे सुन्दर प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है। जब तू केवल छह दिनका था, तब रातको तेरा पूर्व जन्म-

का वैरी एक दैत्य तुझे हरणकर ले गया था ॥ ४३ ॥

यह सुनकर प्रद्युम्नकुमारने विनयपूर्वक पूछा, हे भगवन्! अब यह बतलाइये कि, मुझे माताका वियोग अपने किस पापके उदयसे हुआ है ॥ ४४ ॥ यति महाराज बोले, वत्स! इसमें तेरा कोई भी पाप कारण नहीं है। तेरी माताके पूर्वजन्मके पापहीसे वियोग हुआ है ॥ ४५ ॥ जब वह धीवरीके जन्मसे पहले लक्ष्मीवती नामकी ब्राह्मणपुत्री थी, तब उसने किसी समय मोरके (मयूरके) बच्चोंको कौतुकके वश उससे अलग कर दिया था। और उन्हें सोलह घड़ी तक मातासे सुखपूर्वक अलग रक्खा था। पश्चात् उन्हें उनकी माताको दे दिया था ॥ ४६–४७ ॥ इसी पापके फलसे—अर्थात् उसने जो मयूरनीके बच्चोंको मातासे अलग किया था, उस वियोगजनित पापसे रुक्मिणीको यह तेरा वियोग हुआ है! पाप कहींपर भी अच्छा नहीं होता है ॥ ४८ ॥ यहां तुझे सोलह वर्ष माताके उसी पापके फलसे बीती हैं। इसलिये किसीका भी वियोग नहीं करना चाहिये ॥ ४९ ॥ हे वत्स! इसप्रकार अपने चित्तमें धर्म और अधर्मका फल समझकर पापको दूरहीसे छोड़ना चाहिये और धर्म करना चाहिये ॥ ५० ॥ मुनिमहाराजके वचन सुनकर और उनके चरणकमलोंको नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार आनन्दके साथ कनकमाला माताके महलको गये।

कनकमालाके समीप जाकर प्रद्युम्नकुमार विना नमस्कार किये हुए ही बैठ गया। यह देख वह अपने मनमें सोचने लगी; ॥ ५१–५२ ॥ अवश्य ही यह मेरे रूपकी पाशमें बद्ध होकर आया है। इसी-लिये इसने मुझे नमस्कार नहीं किया है। अपने हृदयमेंसे इसने मेरा माताभाव निकाल दिया है। इस समय मैं इससे जो कहूंगी, वह अवश्य करेगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ इसप्रकार चिन्तवन करके वह प्रद्युम्नसे बोली, हे महाभाग कामदेव! मेरे मनोहर वचन सुनो ॥ ५४ ॥ यदि रमणीय और मनोहर वचनोंके अनुसार काम करोगे, तो मैं तुम्हें रोहिणी आदि समस्त मंत्रगण सिखला दूंगी ॥ ५५ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार कनकमालासे हँसकर बोला, आजतक क्या कभी मैंने तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन

किया है? कृपाकरके मुझे रोहिणी आदि मंत्रगण दे दो। और मुझे दो, चाहे मत दे दो, परन्तु तुम्हारी कही हुई बात मैं अवश्य करूंगा ॥ ५६-५७ ॥ ऐसे वाक्योंसे संतुष्ट होकर वह कनकमाला रानी प्रद्युम्नसे बोली, लो, इन श्रेष्ठ मंत्रोंको विधिपूर्वक ग्रहण करो ॥ ५८ ॥ ऐसा कहकर उस कामसे आकुलव्याकुल हुई मूर्खाने बड़ी प्रसन्नता और प्रीतिसे प्रद्युम्नको वह मंत्रोंका समूह दे दिया ॥ ५९ ॥

उसकी बतलाई हुई विद्याओंको विधिपूर्वक जानकर प्रद्युम्नकुमार अतिशय संतुष्ट हुआ और कनकमालासे बोला; ॥ ६० ॥ हे पुण्यरूपे! अब मेरे मनोहर वचन सुन—जिससमय मुझे शत्रुने हरण करके पर्वतकी कंदरामें जाके रक्खा था, उस समय न तो मेरे पिता शरण हुए थे और न माता। उस समय आप दोनों ही शरण हुए थे, दूसरा कोई नहीं। इसलिये आप दोनों ही मेरे माता पिता हैं। सो पुत्रके योग्य जो कोई कार्य हो, सो मुझसे कहो, मैं करनेके लिये तयार हूं ॥ ६१-६२ ॥ उसके इस प्रकार वज्रपातके समान वचन सुनकर वह क्रोधसे कुछ कहना ही चाहती थी कि, प्रद्युम्नकुमार नमस्कार करके अपने महलको चला गया। तब वह अपनेको ठगी हुई समझकर चिंता करने लगी। मेरी आशा नष्ट हो गई। हाय! अब मैं क्या करूं? मुझे उस पापीने ठग ली। मेरी विद्यायें भी ले गया और मेरी इच्छा भी पूर्ण न कर गया ॥ ६३-६६ ॥ अब तो मुझे ठगनेवाले इस दुष्ट पापीका जिस तरह निग्रह हो सके, वही उपाय करना चाहिये ॥ ६७ ॥ इसप्रकार बहुत समय तक मनमें विचार करके उसने अपने हाथोंके नखोंसे अपने शरीरको मुखको तथा दोनों कुचोंको नोच डाला ॥ ६८ ॥ फिर वह बालोंको बिखराकर धूलमें लपेटकर तथा आँखोंका काजल मुंहमें लगाकर रोती हुई राजाके पास गई और दुःखसे गद्गद तथा विनयसे नम्र होकर बोली ॥ ६९-७० ॥ हे महाभाग नाथ! जिसे आपने विजन वनमें मुझे पालन करनेके लिये दिया था, देखो आज उसी पापीने यह मेरी क्या दशा की है ॥ ७१ ॥ मैंने जिसे बाल्यावस्थामें पुत्रके समान पालकर बढ़ाया था और मेरे ही कहनेसे आपने जिसे युवराजपद दिया था ॥ ७२ ॥ आज उसी पापात्माने मेरा यौवनभूषित रूप देखकर कामके वशीभूत हो यह कुचेष्टा की है ॥ ७३ ॥

वह दुष्टवुद्धि अवश्य ही नीच कुलका उत्पन्न हुआ है। यदि ऐसा न होता, तो माताके विषयमें ऐसी पापवुद्धि क्यों करता? ॥ ७४ ॥ उस दुर्जय और दुष्टवुद्धिने मेरे पास आकर अपने तीखे नखोंसे मेरा यह शरीर नोंच डाला है ॥ ७५ ॥ आपके पुण्यके प्रभावसे कुलदेवीके प्रसादसे और अपने भाग्यके वशसे मेरे शीलकी रक्षा हुई है ॥ ७६ ॥ यदि पापके उदयसे कहीं मेरा शीलभंग हो जाता, तो आज अवश्य ही मेरा मरण हो जाता। क्योंकि कलंकयुक्त जीवनसे तो मरना ही अच्छा होता है ॥ ७७ ॥ हे नाथ! आपके निर्मल कुलमें यदि मैं कलंकिनी हो जाती, तो तीनों वंशोंको कलंकित करनेवाले मेरे जीवनका क्या फल होता? ॥ ७८ ॥ किसी बड़े भारी पुण्यके योगसे मैंने उसके भुजपंजरसे धूलमें लिपटा हुआ अपना शरीर आकुल व्याकुल होकर निकाल पाया है ॥ ७९ ॥ अब मैं तो जब उस दुष्टका मस्तक रक्त-में लथपथ हुआ पृथ्वीपर लोटता हुआ देखूंगी, तब ही अपने जीवनको सच्चा समझूंगी ॥ ८० ॥

कनकमालाके वचन सुनकर राजा कालसंवरने अपने सम्पूर्ण पुत्रोंको बुलाकर एकान्तमें कहा कि, हे पुत्रो! मेरे वचनोंको आदरपूर्वक सुनो;—इस पापी प्रद्युम्नको तुम शीघ्र ही मार डालो ॥ ८१–८२ ॥ यह किसी नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है। इसे मैं एक वनमेंसे ले आया था। नहीं जानता हूं, यह किसका पुत्र है। मेरी कृपासे यह इतना बड़ा हुआ है ॥ ८३ ॥ सो अब जवानी पाकर तुम्हारी कीर्तिका घात करनेवाला हो गया है। तुम सबके साथ वनमें जाकर आप तो रथमें बैठ करके आया और तुम सब पैदल आये। जिस समय मैंने तुम्हें और उसे इस तरह देखा, उसी समयसे वह शठ मेरे चित्तसे उतर गया है ॥ ८४–८५ ॥ इसलिये अब जिसमें कोई जान न पावै, इस तरहसे इसे मार डालना चाहिये। पिताके ऐसे वचन सुनकर वे सबके सब पुत्र वहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ८६ ॥ उन्होंने अपने जीमें कहा, हम पहलेहीसे उस पापीको मारना चाहते थे, फिर अब तो पुण्यके योगसे पिताकी आज्ञा मिल गई है ॥ ८७ ॥

पिताको प्रणाम करके वे पांचौं सौ भाई वहांसे शीघ्र ही चले आये और पीछे किसी तरहका लोका-

पवाद नहीं होवै, इस विचारसे उन्होंने प्रद्युम्नकुमारसे कहा; हमलोग जलक्रीड़ा करनेके लियेवापिकाको (बावड़ीको) जाते हैं, इसलिये तुमसे कहनेके लिये आये हैं। क्योंकि तुमपर हमारा बड़ा भारी मोह है अर्थात् हम तुम्हें बहुत चाहते हैं। और तुमसे प्यारा हमारा और कोई नहीं है। भाईयोंके ऐसे मीठे वचनोंसे सन्तुष्ट होकर प्रद्युम्न भी उनके साथ निकल पड़ा ॥ ८८–९० ॥ पश्चात् सबके सब नगरके बाहिर जो जलकी वापिका थी, बड़े आनन्दके साथ उसके पास गये। वहां वे अपने सब वस्त्र उतार कर तथा दूसरे वस्त्र धारण करके वापिकामें कूंदनेके लिये वृक्षोंपर चढ़ गये ॥ ९१–९२ ॥ इतनेहीमें प्रद्युम्नकुमारके पुण्यके योगसे विद्याने आकर तथा उसके कानमें लगकर एक हितकारी बात कही ॥ ९३ ॥ हे महाभाग वत्स! मेरे कल्याणकारी वचनोंको सुन; ये सब पापी वैर भावके कारण तुझे मार डालना चाहते हैं। इसलिये मेरी बात मानकर वापिकाके जलमें इनके साथ कूदकर तू स्नान मत कर। मैं तेरा हित चाहनेवाली हूं ॥ ९४–९६ ॥ विद्याके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्न चकित हो रहा। उसने तत्काल ही विद्याके बलसे अपने जैसा एक दूसरा रूप बनाया और आप अदृश्य होकर वापिकाके तटपर बैठ कौतुक देखने लगा। इतनेमें वृक्षके ऊपर जो प्रद्युम्नका विद्यामयी रूप चढ़ा हुआ था, वह वापिकाके जलमें झंपापात करके कूद पड़ा। यह देख वे सबके सब विद्याधरपुत्र, "चलो! शीघ्रतासे कूदो! और, पापीको शीघ्र ही मार डालो! सब एक साथ कूदके इसे पिचल डालो।" ऐसा कहकर कूद पड़े ॥ ९७–९९ ॥ जब वे सबके सब एक साथ कतार बांधकर बावड़ीमें पड़े, तब प्रद्युम्नको बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ। वे आश्चर्यचकित होकर विचारने लगे;—॥ ५०० ॥ ये लोग मुझे किस उद्देश्यसे मारनेके लिये तयार हुए हैं? और पिताकी आज्ञासे हुए हैं, या विना आज्ञाके स्वयं ही हुए हैं ॥ १ ॥ जान पड़ता है, उस पापिनी माताने पिताके आगे विरूपक बनाकर झूठी सची बातें कहीं हैं। और उसीके वाक्योंपर विश्वास करके पिताने कुपित हो इन्हें बुलाकर मुझे मारनेकी आज्ञा दी है ॥ २–३ ॥ इसी लिये ये दुराचारी मुझे मारनेके लिये आये हैं। अतएव अब मैं इन्हें निश्चयपूर्वक मारूंगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार मनमें सोचकर कुमार

अपनी विद्याके प्रभावसे एक बड़ी भारी बावड़ीके बराबर शिलाको ले आये और उससे बावड़ीको ढक दी। फिर उन सबको नीचे सिर और ऊपर पैर करके उसीमें लटका दिये। केवल एकको पिताके पास समाचार भेजनेके लिये छोड़ दिया। उससे प्रद्युम्नने कहा, कि तुम पिताके पास जाओ और मैंने जो कुछ किया है; उनसे ठीक २ कह दो। तब उस एक पुत्रने राजा कालसंवरके पास जाकर जैसाका तैसा हाल कह दिया ॥ ५–८ ॥

अपने पुत्रोंको वापिकाके जलमें शिलासे ढँके हुए जानकर कालसंवर क्रोधके मारे आगबबूला हो गया। वह तत्काल ही अपने हाथमें खड्ग लेकर प्रद्युम्नके मारनेके लिये चला। यह देख मंत्रियोंने कहा, हे नाथ! आपका अकेला जाना ठीक नहीं है। क्योंकि जिसने आपके पांचसौ पुत्रोंको बावड़ीमें कैद कर रक्खे हैं, और जिसे अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं, वह आप अकेलेसे कैसे जीता जावेगा? इसलिये बड़ी भारी सेना लेकर जाना चाहिये ॥ ९–१२ ॥ मंत्रियोंकी बात मानकर राजाने रणभेरी बजवाईं और बड़ी भारी सेना लेकर कूच किया ॥ १३ ॥ उससमय प्रद्युम्नकुमार भाइयोंको उल्लंघनकरके (?) वापिकाके दूसरे तटपर लज्जासे आकुल होकर नीचा मुंह किये हुए बैठ गया ॥ १४ ॥ और चतुरंग सेनाके सहित अपने पिताको नगरसे निकला हुआ देखकर सोचने लगा, पिताकी मूर्खताका कुछ ठिकाना है? उन्होंने उस रंडाकी बातोंमें आकर मेरे मारनेकी तयारी की है! ॥ १५–१६ ॥ इधर प्रद्युम्नकुमार इसप्रकार चिन्ता कर रहा था, उधर राजा कालसंवर रथोंके चक्रोंसे मार्गके बड़े २ पर्वतोंका दलन करता हुआ, घोड़ोंके पैरोंसे उठी हुई रजको मदोन्मत हाथियोंके मदजलसे शमन करता हुआ, तथा पैदलोंके समूहसे सारी पृथ्वीको कंपित करता हुआ बड़ी भारी सेनाके साथ नगरसे बाहर निकला ॥ १७–१९ ॥ बाजोंके शब्दोंसे, हाथियोंकी गरजनासे, रथोंके चीत्कारसे, घोड़ोंके हिनहिनाटसे, धनुषोंकी भन्नाहटसे, और शूरवीरोंके अट्टहाससे कानोंके छिद्र व्याप्त हो गये—लोग बहरे हो गये ॥ २०–२१ ॥ इसप्रकार दिशाओंको व्याप्त करनेवाली बड़ी भारी सेनाको देखकर प्रद्युम्नने किंचित हास्य किया और अपने देवोंका स्मरण करके

विद्याके प्रभावसे एक बड़ी भारी सेना बना ली। जिसमें हाथी घोड़े पैदल और अच्छे २ रथ थे ॥ २२-२३ ॥ उसी समय बन्दीजनोंके तथा वादित्रोंके शब्द हुए। और दोनों क्रोधयुक्त सेनाओंके पैदल सिपाहियोंका संघट्ट होने लगा ॥ २४ ॥ हाथी हाथियोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, रथोंके समूह रथोंके साथ, और पैदल सिपाही पैदलोंके साथ भिड़ गये। इसप्रकार जब दोनोंही सेनाओंका कठिन युद्ध हुआ, तब नारदमुनि आकाशमार्गमें आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे ॥ २५-२६ ॥

कालसंवरकी सेनाकी मारसे प्रद्युम्नकी सेना बहुत जल्दी त्रासित हो गई, इसलिये वह एकाएक भागने लगी। अपनी भागती हुई सेनाको देखकर क्रोधित प्रद्युम्नकुमार अंजनगिरिके समान बड़े २ हाथियोंके समूहसहित सैन्यको लेकर सम्मुख गया और नानाप्रकारके शस्त्रोंकी वर्षाके समान वर्षा करके उसने कालसंवरकी सेनाको भंग कर दी—तितर वितर कर दी। गजोंके समूह गजोंसे और घोड़ोंके घोड़ोंसे मार डाले। रथोंसे रथ तोड़ डाले, और योद्धाओंसे योद्धाओंको धराशायी कर दिये ॥ २७-३१ ॥

इसप्रकार जब प्रद्युम्नने सारी सेनाका पतन कर दिया, तब राजाकालसंवरने अपने मनमें विचार किया, यह शत्रु बड़ा ही दुर्जय है! मेरे साम्हने खड़ा हुआ गरज रहा है। इस दुष्टको मैं कैसे जीतूंगा? इसका मैं क्या उपाय करूं? इसप्रकार चिन्ता करते २ राजाको एक बुद्धि उत्पन्न हुई कि, मेरी रानीके पास जो दो विद्यायें हैं, उन्हें लाकर मैं इस दुर्जय शत्रुको भी जीत सकूंगा। इसप्रकार बहुत देरतक विचार करके उन्होंने मंत्रीसे कहा; ॥ ३२-३५ ॥ हे महाभाग! मेरे कल्याणकारी वचन सुनो। तुम थोड़ी देरतक इस बलवानके साथ लड़ाई करते रहो, तब तक मैं नगरमें जाकर अपनी रानीके समीपसे दो विद्यायें लिये आता हूं और उनसे शीघ्र ही शत्रुको जीतता हूं ॥ ३६-३७ ॥ मंत्रीने कहा, महाराज! आप शीघ्र जावें, मैं तब तक प्रद्युम्नके साथ युद्ध करता हूं ॥ ३८ ॥ उस बलवानके साथ जो युद्ध होता था उसमें मंत्रीको स्थापित करके अर्थात् लड़ाईका काम मंत्रीको सौंपकर वह अल्पबुद्धि राजा कालसंवर शीघ्र ही नगरमें गया और रात्रिके अंतमें अर्थात् सबेरा होनेके पहले रानीसे बोला, प्रिये! रोहिणी और

प्रज्ञप्ती नामकी जो दो विद्यायें तेरे पास हैं, उन्हें मुझे दे दे, जिससे उस मूर्ख शत्रुको मारकर तेरे मनो-
रथोंको पूर्ण करूं ॥ ३९–४० ॥ यह सुनकर रानी कनकमाला स्त्रीचरित्र बनाकर राजाके आगे रोने लगी।
उसे रोती हुई देखकर राजाने अपने मनमें सोचा, इस व्यभिचारिणीने दोनों विद्यायें किसीको दे दी हैं,
इसमें सन्देह नहीं है। फिर कुछ विचार करके कहा, प्रिये! तू रोती क्यों है? मुझे वे विद्यायें शीघ्र ही
दे दे। क्योंकि शत्रु बहुत बलवान है। उसे विद्याओंके प्रभावसे मैं क्षणभरमें मार डालूंगा ॥ ४१–४३ ॥
तब वह मूढ़ा रोती हुई, और आँसू बहाती हुई गद्गद कंठसे अपने स्वामीसे बोली, हे नाथ! उस पापीने
मुझे एक ही बार नहीं ठगा है, अनेकबार ठगा है। उस दुष्टकी वार्ता भी कहने योग्य नहीं है ॥ ४४–४५ ॥
मैंने एक दिन इस बालकको बोलते हुए देखकर मनमें विचार किया था कि, यह बालक वृद्धावस्थामें
हम दोनोंकी पालना करेगा ॥ ४६ ॥ ऐसा विचारकरके मोहके वशसे इस भोलीने उसे अपनी दोनों
विद्यायें स्तनोंमें प्रवेश करके पिला दीं थीं ॥ ४७ ॥ हे नाथ! मुझ मूर्खाने उस समय यह नहीं जाना था
कि, यह जवानीमें ऐसा पापी होगा ॥ ४८ ॥ मैं तो यहांसे भ्रष्ट हुई और वहांसे भी भ्रष्ट हुई। अब
क्या करूं? मेरी आशा नष्ट हो गई। उस निर्विवेकी पापीने मुझे कई बार ठगी है ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर
कनकमाला गला फाड़ फाड़कर रोने लगी। ये ढोंग देखकर कालसंवरने उसके सारे दुश्चरित्र जान लिये।
स्त्रीके कहे हुये वचन सुनकर उन्होंने सिर हिलाया और मनमें चिन्तवन किया कि ॥ ५०॥५१ ॥ अहो!
स्त्रियोंके चरित्रोंको कौन वर्णन कर सकता है? इसने मेरी दोनों विद्यायें खो दीं, और पुत्र भी खो
दिया ॥ ५२ ॥ ऐसी अवस्थामें तो अब इस जीवनसे भी कुछ प्रयोजन नहीं है। उसके सन्मुख जाकर शीघ्र
ही मर जाऊंगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ ऐसा विचार करके राजा ऊंची श्वास लेता हुआ महल-
से निकला और रणांगनमें जाकर प्रद्युम्नसे बोला, तू अपने तरकशमें रक्खे हुए वाणोंको मुझपर शीघ्र-
तासे चला। मैं पहले ही तुझे नहीं मारूंगा। क्योंकि एक तो तू बालक है और दूसरे युद्धविद्यासे अप-
रिचित तथा दुरात्मा है ॥ ५४–५५ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्न बोला, हे तात! मेरी बात भी सुन लीजिये।

स्त्रीकी बातोंमें तल्लीन हुए मूर्ख पिताको मैं भी नहीं मार सकता हूं ॥ ५६ ॥ इसलिये पहले तुमही वाण चलाओ, पीछे मेरा दोष नहीं रहेगा। यह सुनकर राजा कालसंवर क्रोधसे दुःखी हो गया। उसने धनुषपर वाण स्थापित करके बड़े वेगसे मारना शुरू किया और फिर वे बलसे उद्धत हुए दोनों वीर देवोपनीत तथा सामान्य शस्त्रोंसे युद्ध करने लगे ॥ ५७–५८ ॥ इतनेमें कालसंवरने एक वाण ऐसे वेगसे चलाया कि, उससे प्रद्युम्नकुमारका रथ टूट गया ॥ ५९ ॥ अपने रथको टूटा देखकर प्रद्युम्नने भी एक वेगशाली वाण चलाकर पिताको अपने समान कर दिया अर्थात् उसका भी रथ तोड़ डाला ॥ ६० ॥ और तत्काल ही उस मुग्धचित्त पिताको नागपाशसे बांधकर, अपने समीप ला रक्खा। पश्चात् वह लज्जाके कारण कुछेक नीचा मुंह करके चिन्ता करने लगा; युद्धमें मैंने इतनी सेनाको मायाके वशसे मूर्छित कर दिया है ॥ ६१–६२ ॥ अब कोई उत्तम पुरुष आकर मेरे पिताको छुड़ा देवै, तो अच्छा हो! सच है, जो होनहार होता है, वह अन्यथा नहीं होता है ॥ ६३ ॥ जिस समय वह इसप्रकार विचार कर रहा था, उसी समय नारद महाशय आकाशरूपी आंगनमें नृत्य करते हुए और हर्षित होते हुए आ पहुंचे ॥ ६४ ॥ उन्होंने सोचा, आज यह बहुत अच्छा हुआ, जो पिताहीके साथ पुत्रका बड़ा भारी विरोध हो गया। अब यह जरूर मेरे साथ चलनेको तयार हो जावेगा ॥ ६५ ॥ नारदजीने दर्शन देकर उत्तमोत्तम वचनोंसे आशीर्वाद दिया और जानते हुए भी पूछा कि, यहां यह युद्ध क्यों हुआ? ॥ ६६ ॥ उनके वचन सुनकर प्रद्युम्न बोले, हे नाथ! हे महाभाग! मेरे वचन सुनिये ॥ ६७ ॥ माताके वचनोंपर विश्वास करके पिताने मेरा बुरा चिन्तवन किया था। संसारमें बराबरीके लड़केका मारना बड़ा ही निंदित है, परन्तु पिताने उसीके लिये तयारी की थी ॥ ६८ ॥ इसके पीछे प्रद्युम्नने माताका सारा दुश्चरित्र पिताके सुनते हुए नारदको कह सुनाया ॥ ६९ ॥ उसे सुनते हुए नारदजी अपने दोनों कान बंद करके मस्तक धुन करके और नेत्र बन्द करके बोले, हे वत्स! इस लोकनिंद्य चरचाको अब मत कह। नीच पुरुषोंके साथ गमन करनेवाली और पापचित्तवाली स्त्रियोंके चरित्रोंका वर्णन किससे हो सकता है?

ये दुष्ट नारकिनी कुपित होकर चक्रवाकके समान प्रीति करनेवाले अपने स्वामीको, प्राणप्यारे पिताको, पुत्रको, भाईको, तथा गुरुको मार डालती हैं, फिर दूसरे मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है? ॥ ७०–७३ ॥ नारदजीके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले, महाराज सुनिये, मैं अब पितारहित हो गया। मैं अब किसका होऊंगा और किसके पास जाऊंगा। हे महामति! मेरे जीवनका उपाय अब आप ही बतलावें ॥ ७४–७५ ॥ ये कालसंवर महाराज निश्चयपूर्वक मेरे पिता हैं और मुझे दूध पिलानेवाली कनकमाला मेरी माता है ॥ ७६ ॥ परन्तु इस समय इन्हीं दोनोंने मेरे साथ इसप्रकारका कर्म किया है। इसलिये अब बतलाइये कि, मैं शरणरहित होकर कहां जाऊं? ॥ ७७ ॥ प्रद्युम्नके वचन सुनकर नारदजी रमणीय वचन बोले कि, हे वत्स! मेरा कथन सुन ॥ ७८ ॥ अपने मनमें यह खेद मत कर कि, मेरे कोई बन्धु नहीं है। तेरे बहुतसे बन्धु हैं, उनका वृत्तान्त मैं कहता हूं ॥ ७९ ॥ द्वारिकाके स्वामी श्रीकृष्ण नामके नारायण तेरे पिता हैं, जिनका जन्म हरिवंश नामके वंशमें हुआ है, और जो यादवोंके शिरोमणि हैं ॥ ८० ॥ और उनकी प्राणके समान प्यारी रूप तथा लावण्यसे युक्त और सम्पूर्ण गुणोंकी पापरहित खानि रुक्मिणी नामकी पट्टरानी तेरी माता है ॥ ८१ ॥ उसने मुझे बड़े आदरसे तेरे लानेके लिये भेजा है। उसके बुलानेका एक कारण है, सो मैं अभी कहता हूं ॥ ८२ ॥

हे प्रद्युम्न तेरी माताकी एक सत्यभामा नामकी सपत्नी (सौत) है। उसके साथ उसका बड़ा भारी विरोध है। इसलिये मेरे साथ तेरा जाना बहुत उचित है। प्रद्युम्नकुमार अपने वंशकी सत्कथाको सुनकर अतिशय प्रसन्न हुए और नारदके प्रति उन्हें प्रीतिवुद्धि उत्पन्न हुई। फिर वे नारदके पूर्वमें कहे हुए वचनोंको वारंवार चिन्तवन करने लगे ॥ ८३–८५ ॥ सो ठीक ही है, अपने वंशकी योग्यता प्रधानता और बहुमूल्यता, सुनकर, किसे संतोष नहीं होता है? ॥ ८६ ॥ नारदके ही वचनसे उस पुण्यवान पापरहित कुमारने अपने पिता राजा कालसंवरको छोड़ दिया, और सारी सेनाको उठा दिया चैतन्य कर दिया ॥ ८७ ॥ तब वे सबके सब सेनाके योद्धा कठोर शब्द करते हुए उठे कि, इसे पकड़ो, इस दुर्जय शत्रुको मारो

॥ ८८ ॥ उस समय नारदने कहा, हे शूरवीर योद्धाओ ! इस युद्धमें तुम सबका पराक्रम देख लिया ॥ ८९ ॥ अब तुम कुशलताके साथ अपने नगरमें चले जाओ। तुम्हें प्रद्युम्नकुमारने जीवदान दिया है ॥ ९० ॥ तब वे सब सुभट लड़ाईका सारा वृत्तान्त जानकर और अपनी मूर्च्छा वगैरहका हाल समझकर चतुरंगसेनाके साथ अपने नगरको चले गये ॥ ९१ ॥

राजा कालसंवर लज्जाके मारे न तो कुछ नारदसे कह सकते थे और न प्रद्युम्नकुमारसे कहते थे ॥ ॥ ९२ ॥ अन्तमें दीन और मलीनमुख होकर नगरको चले गये। वहां जाकर कनकमालासे बोले, तुम्हारा कुछ भी दूषण नहीं है ॥ ९३ ॥ जो कर्म पूर्वमें कमाये हैं, उन्हींके फल प्राप्त होते हैं। इसलिये इसमें न तो दुःख करना चाहिये और न आनन्द मानना चाहिये ॥ ९४ ॥ इसप्रकार जब राजा रानी अपने महलमें बैठे हुए चिन्ता कर रहे थे, तभी वे पांचसौ पुत्र भी गर्वरहित होकर दीनमुख किये हुए आ गये। उन्हें दयालुहृदय प्रद्युम्नने वापिकाके जलमेंसे निकालकर छोड़ दिया था ॥ ९५-९६ ॥

नगरनिवासियोंने कनकमाला रानीका ऊपर कहा हुआ सारा चरित्र जान लिया। इसी लिये लोग कहते हैं कि, पाप छुपा नहीं रहता, सर्वत्र फैल जाता है ॥ ९७ ॥ पापियोंकी जय कभी नहीं होती। धर्मात्माओंकी ही जय होती है। इसलिये भव्य पुरुषोंको चाहिये कि, दूरहीसे पापका त्याग करें ॥९८॥ प्राणियोंको पुण्यके ही प्रभावसे मनुष्यलोक और स्वर्गलोकसम्बन्धी सुख प्राप्त होता है, इसलिए भव्य पुरुषोंको निरन्तर धर्म करना चाहिये ॥ ९९ ॥ और सर्वदा पापका त्याग करना चाहिये। क्योंकि ऐसा कौनसा दुःख है जो पापसे उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् सब ही दुःख पापके फलसे होते हैं। इसलिये सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान सौम्यरूप पुण्य ही करनेके योग्य है। भव्यजीवोंको पुण्यसे ही सुख प्राप्त होता है ॥ ६०० ॥ शत्रुओंके साथ विदेश अर्थात् दूसरे भयंकर स्थानोंमें जाकर भी उत्तम फलके देनेवाले लाभ पाये, जगत् प्रसिद्धप्रज्ञप्ती और रोहिणी विद्या पाई, भाइयोंको बांधकर टांग दिये, और रिपुओंको युद्धमें जीत लिया, इस प्रकारसे वह प्रद्युम्नकुमार पुण्यके फलसे सुर और मुनिके (नारदके) सहित

शोभित होता हुआ ॥ ६०१ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें सोलह लाभोंकी और विद्याओंकी प्राप्ति, पिताभाइयोंका विरोध, नारद का आगमन आदि वर्णनवाला नववाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

अथ दशमः सर्गः ।

अथानन्तर—नारदजीने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, हे वत्स ! अब विना विलम्बके द्वारिकानगरीको चलना चाहिये ॥ १ ॥ तब कृतज्ञ कुमारने कहा, कि माता पिताके पूछे विना मेरा जाना ठीक नहीं है। इसलिये आप यहीं ठहरें, मैं नगरमें जाता हूं और मातापितासे पूछकर अभी आपके पास आ जाता हूं। ॥ २–३ ॥ ऐसा कहकर और नारदको वहीं छोड़कर प्रद्युम्नकुमार वहां गया, जहांपर राजाकालसंवर कनकमालाके साथ दुःखावस्थामें बैठे हुए थे ॥ ४ ॥ वहां जाकर और माता पिताको नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमारने कहा, हे महाभाग पिता ! मेरे वचन सुनिये ॥ ५ ॥ मैंने अपनी अज्ञानतासे जो अनिष्ट कर्म किया है, उसे कृपाकरके क्षमा कीजिये ॥ ६ ॥ इससे अधिक मूर्खता मेरी और क्या कही जा सक्ती है, जो मैंने अपनी माताके विषयमें (आपकी समझमें) ऐसा पाप विचारा ॥ ७ ॥ परन्तु जो दीन हैं, अनाथ हैं, तथा पराधीन हैं, सज्जनपुरुष उनके ऊपर कभी कोप नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ हे नाथ ! मैं आपका किंकर हूं, क्योंकि मुझे आपहीने जिलाया है, आपहीने पालकर बड़ा किया है। और अब भी मैं आपसे जीता हूं ॥ ९ ॥ इसलिये मुझपर कृपाकरके मेरे पापोंकी क्षमा करो। और हे माता ! तू भी मुझ बालकके पापकार्योंकी क्षमा कर ॥ १० ॥ अब मैं आप दोनोंकी आज्ञासे अपने पिताके घर मिलनेके लिये जाता हूं। इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये। मैं विना आज्ञाके नहीं जाऊंगा ॥ ११ ॥ मैं आपका

बालक हूं, इसलिये हे पिता! मेरा निरन्तर स्मरण रखिये। वहां मातापितासे मिलकर मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा ॥ १२ ॥ हे नाथ! आप मेरे विभागको सर्वदा सुरक्षित रक्खें। क्योंकि मैं निरन्तरके लिये यहीं आकर रहूंगा ॥ १३ ॥ और हे माता! मुझ सेवकपर आपको भी सदा प्रसन्नदृष्टि रखनी चाहिये। क्योंकि पुत्र चाहे कुपुत्र हो जावें, परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती है। ऐसी सारे संसारमें प्रसिद्धि है। और सो भी मेरे जैसे परतंत्र पुत्रपर कौन कोप करेगा? ॥ १४–१५ ॥ आपको ऐसा ही समझना चाहिये कि, यह मेरे उदरसे उत्पन्न हुआ है। कुछ भी अन्तर नहीं मानना चाहिये। मैं आपका ही पुत्र हूं। इसमें संशय नहीं है ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नकी ये सब बातें वे दोनों लज्जाके मारे नीचा मुख किये हुए सुनते रहे। उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। तो भी वह विनयवान कुमार उन्हें वारंवार नमस्कार करके तथा अपने भाइयोंको, परिवारके लोगोंको, मंत्रियोंको फिर फिरकर संतुष्ट करके तथा मोहयुक्त होकर प्रणाम करके उस नगरसे निकलकर चला। उस समय उसकी सब ही लोग स्तुति करते थे ॥ १७–१९ ॥

नारदके समीप पहुंचकर प्रद्युम्न विनयके साथ बोला, हे तात! मुझे बतलाओ कि, यहांसे द्वारिका कितनी दूर है ॥ २० ॥ तब नारदने कहा कि, यह तो विद्याधरोंका देश है, और वह द्वारिका नगरी मनुष्योंकी है। इसलिये बहुत दूर है। कुमारने कहा; यदि वह नगरी दूर है, तो हे तात! वहां तक कैसे चला जावेगा ॥ २१–२२ ॥ नारदजी बोले, हे वत्स! मैं तुम्हें शीघ्रगामी विमानपर बैठकर बहुत वेगसे ले जाऊंगा। प्रद्युम्नने कहा, यदि ऐसा है तो उस वेगगामी विमानको जल्दी तयार करो, जल्दी सजाओ ॥ २३–२५ ॥ कुमारके वचनोंसे संतुष्ट होकर नारदजीने एक बड़ा भारी, सुन्दर, कल्याणकारी और शीघ्रगामी विमान बनाके तयार कर दिया और कहा, हे वत्स! यह विमान तुम्हारे ही योग्य बना है। सो इसपर शीघ्र ही बैठ जाओ। जिससे हम तुम दोनों रुक्मिणीके पास पहुंच जावें ॥ २६ ॥ नारदके वचनोंसे प्रसन्न होकर कुमारने कहा, हे तात! क्या आपका यह विमान मुझे बैठानेके लिये समर्थ है?

॥ २७ ॥ तब नारदजी मुसुकुराके बोले, हां ! तुम्हारे लिये तो बहुत मजबूत है । तुम शीघ्र ही बैठ जाओ । यह सुनकर कामदेवने उसपर बड़े जोरसे अपने पैर रख दिये । जिससे उसकी सब संधियां टूट गईं और सैकड़ों छिद्र हो गये ॥ २८–२९ ॥ यह कौतुक करके नीतिचतुर कुमार बोला, धन्य है ! धन्य है ! आप तो शिल्पविद्यामें बड़े ही प्रवीण हैं ! ॥ ३० ॥ हे विभो ! आपने यह विद्या किसके पास सीखी थी ? सचमुच इस संसारमें आपके समान शिल्पकार न तो हुआ है, और न आगे होगा ॥ ३१ ॥ मैंने तो आजसे अच्छी तरहसे जान लिया कि, जगतमें नारद ऋषिके समान विद्याबलसहित विज्ञानी कोई भी नहीं है ॥ ३२ ॥ कुमारके इस परिहाससे लज्जित होकर बुद्धिवान नारद बोले, मैं तो वृद्ध हो गया हूं । मेरी जरायुक्त देहमें चतुराई कहांसे आई ? तुम तो सब विद्याओंमें कुशल हो, सम्पूर्ण विज्ञानके ज्ञाता हो, और नवीन यौवनसम्पन्न हो, तुम क्यों नहीं बनाते ? ॥ ३३–३४ ॥ हे वत्स ! अब तुम ही विमान बनाओ, जिससे शीघ्रतासे चलें । व्यर्थ ही क्यों समय खो रहे हो ? तुम्हारी माता तुम्हारे लिये बहुत दुःखी हो रही है ॥ ३५ ॥ व्रतधारी नारदके कहनेसे प्रद्युम्नकुमारने अपनी यशोराशिके समान (सफेद) एक विस्मयकारी विमान शीघ्र ही बना दिया ॥ ३६ ॥ उस विमानमें बड़े २ घंटा लटक रहे थे, अनेक ध्वजायें उड़ रही थीं, और पँचरंगे उत्तमोत्तम रत्नोंसे बना हुआ उसका कूट (शिखर) शोभित होता था ॥ ३७ ॥ उसका मध्य भाग (कटि), किनारे, और सिंहासन सोनेके रचे गये थे। इसके सिवाय वह विमान बावड़ी, तालाब आदिके समूहोंसे शोभित किया गया था, हंस चक्रवाकादि पक्षियोंसे युक्त था, केला, सुपारी, ताड़ आदि वृक्षोंसे अलंकृत था, चँवरों, छत्रों, तथा नानाप्रकारके वाजित्रोंसे शोभित था, और किंकिणीकी ध्वनिसे रमणीय था । उसकी खिड़कियोंमें तथा दूसरे स्थानोंमें मोतियोंकी झालरें लटक रहीं थीं, और इन सब सामग्रियोंसे वह दूसरे स्वर्ग लोकके समान मालूम होता था ॥ ३८–४१ ॥ इस प्रकार सुन्दर वेगगामी विमानको बनाकर सारभूत विज्ञानके जाननेवाले प्रद्युम्नकुमारने नारदजीसे कहा, हे तात ! यदि यह आपके योग्य हो, तो इसपर बैठ जाओ । क्योंकि मैंने इसे बालबुद्धिसे बनाया

है ॥ ४२-४३ ॥ ऐसा कहनेपर नारदजीने उस अतिशय सुन्दर विमानको देखा, जो कि पुण्यहीनोंको प्राप्त होना बहुत कठिन है। उससे उन्हें बड़ा अचंभा हुआ ॥ ४४ ॥ निदान जब वे विमानमें बैठ गये, तब कुमारने उसे धीरे २ आकाशपर चढ़ाया। परन्तु आगे कुमारके कुटिल (हास्यरूप) आशययुक्त होनेसे जब विमानकी गति मन्द हो गई, और उसे नारदने देखा, तब वे बोले, तेरी माताका मुखकमल तेरे वियोगरूपी तुषारसे आक्रान्त हो रहा है, सो तुझे सूर्यके समान जाकर उसे मुरझानेसे बचाना चाहिये ॥ ४५-४७ ॥ तुझे शीघ्रतासे जाकर अपनी दुखी माताको धीरज बँधाना चाहिये। ऐसे समर्थ पुत्रके होते हुए क्या तेरी जननीको दुःख होना अच्छा है? ॥ ४८ ॥ नारदके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार अपने विमानको अतिशय शीघ्र गतिसे चलाने लगा ॥ ४९ ॥ उसकी इस क्रीड़ासे अर्थात् इतने शीघ्र चलानेसे नारदजी बहुत आकुल व्याकुल हो गये। उनके जटा बिखरकर उड़ने लगे, शरीर कांपने लगा, हाथोंकी कुहनियोंमें, मुंहमें, और दांतोंमें लुड़कने पुड़कनेसे चोटें लग गईं, और बोलते समय जीभ दांतोंके नीचे आकर कट गई ॥ ५०-५१ ॥ जेठके महीनेमें जैसे समुद्रमें जहाज आकुलित हो जाते हैं, उसी प्रकारसे आकुलित होकर नारदजी बोले, बेटा! तू मुझे इस विमानमें बिठाकर इतना आकुल व्याकुल क्यों कर रहा है? तू आनन्दसे परिपूर्ण है, सो तुझे स्नेहके वशवर्ती हुए अपने मातापिताको जाकर उत्कंठित करना चाहिये ॥ ५२-५४ ॥ रुक्मिणी मेरी पुत्री है, वह मुझपर बड़ा वात्सल्य रखती है। इसी प्रकारसे तेरा पिता श्रीकृष्ण भी मेरी बड़ी भारी भक्ति करता है ॥ ५५ ॥ और भी जितने यादव हैं, वे सब मेरा निरन्तर सत्कार करते हैं, फिर तू दयारहित होकर मुझे क्यों व्याकुल करता है? ॥ ५६ ॥ यह सुनकर कुमारने कहा, हे तात! जान पड़ता है कि, तुम्हारा चरित्र भी कुटिलतायुक्त हो गया है ॥ ५७ ॥ इसीलिये मैं विमानको शीघ्रतासे चलाता हूं, सो आपको नहीं रुचता है और धीरे २ चलाता हूं, सो अच्छा नहीं लगता है। तो लो अब मैं नहीं जाऊंगा, आप जाओ ॥ ५८ ॥ ऐसा कहकर उसने आकाशमें ही विमानको खड़ा कर दिया। तब क्रोधको मनमें दबाकर नारदजी बोले, यह विद्या-

धरोंका स्थान तुझसे छोड़ा नहीं जा सकता है। इसलिये मेरे लिवानेको आनेसे तू जानेमें इतना विलम्ब कर रहा है ॥ ५९–६० ॥ तुझे मालूम नहीं है कि, यदि तेरी माताका पराभव हो गया, और तू पीछेसे पहुंचा, तो फिर तेरे जानेसे भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा ॥ ६१ ॥ और हे वत्स! मैं और भी एक बात तुझसे कहता हूं। यद्यपि उसका कहना तेरी माताको अभीष्ट नहीं था, तौ भी मैं कहता हूं ॥ ६२ ॥ तेरे मातापिताने तेरे लिये बहुतसी सुन्दर २ कन्याओंकी याचना की है। सो यदि तू नहीं पहुंचेगा, तो उन सब कन्याओंको तेरा छोटा भाई वरण लेगा ॥६३॥ सो जब वे कन्या विवाही जा चुकेंगी, तब फिर तेरे जानेसे क्या लाभ होगा? नारदके इसप्रकार कानोंको प्यारे लगनेवाले वाक्य सुनकर प्रद्युम्नने अपने विमानको फिर भी वायु वेगसे चलाना शुरू कर दिया। उस विमानकी उड़ती हुई रमणीक धुजायें समुद्रमें उठती हुई चंचल तरंगोंके समान जान पड़ती थीं। जिस समय वह विमान आकाशमें बड़े वेगसे जा रहा था, उस समय मार्गस्थ नगरोंकी स्त्रियोंके नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाला, और मुसकुराते हुए नारदजीके कारण शोभित होनेवाला जो रमणीय चरित्र हुआ, उसको हे श्रेणिक! हम संक्षेपसे कहते हैं:—॥ ६४–६७ ॥

विद्याधरोंके विजयार्द्ध पर्वतको शीघ्र ही लांघकर प्रद्युम्न और नारदजीने भूमिगोचरियोंकी पृथ्वी देखी, जो अनेक वनोंसे, नगरोंसे, समुद्रोंसे और पर्वतोंसे सघन हो रही थी। उसे क्रमक्रमसे देखते हुए जब वे आकाशरूपी आंगनमें चले जा रहे थे, तब नारदजीने वृक्षोंके समूहसे सघन हुई खदिरा नामकी अटवी देखी, जो कि तक्षक नामके पर्वतपर थी, और जिसमें बालक प्रद्युम्नको उसके वैरी दैत्यने बड़ी भारी शिलाके तले दबा दिया था, ॥ ६८–७१ ॥ जिस समय नारद मुनिने उक्त अटवी प्रद्युम्नको दिखाई, उस समय वे बहुत आनन्दित हुए ॥ ७२ ॥ पश्चात् वह विमान जो कि पृथ्वीपर अतिशय दुर्लभ था, वेगसे चलने लगा। थोड़ी देरमें नारदने कहा, हे कुमार! अपने विमानके कर्णप्रिय घंटाओंके मधुर शब्द सुनकर देखो, ये हरणियोंके समूह अपने चंचल बच्चों सहित ऊंचा मुख किये हुए खड़े हैं, मनोहर क्रीड़ा

कर रहे हैं, कभी चलने लग जाते हैं, और कभी बैठ जाते हैं। बड़े ही सुन्दर हैं ॥ ७३–७५ ॥ इन्हें इस प्रकारकी क्रीड़ा करते देखकर मन क्यों न हरा जाय? प्रद्युम्नको उन्हें देखनेसे प्रसन्नता हुई ॥ ७६ ॥ आगे चलकर नारदजीने कहा, हे कामदेव! इस मनके चोरनेवाले प्रसन्नमुख, और रमणीय पंखे फैलाकर नृत्य करते हुए तथा मनोहर शब्द करते हुए आसक्तचित्त मयूरको देखो, यह कैसा धीरे २ पैर रखता है। इसके साथ भौंरोंके झुंड भी गूंजते हुए ऐसे मालूम पड़ते हैं, जैसे गीत गा रहे हों। मयूरको देखकर कामकुमार प्रसन्न हुए ॥ ७७–७९ ॥ तदनन्तर उस शीघ्रगामी विमानके द्वारा कुछ दूर आगे चलकर नारदने फिर कहा, प्रद्युम्न! इस रौद्रमूर्ति किन्तु मनको हरण करनेवाले शार्दूलको (सिंहको) भी देखो, जो अपने विकटनादसे पर्वतको कंपित कर रहा है, और अपनी पूंछको पीछेकी ओरसे मोड़कर ऊंची उठाये हुए है। यह अपनी दाढ़ोंसे तथा नखोंसे बड़े २ हाथियोंको विदारण करनेसे और उनका मांस भक्षण करनेसे कैसा भयंकर दिखता है? सिंहको देखकर प्रद्युम्न हर्षित हुए। तब नारदजीने फिर कहा, हे महाबाहु! और इन आगे खड़े हुए लीलायुक्त हाथियोंको भी देखो, जो पद पदपर लीला करते हैं ॥८०–८४ ॥ सुगंधित मद बहनेके कारण उनके आधे कपोलोंपर भौंरोंके झुंडके झुंड गुंजार कर रहे हैं, ताड़के पत्रोंके समान उनके बड़े २ कान हैं, पीठकी रीगड़ (वंश) बड़ी ऊंची और पुष्ट है। ये पानी पीनेके लिये जलाशयोंके समीप आये हैं। हाथियोंको देखकर कुमार बहुत संतुष्ट हुए ॥ ८५–८६ ॥ थोड़ी दूर और चलकर नारदजीने कहा, हे कुमार! देखो तुम्हारे आगे यह एक विशालशरीर (बड़ा) गुरुवंश (बड़े २ बांसोंवाला) तथा ऊंचे कंधोंवाला (ऊंचे शिखरोंवाला) अनन्त खड्गियोंसे (गेंड़ोंसे) सेवित, स्थिररूप, उन्नतिशाली, और भूधरोंका (पर्वतोंका) पति महापर्वत शोभित हो रहा है। यह तुम्हारे समान आकृतिको धारण करनेवाला है। अर्थात् जैसा वह पर्वत है, उसी प्रकारसे तुम भी विशालशरीर, गुरुवंश (ऊंच कुलसे उत्पन्न) उच्चकंध (स्थूल कंधवाले) अनेक खड्गी अर्थात् खड्ग धारण करनेवाले शूरवीरोंसे सेवित, स्थिरचित्त, उन्नतिशाली, और भूधरों अर्थात् राजाओंके पति हो। प्रद्युम्नकुमार नारदके कहे

अनुसार उस पर्वतको देखकर प्रसन्न हुए ॥ ८७–८९ ॥ उसके पीछे थोड़ी ही दूर चलकर नारदजी बोले, देखो, यह एक नदी तुम्हारे साम्हने बह रही है ॥ ९० ॥ इसमें किनारेपर लगे हुए बड़े २ वृक्षोंके फूलोंसे जो परागकी धूल झड़ी है, उसकी सुगंधिसे सुगंधित हुआ जल बह रहा है। हंस और सारस पक्षियों से शोभित, अथाह, और मगरमच्छोंसे भरी हुई उस गंगानदीके समान नदीको देखकर प्रद्युम्नका चित्त प्रसन्न हुआ ॥ ९१–९२ ॥ थोड़ी ही दूर चलनेपर गंगानदी भी दिखलाई दी। उसे देखकर नारदजीने कहा, हे मनोभव! देखो, यह सम्पूर्ण पृथ्वीमें प्रसिद्ध गंगा नामकी नदी है, जिसका जल अतिशय निर्मल है, जो पवित्र और पापकी नाश करनेवाली है, जिसके बड़े २ किनारोंके पृष्ठपर देवकन्यायें निवास करती हैं। और जो तटस्थित किन्नरियोंके मनोहर गीतोंसे तथा हंस और सारस पक्षियोंके शब्दोंसे तीनोंलोकोंको वशीभूत करती है ॥ ९३–९५ ॥ इस प्रकारकी सुविस्तृत गंगानदीको देखकर कामकुमारको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई उन्होंने कहा कि, "अहो! यह गंगानदी बड़ी ही रमणीक है।" ॥ ९६ ॥

इस प्रकार बड़े भारी कौतुकके साथ उस आश्चर्ययुक्त उत्तम पृथिवीको देखते हुए वे दोनों कितनी ही दूर निकल गये ॥ ९७ ॥ इतनेमें उन्होंने एक जगह बड़ी भारी चतुरंग सेना देखी, जिसमें हजारों राजा, अगनित घोड़े, रथ और पयादे थे, तथा जो वादित्रोंके शब्दोंसे शब्दायमान हो रही थी। चक्रवर्ती की सेनाके समान उस सेनाको देखकर प्रद्युम्नकुमार बड़े आश्चर्यके साथ नारदजीसे बोले:—॥९८–१००॥ हे नाथ! पृथ्वीतलपर यह किस राजाका शिबिर पड़ा हुआ है? ऐसा शिबिर तो मैंने कभी विद्याधरोंके देशमें भी नहीं देखा है। तव नारदजी मुसकुराते हुए बोले, तुम इसीके लिये यहांपर लाये गये हो। इसका विस्तृत वृत्तान्त इस प्रकार है कि;— ॥ १–२ ॥

इस समय हस्तिनागपुरमें कुरुवंशी राजा दुर्योधन जो गुणोंका समुद्र है, राज्य करता है। आदिनाथ भगवानके समयमें जो दानकी परिपाटी चलानेवाला विख्यात और प्रजाका प्यारा श्रेयांस नामका राजा हुआ है, वह इसी वंशमें हुआ है ॥ ३–४ ॥ उस श्रेयांस राजाके वंशका भूषणस्वरूप एक कुरु

नामका राजा हुआ, जिसके नामसे कुरुवंश पृथ्वीमें अतिशय विख्यात हुआ ॥ ५ ॥ उसके पीछे उस वंशमें क्रमसे हजारों राजा हुए। सो अनेक राजाओंके बीत जानेपर उस हस्तिनापुर नगरमें पृथ्वीमंडलमें विख्यात एक धृत नामका राजा हुआ। इस राजाके तीन रानियां थी। पहली गुणरूपादियुक्त अम्बा, दूसरी अंबिका, और तीसरी अम्बालिका। उक्त तीनों रानियोंके उदरसे राजा धृतके क्रमसे तीन पुत्र हुए, पहला धृतराष्ट्र, दूसरा पाण्डु, और तीसरा विदुर। ये तीनों ही बड़े ही कीर्तिवान हुए। इनमेंसे पहले धृतराष्ट्रको गांधारी नामकी प्यारी रानी प्राप्त हुई। दूसरे पाण्डुकी कथा पुराणोंमें भली भांति निरूपण की गई है, तौ भी हे वत्स! मैं तुम्हें संक्षेपसे सुनाता हूं;—॥ ६–११ ॥

पहले राजा धृतने पांडुकुमारके लिये सूर्यपुरके राजा अंधकवृष्टिकी कन्या कुन्ती मांगी थी। परन्तु पीछेसे किसी पापीने उससे जाके कह दिया कि, पांडुकुमारका शरीर सफेद कोढ़से नष्ट हो गया है ॥ १२–१३ ॥ राजाने जब यह सुना, तब उसने कन्या देनेसे इंकार कर दिया। इस वृत्तान्तको किसी तरहसे सुनकर पांडुकुमार दुःखसे अतिशय पीड़ित हुआ। उसे नगरमें वनमें कहीं भी चैन नहीं रही। रातदिन चिन्तित रहने लगा ॥ १४–१५ ॥ एक दिन वह अकेला वनमें गया हुआ था। सो वहां उसे एक केलेके बगीचेमें फूलोंकी शय्या दिखलाई दी ॥ १६ ॥ जो संभोग करनेके कारण किसी दंपतिके (पुरुष स्त्रीके) द्वारा दलीमली गई थी। उसे देखकर वह दुखी पांडुकुमार सोचने लगा, अवश्य ही यहाँपर किसी पुण्यवानने अपनी प्रियाके साथ रमण किया है। मैं बड़ा पुण्यहीन हूं, जो मुझे मेरी प्यारी नहीं मिली। इस प्रकार एक ठंडी सांस लेकर वह वहींपर बैठ गया, और उस शय्याको दुखके साथ वारंवार देखने लगा। जिससे उसे समीप ही पड़ी हुई एक मुद्रिका (मुँदरी) दिखलाई दी। तब उसे उसने उठाकर अपनी उंगलीमें पहन ली। और फिर वह उस विजन वनमें यहां वहां भ्रमण करने लगा ॥१७-२० ॥ इतनेमें उस मुद्राका स्वामी विद्याधर व्यग्रचित्त हुआ उस शय्याके देखनेके लिये आया। परन्तु जब उसे शय्यापर कुछ भी दिखाई नहीं दिया, तब उसका मुंह मलीन पड़ गया। उसे चिन्तित देखकर

पांडुने पूछा, आपका मुंह काला क्यों पड़ गया है? तब उसने कहा, मेरी एक मुद्रिका खो गई है ॥२१-२३॥ यह सुनकर पांडुकुमारने अपनी अंगुलीमेंसे मुद्रिका निकालकर उसे दिखाई। विद्याधर बोला, यदि आप दे दें, तो यह मेरी ही है ॥ २४ ॥ तब पांडुने वह उत्तम मुद्रिका तत्काल ही दे दी। उसके साहसको तथा सच्चेपनको देखकर विद्याधरने भी पूछा, हे मित्र! तुम भी तो कहो कि, इस समय तुम्हारा मुख क्यों मलीन है? तब पांडुकुमारने अपनी सारी दुःखकथा उसे सुना दी ॥ २५-२६ ॥ मित्र-का दुःख सुनकर विद्याधरने वह मुद्रा पांडुकुमारको ही दे दी, और कहा, मेरी यह मुद्रिका कामरूपदा है, अर्थात् इसके प्रभावसे इच्छानुसार रूप प्राप्त हो जाता है। सो इसके द्वारा तुम अपना कार्य कर लेना, अर्थात् अपने मनोरथको सफल कर लेना ॥ २७-२८ ॥ फिर जब तुम्हारा कार्य सफल हो जावे, तब यह मुद्रिका मेरी मुझको दे देना। पांडुकुमारने वह मुद्रिका ले ली। उसे पाकर वह हर्षसे परिपूर्ण हो गया ॥ २९ ॥ उसने उसी समय पारावतका (कबूतरका) रूप बनाया और शीघ्र ही उड़कर वहां पहुंचा, जहां वह श्रेष्ठ कन्या रहती थी। फिर गवाक्षमेंसे (खिरकीमेंसे) महलके भीतर जाकर उसने रातको कामदेवका रूप धारण किया और वहां गया, जहां कुन्ती अकेली सो रही थी। उसकी निद्रा-भंग करके जब वह मिला, तब कुन्ती अपने सम्मुख एक अपूर्व पुरुषको देखकर एकाएक कांप गई और बोली, तुम कौन हो, जो रातको मेरे महलमें आये हो? ॥ ३०-३२ ॥ पांडुकुमार मुसकुराके बोले, प्यारी! तुम व्यर्थ भय मत करो, मैं तुम्हारा प्यारा पांडुकुमार हूं ॥ ३३ ॥ तब वह उसके रूपको देखकर बोली, मैंने तो सुना है कि, पांडुकुमार कोढ़ी हैं! परन्तु तुम तो वैसे नहीं हो। पांडुने उत्तर दिया, वह बात झूठी है। किसी दुष्टने तुमसे व्यर्थ ही कह दी होगी। हे सुंदरी! मेरा ऐसा ही उत्कृष्ट शरीर है। यह सुनकर कुन्तीपांडुके रूपपाशमें उलझ गई। और तब पांडुकुमारने उस कल्याणरूपा कामिनीके साथ जिसका कि नवीन संगमके समय भयसे शरीर कंपित होता था, सन्तुष्ट होकर रमण किया ॥३४-३६॥ उसके रूप और गुणसे पांडुकुमार मोहित हो गया। और इसी प्रकारसे वह कामयुक्त कामिनी भी पांडु-

के गुणोंसे बँध गई ॥ ३७ ॥ उन दोनोंका ऐसा सघन स्नेह हो गया कि, पांडुकुमार वहां प्रेमपूरित होकर सात दिन तक रहा ॥ ३८ ॥ आठवें दिन जब वह जानेकी इच्छा करने लगा, तब विचक्षणा कुन्ती विनय करके बोली, हे महाभाग ! आप तो जानेके लिये तयार हैं, और मैं आपसे कुछ कहना चाहती थी, सो लज्जासे व्याकुल होकर कह नहीं सकती हूं ॥ ३९–४० ॥ यह सुनकर पांडुने कहा, हे प्रिये ! जो कहना चाहतीं हो, सो कहो । अपने स्वामीसे क्या लज्जा ? तब वह अपने मनकी बात कहने लगी, हे नाथ ! जिस दिन आप यहां मुझपर कृपा करके आये थे, उस दिन मेरा स्त्रीधर्मका चौथा दिन था, अर्थात् रजस्वला होकर मैंने उस दिन चतुर्थ स्नान किया था ॥ ४१–४२ ॥ सो यदि कहीं मैं गर्भवती हो गई, तो बतलाइये क्या करूंगी ? यह सुनकर पांडुकुमार उसे अपने हाथमेंका एक कड़ा (निशानी) देकर आनन्दके साथ चले गये ॥ ४३ ॥ और इसप्रकार कार्य सिद्ध हो जानेपर उन्होंने यहांसे जाते ही वह अंगूठी जिस विद्याधरसे ली थी, उसीको दे दी ।

इधर कुन्तीको बहुतसी सखियोंके साथ रहते हुए महीने बीतने लगे । जब छह महीने हो गये, और गर्भकी वृद्धि हो गई अर्थात्, जब गर्भ दिखलाई देने लगा, तब उन सखियोंने उसकी सब चेष्टायें मातासे जाकर कह दीं ॥ ४४–४५ ॥ और माताने अपने पतिसे उसका सब वृत्तान्त कह दिया । तब राजाने लज्जित होकर रानीसे कहा, कि तू उससे जाकर पूछ कि, हे दुष्टा ! तूने यह गर्भ किसका धारण किया है ? रानीने जब लड़कीसे पूछा, तब उसने कहा, "माता ! आप अपना मुख मलीन न करें, यहां स्वयं पांडुकुमार आये थे । और उन्होंने ही मेरे साथ सहवास किया था ॥ ४६–४७ ॥ इस बातकी साक्षीस्वरूप उनका एक कड़ा मेरे पास है ।" ऐसा कहकर कुन्तीने तत्काल ही वह कड़ा निकालकर दिखला दिया ॥ ४८ ॥ रानी उस कड़ेको लेकर महाराजके पास चली गई । सो उन्होंने जब कड़ा देखा, और वृत्तान्त जान लिया, तब चिन्ता छोड़ दी । उन्हें जो दुःख हुआ था, वह नहीं रहा ॥ ४९ ॥

क्रमक्रमसे जब पूरे महीने हो गये, गर्भपूर्ण हो गया, तब कुन्तीके एक सम्पूर्ण लक्षणोंवाला पुत्र

उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥ परन्तु कलंकके भयसे राजाने उसे घरमें नहीं रक्खा । एक पेटीमें रखकर यमुना-नदीमें बहा दिया ॥ ५१ ॥ और फिर नानाप्रकारके उत्सव करके अपनी वह पुत्री (कुन्ती) पांडुकुमारको ही व्याह दी ॥ ५२ ॥

इसके पश्चात् उसके युधिष्ठिरादि तीन विचक्षण पुत्र हुए । और पहले जो पुत्र कन्यावस्थामें जना था, वह कर्णनामसे प्रगट हुआ । वह पृथिवीमें बहुत प्रसिद्ध हुआ ॥ ५३ ॥

राजा धृतने कुछ समयके पीछे अपने धृतराष्ट्र और पांडुपुत्रको राज्य देकर जिनेन्द्र भगवानकी दीक्षा ले ली । उनके साथ उनके छोटे भाई विदुर भी मुनि हो गये । राजा धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि अतिशय विख्यात सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५४–५५ ॥

राजा धृतराष्ट्र और पांडुने अपने पुत्रोंको यौवनयुक्त देखकर उनमेंसे दो बड़े पुत्रोंको अर्थात् दुर्योधन और युधिष्ठिरको राज्य सौंप दिया । परन्तु दुर्योधनने थोड़े ही दिनमें अपनी बुद्धिकी चतुराईसे पांडुके पुत्रोंसे राज्य छीन लिया और आप अकेला ही राज्य करने लगा । इससमय राजा दुर्योधन ही राज्य करता है । उसके एक उदधिकुमारी नामकी पुत्री है । वह रूपवती है, सच्चरित्रा है, गुणवती है, लावण्य-युक्त है, मधुर वचन बोलनेवाली है, विद्यावती है और विनयवती है । उसके शरीरमें तथा नेत्रोंमें ऐसी आभा है कि, उसका एक मंडल सरीखा बना रहता है । उसका वृत्तान्त तथा चारित्र लोकमें प्रसिद्ध तथा सुन्दर है । वह लीलासे ललित है, और कलाओंके समूहसे युक्त है । उसकी प्रशंसा कौन कर सकता है ? बृहस्पतिसे भी नहीं हो सकती है ॥ ५६–६० ॥ वह उदधिकुमारी जब गर्भमें थी, और तुम उत्पन्न नहीं हुए थे, तब ही राजा दुर्योधनने उसे तुम्हारे लिये देना कर दी थी । परन्तु तुम्हें जब उत्पन्न होते ही वह असुर हरण कर ले गया ॥ ६१–६२ ॥ और तुम्हारे जीते रहनेकी किंवदन्ती भी यहां कहीं सुनाई नहीं पड़ी, तब अब उस उदधिकुमारीको उसके पिताने तुम्हारे छोटे भाईको देनेके लिये भेजी है । उसीके साथमें यह चतुरंगसेना आई है ॥ ६३ ॥

नारदके इस प्रकारके वचनोंसे सन्तुष्ट होकर प्रद्युम्नकुमारने अपनी प्राणवल्लभाको देखनेकी इच्छा की। उसको देखनेकी उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। वे नारदजीसे बोले, हे तात! मुझे इस बड़ी भारी सेनाको देखनेकी उत्कंठा हुई है, सो आप आज्ञा देवें, तो मैं जाकर देख आऊं। यह सुनकर नारदजी मुसकुराके बोले; वत्स! तुम बहुत चपल हो, वहां जाकर चपलता करोगे, इसलिये मैं नहीं जाने देता। वहां जानेसे कुछ न कुछ विघ्न खड़ा हो जावेगा ॥ ६४–६७ ॥ प्रद्युम्नने कहा, नहीं मैं चपलता नहीं करूंगा, देखकर शीघ्र ही आपके पास लौट आऊंगा ॥ ६८ ॥ नारदजीने कहा "तो जाओ और कौतुकसे सेनाको देखकर शीघ्र लौट आओ।" यह सुनते ही प्रद्युम्नकुमार अपने विमानको आकाशमें ही खड़ा करके पृथ्वीपर उतर पड़े ॥ ६९ ॥ और एक भीलका वेष धारण करके शीघ्र ही वहां पहुंचे, जहां सारी सेना भोजनके लिये बैठी थी ॥ ७० ॥ उस भीलका मुँह सूखासा था, दांत बड़े २ थे, चौड़े ललाटसे और कपोलोंसे भय मालूम पड़ता था, सिरपरका जूट वल्लरीसे (बेलसे) लिपटा हुआ था, चपल तथा अतिशय लाल नेत्रोंसे वह कुरूप दिखता था, हाथीकी सूंड़के समान उसकी प्रौढ़ और भीम भुजायें थीं, स्थूल जंघायें थीं, बड़ा भारी शरीर था, भौंहें और अलकें टेढ़ी थीं, पीठ, कटि, और ग्रीवा भग्न थीं, छाती विशाल थी और पेट बड़ा भारी था। इसप्रकारसे वह भील वीभत्स और रौद्ररूपका धारण करने वाला था ॥ ७१–७४ ॥ उसे देखकर दुर्योधनकी सेनाके सबके सब यौवनपूर्ण राजकुमार हँसने लगे ॥ ७५ ॥ और बोले, अरे पापी! तू साम्हनेका मार्ग छोड़ दे, हम यहांसे आगे जाना चाहते हैं। हे दुर्मुख! तू मार्गमें किस लिये खड़ा है। यह सुनकर वह भील कुपित होकर बोला, मैं यहांपर श्रीकृष्ण-महाराजकी आज्ञासे कर लेनेके लिये रहता हूं, सो तुम सब मुझे कर देकर यहांसे जाने पावोगे ॥७६–७८ ॥ कृष्णका नाम सुनकर उनकी प्रीतिसे सब सुभट इसप्रकार कोमल वचन बोले कि, हे भाई! तुम क्या लेना चाहते हो, सो कहो ॥ ७९ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, धन, धान्य आदि सब प्रकारकी सामग्री हमारे पास है। उसमेंसे तुम्हें जो रुचै, वह ले लो ॥ ८० ॥ तुम्हें इच्छित वस्तु देकर हम आगे चले जावेंगे,

अब इसमें कुछ संशय नहीं है। जब तुम श्रीकृष्ण महाराजके अनुचर हो, तब हम तुम्हें किस लिये दुःख देंगे? हम आनन्द और कुशलताके साथ यहांसे शीघ्र ही जावेंगे। यह सुनकर भील बोले, हे कौरवो! मुझे मालूम नहीं है कि, तुम्हारी सेनामें कौनसी वस्तु सर्वोत्तम है। इसलिये तुम्हारे यहां जो वस्तु अतिशय श्रेष्ठ हो, और जो तुम देना कहते हो, मुझे वही दे दो, और जाओ॥ ८१–८३॥ क्योंकि मेरे संतोष करनेहीसे इस वनमें तुम्हारी कुशलता है। मैं सच कहता हूं कि, मेरे योद्धा बुरे रास्तेमें कुशल करनेवाले हैं। अर्थात् भूलेहुओंको रास्ता बताने और रक्षा करनेवाले हैं। भीलके वचन सुनकर वे कौरव वीर मुसकुराके बोले, हे मूर्ख! यदि तू सबसे उत्तम और सुखदाई वस्तु चाहता है, तो हमारे राजाकी गुणवती कन्याको ले ले! क्योंकि इस सेनामें सबसे उत्तम और सुखदाई वस्तु वही है॥८४–८६॥ यह सुनकर भील हँसा और बोला;—यदि वह पुत्री ही तुम्हारी सेनामें अच्छी है, तो उसीको दे दो ॥ ८७॥ हे शूरवीरो! यदि तुम उसे देकर इस वनसे जाओगे, तो तुम्हें इस वनमें कुछ भी भय नहीं रहेगा। इसके सिवाय मुझे संतुष्ट करनेसे निश्चय समझो कि, तुमपर श्रीकृष्ण महाराज भी संतुष्ट हो जावेंगे। क्योंकि उन्होंने मुझे पूर्वमें ही ऐसा वचन दे दिया है कि, सारे संसारकी वस्तुओंमें जो सारभूत वस्तु हो, वह तू ले लिया कर। उनकी इस आज्ञासे ही मैं इस वनमें रहता हूं॥ ८८–९०॥ भीलके वेषमें जब प्रद्युम्नकुमारने उपयुक्त बातें कहीं, तब वे सब सुभट क्रोधित होकर बोले;—अरे मूर्ख! यदि श्रीकृष्णजीने तुझसे ऐसा भी कह दिया, तो क्या हुआ? जो तू उदधिकुमारीको जबर्दस्ती ले लेना चाहता है॥ ९१–९२॥ अरे पापी! तू ऐसे पापरूप और निर्लज्जताके वचन क्यों कहता है? तेरे सरीखे मूर्खको वह वैसे मिलना तो दूर रहा, विचारसे भी नहीं मिल सकती है॥ ९३ ॥ तेरे नेत्र लाल लाल और विकराल हैं, बाल कपिल रंगके हैं, दांत सफेद हैं, और शरीर काला है। इसप्रकारके कुरूप भीलके देने योग्य वह कन्या नहीं है। वह तो पुण्यवान पुरुषके योग्य है, तेरे जैसे पापीके योग्य नहीं है ॥ ९४–९५॥ यदि तू उस लोकदुर्लभ बालाको पानेकी इच्छा करता है, तो शीघ्र ही जाकर किसी पर्वत-

परसे गिरकर मर जा ॥ ९६ ॥ क्योंकि तेरी यह जाति व्रताचरणोंकी धारण करनेवाली नहीं है, निंदनीय है। अतएव इस जन्ममें वह तुझे नहीं मिल सकती है। हां! दूसरे जन्ममें तुझे इसीके समान कोई दूसरी कन्या प्राप्त हो जावेगी ॥ ९७ ॥ इसी बीचमें कई एक योद्धा अतिशय कुपित होकर बोले, इस पागलके साथ बकवाद क्यों बढ़ा रहे हो? चलो, इसे दूर करके शीघ्र ही चलें। यदि श्रीकृष्ण अपनसे नाराज हो जावेंगे, तो क्या कर लेंगे ॥ ९८–९९ ॥ अपने जैसे राजपुत्र ऐसे एक भीलको कर दे देवें, यह ठीक नहीं है। किसी योग्य पुरुषको ही कर देना चाहिये। यदि कोई राजपुत्र होता, तो दे देते ॥ २०० ॥ ऐसा कहकर वे सबके सब राजपुत्र उत्सुक होकर उस भीलको अपने सब तरफ फैले हुए धनुषसे रोकने लगे ॥ १ ॥ तब भील भेषधारी बलवान प्रद्युम्नने भी सब सेनाको शीघ्र ही अपने उसी धनुषसे वेष्टित कर ली। इस प्रकारसे वह भील इस सेनाको देखकर खूब जोरसे खिलखिलाकर हंसा, तथा कहने लगा, हे सुकुमार कुमारो! तुम सब कुरु राजाकी पुत्री मुझे क्यों नहीं देते हो? मैं श्रीकृष्णका बड़ा लड़का हूं, और इस वनमें निवास करनेवाले भीलोंका राजा हूं। मैं सुन्दररूपका धारण करनेवाला नहीं हूं, क्या इसी लिये तुम सब मूर्ख मुझे उदधिकुमारी नहीं देते हो? ॥ २–५ ॥ यदि तुम उस जगत्प्रसिद्ध कुमारी को मुझे दे दोगे, तो निश्चय समझो कि, श्रीकृष्णनारायणको भी बहुत संतोष होगा ॥ ६ ॥ क्योंकि इस संसारमें न तो उसके समान कोई उत्तम कन्या है, और न मेरे समान मनुष्योंमें कोई उत्तम वर है ॥ ७ ॥ परन्तु यह सब कुछ भी न करके तुम सब कौरव यहांसे जबर्दस्ती जाना चाहते हो, तो मुझसे शीघ्र कह दो, जो मैं तुम्हारे लिये कुछ यत्न करूं ॥ ८ ॥ यह सुनकर वे बोले, तुझे जो यत्न करना हो, सो कर। हम अभी तुझ पापीको मारकर यहांसे चले जावेंगे ॥ ९ ॥ उनके इसप्रकार कहनेपर भीलका वेष धारण करनेवाले प्रद्युम्नकुमारने अपनी विद्याओंका स्मरण किया और उन्हें अपने समान बलवान भील तयार करनेकी आज्ञा दी* ॥ १० ॥ फिर क्या था, वहां पर तत्काल ही भीलोंकी एक

* इस श्लोकका अर्थ नहीं लगा, प्रकरण देखकर सम्बन्ध जोड़ दिया है।

बड़ी भारी सेना प्रकट हो गई, जिससे चारों दिशायें व्याप्त हो गईं।

कृष्णमूर्ति भीलोंकी सेना नानाप्रकारके आयुध और तीक्ष्ण बाण लिये हुई थी। लकड़ी, काठ, पत्थर आदि परिग्रहकी भी उसके पास कमी नहीं थी ॥ ११–१३ ॥ उस समय कौरव योद्धाओंने देखा कि, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, कंदरा आदि सारा विश्व जहां तहां भीलोंमय ही हो रहा है ॥ १४ ॥ करोड़ों भील इसप्रकार कहते हुए कौरवोंपर टूट पड़े कि, चलो! पकड़ो! बांध लो! ये दुरात्मा अब भागकर कहां जावेंगे? ॥ १५ ॥ वे भयंकर भील लाल २ पत्तोंकी टोपियां लगाये हुए थे, नानाप्रकारके वृक्षोंके फलोंकी कंठियां गलेमें पहने हुए थे, उनके सिरके बाल कपिल, रूखे और बिखरे हुए थे, वे मैले कपड़ोंके चीथड़े पहने हुए थे, और उनकी आंखें छोटी २ थीं। इसप्रकारके उन अगणित काले भीलोंने आकर सारा प्रदेश घेर लिया ॥ १६–१७ ॥

जिस समय उन्होंने सेनाके सम्मुख होकर धावा किया, उस समय क्षण भरके लिये सारे कौरव वीर व्याकुल हो गये ॥ १८ ॥ आखिर वे भी तलवार, बाण, भाला, गदा, शक्ति आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंको लेकर साम्हना करनेको तयार हो गये ॥ १९ ॥ हाथी घोड़ों और रथोंपर चढ़े हुए शूरवीर तथा नानाप्रकारके वाहनोंपर चढ़े हुए राजा शीघ्र ही भीलोंके सम्मुख चल पड़े। राजा लोग अपने सुभटोंसे बोले, इन भीलोंको शीघ्र पकड़ लो, अपना समय जा रहा है ॥ २०–२१ ॥ राजाओं और भीलोंका परस्पर युद्ध होने लगा। भीलोंने पत्थरोंकी और बाणोंकी वर्षासे राजाओंको इसतरह मारा कि, उनके घोड़े अपने सवारोंको पटककर सैनामें भ्रमण करते हुए दूसरे लोगोंको कुचलने लगे ॥ २२–२३ ॥ हाथी मदरहित होकर चिंघाड़ मारते हुए भयके मारे रणमें भागने लगे ॥ २४ ॥ बड़े २ रथ जर्जर होकर टूट गये और धराशायी हो गये। इसी प्रकारसे जो रसदकी गाड़ियां थीं, वे भी टूट गईं। उनमें रक्खे हुए घीके कुप्पे गिर पड़े। गेहूंका आटा, मूंगकी दाल तथा चावल जमीनमें बिखर गये ॥ २५–२६ ॥ इसके सिवाय जितने शूरवीर थे, वे सबके सब वस्त्र तथा आभूषणोंसे रहित होकर गिर पड़े। यह देखकर

भील लोग हँसने लगे। और शूरवीर अपनी दुर्दशापर शोच करने लगे ॥ २७ ॥ उसी समय रस्सियां छूट जानेसे बैल इधर उधर दौड़ने लगे, जिन्हें कौरव लोग भी पकड़कर नहीं थँभा सके ॥ २८ ॥ हाथियोंके बच्चे, घोड़े, गधे, बैल, ऊंट, भीलोंकी मारसे कांपते हुए करुणा उत्पन्न करनेवाली चिल्लाहट करने लगे। वे अपने लोगोंका भार भी अपने ऊपर नहीं लादने देते थे। इसीसे कहते हैं कि जब दुःख आता है, तब दुःख ही दुःख आता है, और जब सुख आता है, तब सुख ही सुख। अर्थात् दुखमें दुख और सुखमें सुख आता है ॥ २९–३० ॥ अन्तमें भीलोंके समूहने कौरवोंकी सेनाको जीत ली। शूरवीरोंने रणभूमि छोड़ दी ॥ ३१ ॥

उस समय नारदमुनिके देखते हुए किरात वेषधारी प्रद्युम्न उदधिकुमारीको अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर आकाशमें उड़ गया ॥ ३२ ॥ भीलोंके भयसे कांपती हुई कुमारीको प्रद्युम्नकुमार अपने उत्कृष्ट विमानमें ले गया और नारदजीके समीप बिठाकर आप कौरवोंकी सेनाकी ओर मुंह करके बैठ गया। उस समय वह भीलके ही वेषमें था। उसके विकराल रूपको देखकर उदधिकुमारी थर थर कांपती हुई, रोती हुई, विलाप करती हुई और अपनी वारंवार निंदा करती हुई नारदजीसे बोली, हे पिता! आप मेरे पापकर्मके उदयको तो देखो। मेरे बुद्धिमान पिताने पहले मुझे रुक्मिणीके पुत्रको देनी कही थी, सो मेरे पापके वशसे उन्हें तो कोई बैरी हरण कर ले गया। पीछे उन्होंने सत्यभामाके पुत्र भानुकुमारको देना विचारा, सो कर्मके प्रभावसे मार्गमें मैं स्वयं ही इन भीलोंके द्वारा हरी गई ॥ ३३–३८ ॥ इतना कहकर उदधिकुमारी अतिशय करुणा उत्पन्न करनेवाले वचन कहती हुई रोने लगी, हे पिता! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते हो? मुझे यह वनचर लिये जाता है। और हे माता! मेरे भाग्यके वशसे तू मेरी रक्षा क्यों नहीं करती? दुष्ट भीलके भयसे मैं व्याकुल हो रही हूं ॥ ३९–४० ॥ और हे कुटुम्बीजनो! तुम सब मुझ दुःखिनीकी ओर क्यों नहीं देखते हो, शीघ्र आकर मेरी इस भीलसे रक्षा करो ॥ ४१ ॥

विकराल भीलके दर्शनसे कांपती हुई, विलाप करती हुई, लम्बी २ सांसें लेती हुई, अपने शिथिल

वस्त्रोंको दुःखसे सम्हालती हुई, और मुखपर हाथ रखकर वारंवार रोती हुई, उदधिकुमारी बड़े अचरजसे बोली, "हे महाराज! मेरी बात सुनकर कहिये कि, यह भील तो दुरात्मा है, फिर इसे आकाशमें चलनेकी शक्ति कहांसे आ गई? यह विकराल आकारका धारण करनेवाला कोई देव है, अथवा कोई दैत्य, राक्षस वा विद्याधरका पुत्र है। और यह भी तो बताइये कि, आप जैसे मुनिके साथ इस पापीका संग कैसे हो गया? कहीं मेरे समान आपको भी तो इसने कैद नहीं कर लिया है? ॥४२–४६॥ उसके इसप्रकार कहनेपर जब नारदजीने देखा कि, अब यह मरनेका निश्चय कर चुकी है, तब वे बोले, बेटी! तू हर्षके स्थानमें शोक क्यों करती है? उदधिकुमारीने पूछा, हे तात! कैसा हर्ष? यहां काहेका हर्ष है? नारदने उत्तर दिया, अपने माता पिताका पुण्यस्वरूप यह वही रुक्मिणीका पुत्र है, जो तेरा पति होनेवाला था। विद्याधरोंके देशसे चलकर यह तेरे लिये ही यहां आया है। इसलिये हे बेटी! अब तू शोकको छोड़ दे, और पुण्यके फलसे प्राप्त हुए हर्षको धारण कर ॥४७–५०॥ सुन्दरीको इसप्रकार आश्वासन देकर अर्थात् समझाकर नारदजी प्रद्युम्नकुमारसे बोले, क्रीड़ा हमेशा अच्छी नहीं लगती है, इसी प्रकारसे हँसी करना भी सदा प्रशंसनीय नहीं होता है ॥ ५१ ॥ इसलिये अब कौतुक और हँसीको छोड़कर अपने मनोहर रूपको दिखलाकर हे मनोभव! इसके बहुत समयसे खेद खिन्न हुए नेत्रोंको शान्त कर–सफल कर ॥ ५२ ॥

नारदजीके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारने सम्पूर्ण लोगोंके नेत्रोंको आनन्द करनेवाला अपना असली-रूप धारण कर लिया ॥५३॥ जो नानाप्रकारके रत्नोंके बने हुए मुकुटसे, पुष्पमालासे, सुगंधित वस्तुओंके लेपसे, तथा दैदीप्यमान सोनेके कुंडलोंसे शोभित था ॥ ५४ ॥ हार, बाजूबन्द, कड़े, आदि भूषणोंसे मंडित था और कमलके समान नेत्रोंसे मनोहर था। उनके उस रूपकी आभा दैदीप्यमान सुवर्ण पर्वतके समान थी, वक्षस्थल कठोर था, बड़ी २ भुजायें हाथीकी सूंड़के समान गोल और पुष्ट थीं। भौंरोंकी राशिके समान काले और चिकने केश थे। इसप्रकारसे कामकुमार सर्व लक्षणोंसे लक्षित और सम्पूर्ण

आभूषणोंसे भूषित, स्थिर, शान्तमुख, धीर, भयरहित, तथा संसारके सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये दृष्टान्तस्वरूप रूपवाला हो गया ॥ ५५–५८ ॥ उसके ऐसे मनोहारी रूपको देखकर वह मृगनयनी प्रसन्नमुखी अतिशय प्रमुदित और संतुष्ट हुई। इसी प्रकारसे उसके दर्शन मात्रमें कुमारका चित्त भी परम प्रीतिके वश होकर उसके रूपमें उलझ गया, बद्ध होगया ॥ ५९–६० ॥ परस्परके प्रेमसे उन दोनोंके हृदयमें जो एक अनुरागजन्य अपूर्व भाव उत्पन्न हुआ, उसका हम वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥ ६१ ॥ एक दूसरेके रूपको देखकर वे दोनों अनुरागयुक्त हो गये। प्रेमसे उन दोनोंके मुख उल्लसित हो गये॥ ६२ ॥ परन्तु नारदजीकी लज्जाके कारण वे कुछेक वक्रदृष्टि किये रहे, जिसमें हृदयका भाव प्रगट न होने पावै। विमानमें बैठा हुआ वह जोड़ा नारदमुनिके साथ वहांसे प्रसन्नताके साथ चलने लगा ॥ ६३ ॥

अपनी भार्या और मुनिके सहित थोड़ी दूर चलकर प्रद्युम्नकुमारने नानाप्रकारकी उड़ती हुई धुजाओंसे शोभित एक रमणीय नगरी देखी ॥ ६४ ॥ इसलिये नारदजीसे पूछा, हे नाथ! यह कौन नगरी है? तब तपरूपी धनको धारण करनेवाले नारदजीने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया कि;—हे वत्स! पृथिवीमें अतिशय प्रसिद्ध द्वारिकानामकी नगरी यही है। मानों उत्तम पुरुषोंके रहनेके लिये इसे विधाताने स्वयं बनाई है ॥ ६५–६६ ॥ अथवा इन्द्रने लोगोंके बचे हुए पुण्यसे यह स्वर्गका एक कान्तिमान खंड ही पृथ्वीमें लाकर रख दिया है ॥ ६७ ॥ जिसमें श्रीकृष्णनारायण रहते हैं, जिसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं, जिसके चारों ओर बड़ा भारी कोट है, जो गोपुरोंके समूहसे अर्थात् कोटके दरवाजोंसे शोभित है, जो एक विस्तृत खाईसे घिरी हुई है, जिसका कि जल स्नान करती हुई स्त्रियोंके कुचोंसे धुली हुई केशरसे रंजित है, जहांके राजमार्ग मदोन्मत्त हाथियोंके कपोलोंसे बहे हुए मदजलसे कीचड़युक्त तथा दुर्गम हो रहे हैं, चूनेसे पुते हुए महलोंकी छतोंपर बैठी हुई स्त्रियोंके मुखचन्द्रसे जिस नगरीके लोगोंको दोनों पक्षोंमें—शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें आश्चर्य हुआ करता है। अर्थात् कृष्णपक्षमें भी वे स्त्रियोंके मुखचन्द्रकी चन्द्रिकासे प्रकाशमान सफेद महलोंको देखकर विस्मित हो जाते हैं कि, ये तो कृष्णपक्ष सा नहीं मालूम

पड़ता है और शुक्लपक्षमें सोचते हैं, कि, आकाशके चन्द्रमाके सिवाय ये और चन्द्रमा-ऊग रहे हैं, सो क्या हैं? जहांकी चौड़ी २ गलियोंका भी मार्ग लोगोंके आने जानेसे निरन्तर दुःखदाई बना रहता है, जो मुक्ताफलों मूंगों और शंखादि नानाप्रकारके रत्नोंसे भरपूर है, जहां जगह २ अच्छे २ सुन्दर तथा रमणीय वृक्ष फूलोंसे लदे हुए, और भौंरोंकी गुंजारसे वाचाल सरीखे हो रहे हैं, जहांके तालावोंमें कमलिनी खिल रही हैं, जिनपर भौंरे झूम रहे हैं, जहांकी वापिकायें नानाप्रकारकी मणिमय भीतोंसे बनी हुई हैं, जहांकी शोभाको देखकर स्वर्गके रहनेवाले बड़े २ देव भी पृथ्वीमें रहनेके लिये स्वर्ग छोड़ देना चाहते हैं—अर्थात् जो नगरी स्वर्गपुरीसे भी रमणीय है और जिसे जिनेन्द्र भगवानकी परम भक्तिसे तथा श्रीकृष्णनारायणकी शक्तिसे इन्द्रने बनवाई है और कुबेरने जिसे स्वयं बनाई है, उस द्वारिकापुरीका वर्णन मैं क्या कर सकता हूं। इतना ही कह सकता हूं कि, तीनों लोकमें ऐसी कोई दूसरी नगरी नहीं है ॥ ६८-७८ ॥

ऐसा कहकर नारदजीने प्रद्युम्नकुमारको बड़े हर्षके साथ नगरीके घरोंकी पंक्तियां दिखलाईं, जब कि उनका विमान द्वारिकाके ऊपर पहुंच गया था ॥ ७९ ॥ नारदके वाक्य सुनकर नानाप्रकारके कौतुक करता हुआ प्रद्युम्नकुमार बोला;—हे नाथ! आपकी आज्ञा लेकर मुझे द्वारिकानगरी देखनेकी इच्छा है, सो यदि आप कह देवें, तो मैं जाकर देख आऊं ॥ ८०-८१ ॥ नारदजी बोले, हे वत्स! यादवोंसे भरी हुई नगरीमें तुम्हारा जाना योग्य नहीं है। क्योंकि तुम्हारी चपलता देखकर यादवगण भी उपद्रव करेंगे, यह बात निश्चित है। इसी समय कामकुमारको जानेके लिये उत्सुक देखकर उदधिकुमारीने नारदजीसे समस्याके द्वारा (इशारेसे) कहा, हे नाथ! आपको इन्हें नगरी देखनेके लिये नहीं जाने देना चाहिये। ये अतिशय चपल हैं, इसलिये यादवोंके द्वारा इन्हें कुछ न कुछ पीड़ा पहुंचेगी,—इन्हें दुःख होगा ॥ ८२-८५ ॥ उसकी समस्याका अभिप्राय समझकर नारदजी बोले, हे वत्स! तुझे मैं अपने बिना अकेला द्वारिकामें नहीं जाने दूंगा। मुझे एकबार चलकर तुझे तेरी माताको सौंप देने दे, फिर जो २

कार्य तुझे अच्छे लगें, सो करना ॥ ८६–८७ ॥ उन दोनोंका अर्थात् उदधिकुमारीका और नारदजीका अभिप्राय समझकर प्रद्युम्नने कहा, हे तात ! इस समय मैं कुछ भी चपलता नहीं करूंगा। यदि करूंगा, तो सारे स्वजन जनों और कुटुम्बी लोगोंसे मिलकर फिर मैं सबकी सब द्वारिकाको कैसे देख सकूंगा ? इसलिये क्षणभरमें जाकर और द्वारिकापुरीको देखकर मैं अभीका अभी आपके समीप आ जाऊंगा, यह आप निश्चित समझ लें ॥ ८८–९० ॥ ऐसा कहकर प्रद्युम्नने अपने विमानको आकाशमें स्तंभित कर दिया। उसमें नारद और उदधिकुमारी बैठी रही।

ज्योंही प्रद्युम्नकुमार उतरा, उसने द्वारिकाकी पृथ्वीपर पैर रक्खा, त्योंही उसे भानुके (सूर्यके) समान भानुकुमारके दर्शन हुए ॥ ९१–९२ ॥ छत्र चँवरोंसे भूषित, नानाप्रकारकी विभूतिसे संयुक्त, और राजपुत्रोंसे सेवित, उस प्रतापशाली वीरको देखकर कामदेवको आश्चर्य हुआ। उसने तत्काल ही अपनी विद्यासे पूछा, कि, यह कौन है, मुझे बतला। तब विद्याने विनयपूर्वक कहा कि, हे महाभाग ! सुनिये, यह घोड़े पर चढ़ा हुआ और अनेक राजाओंसे वेष्टित हुआ भानुकुमार तुम्हारी माता रुक्मिणीकी सपत्नीका (सौतका) पुत्र है ॥ ९३–९६ ॥ यह उदयैकनिवास अर्थात् बड़ा भारी प्रतापशाली है, तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त है। हे महामते ! इसके विषयमें आपको जो रुचै, सो करो ॥ ९७ ॥ विद्याके वचन सुनकर कामदेवने उसी समय प्रज्ञप्ती नामकी महाविद्याका स्मरण किया। और उसके प्रभावसे उसने तत्काल ही एक बड़े उदर और शरीरवाला, चंचल, वेगगामी, सम्पूर्ण अवयवोंसे सुन्दर, तथा उत्तम घोड़ोंके सब लक्षणोंसे युक्त घोड़ा बना लिया और आप स्वयं बहुत ही बूढ़ा, बहुत ही मोटा, हाथ पैर मस्तक आदि सारे अंगोंसे कांपता हुआ, बड़ी २ भौंहोंसे जिसकी आंखें ढँक गई थी, ऐसा घोड़ा बेचनेवाला बन गया ॥ ९८–३०१ ॥ इसप्रकारका अपना रूप बनाकर वह सोनेकी जीनसे कसे हुए उस उच्चैःश्रवाके समान घोड़ेको हाथसे पकड़े हुए वहां गया, जहां भानुकुमार अपने घोड़ोंको फिरा रहा था। भानुकुमारने इस घोड़ेवालेको देखकर प्रसन्नतासे कहा, हे बुड्ढे ! यह घोड़ा किसका है, और

तू इसे क्यों लिये है? सब सच्चा सच्चा कह ॥ २-५ ॥ घोड़ेवाला बोला, हे कृष्णपुत्र ! यह बहुत ही अच्छा घोड़ा है, यह मेरा है, और मैं ही इसे लिये हूं। इसे मैं बेचना चाहता हूं। परन्तु इसे दूसरे लोग जो इसे चाहते हैं, नहीं ले लेवें, इसलिये केवल तुम्हारे ही लिये मैं इसे परदेशसे लेकर आया हूं ॥ ६-७ ॥ तुम सत्यभामाके पुत्र हो, इसलिये यह घोड़ा तुम्हारे ही योग्य है। दूसरे लोगोंको ऐसा घोड़ा दुर्लभ है। इसलिये यदि आवश्यकता हो, तो स्वीकार करो। अर्थात् इसे ले लो ॥ ८ ॥ यह सुनकर भानुकुमारने कहा कि, तू यदि घोड़ेको बेचना चाहता है, तो मुझसे इसका मूल्य कह दे, क्या है? ॥ ९ ॥ घोड़ेवाला बोला, मै सत्य कहूं, या असत्य? भानुकुमारने इस प्रश्नसे हँसकर कहा, जो तुम सरीखे उत्तम, वृद्ध, और सभ्य पुरुष होते हैं, उनके मुंहसे कभी असत्य वचन नहीं निकलते हैं ॥ १०-११ ॥ घोड़ेवालेने इसपर कहा कि, मैं इसका मूल्य एक करोड़ मुहर लूंगा। यह सुनकर भानुकुमारने कहा, क्या तुम मुझसे हँसी करते हो? वुड्ढा बोला, हे वत्स ! तुम तो श्रीकृष्णनारायणके पुत्र हो तुम्हारे साथ मैं कैसे हँसी करूंगा? और हास्य है, सो नीच पुरुषोंमें ही आदरकी वस्तु है। अर्थात् हँसी करना नीचोंका काम है ॥ १२-१३ ॥ और मैं हँसी क्यों करूंगा? मेरा घोड़ा बड़ा ही शक्तिशाली है। आप इसकी अच्छी तरहसे परीक्षा कर लीजिये। क्योंकि जो वस्तु ली जाती है, लोग उसे सब जगह परीक्षा करके लेते हैं ॥ १४ ॥ भानुकुमार बोला, यह बात तुम सच कहते हो। मैं ऐसा ही करूंगा अर्थात् इसे परीक्षा करके लूंगा ॥ १५ ॥

ऐसा कहके वह श्रीकृष्णका पुत्र मूढमति भानुकुमार एकाएक उठा, और उस चंचल घोड़ेपर सवार होकर उसे शीघ्रतासे फिराने लगा। सो वह लक्षणशाली घोड़ा भी अपनी लीलायुक्त उत्तम चालसे भ्रमण करने लगा। सीधे पैरोंसे और वक्र पैरोंसे चलकर उसने क्षणमात्रमें भानुकुमारका चित्त रंजायमान कर दिया ॥ १६-१८ ॥ इसके थोड़ी ही देर पीछे उसने अपनी मनोहर गतिको वेग संयुक्त बनाई अर्थात् जल्दी चलना शुरू कर दिया। इतनी जल्दी कि, भानुकुमारके सारे वस्त्र और आभरण पृथ्वीपर

गिर पड़े। और रोकनेपर भी अर्थात् लगाम डांटनेपर भी वह नहीं ठहरा। आखिर उसने अपने विलक्षण वेगसे उस राजकुमारको पृथ्वीपर पटक ही दिया॥१६–२०॥ और आप बड़ी विनयके साथ बुड्ढाके समीप जाकर खड़ा हो गया। उस समय उसमें जरा भी चंचलता नहीं मालूम पड़ती थी॥२१॥ अनेक राजपुत्रोंसे सेवित राजकुमारको घोड़ा पटक आया, यह देखकर बुड्ढा खूब खिल खिलाकर हँसा। और ताली बजाकर बोला, हे कुमार! मेरे मनोहर वचन सुनो॥२२–२३॥ पृथ्वीमंडलमें तुम्हारी घोड़ेकी शिक्षाके सम्बन्धमें जैसी विपुल कीर्ति फैल रही है, इस समय वैसी किसीकी भी नहीं है। अर्थात् घोड़ेकी सवारीमें जैसे आप प्रवीण हैं वैसा और कोई नहीं है। आपकी यह अश्वशिक्षाकी कीर्ति सुनकर मैं घोड़ा लेकर आपके पास आया था॥२४–२५॥ परन्तु अब तुम्हें देखकर मैंने जान लिया कि, घोड़ेका चलाना तथा घोड़ेपर सवार होना तुम जरा भी नहीं जानते हो। हे कृष्णपुत्र! तुम अश्वसंचालनकी शिक्षामें बिलकुल मूर्ख हो। ऐसी निपुणतासे मैं सच कहता हूं कि, तुम राज्यका उपभोग नहीं कर सकोगे॥ २६–२७॥ किसी अश्वशिक्षाके जाननेवालेको रखकर तुम्हें उसके पास घोड़े चलानेकी सम्पूर्ण कलायें सीखना चाहिये॥२८॥ पहले मैंने लोगोंके मुंहसे सुनाथा कि, सत्यभामाका पुत्र घोड़ेकी शिक्षाको नहीं जानता है, सो अब निश्चय हो गया॥२६॥ राजपुत्रकी परीक्षा करते समय पहले उसकी अश्वकला ही देखी जाती है। फिर कहो, जो इस कलाको नहीं जानता है, उसकी निर्मल कीर्ति कैसे फैल सकती है?॥३०॥ यह सुनकर वहां जितने लोग थे, वे सब मुंहको ढांक २ कर हँसने लगे। बुड्ढेने भी ताली बजाकर उच्चहास्य किया। यह देख भानुकुमार अतिशय क्रोधित होकर बोला;—अरे मूर्ख बुड्ढे! तू व्यर्थ ही क्यों हँसता है? तू सर्व कर्मरहित है, अर्थात् तुझसे तो कुछ भी नहीं हो सकता है। तेरा शरीर जरासे जर्जर और शिथिल हो रहा है॥३१–३२॥ यदि तू स्वयं घोड़ाको चला सकता, तो दूसरोंपर हँसता। अन्यथा जब तू स्वयं असमर्थ है, तब क्यों हँसता है? संसारमें दूसरोंको दोष लगानेवाले अनेक हैं, परन्तु जो स्वयं दोषको नष्ट करनेमें समर्थ हैं,

ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं ॥ ३४–३५ ॥ यह सुनकर बुड्ढा बोला, हे सत्यभामाके पुत्र ! इस समय मुझमें सचमुच घोड़ा चलानेकी सामर्थ्य नहीं है। यदि इस वृद्धावस्थामें भी मुझमें घोड़ा चलानेकी शक्ति होती, तो यह बहुमूल्य घोड़ा तुम्हें क्यों देना चाहता ? ॥ ३६–३७ ॥ हां ! यदि तुम्हारे ये सब राजपुत्र दैवयोग से मुझे अपनी भुजाओंसे उठाकर घोड़ेपर बैठा सकें, तो अवश्य ही मैं अपना सारा कौशल्य तुम्हारे आगे दिखला सकता हूं, और इस उत्तम घोड़ेको शीघ्रतासे चला सकता हूं ॥ ३८–३९ ॥ इतना ही नहीं अपनी अश्वकलासे मैं तुम्हें बल्कि तुम्हारे पिता श्रीकृष्णजीको भी पराजित कर सकता हूं। इस विषयमें और अधिक कहनेसे क्या लाभ है ॥ ४० ॥ उसके इस प्रकार घमंडसे भरे हुए वचन सुनकर भानुकुमार प्रसन्न होकर अपने सुभटोंसे इसप्रकार रमणीय वचन बोला कि, हे शूरवीरो ! इस वृद्धको अपनी भुजाओंसे पकड़कर घोड़ेपर बैठा दो। मैं इसके घोड़े चलानेका कौतुक देखूंगा। आज्ञा पाते ही वे सब सुभट बुड्ढेके पास गये और उसे पृथ्वीपरसे उठाने लगे। परन्तु ज्योंही उन्होंने उठाकर उसे घोड़ेपर रखना चाहा, त्योंही मायासे उसने अपना शरीर शिथिल (वजनदार) कर दिया। जिससे वह भारी शरीरवाला बुड्ढा सब शूरवीरोंका मर्दन करके और उनकी कुहनियोंको दांतोंको और मस्तकोंको चोट पहुंचा करके जमीनपर गिर पड़ा ॥ ४१–४५ ॥ उसकी इस लीलासे कितने ही सुभटोंकी चेष्टा बिगड़ गई, कितने ही मूर्छित हो गये, कितनेही मर गये, कितनेही कांपते हुए जमीनमें लोटने लगे, और कितने ही हाथोंपर मस्तक रखकर बैठ गये ॥ ४६–४७ ॥ सुभटोंकी ऐसी दुर्दशा करके वह घोड़ेवाला स्वयं भी लम्बी २ सांसे लेने लगा और झूठमूठ ढोंग बनाकर रोने लगा हाय ! मुझे इन विनयहीन, दुष्ट और मूर्खोंने पटक दिया। हाय ! मेरी तो कमर टूट गई। इसमें बड़ी ही व्यथा होती है ॥ ४८–४९ ॥ और हे मूर्ख भानुकुमार ! तुम ऐसे दुष्टचित्तोंको धन और वस्त्रादिक क्यों देते हो ? ये इसके योग्य नहीं हैं ॥ ५० ॥ इसप्रकार विलाप करता हुआ वह बुड्ढा भानुकुमारसे फिर बोला, मैं अपनी घोड़े चलाने की चतुराई तुम्हें कैसे दिखालाऊँ ? मैं फिर भी कहता हूं कि, यदि तुम्हारे ये बेचारे सुभट मुझे

दैवयोगसे घोड़ेपर सवार करा सकें, तो मैं अपना कौशल्य तुम्हारे आगे करके दिखाऊं ॥५१–५३॥ यह सुनकर भानुकुमारने अपने सुभटोंसे कहा, मेरे समान जो शूरवीर हैं, उन सबको एकत्र होकर इस घमंडी बुड्ढेको घोड़ेपर बिठा देना चाहिये। जिससे मैं इसकी अश्वकुशलता देख लूं ॥५४–५५॥ भानुकुमारके वचन सुनकर जितने बलवान सुभट थे, वे सबके सब बुड्ढेके पास फिर गये ॥५६॥ और उसे उठाकर घोड़ेपर रखने लगे। सो ऊपर जाकर उसी प्रकारसे वह फिर भी उन योद्धाओंके ऊपर गिर पड़ा। उसके बड़े भारी शरीरके पड़नेसे वे बेचारे फिर पिचल गये। तब आप पहलेकी तरह फिर जोर २ से चिल्लाकर कहने लगा, हे भानुकुमार! तेरे ये सब शूरवीर झूठे हैं। इन नीचोंने मुझे घोड़ेपर आरोहण नहीं कराया। अब यदि तू स्वयं अपने सुभटोंके साथ आकर मुझे घोड़ेपर चढ़ा दे, तो मैं अपना कौतुक दिखलाऊं? ॥ ५७–६० ॥

इस वचनसे संतुष्ट होकर नारायणका पुत्र अपने राजपुत्रोंके साथ स्वयं उठा, और उस बुड्ढेको उठाने लगा। सो उस समय तो वह बिलकुल हलका हो गया। परन्तु ज्यों ही वे सब उसे घोड़ेकी जीनके पास तक ले गये, त्योंही खूब भारी हो गया। इसलिये उन सबको नीचे गिराकर आप ऊपरसे पड़ गया। और उन सबको विशेषकर भानुकुमारको कुचल करके नानाप्रकारका प्रलाप करता हुआ उठ बैठा, और पड़े हुए भानुकुमारकी छातीपर पैर रखके तत्काल ही घोड़ेपर चढ़कर उसे चलाने लगा ॥ ६१–६५ ॥ हर्षसे पूरित होकर देखते हुए राजपुत्रोंके तथा भानुकुमारके आगे उस मनोहर घोड़ेको वह एक क्षणभर मनोज्ञ गतिसे चलाकर तथा अपनी अश्वशिक्षाकी कुशलता दिखलाकर आकाशमें उड़ गया। और वहां भी घोड़ेको सुन्दर गतिसे चलाने लगा। उस समय भानुकुमारादि राजपुत्र बड़े विनोदके साथ ऊपरको मुंह किये हुए उसे देखते थे। परन्तु थोड़ी ही देरमें वह मायावी बुड्ढा अर्थात् प्रद्युम्नकुमार अपने घोड़े समेत आकाशमें ही अदृश्य हो गया ॥ ६६–६९ ॥

इसप्रकारसे भानुकुमारादि सबको चमत्कृत करके और "यह दैत्य था, अथवा कोई विद्याधर था" ऐसी चिन्ता उत्पन्न करके तथा आश्चर्ययुक्त करके प्रद्युम्नकुमार वहांसे चल पड़ा। आगे उसे सत्यभामा-

का सुन्दर वन दिखलाई दिया ॥ ७०–७१ ॥ उसे देखकर प्रद्युम्नने कर्णपिशाची विद्यासे पूछा, हे विद्या! मुझे बतला कि, यह वन किसका है? तब वह बोली, हे नाथ! यह सत्यभामा महाराणीका बगीचा है ॥ ७२–७३ ॥ यह जानकर प्रद्युम्नकुमार विद्याके प्रभावसे सोलह वर्षका युवा बन गया। और पांच सात बड़े २ किन्तु दुर्बल घोड़ोंको लेकर घुड़सवारके रूपमें बगीचेके समीप जाकर वहांकी रखवारी करनेवालों से बोला; मैं इसी बगीचेकी आशासे बहुत दूर देशसे आया हूं। मेरे ये घोड़े मार्गकी थकावटसे दुर्बल हो गये हैं। सो इन्हें तुम अपने इस सुन्दर वनमें कुछ देरतक इच्छानुसार चर लेने दो। जिससे ये कुछ सबल होकर विकनेके योग्य हो जावें ॥ ७४–७७ ॥ उसकी बातें सुनकर वनकी रक्षा करनेवाले बोले; तुझे वातरोग तो नहीं हो गया है? अथवा कोई पिशाच तो नहीं लग गया है? अथवा तू किसीके द्वारा लूटा, छला, वा ठगाया तो नहीं गया है, जिससे विभ्रान्तचित्त होकर ऐसे प्राणघातक तथा निन्दनीय वचन कहता है ॥ ७८–७९ ॥ क्या तू नहीं जानता है कि, यह भानुकुमारकी माता सत्यभामा महाराणीका बगीचा है, पुण्यहीन प्राणियोंको जिसके दर्शनभी नहीं हो सकते हैं। जो वन नागबेलसे रमणीय और लता मंडपोंसे सुन्दर हो रहा है, और जहां सत्यभामाके प्रसादसे केवल उसका पुत्र भानुकुमार रमण करनेके लिये आ सकता है, दूसरा कोई नहीं आसकता है, उसमें तू अपने घोड़ोंको चरनेके लिये ले जानेकी इच्छा करता है! ॥ ८०–८२ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले; हे वनपालको! यह तो कहो कि, तुम जो इतने निष्ठुर और विवेकहीन हो गये हो, सो इसमें तुम्हारा ही दोष है, अथवा, तुम्हारे देशका ही दोष है? सौराष्ट्र देशके लोग निष्ठुर और दुष्टचित्त होते हैं, ऐसा जो कहते हैं, सो यहां प्रत्यक्ष दिखलाई देता है ॥ ८३–८५ ॥ जिन्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि, ये पुरुष कैसा है, और यह दूसरा पुरुष कैसा है, तथा जो स्थान और मान सन्मानको नहीं जानते हैं, उन मूर्ख पुरुषोंके जीवनसे क्या? मेरे ये घोड़े केवल घासके खानेवाले हैं। सो इन्हें यहांपर चर लेने दो। इस बगीचेमें जो यह छोटीसी कृत्रिम नदी (सारणी) है, इसके चारों तरफ ही ये चरेंगे। यदि तुम्हारे चित्तमें इस बातका

विश्वास न हो, तो लो मैं अपनी रमणीय अंगूठी तुम्हें देता हूं, सो रख लो। मैंने इन घोड़ोंको पहले न्याय नीतिकी विधि सिखलाई है, सो ये बगीचेके फल पुष्पादिकोंका कदापि भक्षण नहीं करेंगे ॥८६–८६॥ उसके वचन सुनकर और, अंगूठी लेकर वे वनके रखवाले बोले; हे हयपालक! तुम अपने घोड़ोंको इस नदीके आसपास ही चरा लो। परन्तु स्मरण रक्खो कि, यदि इन्होंने बगीचेके फल पत्रादि भक्षण किये, तो तुम्हारी यह अंगूठी चली जावेगी। फिर नहीं मिलेगी ॥ ९०–९१ ॥ इस बातको स्वीकार करके प्रद्युम्नने उन घोड़ोंको चरनेके लिये छोड़ दिये। सो जबतक वनके रक्षक देखते रहे, तब तक तो वे न्याय मार्गसे अर्थात् जहां कहा था, वहीं चरते रहे। परन्तु जब वनके रखवारे यह देखकर कि, ये केवल घास ही चर रहे हैं, अंगूठी लेकर धीरे २ अपने घर खिसक गये, तब घोड़े स्वेच्छाचारी बनकर उस सारे वनको विद्याके योगसे भक्षण करने लगे। उन्होंने क्षणभरमें वृक्षोंको जड़से उखाड़कर नष्ट कर दिये, और वहांकी भूमिको ऐसी सपाट कर दी कि, मानों पहले वहां कोई बगीचा ही नहीं था ॥ ९२–९५ ॥ प्रद्युम्नकुमारके घोड़ोंने उस नंदनवनके समान वनको नष्ट करके मैदान कर दिया और उसमें जो वाटिका थी, उसको भी साफ कर दी ॥ ९६ ॥ इसके सिवाय वहांपर जो सत्यभामाके बनवाये हुए तालाब थे, उनको भी घोड़ोंने शोषण करके जलरहित मरुस्थलके समान कर दिये ॥ ९७ ॥

माताका कार्य करनेमें अतिशय चतुर तथा बलवान वह प्रद्युम्नकुमार यह सब लीला करके आगे चला। सो वहां उसे एक नगरका बगीचा दिखलाई दिया, जो कि नानाप्रकारके वृक्षोंसे सघन, तथा फल और पुष्पोंसे लदा हुआ था, तथा जहांपर नानाप्रकारके पक्षी रहकर विश्राम करते थे। पृथ्वीतलपर उसे देखकर कामदेवने ऐसा तर्क किया कि, यह क्या यहां स्वर्गलोकसे लाया गया है? मैंने तो ऐसा उत्तम बगीचा विद्याधरोंके नगरोंमें भी नहीं देखा था। इसप्रकार विचार करके और विस्मित होकर प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे पूछा, मुझसे सत्य २ कहो कि, यह उपवन किसका है? उसने कहा, यह वन भी तुम्हारी मातासे सदा शत्रुता रखनेवाली श्रीकृष्णजीकी प्राणप्यारी और भानुकुमारकी माता सत्यभामा

रानीका है। यह पृथ्वीतलमें बहुत प्रसिद्ध बगीचा है। अब आपको जो कुछ रुचता हो, सो करैं। विद्याके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारने उसी समय विद्याके बलसे एक सुन्दर बन्दर बना लिया, जिसकी बड़ी पूंछ, बड़ा शरीर, विकराल मुख, सफेद दांत, पतली कमर, चपल नेत्र, चंचल अंग, और असुहावनी आवाज़ थी, और आप चांडालका रूप धारण करके बन्दरको साथमें लिये हुए उस बगीचेके पास आये ॥ ६८–७ ॥ सो वहां आकर बगीचेके रक्षकोंसे बोले, मेरी एक हितकारी बात सुन लो;—मेरा यह बन्दरका बच्चा भूखके मारे बहुत ही व्याकुल हो रहा है, और इस वनका एक फल खानेकी इच्छा करता है ॥ ८–९ ॥ इसलिये इसे एक उत्तम फल खानेके लिये दे दो। उसे खाकर यह संतुष्ट हो जावेगा। बल आजानेसे मैं इसे इस श्रेष्ठ नगरमें ले जाऊंगा, और इसकी क्रीड़ासे सब लोगोंको रंजायमान करूंगा ॥ १०–११ ॥ मेरी यही जीविका है, इसीसे मैं अपना पेट पालता हूं। इसलिये एक अच्छा फल इसे दे दो ॥ १२ ॥ यह सुनकर वे वनपाल बोले, क्या तुझे वातरोग हो गया है, अथवा कोई पिशाच लग गया है, जो बन्दरको फल खिलानेकी इच्छा करता है ॥ १३ ॥ फल और पुष्पोंसे लदा हुआ यह बगीचा सत्यभामा महाराणीका है। इससे स्पष्ट है कि, पुण्यहीन अधम पुरुषोंके लिये यह सर्वथा दुर्लभ है ॥ १४ ॥ फिर तू इस बगीचेके फलको पाकर बन्दरके खिलानेकी बात ही क्यों करता है? हे मूर्ख! अपने बन्दरको लेकर तू यहांसे शीघ्र ही चला जा ॥ १५ ॥ यदि कहीं तुझे कृष्णमहाराजके सेवक इस-समय देख लेंगे, तो हे दुराशय! तू बहुत कष्ट उठावेगा ॥ १६ ॥ हम तुझे पहलेहीसे सचेत किये देते हैं। फिर हमारा दोष नहीं समझना। यह सुनकर चांडाल बोला; हे वनपालको! तुम किस कारणसे इतने निष्ठुर हो गये हो, जो मेरे बन्दरको एक फल भी नहीं दे सकते हो ॥ १७–१८ ॥ मैं कहे देता हूं कि, यदि यह बन्दर तीव्र क्षुधाके कारण बलपूर्वक रस्सी तोड़कर बगीचेमें घुस जावेगा; तो मेरा दोष नहीं होगा ॥ १९ ॥ ऐसा कहकर उस चांडालने बन्दरको तत्काल ही छोड़ दिया और हँस करके कहा, अरे क्षुद्र वनपालको! अब देखो, मेरे इस कुपित हुए बन्दरका और मेरा भी तुम्हारे श्रीकृष्ण अथवा

सत्यभामा क्या करती हैं ॥ २०–२१ ॥ ऐसा कहकर वह चपल चांडालभी वहांसे शीघ्र चला गया। तब वनकी रक्षा करनेवाले उस बन्दरको मारनेके लिये तयार हो गये ॥२२॥ उन्होंने लकड़ी, तलवार, परशु (फरसा) पत्थर, बाण, तोमर (गुर्ज) तथा और अनेक हथयारोंसे बन्दरको रोका। परन्तु तौ भी वह बगीचेकी ओर चला गया और सारे वनपालोंको लांघकर बलपूर्वक भीतर घुस गया। उसके वहां पहुँचते ही हजारों बन्दर हो गये ॥ २३–२४ ॥ जिन्होंने क्रोधित होकर उस अच्छे २ वृक्षोंसे और लताओंसे परिपूरित वनको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। ऐसा किया कि, वहां उसका नामनिशान भी नहीं रहने दिया। वृक्षोंको लताओंको तथा वाटिकाओंको उखाड़ उखाड़कर समुद्रमें फेंक दिया ॥ २५–२६ ॥ इसप्रकार सफाई करके और अपनेको कृतकृत्य समझकर कामदेवने चांडालका वेष छोड़कर नगरीकी ओर गमन किया ॥ २७ ॥

द्वारिकापुरीमें प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि, साम्हनेसे एक सुवर्णरत्नजटित रमणीय रथ आ रहा है ॥ २८ ॥ जिसमें अनेक दिव्य तथा मंगलस्वरूप कलश रक्खे हुए हैं, जो अनेक स्त्रियों करके युक्त है, अनेक दर्पणोंके कारण जिसमें उद्योत हो रहा है और जिसपर मनोहर पताकायें उड़ रहीं हैं ॥ २९ ॥ उसे देखकर प्रद्युम्नकुमार विस्मित हो रहे। उन्होंने अपनी कर्णपिशाची विद्यासे पूछा कि, यह रथ किसका है? ॥ ३० ॥ वह बोली, भानुकुमारके विवाहके मंगल कलशोंसे भरा हुआ और काहल, मृदंग, तथा भेरीके नादसे शब्दायमान होता हुआ यह उत्तम रथ कुंभकारके (कुम्हारके) घरसे कलश लेकर स्त्रीजनोंके सहित सत्यभामाके घरपर जा रहा है, जो कि तुम्हारी माताकी सौत है। इसके विषयमें तुम्हारी जो इच्छा हो, सो करो ॥ ३१–३३ ॥ विद्याके वचनोंसे सब बातोंको विशेषतापूर्वक जानकर तथा रथकी स्वामिनीको अपनी माताकी वैरिणी समझकर प्रद्युम्नकुमारने तत्काल ही एक विकृत आकृति बनाई। अर्थात् विद्याके बलसे उन्होंने एक विचित्र रथ बनाकर जिसमें कि गधा और ऊंट जुते हुए थे, उसे सम्पूर्ण लोगोंको क्षोभित करते हुए और अगणित जनोंको हँसाते हुए सत्यभामाके रथ की ओरको

चलाया, और देखते २ उस रथको चूर्ण कर डाला, कलशोंको पटक दिया, और तोरणको तोड़ डाला। आगे वह रथ यहां वहां भागता हुआ भानुकुमारके नौकरोंको कुचलने लगा। उसने स्त्रियोंको गिराकर उनके कान काट डाले, मुंहके दांत गिरा दिये, कुहनी छील डालीं, पैरोंमें चोटें पहुँचाईं, और कपड़े फाड़ डाले, जिससे वे उघाड़ी हो गईं ॥३४–३८॥ उनके मुखमेंसे जहां गीत निकलते थे, वह विलाप निकलने लगा। इसप्रकार लीला करके आगे प्रद्युम्नकुमार गधे और ऊंटोंसे हास्यकारी शब्द कराता हुआ, डांस और मच्छरोंको छोड़ता हुआ, ऊंचा मुख किये हुए अपने रथको गली २ में फिराने लगा ॥ ३९–४० ॥ उसे देखकर नगरीके मनुष्य परस्पर इसप्रकार बातचीत करने लगे,—यह कोई मनुष्य है, अथवा विद्याधर है? नागेन्द्र है, अथवा दैत्येन्द्र है? या कोई इन्द्रजाल ही है? हम यह स्वप्नमें देख रहे हैं, अथवा जागते हुए ही कोई माया देख रहे हैं? ॥ ४१–४२ ॥ जो श्रीकृष्णमहाराजकी नगरीमें इस प्रकार निर्भय होकर क्रीड़ा करता फिरता है, अवश्य ही वह कोई अल्प स्वल्प शक्तिका धारक नहीं होगा ॥ ४३ ॥ इसप्रकार कहते हुए हँसते हुए और तालियां बजाते हुए वे सब फिर कहने लगे, भाई! आजतक तो ऐसा दुर्लभ कौतुक कभी नहीं देखा था। यह कोई बड़ा महानुभाव है, जो निराकुलतासे नगरीमें भ्रमण कर रहा है ॥ ४४–४५ ॥ लोगोंकी इसप्रकार बातचीत सुनते हुए प्रद्युम्नकुमारने आनन्दके साथ कुछ समयतक भ्रमण किया।

इसके पश्चात् उन्होंने कुछ दूसरा ही वेष धारण कर लिया और नगरीमें आगे चलकर एक सुन्दर वापिका देखी, जो चमकते हुए सोनेकी बनी हुई थी और जिसकी सीढ़ियां रत्नमयी थीं ॥ ४६–४७ ॥ उस वापिकाकी अनेक स्त्रियां रक्षा करती थीं, और उसमें निर्मल जल भरा हुआ था। उसे देखकर कुमारने विद्यासे पूछा, मुझे बतलाओ कि, यह सुन्दर वापी किसकी है? वह बोली, यह भानुकुमारकी माता सत्यभामाकी मनोहर वापिका है। इसकी बहुतसी स्त्रियां रक्षा करती हैं। सामान्य लोगोंको यह अतिशय दुर्लभ है। विद्याके वचन सुनकर प्रद्युम्न प्रसन्न हुए और तत्काल ही एक ब्राह्मणका वेष बना-

कर वापिकाके पास गये। वह बनावटी ब्राह्मण योगपट्ट, छत्री, दंड, कुंडी और हरी दूर्वा लिये हुए था। श्रुति स्मृति और वेदका जाननेवाला था, घुटनेतक लटकनेवाला सफेद वस्त्र पहने था, कोपीन भी पहने था। सफेद जनेऊ उसके कंधेपर था, और बुढ़ापेके कारण उसका विस्तृत तथा स्थूल शरीर कांपता था। इसप्रकारका ब्राह्मण वेदध्वनि करता हुआ वापिकाकी रखवाली करनेवाली स्त्रियोंसे बोला, हे पुत्रियो! मेरे वचन सुनो, मैं तुमसे थोड़ीसी याचना करता हूं। मुझे इस वापिकाके मनोहर जलमें स्नानकर लेने दो और इस कमंडलुको जलसे भर लेने दो। उस जलको मैं नगरीमें ले जाऊंगा और शान्तिके लिये किसीको देकर उससे भोजनकी याचना करूंगा ४८–५७॥ ब्राह्मणके ऐसे विनययुक्त वचन सुनकर वे स्त्रियां बोलीं, अरे मूर्ख! क्या तूने विष्णुकी प्राणप्यारी पट्टरानी और भानुकुमारकी माता सुप्रसिद्ध सत्यभामाका नाम नहीं सुना है? उसी सौभाग्यशालिनीकी यह मनोहर वापिका है। दूसरे लोगोंको इसके दर्शन भी नहीं हो सकते हैं, फिर जलके स्पर्श करनेकी तो बात ही क्या है? ॥ ५८–६० ॥ हे ब्राह्मण! यह वापिका प्यारी स्त्रीके समान पापियोंको दुर्लभ है। जैसे स्त्रियोंके कुच होते हैं, वैसे इसके चक्रवाकरूपी कुच हैं, और जिस प्रकार स्त्रियोंका हंसके समान सुन्दर गमन होता है, उसी प्रकारसे इसमें सुन्दर हंस गमन कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ अगणित यादव स्वजनजन और नगरीके लोग जिसके चरणोंकी सेवा करते हैं, ऐसे श्रीकृष्णजी यदि चाहें, तो अपनी स्त्रियोंके साथ इसमें स्नान कर सकते हैं, अथवा सत्यभामाका पुत्र श्रीमान भानुकुमार मज्जन कर सकता है। परन्तु इन दोके सिवाय और कोई भी इसमें प्रवेश नहीं कर सकता है। फिर यहां तेरे सरीखे भिखारीकी कैसे पहुंच हो सकती है? इसलिये हे भट्ट! अब तू यहांसे शीघ्र ही चला जा; नहीं तो विष्णुके सेवक तुझे मारेंगे ॥ ६२–६४ ॥ स्त्रियोंकी वार्ता सुनकर ब्राह्मणवेषधारी बोला, यदि कृष्णजीका पुत्र इस वापिकामें स्नान कर सकता है, तो फिर तुम मुझे क्यों स्नान नहीं करने देती हो? क्योंकि मैं भी तो कृष्णजीका बड़ा पुत्र हूं। यह बात मैं बिलकुल सच कहता हूं। परन्तु यदि तुम्हें इसमें आश्चर्य होता है—कौतुक जान पड़ता है, तो मेरे वचन सुनो;—

हस्तिनागपुरमें जो कौरव कुलमें उत्पन्न हुए सुयोधन (दुर्योधन) नामके प्रसिद्ध राजा हैं उन्होंने अपनी
रूपवान और गुणवान कन्याको जिसका कि नाम उदधिकुमारी है, अपनी बहुतसी सेनाके साथ भानुकुमारके
साथ विवाह करनेके लिये भेजी थी। सो उसे मार्गमें कौरवोंके बचानेपर भी बहुतसे भील हरण करके
अपने स्वामीके पास ले गये। उसे देखकर भिल्लराजने मनमें सोचा कि, यह रूपवती तथा यौवनभूषित
कन्या क्षत्रियके कुलमें उत्पन्न हुई है। इसलिये यह मेरे योग्य नहीं है, राजपूतके ही योग्य है ॥६५–७१॥
ऐसा विचार करके भिल्लराजने उस प्रसिद्ध कन्याको वहीं अपनी रक्षामें रक्खी। इतनेमें अचानक
ही पृथ्वीमें भ्रमण करता हुआ मैं उसी मार्गसे उसी जगह जा पहुंचा। सो मुझे रूपवान गुणवान
तथा यौवनभूषित देखकर भिल्लराजने सोचा कि, यह कन्या इसीके योग्य है। इस लिये निःशंक
होकर इसीको दे देना चाहिये ॥ ७२–७४ ॥ ऐसा विचार करके उसने भक्तिपूर्वक चरणप्रक्षालन करके
उस रूपवती गुणवती कन्याको मुझे समर्पण कर दी ॥ ७५ ॥ उस कुमारीके समान न तो कोई युवती
संसारमें है और न होगी। इसी प्रकारसे न मेरे समान कोई वर है, और न होगा ॥ ७६ ॥ अब तुम
ही सोचो कि, कृष्णजीके पुत्रके लिये जो उत्तम कन्या भेजी गई थी, वही जब मुझे समर्पण कर दी गई,
तब मैं कृष्णपुत्र हुआ कि नहीं? फिर मुझे वापिकामें क्यों स्नान नहीं करने देती हो? ब्राह्मणकी विनो-
दयुक्त बातें सुनकर वे स्त्रियां बोलीं, हे विप्र! तू वृद्ध हो गया है, रूप और यौवनका तुझमें नाम नहीं
है, तौ भी तू राजकन्यासे विवाह करनेका मनोरथ करता है! यह नहीं समझता है कि, कहां तो यह
तेरा निन्दनीय रूप और कहां वह रूप और गुणकी खानि उदधिकुमारी? ॥ ७७–७९ ॥ इस वृद्धावस्थामें
भी तू जवानीमें उत्पन्न होनेवाली कुटिलता तथा हँसीको नहीं छोड़ता है, यह एक बड़े भारी आश्चर्यकी
बात है ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मण! तूने जो कुछ अभी कहा, क्या वह सब घटित हो जाता है? अरे! जरा
विचार तो कर कि, कहां तो जरासे जर्जर तू और कहां वह कुरु राजाकी यौवनवती सुन्दर कन्या?
और कहां राजपुत्रोंकी रक्षामेंसे उसका भीलोंके द्वारा हरा जाना? इसप्रकार असत्य वचन तू बुढ़ापेमें

क्यों बोलता है ? इसप्रकार हँसीके वचनोंसे रोकनेपर भी आखिर वह ब्राह्मण धीरे २ वापिकाके जलमें पैठ गया ॥ ८१–८३ ॥ यह देखकर वे बावड़ीकी रक्षा करनेवाली स्त्रियां कुपित होकर उस ब्राह्मणको मारने लगीं। परन्तु ज्योंही उनके हाथ उस वृद्ध ब्राह्मणके शरीरसे लगे, त्योंही उसके स्पर्श मात्रसे वे सबकी सब जो रूपरहित कुरूपा थीं, रूपवती और गुणवती बन गईं ॥ ८४–८५ ॥ जब उन्होंने परस्पर अपना रूप देखा, तब वे अपकारके बदले भी विप्रके उपकार करनेके वर्तावकी प्रशंसा करती हुईं कहने लगीं, हे द्विजराज! कुपिताओंपर भी तुमने उपकार किया है। इसलिये संसारमें तुम सरीखा दयालु और गुणी कोई नहीं है ॥ ८६–८७ ॥ इसके पीछे वे सब स्त्रियां अपना रूप देखनेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ वापिकामेंसे बाहिर निकल आईं। देखा तो जो कर्णविहीन थी, वह कानोंवाली हो गई। जिसके एक आँख थी, वह दोनों दिव्य नेत्रोंवाली हो गई। जो गूंगी थी, वह वाचाल हो गई, जिसके कुच तुचके हुए थे, वह पीनस्तनी हो गई। जो कुरूपा थी, वह रूपवती हो गई, और जो जामुनके रंग जैसी अतिशय काली थी, वह गौरवर्णा हो गई ॥ ८८–९१ ॥ इसप्रकार जबतक वे एक दूसरेका रूप देखती हुई बाहिर ठहरीं, तबतक उस विप्रने जल्दीसे अपना कमंडलु वापिकामें डालकर, उसका सबका सब जल भर लिया। और फिर वह बाहिर निकलकर उन सबके देखते हुए धीरे २ चलने लगा ॥ ९२–९३ ॥ उस समय वे एक दूसरेको देखती हुईं परस्परके रूप कांति तथा गुणोंकी प्रशंसा करनेमें लगी हुईं थीं ॥९४॥ एक बोली, तेरा रूप बहुत सुन्दर हो गया है। दूसरी बोली, और तेरा कान क्या कम सुन्दर हुआ है? तीसरी बोली, सखी! तेरे शरीरमें तो आज जवानी आ गई है! चौथी बोली, तेरे नेत्र तो बड़े ही कटीले और सुन्दर हो गये हैं। पांचवी बोली, आली! तेरे सिकुड़े हुए कुच तो बड़े कठोर हो गये हैं! और जो एक सुन्दर स्त्री थी, वह बोली, बहिन! तेरा स्थूल उदर तो बहुत ही कृश हो गया है—कमर बहुत पतली हो गई है ॥ ९५–९७ ॥ इसप्रकार वे सब विनोदके साथ परस्पर बातचीत कर रही थीं। इतनेमें एक स्त्री प्यास लगनेसे जल पीनेके लिये बावड़ीमें गई। परन्तु वहां जाकर देखा, तो बावड़ी

सूखी जलरहित, पतिता (सीढ़ियां दीवालें वगैरह पड़ी हुईं) और सूखे घाससे आच्छादित थी। उसे इस प्रकार जीर्ण शीर्ण देखकर वह बाहर निकल आई और साथकी अन्य स्त्रियोंसे सब वृत्तान्त कहकर बोली, आज उस ब्राह्मणने अपने सबको ठग लिया। वह दुरात्मा छुप करके वापिकाका सब जल कमंडलुमें भर ले गया। यह सुनकर वे सब स्त्रियां शंका मिटानेके लिये स्वयं वापिका देखनेको गईं। देखते ही वे सब क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करके गाली देती हुईं और इसप्रकार कहती हुईं कि, "अरे पापी! बोल, अब तू कहां जाता है?" ब्राह्मणके पीछे २ दौड़ीं। परन्तु जबतक वे दौड़ीं, तबतक वह नगरीमें बैठकर नानाप्रकारकी चेष्टायें करने लगा ॥ ९८-३ ॥ नगरीके बाजारकी सारी शोभाको हरण करने लगा। वहां जो नानाप्रकारके मणि थे, और रत्नोंके आभूषण थे, तथा और जो हथियार, कपड़े, सुगंधित पदार्थ, कर्पूर, नमक, धान्यादि थे, वह उन सबको अपनी मायासे अदलबदल करता हुआ फिरने लगा। हाथी, घोड़े, आदि वाहनों तथा गाय भैंसादि पशुओंमें भी उसने हाथके छूनेमात्रसे व्यत्यय कर दिया। अर्थात्, हाथीका घोड़ा बना दिया, गायकी भैंस बना दी, किसीका घोड़ा किसीकी दूकानपर खड़ा कर दिया और किसीकी गाय किसीके यहां कर दी। इसप्रकार चेष्टा करता हुआ जब वह ब्राह्मण ऊपरको मुख किये हुए चला जा रहा था, तब तक वे कुपिता स्त्रियां हजारों गालियां और सैकड़ों शापें देती हुईं आ पहुंची और शीघ्र ही उस विप्रको चारों ओरसे घेरकर बकने लगीं, अरे दुष्ट! तू बावड़ीका सारा जल क्यों लेकर भाग आया? ॥ ४-९ ॥ उनके इसप्रकार बकते ही ब्राह्मणमहाशयने अपने कमंडलुको तत्काल ही पृथ्वीपर पटककर फोड़ डाला, और उसमेंसे सारा जल जो बावड़ीमेंसे अपनी विद्याके बलसे भर लिया था, क्रोधके कारण छोड़ दिया। सो उसके प्रवाहमें बाजारका चौरस्ता बहने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि, यह किसी महानदीका पूर आ गया है अथवा कोई समुद्र ही यहां चलकर आ गया है ॥ १०-१२ ॥ उस प्रवाहका जल दुकानोंमेंसे बहने लगा, जिससे मोती, तथा सोना रत्न आदि बहने लगे। नगरके मध्यमें दूकानें, घर, बगीचा, घोड़ा आदि बाहन जो कुछ थे, वे सब उस जलके प्रवाहमें बहे

जाने लगे ॥ १३–१४ ॥ उस समय लोगोंने समझा कि, यह प्रलयकाल आ गया है, जिसमें पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। अन्यथा समुद्र अपनी मर्यादाको क्यों छोड़ देता? अर्थात् उन्होंने समझा कि, यह समुद्र ही नगरमें बढ़ आया है। यह देखकर वे बावड़ीकी रक्षा करनेवाली स्त्रियां प्रलाप करती हुई अपने स्थानको चली गईं और प्रद्युम्नकुमार कौतुक करके तुष्ट हो गया ॥ १५–१६ ॥

इसके पश्चात् वह विनोदीकुमार एक दूसरे जवान ब्राह्मणका वेष धारण करके उस नगरीमें आगेको चल पड़ा। एक चौरस्तेपर उसने देखा कि, बहुतसे माली नानाप्रकार फूलोंको गुह रहे हैं। फूलोंका वहां बड़ा भारी समूह देखकर प्रद्युम्नको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। इसलिये उसने उन फूलोंके विषयमें अपनी विद्याासे पूछा। उसने कहा कि, सत्यभामाके पुत्र भानुकुमारके लिये ये सब फूल एकट्ठे किये गये हैं। यह सुनकर वह उन मालियोंके पास जाकर बोला;–॥१७–२०॥ तुम इन फूलोंमेंसे मुझे थोड़ेसे सुन्दर सुन्दर फूल दे दो, जिन्हें लेकर मैं सत्यभामाके मन्दिरको जाऊं ॥ २१ ॥ और वहां उन्हें आशीष देकर भोजनकी याचना करूं और जो मैं चाहता हूं, सो पाऊं ॥ २२ ॥ इससमय मुझे भूख बहुत लग रही है, इसलिये फूल जल्दीसे दे दो। वहां इससमय भानुकुमारके विवाहका उत्सव भी हो रहा है, इससे मेरा मनोरथ जरूर सफल होगा ॥ २३ ॥ उसकी बातें सुनकर माली बोले, हे ब्राह्मण! हमारे हितकारी वचन सुन। ये सब फूल सत्यभामा महारानीके पुत्रके विवाहके लिये रक्खे हुए हैं और विवाहके लिये ही हम इन्हें गुह रहे हैं। इनमेंसे हम एक फूलकी पँखुरी भी नहीं दे सकते हैं। तुम यहांसे शीघ्र ही चले जाओ ॥ २४–२६ ॥ उनकी बातें सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले,–मालूम पड़ता है मूर्खिणी सत्यभामाके सब ही नौकर चाकर मूर्ख हैं। ऐसा कहकर उन्होंने उन फूलोंको अपने हाथोंसे छू दिया। बस उनके छूते ही वे सब मन्दार, पारिजात, बकुल, कुमुद, चम्पा, शतपत्र (कमल) नागकेशर, जाही, जुही, आदिके फूल आकके फूल हो गये ॥ २७–२९ ॥

यह कौतुक करके प्रद्युम्नकुमार लीला करता हुआ आगे चला। और बाजारमें पहुंचकर दूकानोंकी

वस्तुएं उलटी सीधीं करने लगा। वहां जितने प्रकारके सुगंधित पदार्थ थे, तथा जितने प्रकारके अनाज
रक्खे हुए थे, उन सबको उसने कहींके कहीं बहुमूल्यके स्थानमें थोड़े मूल्यवाले, थोड़े मूल्यवालोंके
स्थानमें बहुमूल्यवाले, बुरेके स्थानमें भले और भलेके स्थानमें बुरे इसप्रकार गटपट कर दिये ॥३०-३२॥
हाथीके स्थानमें गधे कर दिये, घोड़ेके स्थानमें खच्चर कर दिये, कस्तूरीके स्थानमें हींग, और हींगके
स्थानमें उत्तम कस्तूरी कर दी। जहां नमक था, वहां कपूर और जहां कपूर था, वहां नमक कर दिया।
जितने हाथीके उपकरण हौदा वगैरह थे, वे सब गधेके उपकरण हो गये और जितने गधेके थे, वे सब
हाथीके हो गये। पीतल सोना हो गया और सोना पीतल होगया। रत्न कांचके टुकड़े और कांचखंड
उत्तम रत्न होगये। यौगंधरीय (ज्वार?) मोती और मोती यौगन्धरीय हो गये। घी तैल हो गया और
तैल घी होगया। कम्बल पट्टकूल (रेशमी कपड़े?) और पट्टकूल कम्बल होगये॥ ३३-३७ इसप्रकार
नानाप्रकारकी अदलबदल करनेकी क्रीड़ा करते हुए प्रद्युम्नकुमार धीरे २ उस सुन्दर राजमार्गपर पहुंच
गये, जो मदोन्मत्त हाथियोंके झड़ते हुए मदजलसे कीचड़मय और दुर्गम दिखलाई पड़ता था ॥३८-३९॥

राजमार्गपर चलते हुए कुमारने एक सुन्दर मन्दिर (महल) देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ा भारी
अचरज हुआ। इसलिये अपनी विद्यासे पूछा कि, यह मनका हरनेवाला महल किसका है। विद्याने
कहा, हे नाथ! यह स्वर्गके महलोंसे भी विशेष सुन्दर महल आपके पिता श्रीकृष्णके पिता वसुदेव
महाराजका है॥ ४०-४२॥ यह सुनकर प्रद्युम्नने फिर पूछा कि, इन्हें किस बातपर अधिक प्रेम है, अर्थात्
इन्हें प्यारा क्या लगता है? विद्याने कहा, इन्हें मेढ़ा (मेष) लड़ाना—मेढ़ोंकी लड़ाई देखनेका बड़ा शौक
है। इसपर उनकी बहुत प्रीति है॥ ४३॥ विद्याके वचन सुनकर कुमार उसी समय एक विद्यामयी मेढ़ा
बनाकर वसुदेवके महलकी ओर ले चले। थोड़े ही देरमें उन्होंने सोनेके तोरणों तथा धुजा पताकाओंसे
शोभायमान, मणियों तथा दर्पणोंसे अलंकृत, कलश तथा झारियोंसे युक्त, और सिंह, व्याघ्र, रीछ,
अष्टापद, चीता आदि जानवरोंसे भय उत्पन्न करनेवाले उस महलमें प्रवेश किया॥ ४४-४६॥ और

फाटकके आगे थोड़ी दूर गलीमेंसे जाकर सभाके बीच सिंहासनपर बैठे हुए अपने पिताके पिताको शस्त्रकलामें प्रवीण हुए अनेक राजपुत्रोंके सहित देखा ॥ ४७–४८ ॥ उनका शरीर चमकते हुए सोनेके समान था, मुख पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर था, भुजायें दिग्गजोंकी सूंड़के समान लम्बी गोल और बड़ी थीं, छाती पर्वतके पसवाड़ेके समान विस्तीर्ण थी, बाल इन्द्रनीलमणिके समान काले तथा घुँघराले थे, कंठ शंखके समान था, नाभि सुन्दर थी, अधर लाल तथा शोभायमान थे, इसीप्रकारसे चरण और हाथकी हथेलीं भी लाल और शोभायुक्त थीं और दांत कुन्दकी कलियोंके समान मनोहर थे। ऐसे सर्वांगसुन्दर दादाको देखकर प्रद्युम्नकुमारको बहुत संतोष हुआ। हाथी और घोड़े चलानेकी विद्यामें तथा शस्त्रविद्यामें पारंगत हुए उस स्वभावसे ही सौम्य तथा सुन्दर पितामहको देखकर कुमारने आनन्दके साथ दूरसें ही प्रणाम किया। वसुदेवजी भी उस युवा पुरुषको तथा उसके मेढ़ेको देखकर प्रसन्न हुए। उस मेढ़ेका शरीर सुडौल तथा गोल था, सींग टेढ़े तथा सूखे थे, उसके कंठमें सुन्दर घुंघरू पहनाईं गईं थीं, तथा वह बड़ा बलवान और शोभायमान था ॥ ४९–५५ ॥ उसे देखकर शौरी अर्थात् वसुदेवजीने स्वयं ही आदरके साथ पूछा, यह सुन्दर मेढ़ा किसका है, और किस लिये यहां लाया गया है? युवा पुरुषने कहा, यह मेढ़ा मेरा है। यह बड़ा ही विषम तथा दुर्जय है। इस विषयमें मैं कुछ हँसी नहीं करता हूं। सचमुच ही यह बड़ा बलवान है। पहले इसने बहुतसे युद्धकरके बहुतसे मेढ़ोंको जीते हैं ॥ ५६–५७ ॥ आपको मेढ़ोंकी लड़ाईका शौकीन तथा चतुर सुनकर मैं यहांतक आया हूं। इनका युद्ध देखनेके ही योग्य होता है। सो यदि देखना हो, तो आप ही इसका युद्ध देखें। क्योंकि पृथ्वीमें इसके युद्धकी परीक्षा करनेवाला चतुर पुरुष आपके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है ॥ ५८–५९ ॥ मेढ़ेवालेकी बात सुनकर वसुदेवजी बोले, यदि तेरा मेढ़ा दुर्जय है. अर्थात् कोई इसे नहीं जीत सकता है, तो मेरी जांघपर टक्कर लगानेको छोड़ दे ॥ ६० ॥ यदि यह मेरी जांघको तोड़ डालेगा, तो समझ लिया जावेगा कि, इसके समान बलवान मेढ़ा पृथ्वीमें और कोई नहीं है ॥ ६१ ॥ यह सुनकर मेढ़ेवाला बोला, नहीं मैं

अपने मेढ़ेको आपपर नहीं छोड़ सकता हूं। क्योंकि यह बहुत चपल, बलवान और मजबूत है। यदि मैं जान करके भी आपपर इसे छोड़ दूंगा, तो आपके सेवकगण मुझे मारे विना न रहेंगे। क्योंकि आप श्रीकृष्ण महाराजके पिता हैं ॥ ६२–६३ ॥ इसलिये इसे आप वैसे ही ले लीजिये। यदि आप मुझे बलमें गिराकर इसे लेना चाहते हों, तो कैसे ले सकते हैं? अर्थात् हराकर नहीं ले सकते हैं ॥ ६४ ॥ हे नाथ! मेरा यह मेढ़ा बहुत ही शक्तिशाली है। यह मैं निश्चयपूर्वक जानता हूं। फिर कहिये कि, इसे आपकी जांघके सम्मुख कैसे छोड़ दूं? ॥ ६५ ॥ यदि यह बलवान मेढ़ा आप जैसे पूज्य पुरुषको पृथ्वीपर गिरा देगा, तो ये यादवगण मेरा क्या नहीं करेंगे? अर्थात् ये मेरी खूब ही दुर्दशा करेंगे ॥ ६६ ॥ उसके उक्त वचन सुनकर वसुदेवजीने हँस करके कहा, अपने मेढ़ेको मेरी जांघपर छोड़ दो। इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं समझा जावेगा ॥ ६७ ॥ उनका उत्तर सुनकर मेढ़ेवालेने सब यादवोंसे तथा सेवकगणोंसे कहा, देखो, यदि यह महाराजको गिरा देगा, तो उसमें मेरा रंच मात्र भी दोष नहीं होगा ॥ ६८ ॥ यह सुनकर वे सब बोले, अरे मूर्ख! यह बेचारा मेढ़ा बलवान वसुदेव महाराजको कैसे गिरा सकता है? ॥ ६९ ॥

उन सबके वचन सुनकर मेढ़ेवालेने उस वज्रके समान कठोर मस्तकवाले मेढ़ेको शीघ्र ही छोड़ दिया, और कहा, हे पूज्यवर! यदि आप समर्थ हैं, प्रधान पुरुष हैं, तो देखो यह अतिशय दुर्जय मेढ़ा आ रहा है, इसकी चोटको सहन करो ॥ ७०–७१ ॥ उसके इस प्रकार कहते ही उस मेढ़ेने दौड़करके वसुदेवजीकी उस जांघमें खूब जोरसे चोट लगाई, जो उन्होंने टक्करके लिये साम्हने उठा रक्खी थी ॥ ७२ ॥ ठोकरके लगते ही वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े! वसुदेवजीको गिरा देखकर यादवगण चारों ओर से दौड़ आये, और मलय अगरु चन्दनादिसे उनका शीतोपचार करने लगे ॥ ७३–७४ ॥ यहां जब तक यादव लोग वसुदेवजीको सचेत करनेमें लगे, तब तक मेढ़ेवालेने अपने मेढ़ेको लेकर वहांसे कूच कर दिया! ॥ ७५ ॥

इसप्रकार अपने पितामहको (दादाको) गर्वरहित करके प्रद्युम्नकुमार हँसता हुआ वहांसे निकल पड़ा। रास्तेमें चलते चलते उसने एक मनोहर घर देखा, जिसमें पुत्रविवाहका बड़ा भारी उत्सव हो रहा था, और जिसमें धुजा पताका तोरण आदिसे भूषित हुए अनेक मंडप शोभित हो रहे थे ॥ ७६-७८ ॥ उसे देखकर प्रद्युम्नने अपनी कर्णपिशाची विद्यासे पूछा, हे विद्या! यह सुन्दर मन्दिर (घर) किसका है, जो इस भुवनमें सबसे उत्तम जान पड़ता है। विद्याने उत्तर दिया, यह लोकप्रसिद्ध मन्दिर भी सत्यभामा महाराणीका है। विद्याकी बात सुनकर कुमार बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने यह विचारकरके कि, अपनी माताकी सौतका यह उत्तम घर देखना चाहिये, तत्काल ही सम्पूर्ण विद्याओंके जाननेवाले एक चौदह वर्षके ब्राह्मण बालकका रूप बना लिया ॥ ७९-८१ ॥ उसके नेत्र बड़े बड़े थे, शरीर पीला था, और स्वभाव बहुत चपल था। वह बहुत बोलता था, और वादविवाद करनेमें चतुर था। खूब जोर जोरसे वेदका पाठ करता हुआ वह सत्यभामाके महलमें भोजनके लिये गया। और सत्यभामाको सिंहासनपर बैठी हुई देखकर बोला, हे नारायणके मानसरोवररूप हृदयमें वास करनेवाली राजहंसनी! तथा हे विस्तृत पुण्यकी धारण करनेवाली सत्यभामादेवी! स्वस्त्यस्तु; अर्थात् तेरा कल्याण हो। यह सम्पूर्ण शास्त्ररूपी समुद्रके पार पहुंचा हुआ उत्तम ब्राह्मण भूखसे व्याकुल हुआ तुझसे भोजन पानेकी इच्छा करता है। इसलिये हे माता, मुझे जितनी मेरी इच्छा है, उतना भोजन करा दे। उसकी बातें सुनकर सत्यभामा मुसकुराने लगी ॥ ८२-८६ ॥ उसे हँसती देखकर ब्राम्हण बोला, हे शुभे! तू हँसती है, सो क्या भोजन करानेकी तेरी इच्छा नहीं है? ॥ ८७ ॥ उस दिन द्वारिकाके रहनेवाले सम्पूर्ण ब्राम्हणोंका भी सत्यभामाने पुत्रके विवाहकी खुशीमें निमंत्रण किया था। सो जब सत्यभामासे वह ब्राम्हण भोजनकी याचना कर रहा था, उसी समय वे सब मिलकर वहां पहुंच गये। उन्होंने प्रद्युम्नकी बात सुनकर कहा, हे अभागी ब्राम्हण! तू भोजन ही क्यों मांगता है? ॥ ८८-९० ॥ सत्यभामा महाराणी जिसको अपनी नजरसे देख लेती हैं, वही भाग्यवान हो जाता है। भला श्रीकृष्णजीकी महारानी

संतुष्ट होकर किसको कृतार्थ नहीं करती हैं ? इसलिये तू हाथी, घोड़ा, नानाप्रकारके रत्न, सोना, रेशमी वस्त्र, गोधन, नगर, धन, देशादि और स्त्रियोंके समूहकी याचना क्यों नहीं करता है ? तू बड़ा ही भाग्यहीन है, जो केवल भोजन मांगता है। अथवा इसमें तेरा ही दोष क्या है ? भाग्यके अनुसार ही लोगोंके मुंहसे शब्द निकला करते हैं। जो लोग पुण्यहीन होते हैं, उनके मुखसे शब्द भी वैसे ही निकलते हैं, जिनसे कुछ प्राप्ति न हो ॥ ९१–९४ ॥ इसके उत्तरमें चतुर कुमार बोला, अरे ब्राह्मणो ! हाथी घोड़ा आदि जो कुछ मांगा जाता है, सो सब अन्नके लिये—भोजनके लिये ही मांगा जाता है ॥ ९५ ॥ इसलिये मैं महाराणीसे उसी भोजनकी याचना करता हूं। हे सत्यभामा ! अपने पुत्रकी मंगलकामनाके लिये मुझे बहुतसा भरपेट और स्वादिष्ट भोजन शीघ्र दे। मेरे संतुष्ट होनेसे सारा संसार संतुष्ट हो जावेगा ! और मेरे भोजन करनेसे सारे ब्राह्मण भोजन कर चुकेंगे ॥ ९६–९७ ॥ इसलिये हे माता ! मुझे विधिपूर्वक इच्छानुसार भोजन करा दे। भूखे ब्राह्मणकी बातें सुनकर सत्यभामा प्रसन्न हुई। उसने अपने सेवकोंसे कहा, इस भूखसे व्याकुल हुए विप्रको मेरे रसोईघरमें ले जाओ और जितता यह खावै, उतना खिला दो। यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला बड़ा भारी विवेकी ब्राह्मण है। इसलिये इसको आदर सत्कारसे भोजन कराना ॥ ९८–४०० ॥ अपने सेवकोंसे इसप्रकार कहकर रानीने विप्रसे कहा, हे द्विजोत्तम ! मेरे सेवक आपको यथेष्ट भोजन करावेंगे, इसलिये तुम उनके साथ रसोईघरमें जाओ ॥१॥ सत्यभामाके वचन सुनकर ब्राह्मण वेषधारी बोला, मैं इन मूर्ख तथा अधम ब्राम्हणोंके साथ भोजन नहीं करूंगा ॥ २ ॥ हे माता ! जो पाखंडी हैं, कुशील हैं, स्त्री पुत्रादिमें उलझे हुए हैं, संध्यादि क्रिया कर्म नहीं करते हैं, व्रत आचरण रहित हैं, वेद और वेदके अंग (स्मृति श्रुति आदि) नहीं जानते हैं, केवल नाम मात्रके ब्राह्मण हैं, ब्राम्हणोंकी समाजमें घुसते हैं, परन्तु ब्रह्मकर्म नहीं करते हैं, और सच बोलना तो जानते ही नहीं हैं, ऐसे द्विजोंके साथ मैं कैसे भोजन करूंगा ? इसलिये इन ब्राह्मणोंको भोजन देना हो, तो अलगसे दे दो, मेरे साथ इनका भोजन नहीं बनेगा ॥ ३–५ ॥ हे देवी ! ये तो सब पतित हैं—

पापी हैं। ब्राह्मणोंके सम्पूर्ण लक्षणोंसे रहित और केवल धन लेनेकी इच्छा करनेवाले इन ब्राह्मणोंसे तेरे अभिप्रायकी सिद्धि क्या होगी, अर्थात् तुझे क्या फल मिलेगा? कुछ भी नहीं ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंके सब लक्षणोंके धारण करनेवाले और सम्पूर्ण विद्याओंके जाननेवाले ब्राम्हणको ही दोनों लोकोंमें सुखका देनेवाला समझकर मुझको भोजन करा देना चाहिये। मेरे तृप्त होनेसे गो ब्राह्मण आदि सब तृप्त हो जावेंगे, और जो तूने यहां दिया है, वह सब परलोकमें पुण्यके लिये हो जावेगा॥७–८॥ इसलिये सम्पूर्ण पदार्थोंके जाननेवाले मुझ ब्राह्मणको ही भोजनदान देनेका प्रयत्न कर। क्योंकि मैं स्वयं तिरनेवाला और दूसरोंको तारनेवाला पात्र हूं। इन करोड़ों ब्राह्मणोंके खिलानेसे क्या होगा? जो वेद शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित हैं, व्रत और शीलोंसे परांमुख हैं, मूर्ख हैं, और अधम अर्थात् नीच हैं ॥ ६–१० ॥ चपल ब्राह्मणकी बातैं सुनकर सत्यभामाने विस्मित होते हुए तथा हर्षित होते हुए अपने सेवकोंसे कहा, हे सेवको! इस वेदके पार पहुंचे हुए ब्राह्मणको खूब आदरके साथ–विशेषताके साथ भोजन करा दो ॥ ११–१२ ॥ सेवक लोग "ऐसा ही होगा" ऐसा कहकर उसे भोजनके लिये लिवा ले गये। वहां पहुंचकर उसने मुसकुराते हुए ब्राह्मणोंके लिये जो बहुतसे पाट (चौकी) रक्खे हुए थे, उन सबके आगेके पाटपर धोनेके लिये अपने पैर रख दिये। यह देखकर विप्रगण मनमें बड़े ही कुपित हुए और परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे यह सम्पूर्ण विप्रोंसे नीच पापी तथा जातिहीन है। इसे कुछ भी विवेक नहीं है, इसीलिये सबसे आगेके पाटपर बैठ गया है ॥ १३–१६ ॥ उन ब्राह्मणोंमें जो कोई वृद्ध थे, वे बोले—इस मूर्खको बैठ जाने दो। अधम तथा निन्दनीय पुरुषसे कलह नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥ जबतक इनकी इस प्रकार बातचीत हुई, तब तक वह कलिका प्यारा ब्राह्मण अपने पांव प्रक्षालन करके मुख्य आसनपर जा बैठा। जब दूसरे ब्राह्मण पांव प्रक्षालन करके पीछेसे आये, तब इसे मुख्य आसनपर बैठे हुए देखके बड़े ही कुपित हुए और घमंडसे हँसते हुए बोले;—यह बड़ा पापी है और बड़ा कलहप्रिय है। न तो इसकी जाति मालूम है, और न कुल मालूम है। गोत्र,

वेद, प्रवर आदि भी इस शाखाहीन तथा अधम ब्राह्मणके मालूम नहीं पड़ते हैं ॥ १८–२१ ॥ उमर भी इसकी बहुत थोड़ी है। फिर इसके नीचे बैठकर कैसे भोजन किया जावे? तब कोई कोई बोले, भाई! इसके साथ कलह करनेसे क्या लाभ होगा? चलो, इस मूर्ख पापीको यहां अकेला छोड़कर चलें और दूसरे रसोईघरमें जाकर आनन्दके साथ भोजन करें ॥ २२–२३ ॥ ऐसा कहकरके वे सबके सब ब्राह्मण मनमें लज्जित और क्रोधित होते हुए दूसरे घरमें चले गये। परन्तु जाकर देखा, तो वहांपर भी मुख्य आसनपर वही ब्राह्मण बैठा हुआ है। उसे वहां भी देखकर वे ब्राह्मण और भी क्रोधित हुए। और बोले, यह जातिहीन छोकरा बड़ा ही दुष्ट है। यद्यपि सत्यभामा महाराणीकी इसपर दृष्टि पड़ गई है, अर्थात् उनकी इसपर कृपा हो गई है, तथापि यह बड़ा कलहप्रिय है। इसी प्रकारसे यद्यपि यह ब्राह्मण-का वेष धारण किये है, तथापि ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, नीच है। वेदकी सम्पूर्ण विधियोंके जाननेवाले स्मृतिशास्त्रोंके पार पहुंचे हुए, उत्तम जाति वंश तथा कुलवाले, सर्वविद्याविशारद, त्रिपाठी (तिवारी), चतुर्वेदी (चौबे), द्विवेदी, (दुबे), और याज्ञिक ब्राह्मणोंका तिरस्कार करता है। बड़ा दुष्ट है। इस पापी-को अब अवश्य ही मारना चाहिये। क्योंकि ब्राह्मणद्वेषी पापीके मारनेमें पाप नहीं होता है ॥२४–२९॥ ब्राह्मणोंको इसप्रकार बातचीत करते हुए देखकर ब्राह्मणवेषधारी प्रद्युम्नकुमार हंसके बोला, हे ब्राम्हणो! सुनो,—॥ ३० ॥ तुम सब छहों शास्त्रोंके सहित वेदोंको जाननेवाले हो; ऐसा जो कहते हो, सो इसमें क्या प्रमाण है? क्योंकि तुम आचारहीन भ्रष्ट हो। यदि वेदज्ञ होते, तो आचारहीन नहीं होते ॥ ३१–३२ ॥ और मनुष्यके लक्षणमें ब्राह्मणत्व होनेका क्या प्रमाण है? क्योंकि ब्राम्हणत्वका लक्षण जो दया है, सो तुम लोगोंमें दुष्प्राप्य है, अर्थात् कठिनाईसे भी तुममें दयालक्षण नहीं मिल सकता है। जिन लोगोंमें यज्ञमें घोड़ा, मनुष्य, राजा और माता पिता भी हवन किये जाते हैं, वे कैसे समीचीन हो सकते हैं? तथा जिसमें जीवोंके मारनेमें पुण्य कहा है, अथवा जो लोग जीववधको पुण्य कहते हैं, वे वेदशास्त्र तथा मनुष्य कैसे प्रमाण भूत हो सकते हैं? जिसमें मधु (शहद) मद्य (शराब) और मांसको

खानेके योग्य बतलाया है, यदि उसमें धर्म कहा जावे, तो वह बिलकुल असत्य होगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३३-३६ ॥ जिसमें नहीं गमन करनेयोग्य स्त्रियोंमें गमन (सहवास) करना बतलाया है, दासी आदिका दान देना कहा है, और नहीं पीने योग्य वस्तुओंको पीने योग्य बतलाया है, वह धर्म कैसे हो सकता है? इत्यादि नानाप्रकारके विरोधी वाक्य जिस वेदमें कहे गये हैं, हे ब्राह्मणो! कहो कि, लोग उसे कैसे प्रमाण मानेंगे ॥ ३७-३८ ॥ ब्राह्मणकुमारके उक्त वचन सुनकर वे सब ब्राह्मण अतिशय कुपित हुए और इस प्रकार बकते हुए मारनेके लिये तयार हो गये, कि इस श्रुतिस्मृतिशास्त्रोंसे पराङ्मुख हुए पापीको मार डालो। यह विप्रोंकी निन्दा करनेवाला दुष्ट है। इसके मारनेमें जरा भी दोष नहीं है। ॥ ३९-४० ॥ ऐसाकहकर वे अपनी भौंहोंके मध्यभागको क्रोधसे कंपित करते हुए मारनेको झपटे। ब्राह्मणकुमारने जब ब्राह्मणोंको एकाएक मारनेके लिये उद्यत देखा, तब अपनी विद्याको छोड़कर उसने उन ब्राह्मणोंको आपसमें ही लड़ाना शुरू कर दिया। क्रोधित हो होकर वे एक दूसरेके शरीरपर घात करने लगे ॥ ४१-४२ ॥ भुजाओं तथा मुष्टियोंके घातसे, और मस्तक मस्तकोंके भिड़नेसे थोड़ी ही देरमें उनका शरीर पसीनामय हो गया ॥ ४३ ॥ परस्परकी लड़ाईमें वे गिरने लगे, खिसकने लगे, क्रोधित होकर दौड़ने लगे, बकने लगे, जोशमें आने लगे, पृथ्वीपर लोटने लगे, दुखी होने लगे, और लोहू लुहान होकर रोने लगे। इसप्रकार मुष्टिघातसे अतिशय भयंकर युद्धकरके वे सबके सब ब्राह्मण विस्मित और खेदखिन्न हो गये। कितने एक तो मूर्च्छायुक्त होकर पृथ्वीपर सो गये ॥ ४४-४६ ॥

यह कौतुक देखकर सत्यभामा हँसती हुई बोली, अरे ब्राह्मणो! तुम व्यर्थ ही क्यों लड़ रहे हो? मैं तुम सबको ही भोजन दूंगी, फिर मेरे ही साम्हने तुम क्यों युद्ध करते हो? इसके पश्चात् सत्यभामा उसीप्रकार हँसती हुई उस ब्राह्मणकुमारसे बोली, और हे बटुक! तू भी इन ब्राह्मणोंसे क्यों लड़ता है? ॥ ४७-४८ ॥ यह सुनते ही बटुक अपने आसनसे उठकर समीप आ गया, और बोला, सत्यभामा! बस, अब मैंने तेरे मनका दुष्टविचार जान लिया। मैं यहां अकेला हूं और ये अगणित ब्राह्मण मुझे

मारनेको उद्यत हुए हैं। फिर बतला, तू इन्हें क्यों नहीं रोकती है? जान पड़ता है, तूने ही इन मूर्ख ब्राह्मणोंको मुझे मारनेके लिये उठाया है। नहीं तो मुझ ब्राह्मणके मारनेका इन्हें क्या अधिकार है? ॥ ५०–५२ ॥ तब सत्यभामाने कहा, मैंने सब चरित्र जान लिया है। और मैंने यह भी अच्छी तरहसे जान लिया है कि, किसने किसको मारा है ॥ ५३ ॥ हे द्विजनायक! अब तुम मेरे साम्हने ही भोजन कर लो। अरे सेवको! इन्हें यहां मेरे साम्हने शीघ्र ही भोजन करा दो ॥ ५४ ॥ यह सुनते ही नौकर लोगोंने तत्काल ही बड़े आदरके साथ वहांपर आसन स्थापित कर दिया। और उसपर सोनेके उत्तमोत्तम वर्तन रख दिये। जब तक ब्राह्मणकुमारका वेष धारण करनेवाला प्रद्युम्न हाथ धो करके आसनपर बैठा, तब तक परोसनेवालोंने नानाप्रकारके पक्वान्न और स्वादिष्ट फलआदि लाकर परोस दिये। उस समय सत्यभामाने कहा, हे द्विज! अमृत करो अर्थात् भोजन करो ॥ ५५–५७ ॥ प्रद्युम्न बोला; हे विचक्षण माता! जबतक मेरी तृप्ति न हो, तबतक तुझे भोजन परोसना चाहिये। अर्थात् ऐसा न हो कि, मेरा पेट भरने न पावै, और तू भोजन देना बन्द कर दे ॥ ५८ ॥ सत्यभामाने कहा, हे द्विजोत्तम! भोजन करो। मैं इससमय तुम्हारी आकंठ तृप्ति न होने तक अर्थात् जबतक तुम्हारा पेट गलेतक न भर जावे, तबतक परोसाऊंगी ॥ ५९ ॥ ऐसा सुनते ही प्रद्युम्न जिस तरह भूखा हाथी खाता है, उस तरह बड़े बड़े कवल जल्दी २ बेसिलसिले खाने लगा। क्षुधाकी आकुलतासे "लाओ! लाओ! परोसो! परोसो!" कहकर जो कुछ वर्तनमें परोसा जाता था, वह उसे चटसे निगल जाता था, वर्तनमें रह ही नहीं पाता था ॥ ६०–६१ ॥ इधर सेवक लोग संतुष्ट होकर उसके उत्कृष्ट पात्रमें नानाप्रकारके भोजन ला लाकर परोसते जाते थे। उनके परोसनेका कोई क्रम नहीं था। आगे पीछे एक साथ जो पक्वान्न उनके हाथमें पड़ता था, वह परोस जाते थे ॥ ६२ ॥ उस समय भानुकुमारके विवाहको यादवोंकी जो स्त्रियां निमंत्रणमें आई थीं, वे भी कौतुकके वशसे नानाप्रकारका भोजन ला लाकर ब्राह्मणकुमारको विनोदके साथ परोसने लगीं। सो ब्राह्मणदेव उसे भी शीघ्रतासे गिलंकृत करने लगे ॥ ६३–६४ ॥ अनेक प्रकारके भूष-

णोंसे लदी हुईं, चलते समय नूपुरोंका मनोहर शब्द करती हुईं, तथा एक दूसरेके नितम्बादि अंगोंको छीलती हुईं, वे यौवनवती स्त्रियां ब्राह्मणकुमारको बड़े कौतुकसे मंडक (फुलका), लड्डू, पूवे, बड़े, घेवर, फैनी, खीर, प्रचुर (चूरमा ?), खाजा, लापसी, भात, मूंगकी दाल, नानाप्रकारके शाक, घी, तेल, दूध, दही, तक्र (छांछ) आदि अच्छे २ पदार्थ परोसने लगीं। सत्यभामाके घरमें जितना पक्वान्न था, उन स्त्रियोंने वह सब परोस दिया, और ब्राह्मणने वह सब पेटमें रख लिया ॥ ६५–६९ ॥ आखिर सत्यभामाके घरमें जो चीजें पूरी तयार नहीं हुई थीं, तथा जो पकी हुई नहीं थीं, जेसे मूंग, चावल, आटा, धान, जौ, गेहूं, उड़दकी दाल, आदि वे भी सब परोस दी गईं, और महाराज उन्हें भक्षण कर गये ॥ ७०–७१ ॥ इसके पश्चात् हाथी तथा घोड़ोंके लिये जो यवागू (दलिया) बनाई गई थी, वह भी परोसी गई। सो उस भूखसे विकल हुए ब्राह्मणने वह भी उदरस्थ कर ली ॥ ७२ ॥

सत्यभामाके घरमें इस बातका बड़ा भारी कोलाहल मच गया कि, एक कोई बड़ा भारी प्रेत ब्राह्मणका रूप धारण करके आया है। सत्यभामाके घर पुत्रके विवाहके लिये जितना भोजन तयार हुआ था, वह सबका सब भक्षण कर गया है। न जाने हररोज वह क्या खाकर जीता होगा ॥ ७३–७४ ॥ इसप्रकार कहतीं हुईं अनेक स्त्रियां एक दूसरेके शरीरको छीलतीं हुईं तथा नितम्बों और स्तनोंको पीड़ित करती हुईं कौतुक देखनेके लिये दौड़ीं आईं और उसे बड़ी उत्कंठासे देखने लगीं। तब तक वह ब्राह्मण जो कुछ परोसा गया था, उसको भी भक्षण करके, "मुझे शीघ्र भोजन लाओ," इसप्रकार जोरजोरसे बोलने लगा। ये लोग मेरी थालीमें अन्न क्यों नहीं परोसते हैं। अथवा तुम्हारा इसमें क्या दोष है। सत्यभामा ही बड़ी दरिद्रा और कंजूस है ॥ ७५–७७ ॥ हे सत्यभामा ! मेरे मनोहर वचन सुन। देख, भानुकुमार सरीखा तेरा पुत्र है, नारायण तेरा पति है, विद्याधरोंका राजा तेरा पिता है, और समस्त स्त्रियोंकी तू स्वामिनी–पट्टरानी है। इतने पर भी तू इतनी कृपणता क्यों करती है ? मैं एक स्वल्पभोजी अर्थात् बहुत थोड़ा खानेवाला ही जब तुझसे तृप्त न हुआ, तो हे दुष्टिनी ! दूसरे लोग तेरेसे कैसे प्रीति-

को प्राप्त होंगे ॥ ७८-८० ॥ मैं समझता हूं कि, तेरे जैसी कृपणाका अन्न मेरे उदरमें ठहरेगा ही नहीं, इसलिये हे पापिनी मूर्खा ! अपना यह सब अन्न तू ले ॥ ८१ ॥ ऐसा कहकर उस विचित्र ब्राह्मणने अपने पेटका सबका सब अन्न सत्यभामा आदिके आगे वमन कर दिया ! जिससे सारा आंगन और घर भर गया। उसमें सत्यभामा, सबके सब ब्राह्मण, और सारी स्त्रियां डूब गईं । चित्रशाली, चित्राम, वस्त्रोंके रखनेकी पेटियां, शीतकी रक्षा करनेवाले वस्त्र, रूईके गद्दे, और अधिक क्या कहा जावे, सारा घरका घर ब्राह्मणके वमनमें (उलटीमें) मग्न हो गया ॥ ८२-८५ ॥ इसके पश्चात् सब जल हरण करके अर्थात् पीकरके प्रद्युम्नकुमार वहांसे निकल पड़ा। सो गलीके बाहर आकर चिन्ता करने लगा कि, अब मैं कहां जाऊं ? फिर सोचा, चलो, यह मार्ग जहांको गया हो, वहीं चलें।

थोड़ी दूर आगे चलकर प्रद्युम्नकुमारने एक सुन्दर मन्दिर देखा, जो हाथी घोड़ों और मनुष्योंसे खचाखच भरा हुआ था, तथा जिसमें बड़ा भारी उत्सव हो रहा था। उसे देखकर उसने अपनी विद्या-से पूछा कि, यह सुन्दर महल किसका है, सो मुझे बतला। विद्याने कहा, हे नाथ ! यह तुम्हारी माता रुक्मिणीका उत्सवपूर्ण मन्दिर है। यह सुनकर कामकुमार बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ८६-९० ॥ उसने उसी समय एक क्षुल्लकका वेष धारण कर लिया, जिसका शरीर दुबला तथा अतिशय कुरूप था, मुंह दुर्गंध-युक्त था, दांत सफेद थे, सिर छोटा था, नेत्र बुरे थे, शरीर सूखा हुआ था, जो कुलक्षणी था, जिसके पैर बड़े थे, हाथ छोटे थे, जो बहुत ही काला था, नाक तथा अंगुलियां टेढ़ी मेढ़ी थीं, जांघें सूखी हुई देखनेमें बुरी मालूम होती थीं, स्फिच् अर्थात् कमरके मांसपिंड (कूल्हे) तुचके हुए थे, पीठ और जानु भग्न थीं, पेट बड़ा था, जो हाथमें दंड और नारियलकी खोपरी लिये हुए था, लंगोटी लगाये था, कपड़े-का एक छोटासा अंगोछा भिक्षापात्र तथा कमंडलु लिये हुए था, दीन था, और जिसके पैर तथा हाथों की अंगुलियां फैलीं हुई थीं। इसप्रकारके ब्रह्मचारी-क्षुल्लकका रूप बनाकर वह अपनी माताके महलमें घुसा ॥ ९१-९५ ॥ वह महल जहां तहां नानाप्रकारकी मणियोंसे जड़ा हुआ बड़ा ही सुन्दर था। भेरी,

दुंदुभी, शंख, मृदंग, पटह, वीणा, बांसुरी, ताल, झल्लरी, पणव (ढोल) आदि बाजोंके नादसे सब ओरसे शब्दायमान हो रहा था ॥ ६६–६७ ॥ चन्दन तथा कालागरुकी धूपके धुएंसे व्याप्त होकर सारे नगर और आकाशको सुगंधित कर रहा था। ऐसे महलमें प्रवेश करके क्षुल्लकने जिनमन्दिरके आगे एक उत्तम कुशासनपर बैठी हुई रुक्मिणी देवीको देखी, जिसे चारों ओरसे अनेक स्त्रियां घेरे हुए थीं; जो अनेक व्यापारोंमें लगी हुई थी, जो सम्पूर्ण गुणोंवाली थी, नील कमलके समान सुन्दर शरीरको धारण करती थी, जिसका मुख पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर था, बन्धूकके (दुपहरियाके) फूल तथा पकी हुई कुन्दरूके समान जिसके होठ थे, फूले हुए कुन्दके समान जिसके दन्तोंकी पंक्ति थी, कमलके समान जिसके हाथ तथा पैर थे, और जो चमकते हुए सुवर्ण तथा रत्नोंके मनोहर आभूषण पहने थी। इस प्रकार सम्पूर्ण लक्षणोंकी धारण करनेवाली और सम्पूर्ण अवयवोंसे सुन्दर उस महाराणीको देखकर प्रद्युम्नकुमार सोचने लगा, क्या यह इन्द्राणी है ? अथवा कीर्ति, सरस्वती, सूर्यकी स्त्री, महादेवकी पार्वती, धरणेन्द्रकी इन्द्राणी, इनमेंसे कोई है ? मैं तो समझता हूं, जितनी देवांगनायें हैं, वे सब इसके रूपसे जीती गई हैं ? अथवा ब्रह्माजीने सारे संसारकी स्त्रियोंके रूपका सार लेकर श्रीकृष्णजीके संतोषके लिये यह दिव्य मूर्ति बनाई है। ऐसा मैं निश्चयपूर्वक समझता हूं ॥ ६८–७०६ ॥ रुक्मिणी माताको जिनेन्द्र भगवानके मन्दिरके आगे मंडपके नीचे विराजमान देखकर प्रद्युम्नकुमारने संतुष्टचित्त होकर मन ही मनमें नमस्कार किया। सो ठीक ही है, उत्तम तथा पूज्यवंशमें उत्पन्न हुआ ऐसा कौन है, जो पूज्य पुरुषोंमें विनयवान होकर प्रीति नहीं करता है ? अर्थात् सभी करते हैं ॥ ७–८ ॥

क्षुल्लक वेष धारण करनेवाले उस पुरुषको आता हुआ देखकर जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाली रुक्मिणी अपने आसनसे उठ बैठी, और सम्मुख जाकर उसने पृथ्वीपर मस्तक टेककर उसके चरण कमलको नमस्कार किया–तथा इच्छाकार किया। उसकी महान विनयको देखकर ब्रह्मचारी क्षुल्लकने कहा, हे माता ! भवभवमें तुझे दर्शनकी शुद्धि प्राप्त हो ॥ ९–११ ॥ इसके पश्चात् वह मूर्ख क्षुल्लक

रुक्मिणीके दिये हुए सिंहासनपर जो कि अपने रत्नोंकी किरणोंसे पृथ्वीको उद्योतरूप कर रहा था, बैठ गया ॥ १२ ॥ रुक्मिणी खड़ी रही। ऊंचे तथा विशाल स्तनोंके भारसे उसकी क्षीण कटि पीड़ित हो रही थी। उसे बड़ीं देर तक खड़ी रहनेसे दुखी देखकर क्षुल्लकने इसप्रकार मनोहर वचन कहे कि, माता! यहां मेरे आगे बैठ जा ॥ १३-१४ ॥ उसके इसप्रकार कहनेपर धर्मके स्नेहसे परिपूरित रुक्मिणी बैठ गई और सम्यक्त्वसम्बन्धी चर्चा करने लगी ॥ १५ ॥ एक दूसरेपर प्रीति करनेवाले, जिनशासनकी भावना भानेवाले, मीठीवाणी बोलनेवाले, चतुर, तथा सब प्रकारकी विकारदृष्टिसे रहित वे दोनों कुछ समय तक धर्मसम्बन्धी वार्तालाप करते रहे। इतनेमें क्षुल्लक वेषधारीने प्रीतिपूर्वक कहा, उत्कृष्ट आशयकी धारण करनेवाली हे रुक्मिणीदेवी! मैं अनेक तीर्थ करके और बहुतसे देशोंको देख करके सम्यक्त्वके विषयमें तेरी सुप्रसिद्धि सुनकर यहां आया हूं। परन्तु पहले जैसी तेरी प्रशंसा सुनी थी, वैसी तू इस समय नहीं दिखती है ॥ १६-१९ ॥ मैं रास्ता चलनेके श्रमसे बहुत ही थक गया हूं, दुःखी हूं, परन्तु तूने पांव धोनेके लिये जरासा गरम पानी भी नहीं दिया! ॥ २० ॥ और न भोजनकी ही कुछ चिन्ता की। विवेकसे रहित होकर तूने धर्मचर्चा करना शुरू कर दी है ॥ २१ ॥ क्षुल्लकके वचन सुनकर रुक्मिणी विचारने लगी, सचमुच ही मैं विवेकरहित हो गई हूं। ये महाराज जो कहते हैं, सो सर्वथा सच है ॥ २२ ॥ यह सोचकर उसने अपने सेवकोंसे कहा, जल्दीसे थोड़ासा गरम जल ले आओ, जिससे मैं महाराजके चरणोंको धो दूं ॥ २३ ॥ सुनते ही सेवक लोग जल लेनेको गये, परन्तु वहां प्रद्युम्नने अपनी विद्याकी मायासे अग्निको स्तंभित कर दी थी; जिससे पानी ठंडा हो गया, और अग्नि जली नहीं। फिर क्षुल्लकजीने कहा, गरम पानी नहीं है, तो न सही, परन्तु मैं भूखसे पीड़ित हूं। इससे यदि तेरे यहां भोजन है, तो ला जल्दीसे करा दे। मैं क्षणभर नहीं बैठ नहीं सकता हूं। बोल, मैं भूखके मारे क्या करूं? ॥ २४-२६ ॥ मैं प्राणहीन हुआ जाता हूं। ला! मुझे शीघ्र ही भोजन दे दे। यह सुनकर रुक्मिणी स्वयं ही शीघ्रतासे उठी, और अपने आथसे अग्नि चैतन्य करनेमें तत्पर हुई। परन्तु वह तो स्तंभित कर

दी गई थी, कैसे जलै? रुक्मिणी धुएँके मारे आकुल व्याकुल हो गई, बाल बिखर गये, पर आग नहीं जली। इतना होनेपर भी हृदयमें जिनधर्मकी वासना होनेके कारण रुक्मिणीका चित्त जरा भी मैला न हुआ ॥ २७–२९ ॥ उसे आग चैतन्य करनेमें व्याकुल देखकर क्षुल्लक महाराजने कहा, माता! अब गरम जलका प्रपंच रहने दे। यदि तेरे घरमें कुछ बना बनाया पक्वान हो, तो वही मुझे दे दे। क्योंकि भूखके कारण मर जानेपर तेरे दिये हुए भोजनसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? इसप्रकार भूखसे व्याकुल होकर वह क्षुल्लक चिल्लाने लगा ॥३०–३२॥ उसे सुनकर जिन वर्तनोंमें पक्वान रक्खा हुआ था, रुक्मिणी उन्हें देखने लगी। परन्तु कुछ भी प्राप्त न हुआ। प्रद्युम्नने अपनी विद्याके प्रभावसे सब कुछ लोप कर दिया था ॥ ३३ ॥ सब जगह देख चुकनेपर रुक्मिणीको एक वर्तनमें दश लड्डू मिल गये, जो श्रीकृष्ण-महाराजके लिये रक्खे हुए थे। उन्हें कृष्णजी बड़ी कठिनाईसे एक एक खा सकते थे। लड्डू देखकर रुक्मिणी चिन्ता करने लगी कि, इस दुबले पतले ब्रह्मचारीको यदि ये मोदक दे देती हूं, तो यह अवश्य ही मर जावेगा, और हत्या मुझे लगेगी। और घरमें दूसरा कोई भोजनका पदार्थ दिखता नहीं है, तथा ये भूखसे मरा जा रहा है, सो यदि लड्डू नहीं देती हूं, तो ये गालियां देगा ॥ ३४–३७॥ यह सोचकर उस-ने डरतेॽक्षुल्लकके आसनपर एक थाली रख दी और उनके हाथ धुलवाये। क्षुल्लक शीघ्रतासे हाथ धोकर बोले,–लाओ, जल्दी परोसो, मैं ठहर नहीं सकता हूं ॥ ३८–३९ ॥रुक्मिणी एक और चिन्तामें पड़ी कि, यदि आधा लड्डू परोसती हूं, तो ये क्रोधित होंगे, और पूरा परोसती हूं, तो ये पचा नहीं सकेंगे ॥ ४० ॥ उसे इस प्रकार उलझनमें पड़ी देखकर ब्रह्मचारी क्रोधसे लाल पीले होकर बोले, माता! तू कंजूसीके कारण लड्डू नहीं परोसती है। इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि, तू कंजूस है। आखिर रुक्मिणीने एक लड्डू परोस दिया। परोसनेकी देर थी कि, वे उसे पा गये और "परोस! परोस!" इस प्रकार कहकर और मांगने लगे। रुक्मिणीने दूसरा लड्डू भी परोस दिया, सो ब्रह्मचारीने उसको भी खाकर तीसरेके लिये चिल्लाना शुरू कर दिया। इस प्रकार रुक्मिणीने वे सबके सब मोदक परोस दिये और वह उन सब-

को भक्षण करके "और लाओ! औरलाओ!" कहता गया। तब रुक्मिणी दशों लड्डू खिलाकर दूसरे घर-में भोजन ढूढ़नेके लिये गई। परन्तु जब कुछ न मिला, और व्याकुल होने लगी, तब क्षुल्लक बोला, हे माता! बस, मैं संतुष्ट हो गया, अब रहने दे॥ ४१-४३॥ ऐसा कहकर तथा आचमन करके उठ आया और बाहर जहां रुक्मिणीने आसन बिछा दिया था, वहां आ बैठा॥ ४४॥ इसप्रकार क्षुल्लकके वेषका धारण करनेवाला प्रद्युम्नकुमार अपनी माताके धर्मानुरागकी परीक्षा करके बहुत प्रसन्न हुआ॥ ४५॥

रुक्मिणी महाराणी जिस समय उस क्षुल्लकके आगे बैठी हुई सम्यक्त्वसम्बन्धी चर्चा वार्ता कर रही थी, उस समय श्रीसीमंधर भगवानने प्रद्युम्नकुमारके आगमनके समयके सूचित करनेवाले जो २ चिन्ह बतलाये थे, वे सब प्रकट हो गये॥४६-४७॥ महलके आगे जो सूखा हुआ अशोकका वृक्ष लगा था, वह फूलों और फलोंके गुच्छोंसे लद गया, गूंगे आदमी बोलने लगे, कुरूपवान सुरूपवान हो गये, कुबड़े सुडौल हो गये और अंधे सूझते हो गये॥ ४८-४९॥ सूखी हुई बावड़ी जलसे भर गई और उसमें कमल खिल गये, बगीचोंमें कोयल और मयूरोंके मनोहर शब्द होने लगे॥५०॥ बिना समयके वसन्त-ऋतु आ गई। फूल और फलोंसे लदे हुए वृक्षोंपर भौंरोंकी झंकार सुन पड़ने लगी॥ ५१॥ ये सब बातें रुक्मिणीके चित्तको बड़ी ही प्यारी मालूम होने लगी। हर्षित होकर उसने सोचा, ये सब लक्षण मेरे पुत्रके आगमनके सूचक हैं, परन्तु पुत्र नहीं दिखलाई देता है, इसका क्या कारण है?॥ ५२-५३॥ मेरे शरीरमें रोंगटे खड़े हो रहे हैं, मनमें प्रसन्नता हो रही है, स्तनोंसे दूध झरता है, और दिशायें निर्मल दिख रही हैं, परन्तु मेरा प्यारा पुत्र नहीं दिखता है। कहीं यह क्षुल्लक ही मेरा पुत्र न हो। यदि यह निंदित और कुत्सितरूपवाला क्षुल्लक ही मेरा पुत्र हुआ, तो सत्यभामाको मैं अपना मुंह कैसे दिखला-ऊंगी? वह बुरे आशयकी धारणकरनेवाली घमंडनी अवश्य ही मेरी हँसी करेगी॥५४-५६॥ मैं बड़ी ही पुण्यहीन हूँ। मेरा बड़ा भारी अपमान होगा। इस प्रकार चिन्ता करते २ रुक्मिणीको एक दूसरी चिन्ता यह हुई कि, मेरी कूंखमें श्रीकृष्णनारायणका पुत्र ऐसा कैसे हो सकता है? क्योंकि बीज तो क्षेत्रके

सम्बन्धसे अच्छा बुरा होता है। अर्थात् बुरे खेतमें पड़कर बीज बुरा हो जाता है, और अच्छे खेतमें पड़कर अच्छा होता है ॥ ५७-५८ ॥ इसलिये मेरे गर्भसे जिसकी उत्पत्ति हुई है, वह पुत्र तो बलवान, रूपवान, विद्यावान, गुणी, कीर्तिवान, प्रसिद्ध और श्रेष्ठ होना चाहिये ॥ ५९ ॥ अथवा क्षेत्रकी प्रमाणताका भी क्या निश्चय हो सकता है? अर्थात् यह भी तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अच्छे खेतसे अच्छा ही फल होता है। जीवधारी पुण्य और पापके प्रभावसे रूपवान तथा कुरूप होते हैं ॥ ६० ॥ यदि प्राणियोंके रूप कुरूप होनेमें क्षेत्रकी ही प्रमाणता हो तो भोगभूमिके उत्तम क्षेत्रमें हरिण, ऊंट, सिंह, हाथी आदि जानवर क्यों उत्पन्न होते हैं? ॥ ६१ ॥ अथवा मैं यह विकल्प ही क्यों कर रही हूं? पहले मैंने नारदके मुंहसे सुना था कि, मेघकूट नगरमें विद्याधरके यहां तेरा पुत्र वृद्धिको प्राप्त हो रहा है ॥ ६२ ॥ वह सम्पूर्ण विद्याओंका कलाओंका तथा विद्याधरों का प्रभु होगा, इसमें संशय नहीं है। क्या आश्चर्य है कि, वह ही विद्याके प्रभावसे मनोहर माया करके मेरे चित्तकी परीक्षा करनेके लिये यहां आया हो ॥ ६३-६४ ॥ परन्तु सोलह लाभोंको प्राप्त करनेवाला, दो विद्याओंसे विभूषित, और शत्रुओंका जीतनेवाला, वह यह क्षुल्लक कैसे हो सकता है? ॥ ६५ ॥ इस प्रकार बहुत समयतक सोच विचार करके रुक्मिणी महाराणी शीलरूपी भूषणको धारण करनेवाले क्षुल्लकसे बड़ी विनयके साथ रमणीय वचन बोलीः—हे क्षुल्लक महाराज! मैं आपसे कुछ पूंछना चाहती हूं। कृपा करके आप अपने माता पिता तथा भाइयोंकी कथा कहकर मेरे कानोंको सुखी करो ॥ ६६-६७ ॥ रुक्मिणीके वचन सुनकर क्षुल्लकवेषधारी बोला, हे उत्तम श्राविके! जिन्होंने अपने घरको छोड़ दिया है, यतियोंका व्रत धारण किया है, सम्पूर्ण इच्छायें छोड़ दी हैं और रागद्वेषको तज दिया है, वे समतासे शोभित होनेवाले मुनि यति तथा क्षुल्लक अपनी जाति कुल तथा भाई बन्धुओं की कथा कैसे कह सकते हैं? ॥ ६८-६९ ॥ और हे माता! तू तो सम्यक्त्वकी धारण करनेवाली है। तुझे भी शीलको धारण करनेवाले मुनियोंसे कुलजातिसम्बन्धी कुशलताका प्रश्न नहीं करना चाहिये ॥ ७० ॥ क्या तूने कभी जिनधर्ममें जाति तथा कुलसे हीन पुरुष

हुए सुने हैं, जो हे माता ! मुझसे ऐसा प्रश्न करती है ? ॥ ७१ ॥ यदि मैं ऊंचे कुलका हुआ तो तू क्या करेगी ? और नीचेका हुआ, तो क्या करेगी? नीच और ऊंच होनेसे तेरा क्या उपकार अपकार होगा ? ॥ ७२ ॥ इतनेपर भी हे रुक्मिणी! तू मूढ़ताके वश व्यर्थ ही मुझसे पूछती है, तो सुन—हमारा श्रीकृष्ण नारायण तो पिता है और तू माता है !॥ ७३ ॥ क्योंकि श्रावक ही यति मुनियोंके माता पिता कहे गये हैं । अतएव अब कह कि, यति मुनियोंके भाई बन्धुओंकी कथा क्या पूछती है? ॥ ७४ ॥

इस प्रकार सन्तुष्टचित होकर जब रुक्मिणी और क्षुल्लकवेषधारी प्रद्युम्न बातचीत कर रहे थे, उस समय सत्यभामाको पूर्वमें की हुई उस प्रतिज्ञाकी याद आई, जो पहले रुक्मिणी और सत्यभामाके बीच में हुई थी, और जिसे सब लोग जानते थे। इस लिए उसने शीघ्र ही नाईके सहित बहुतसी दासियोंको रुक्मिणीके घर उसकी चोटी लेने के लिये भेजा, सो वे मणियोंकी थाली वगैरह लिये हुए गाती हुई आईं । जब वे सब रुक्मिणीके महलकी गलीमें आकर पहुंची, तब उन्हें एकाएक आईं देखकर रुक्मिणी अतिशय दुःखी हुई और उसके उद्वेगसे वह आंसू बहाने लगी । उसकी ऐसी चेष्टा देखकर क्षुल्लकने पूछा, हे माता ! तुझे एकाएक शोकका उद्वेग कैसे हो गया ? इसका कारण मुझे शीघ्र ही बतला ॥ ७५–८० ॥ क्षुल्लकका प्रश्न सुनकर रुक्मिणी गद्गदवाणीसे बोली, हे महाराज ! इसका कारण मैं आपसे कहती हूं । आप एकचित्त होकर सुनें ॥ ८१ ॥ आप जैसे यतियोंसे दुःखका कारण निवेदन करनेसे दयाधर्मके प्रभावसे वह दुःख नष्ट हो जावेगा;— ॥ ८२ ॥

"मेरे पतिकी सत्यभामा नामकी एक पहली रानी है, जो विद्याधरकी पुत्री है, कलावती गुणवती और पापरहित है ॥ ८३ ॥ और मैं यद्यपि भूमिगोचरी राजा भीष्मकी पुत्री हूं, तो भी मुझपर किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे मेरे पति (श्रीकृष्ण) प्रसन्न रहते हैं ॥ ८४ ॥ हम दोनोंने पहले एकवार घमंडमें आकर अच्छे २ साक्षियोंके साम्हने एक प्रतिज्ञा की थी कि, हम दोनोंमेंसे जिसके पहले पुत्र होगा, उसीके पुत्रका पहले विवाह होगा । और विवाहके समय जिसके पुत्र नहीं होगा, वह अपनी चोटीके बालोंसे

पुत्रवतीके पैर पूजैगी ॥ ८५-८७ ॥ हम दोनोंने पूर्वमें अतिशय गर्वसे यह प्रतिज्ञा की थी । सो पहले सम्पूर्ण लक्षणोंवाले पुत्रका जन्म मेरी कूंखसे हुआ और उसके पीछे उसी दिन सत्यभामाके भी कमलोंके समान नेत्रवाला भानुकुमार नामका विचक्षण पुत्र हुआ ॥ ८८-८९ ॥ परन्तु मैं ऐसी पुण्यहीन निकली कि, कोई पूर्वका वैरी दुष्ट दैत्य मेरे बालकको हर ले गया। और सत्यभामाके पुण्यसे भानुकुमार क्रम क्रमसे बढ़ने लगा। सो ठीक ही है, सब सुख पुण्यसे प्राप्त होते हैं । भानुकुमार अब विवाहके योग्य हो गया है। और हस्तिनागपुरके राजा दुर्योधनकी उदधिकुमारी नामकी गुणवती कन्या अपने पिताकी भेजी हुई उस अनुरागी भानुकुमारको वरणेके लिये आई है। आज उन दोनोंका विवाह होनेवाला है। सो प्रतिज्ञाके अनुसार मुझ पुण्यहीनाके मस्तकके बाल लेनेके लिये सत्यभामाकी दासियां नाईको लेकर आई हैं ॥ ९०-९४ ॥

मेरे सिरके बाल लिये जावेंगे, इस भयसे मैं पहले ही नगरके बाहर मरनेके लिये जाना चाहती थी। परन्तु उसी समय नारदजीने आकर पुत्रके आगमनका शुभसमाचार कहकर मुझे तृप्त कर दिया था। इससे मैंने अपने मरनेकी इच्छा आनन्दके साथ छोड़ दी थी ॥ ९५-९६ ॥ श्रीसीमंधर भगवानने पहले नारदजीसे पुत्रके आगमनसमयके जो २ सुन्दर चिह्न कहे थे, वे सब इस समय मेरे घरपर हो रहे हैं, परन्तु मेरा पुत्र अभी तक नहीं आया। हाय! मेरी आशा नष्ट हो गई। अब मैं क्या करूँ ? ॥९७-९८॥ नारदने मेरे साथ बड़ी शत्रुता की, जो वे मेरे मरनेमें आड़े हो गये। मैं मरना चाहती थी, सो उन्होंने नहीं मरने दिया। न मेरा पुत्र ही आया, और न मैं मर ही पाई। हाय! मैं दोनों ओरसे भ्रष्ट हुई। अब क्या करूं ? ॥ ९९ ॥ इस प्रकार ब्रह्मचारी क्षुल्लकको अपने दुःखका कारण निवेदन करके रुक्मिणी आंसू बहाने लगी। यह देखकर क्षुल्लकने कहा, हे माता! व्यर्थ ही शोक मत कर। मेरी बात सुन,—तेरा पुत्र जो कार्य करता, क्या वह मैं नहीं कर सकता हूं ? ॥ ८००-८०१ ॥ प्रद्युम्नकुमार माताको इस प्रकार समझाकर सत्यभामाकी दासियोंके आगे जो उसने केश लेनेके लिये भेजी थीं, इस प्रकारकी विक्रिया करने

लगे ॥ २ ॥

उन्होंने एक मायामयी नई रुक्मिणी बनाई, जो सब प्रकारके वस्त्र आभरणोंसे सुसज्जित थी, दिव्य थी, और सिंहासन पर विराजमान थी। और असली रुक्मिणीको लुप्त करके आप स्वयं कंचुकीका रूप धारण करके सिंहासनके आगे खड़ा हो गया ॥ ३–४ ॥ इतनेमें सत्यभामाकी सब दासियां नाईके साथ रुक्मिणीके समीप आईं, और बड़ी नम्रतासे डरते २ इस प्रकार बोलीं; हे माता! हमारा इसमें कुछ भी दोष नहीं हैं। हम तो नीच सेविका हैं। स्वामिनीने हमको भेजा है। हम स्वामिनीकी आज्ञासे यहां आई हैं। यदि दूषण है, तो सत्यभामाका है, जिसने हमको भेजा है ॥ ५–७ ॥ यह सुनकर मायामयी रुक्मिणी बोली, तुम सब आईं, सो अच्छा किया। अब बतलाओ कि, तुम किस लिये आई हो? अपने आनेका कारण निवेदन करो ॥ ८ ॥ तब वे सब बोलीं, आपने पहले सभाके बीचमें बलदेवजीको साक्षीपूर्वक कोई प्रण किया था। सो आज उसीका स्मरण करके सत्यभामाने हमको भेजा है। हम आपकी चोटी लेनेके लिये आईं हैं। आप देवें या न देवें, इसमें आपकी इच्छा है। हमारा जरा भी दोष नहीं है ॥ ९–१० ॥ रुक्मिणीने यह सुनकर कहा, अच्छा किया, जो तुम आईं। लो, चोटी ले जाओ। हे नाई! इधर आ, तू व्यर्थ भय मत कर। हे स्त्रियोंसे घिरे हुए नाई! ले मेरी मनोहर वेणी काट ले ॥ ११–१२ ॥ यह सुनकर स्त्रियोंने हर्षित होकर दही, दूर्वा, अक्षत आदि मंगलीक पदार्थोंसे युक्त चौकीको आगे रख दी और नाई अपना छुरा निकाल कर समीप आया। सो बड़े आनन्दके साथ रुक्मिणीके आगे बैठा ॥ १३–१४ ॥ यह देख मायामयी रुक्मिणी अपना मस्तक उघाड़ कर बोली, लो इसमेंसे जितने केश चाहिये, ले लो। डरो मत ॥ १५ ॥ नाई बोला, माता! इसमें मेरा दोष नहीं हैं। मुझे लाचार होकर यह करना पड़ता है। रुक्मिणी बोली, सच है—तेरा जरा भी दोष नहीं है। तू निर्भय होकर मेरी सारी अलकोंको मूड़कर ले ले। यह सुनते ही नाई रुक्मिणीके सिरपर शीघ्रतासे छुरा चलाने लगा, और स्त्रियां चौकीको ले करके गीत गाने लगीं, तथा बड़ा भारी उत्सव मनाने लगीं। उसी समय ऐसी

लीला हुई कि, नाईने अपनी नाक काट ली ॥ १६–१८ ॥ फिर अपनी हाथकी अंगुलियां, कान, वेणी तथा
इसी प्रकारसे दूसरी स्त्रियोंकी भी नाक अंगुली आदि काट लीं । प्रद्युम्नकी मायासे वे सब एक दूसरेकी
और कौतुकसे देखती थीं, परन्तु उनके चित्तपर ऐसी मूर्खता आ गई थी कि, न तो वे स्त्रियां जानती
थीं कि, हमारे नाक कान कट गये हैं, और न वह नाई ही जानता था ॥ १६–२० ॥

इसके पश्चात् वे सब स्त्रियां तथा नाई वगैरह पुरुष आपसमें रुक्मिणीकी प्रसंशा करने लगे कि,
अहा ! इसके वचनोंमें कितनी कोमलता है, कैसी सुजनता है, और कैसी सुन्दर वाक्यता है । सचमुच
ही यह गुणोंकी पवित्र घर है । रुक्मिणीके समान न तो कोई स्त्री हुई है और न होगी ॥ २१–२२ ॥
इस प्रकारसे गुणोंका गान करती हुई वे स्त्रियां नाईके साथ चौराहेपर चलने लगीं । सो उन्हें देख देख-
कर नगरके लोग हंसने लगे ॥ २३ ॥ वे अपने चित्तमें यह समझतीं थीं कि, ये लोग हमारा मनोहर रूप
देखकर और उसमें मोहित होकर हंसते हैं, परन्तु लोग उनके नाक कान कटे हुए विचित्र रूपको देख
कर हंसते थे ॥ २४ ॥

हर्षसे परिपूरित हुईं वे सब स्त्रियां नाईके सहित नाचती हुईं तथा गाती हुईं कुछ समयमें सत्य-
भामाके घर पहुंच गईं । उन्हें अपने आगे खड़े खड़े रुक्मिणीके गुणोंका वर्णन करती हुई देखकर सत्यभामा
बोली,– ॥ २५–२६ ॥ तुम सब आनन्दित होती हुई और हंसती हुई यहां किसका स्तवन कर रहीं हो,
और क्यों करती हो ? ॥ २७ ॥ यह सुनकर नाई बोला; हे देवी ! हम सर्वगुणसम्पन्ना रुक्मिणीकी सच्ची
स्तुति करते हैं । वह कृष्णकी प्यारी बड़ी ही प्रियवादिनी है । उसने हमको अपने केश बड़ी विनयके
साथ हर्षपूर्वक ले लेने दिये ॥ २८–२९ ॥ यह सुनकर सत्यभामा बोली, हे युवतियो ! मुझसे कहो कि,
तुम्हें ऐसी विलक्षण रूपवालीं किसने कर दीं है ? और हे नाई ! यह तेरी नाक भी वतला किसने काट
डाली है ? और सबोंके कान, नाक, सिरके वाल, तथा अंगुलियां किस पापीने काट डाली हैं ? ॥ ३०–३१ ॥

सत्यभामाके वचन सुनकर नाई और वे सब स्त्रियां अपने २ हाथोंसे अपने २ सिर, नाक, कान, टटो-

लने लगीं। जब जाना कि, सचमुच ही नाक कानोंकी सफाई हो गई है, तब सब अपने अपने अंगोंको ढंकने लगी और लज्जासे आकुल व्याकुल हो गईं। कटे अंगोंमें रक्तके गिरनेसे बड़ी भारी वेदना होने लगी, जिसके दुःखसे पीड़ित होकर वे सब जोर २ से रोने चिल्लाने लगीं ॥ ३२–३४ ॥

यह दुर्दशा देखकर सत्यभामा क्रोधसे लाल लाल आंखें करके बोली, बतलाओ किस पापीने यह उपद्रव किया है? तब उन सबने रोते २ उत्तर दिया कि, हम सब कुछ नहीं जानती हैं। रुक्मिणीने तो हमको संतोषके साथ अपने सिरके बाल ले लेने दिये थे। उसके केशोंको देखकर हमारी बुद्धि आनन्द में मग्नहो गई थी। यह तो हमने आपके वचनोंसे जाना है, नहीं तो हमको कुछ भी संदेह नहीं था ॥३५–३८॥ उनके यह वचन सुनकर सत्यभामाको बड़ा भारी क्रोध आया। क्योंकि सेवक लोगोंके पराभव होनेमें स्वामीका ही पराभव समझा जाता है ॥ ३९ ॥ वह बोली; इसमें रुक्मिणीका कुछ दोष नहीं है। विवेकरहित कृष्ण गोपालकी (ग्वालाकी) ही यह सब करतूत होगी ॥ ४० ॥ स्वामीकी आज्ञा पाकर ही रुक्मिणीने यह सब उपद्रव किया होगा। कहावत है कि, विना यमराजकी आज्ञाके बालकभी नहीं मरते हैं(?)॥४१॥ यदि वह अपनी वेणीके बाल नहीं देना चाहती थी, तो न देती। मेरी दासियोंकी विडम्बना–दुर्दशा उसने क्यों की? ॥४२॥ यह तो मैं भी जानती हूं कि, रुक्मिणी श्रीकृष्णजीकी वल्लभा है। तथापि मेरे लोगोंकी तो उन्हें ऐसी दुर्दशा नहीं करानी थी ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर सत्यभामा अपने मंत्रियोंसे बोली, कि श्रीकृष्णजीकी सभामें मेरी इन दासियोंको तथा नाईको ले जाकर बलदेवजीके समक्षमें रुक्मिणीका यह चरित्र कहो ॥४४–४५॥ सत्यभामाकी आज्ञानुसार मंत्रीगण दासी आदिको लेकर शीघ्रतासे यदुवंशियोंकी सभाकी ओर रवाना हुए। इतनेमें ही कृष्णजीकी दृष्टि सत्यभामाकी दासियोंपर पड़ी। उनकी नाक कानकी विडम्बना देखकर वे सारी सभाके सहित खूब जोरसे हँस पड़े ॥ ४६–४७ ॥ उन्हें हँसते हुए देखकर मंत्रियोंने अपने मनमें विचार किया कि, अवश्य ही इन्होंने रुक्मिणीको सिखलाकर यह उपद्रव कराया है। इसलिये इनके आगे कुछ पुकार की जावेगी, तो वृथा जावेगी, ऐसा निश्चय

है। हां! बलदेवजीसे बेधड़क होकर कहना चाहिये ॥ ४८-४९ ॥ ऐसा विचार कर मंत्रियोंने सभामें उपस्थित होकर रुक्मिणीके द्वारा पहले की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वेणी लेनेके लिये गई हुई सत्यभामाकी दासियोंकी तथा नाईकी जो दुर्दशा हुई थी, उसका सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर कृष्णजीने हँसकर पूछा कि, उसने इन सबके कान नाक बाल कैसे काट लिये? ये तो दासियां वगैरह बहुतसी दिखती हैं। उस अकेलीने इन सबकी विटम्बना कैसे की? कृष्णजीके इस प्रकार वचन सुनकर बलदेवजी क्रोधित होकर बोले; ॥ ५०-५३ ॥ मेरी जामिन देकर और सम्पूर्ण यादवोंको साक्षी (गवाह) बनाकर अब रुक्मिणी जो इस प्रकार उपद्रव करती है, सो किसकी शक्तिसे करती है? ॥ ५४ ॥ उसके घमंडको मैं क्षण भरमें दूर कर दूंगा। मंत्रियो! तुम निश्चिन्त होकर अपने घरको जाओ, मैं पापिनी रुक्मिणीको उसके अन्यायरूपी वृक्षका फल शीघ्र ही दिखलाऊंगा ॥ ५५-५६ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने मंत्रियोंको अपने २ घर भेज दिया। सो वे सेवक जनोंके साथ संतुष्टचित्त होकर चले गये। इसके पीछे क्रोधयुक्त बलदेवजीने अपने नौकरोंको रुक्मिणीका घर लूट लेनेके लिये भेजा ॥५७-५८॥

उधर रुक्मिणी और प्रद्युम्नका जो कुछ वृत्तान्त हुआ, सो कहा जाता है। भव्य जनोंको आदरपूर्वक सुनना चाहिये। सत्यभामाकी स्त्रियोंकी विडम्बना हो चुकनेपर और उनके चले जानेपर प्रद्युम्नने कंचुकीका रूप बदलकर फिर क्षुल्लकका रूप धारण कर लिया। उसे फिरसे पूर्वरूपमें देखकर रुक्मिणी बोली, जो विद्याधरके गृहमें वृद्धिको प्राप्त हुआ है, तू वही मेरा प्यारा पुत्र है। और नारदजी ही तुझे ले आये हैं, अब इसमें कुछ भी संदेह नहीं रहा है। क्योंकि विद्याके बलके विना दूसरेकी ऐसी गति नहीं हो सकती है ॥ ५९-६२ ॥ अब तुझे अपनी माताके साथ हास्य नहीं करना चाहिये। हे बेटा! अपनी मायाको समेटकर अब तू प्रगट हो जा ॥ ६३ ॥ तूने बालकपनमें सम्पूर्ण विद्याधर राजाओंको वशमें किये हैं, तुझे सोलह लाभ प्राप्त हुए हैं, तू सब विद्याओंका स्वामी है, और सुना है कि पूर्वमें देव, विद्याधर, तथा किन्नरोंने तेरा हित किया है। मैंने तेरे लेनेके लिये नारदमुनिको भेजा था ॥ ६४-६५ ॥

माताके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले, नारदजीके साथ तो मैं ही आया हूं। परन्तु जब मैं ऐसा कुरूप और सर्व लक्षणोंसे रहित हूं, तब हे माता! मुझ सरीखे पुत्रसे तेरा क्या कार्य सिद्ध होगा? ॥ ६६–६७ ॥ कुपूत पुत्रसे माता पिताको लज्जित होना पड़ता है, यह बात निश्चित है। इसलिये हे माता! मुझे जाने दे। मैं कहीं दूसरी जगह चला जाऊंगा ॥ ६८ ॥ ब्रह्मचारीके वचन सुनकर रुक्मिणी बोली, बेटा! तू जैसा है, तैसा ही सही। अब मेरे घरसे मत जा; मैं नहीं जाने दूंगी, तू यहीं ठहर ॥ ६९ ॥

माताके इस प्रकार कहते ही प्रद्युम्नकुमारने ब्रह्मचारी क्षुल्लकका रूप छोड़कर अपना उत्कृष्टरूप धारण कर लिया। जिसका शरीर तपाये हुए सोनेके समान अतिशय सोभनीक था, फूले हुए कमलके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान जिसका सुन्दर मुख था, जो सब प्रकारके आभरण तथा सब प्रकारके उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त था, नव यौवनवाला था, जिसका शंखके समान कंठ तथा विशाल वक्षःस्थल था, और जो नरनारियोंके चित्तको चुरानेवाला था, ऐसा असलीरूप धारण करके प्रद्युम्नने बड़ी भारी विनयके साथ माताके चरण कमलोंको नमस्कार किया ॥ ७०–७३ ॥

कामकुमारको इस प्रकार प्रणाम करते देखकर माता रुक्मिणीने हर्षित होकर उसे शीघ्र ही ऊपर उठा लिया और छातीसे लगा लिया। वह मोहके वश चिरकाल तक उसका आलिंगन करके और मुख तथा मस्तकका चुम्बन करके हर्षके वेगसे आंसू बहाने लगी ॥ ७४–७५ ॥ फिर वारंवार आलिंगन करके वे दोनों मा बेटे प्रसन्न चित्तसे अपने सुखदुःखकी बातें करने लगे ॥ ७६ ॥ उस समय अपने विद्याविभूषित पुत्रके रूपातिशयको देख देखकर तृप्ति न पानेके कारण माता बोली, हे बेटा! मुझ अभागिनीने तेरे जैसे पुत्रकी सबके मनको हरण करनेवाली बाल्यावस्था नहीं देख पाई। वह राजा कालसंवरकी रानी कनकमाला धन्य है, जिसने तेरा मनोहर बाल्यकाल देखा, और तुझे पुण्यके प्रभावसे पालकर बड़ा किया ॥ ७७–७९ ॥ मुझ अभागिनी पुण्यहीनाने तो तुझे कष्टपूर्वक नव महीने गर्भमें धारण करके बड़े दुःखसे जन्म मात्र दिया। मैं तेरी बाललीला देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकी। अथवा इसमें किसीका

दोष ही क्या है ? सब मेरे बुरे कर्मोंका दोष है । कहा भी है कि, " भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् " अर्थात् सब कामोंमें भाग्य ही फल देता है । न विद्या काम आती है, और न पुरुषार्थ काम आता है ॥ ८०-८१ ॥

माताके दुःखसे भरे हुए वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार जिसको कि प्रेमकी लालसा लग रही थी, विनयपूर्वक बोला, माता ! यदि तुझे मेरे बालकपनके कौतुक देखनेकी इच्छा है, तो मैं उन्हें दिखला सकता हूं । मुझे कोई भी काम दुर्लभ नहीं है । मैं सब कुछ कर सकता हूं ॥ ८२-८३ ॥ " लो मेरा बालकपन जो दूसरे लोगोंके लिए दुर्लभ है, देखो । " ऐसा कहकर कामकुमार क्षणभरमें छोटासा बालक बन गया, जिसके अंग उपांग उत्तम थे, आकार सुन्दर था, जो सब लक्षणोंवाला था, ऊपरको पैर और मुंह करके सोता था, भोला था, फूले हुए कमलके समान मुखवाला था, चंचल हाथ पैरोंको हिलाता था, मुट्ठी बँधी हुई रखता था, और लीला करता हुआ तथा थोड़ा थोड़ा मुसकुराता हुआ जमीनपर सरकता था ॥८४-८६*॥ इसप्रकारके बालकको देखकर माता बड़ी प्रसन्न हुई । और उसे शीघ्र ही अपने हाथोंसे उठाकर दूध पिलाने लगी ॥ ८७ ॥ फिर वह नानाप्रकारकी क्रीड़ा करनेमें चतुर बालक अपने आप धरतीमें बैठने लगा, खड़ा होने लगा, घुटनों तथा पैरोंके बलसे थोड़ा थोड़ा चलने लगा, माताके आगे उठ उठकर पड़ने लगा, हाथ पकड़के चलने लगा और फिर पृथ्वीपर गिरने लगा । इसके पश्चात् मणियोंके फर्शपर माताके हाथके आसरेसे पांवकी पैजनियोंका 'रुम झुम रुम झुम' शब्द करता हुआ चलने लगा । तोतली बोली बोलता हुआ माताका मन हरण करने लगा, और क्षण क्षणमें बालकोंके योग्य नाना प्रकारके आभूषणोंसे शोभित होने लगा ॥ ८८-९१ ॥ धूलसे भरे हुए स्थानमें बहुत समयतक खेलनेपर जब माताने बुलाया, तब बालक सारे शरीरको धूलसे भरे हुए तथा मुट्ठियोंमें भी धूल लिये हुए दौड़ा जाकर गलेसे लपट गया, और माताको अपूर्व सुख प्रदान करने लगा ॥ ९२-९३ ॥

* मूल प्रतिमें यहां श्लोकसंख्यामें गलती हो गई है । ८६ और ८७ के अंक दो बार लिख गये हैं ।

इस प्रकारसे यादवोंकी लक्ष्मीसे विभूषित कुमार बहुत समय बालक्रीड़ा करके और फिर दूसरे कारणका विचार करके नानाप्रकारके भोजन मांगने लगे, क्रोधित होकर भोजन लेकर फेंकने लगे, वारंवार रोने लगे, और जो कुछ माता देती थी, उसको न लेकर दूसरी २ भोजनकी चीजें मांगने लगे। उन्हें चीज न मिलनेसे रोते देखकर माताने कहा, बेटा ! तू रो मत। मैं तेरा रोना सहन नहीं कर सकती हूं ॥ ९४–९६ ॥ माताके ये वचन सुनकर कामदेव हँसकरके बोले, माता ! मेरा रोना वह कनकमाला विद्याधरी तो सह लेती थी। ऐसा कहकर प्रद्युम्नकुमार तत्काल ही यौवनभूषित युवा होकर बड़े भारी हर्षसे माताके चरण कमलोंमें पड़ गये। यह देखकर उस विद्याविभूषित पुत्रका आलिंगन करके और मुख चूम करके माता रुक्मिणीने अतिशय सुख प्राप्त किया ॥ ९७–९९ ॥ पुत्रके अंग स्पर्शसे किसको सुख नहीं होता है ? उन दोनों मा बेटोंने उस समय इस बातको देखा, सुना और अनुभवन कर लिया ॥ ९०० ॥ इसके पश्चात् रुक्मिणी और प्रद्युम्न बैठे हुए परस्पर वार्तालाप करने लगे। और इतने हीमें बलदेवके भेजे हुए सेवक हथियार उठाये हुए आ पहुंचे ॥ १ ॥

उन्हें गलीमेंसे आते हुए देखकर प्रद्युम्नने अपनी माताके चरण कमलोंकी भक्ति पूर्वक वन्दना करके पूछा, हे माता ! यह सेवक लोग किसके हैं, जो शस्त्र उठाये हुए आ रहे हैं ? इनकी चेष्टा भव्य नहीं दिखती है। इसलिये मुझे जल्दी बतलाओ कि, ये कौन हैं ? ॥ २–३ ॥ रुक्मिणी बोली, बेटा ! तेरे पिताके बड़े भाई बलदेवजीने मुझपर क्रोधित होकर इन लोगोंको भेजा है। सत्यभामाकी दासियोंकी जो तूने यहांपर विडम्बना की थी—नाक कान वगैरह काट लिये थे, उसे देखकर ही वे क्रोधित हुए होंगे। क्योंकि उस काममें अर्थात् मेरी और सत्यभामाकी जो प्रतिज्ञा हुई थी, उसमें वे जामिन (प्रतिभू) थे। यह सेवकोंका समूह उन्होंने मुझपर भेजा है ॥ ४–६ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्नने कहा, माता ! तू यहां बैठी रह और मेरा कर्तव्य देख। रुक्मिणी बोली, बेटा ! यह बलदेवजीके सिपाही तुझसे नहीं जीते जावेंगे। क्योंकि इन्हें दूसरे बड़े बड़े रणपंडित भी नहीं जीत सकते हैं। यह सुनकर प्रद्युम्न अपनी प्रेमाभिलाषि-

णी मातासे बोले, हे गुणोंकी खानि माता! तू इस झगड़ेमें मत पड़। यहांपर थोड़ी देर चुप चाप बैठी रह ॥ ७–९ ॥ ऐसा कहकर प्रद्युम्नकुमारने अपनी विद्याको भेजी। सो उसने गलीमें जाकर एक ब्राह्मण-का रूप धारण कर लिया, जिसके कि सारे अंग मिहनतसे थक रहे थे, और पेट स्थूल हो रहा था। सत्यभामाके महलसे भोजन करके वह निःसहात्मा अर्थात् अपने शरीरके बोझेको भी आप नहीं सह सकनेवाला वहां आया और दरवाजेपर फिसलकर गिर पड़ा। इतनेमें ही वहांपर बलदेवजीके सिपाही जा पहुंचे। १०–१२ ॥ सो उन सबको ही ब्राह्मणने स्तंभित–कीलित कर दिया। केवल एकको खबर देनेके लिये छोड़ दिया। उसने सभामें जाकर सब वृत्तान्त बलदेवजीसे कह दिया। जिसे सुनकर बल-देवजी रुक्मिणीपर और भी अधिक क्रोधित हो गये ॥ १३–१४ ॥ और हँसी करके बोले, रुक्मिणी अब सामान्य स्त्री नहीं रही है। वह मांत्रिका अर्थात् मंत्रविद्याकी जाननेवाली हो गई है। श्रीकृष्णको उस-ने मंत्रहीसे वशमें कर रक्खा है!॥ १५ ॥ अब मैं उसके मंत्रोंका माहात्म्य जाकर देखता हूं, जिनसे उसने मेरे सेवकोंको कील दिया है ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर वे उठे और क्रोधयुक्त शरीरसे रुक्मिणीके महलकी ओर शीघ्रतासे चल पड़े। महलकी गलीमें पहुंचकर उन्होंने देखा कि, एक ब्राह्मण पेटको फुलाये हुए लम्बा हो रहा है। और रास्तेको रोककर सो रहा है। उसे इसतरह पड़ा देखकर बलदेवजीने मीठे२ शब्दोंमें कहा कि, द्विजराज! यहांसे उठ बैठो, और रास्ता छोड़ दो। मुझे इसी रास्तेसे जानेका काम है और वह बहुत जरूरी है। यदि तुम नहीं उठ-ते हो, तो बताओ मैं तुम्हारे ऊपरसे कैसे जाऊं? ॥ १७–२० ॥ यह सुनकर ब्राह्मणमहाराज बोले, हे क्षत्रियराज! मैं सत्यभामाके घर भोजन करके अभी आया हूं। एक तो मेरा शरीर बहुत स्थूल है, और दूसरे मैं वारंवार होड़ लगाकर भोजन भी बहुत ज्यादा कर आया हूं, इसलिये मैं उठ नहीं सकता हूं। आप पीछे लौटकर दूसरे मार्गसे चले जावें। यह सुनकर बलभद्र बोले, अरे नीच ब्राह्मण! मेरा इसी मार्गसे बड़ा भारी कार्य है। इसलिये मैं निश्चयपूर्वक यहींसे जाऊंगा। तू पराये घर खाकर और मार्ग

रोककर पड़ रहा है ॥ २१–२४ ॥ वर्तन दूसरेके थे, परन्तु पेट तो दूसरेका नहीं था ? कुछ कसर रख छोड़ी होती ! सच है, ब्राह्मणोंमें भोजन की लोलुपता स्वभावसे ही अधिक होती है ॥ २५ ॥ यह सुनकर ब्राह्मण वेषधारी बोला, यदि तुम इसप्रकार जानते हो, तो फिर क्यों बकवाद करते हो ? ॥ २६ ॥ बलभद्रजी फिर बोले, अरे अधम ! वृथा क्यों बक रहा है ? यहांसे उठ, और मुझे रास्ता दे ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोला, अरे अधम क्षत्रिय ! व्यर्थही गालियां क्यों देता है ? तुझे जाना है, तो मेरे ऊपरसे क्यों नहीं चला जाता ? ॥ २८ ॥

यह सुनकर बलभद्र ब्राह्मणके पैर पकड़कर नगरके द्वारतक ले गये और वहां उसे छोड़कर ज्यों ही वे लौटकर पीछे देखते हैं, त्यों ही उस ब्राह्मणका शरीर जहां था, वहांका वहीं पड़ा हुआ मालूम पड़ता है। यह देखकर वे रुक्मिणीसे बहुत ही क्रोधित हुए। बोले, आज वह बधूटिका (छोटे भाईकी बहू) मेरे ही ऊपर माया चलानेको उतारू हो गई है। जान पड़ता है कि, अब वह सामान्य रुक्मिणी नहीं रही है। अवश्य ही यह कोई शाकिनी डाकिनी है ॥ २९–३१ ॥ ऐसा कहकर क्रोधसे व्याकुल हुए बलभद्रजी फिर दरवाजेपर आये। उन्हें देखकर प्रद्युम्नकुमारने मातासे पूछा, यह बड़ाभारी सूर पुरुष कौन है। और इसके आनेका क्या कारण है ? मुझसे शीघ्र कहो। युद्धकी इच्छा करनेवाला भौंहें और मुख टेढ़ी किये हुए आता है। सो यह भी ऐसा ही (युद्धार्थी) मालूम पड़ता है ॥ ३२–३४ ॥ यह सुनकर रुक्मिणी बोली, बेटा ! यह बलदेव नामके बड़े भारी योद्धा तेरे पितृव्य अर्थात् बड़े काका हैं। ये बड़े पराक्रमी हैं, तेरे पिताके प्राणोंके समान हैं, शत्रु समूहके घात करनेवाले हैं, पुरुषोंमें अग्रगामी हैं, और यादवोंके पूज्य हैं। पृथ्वीमें इनके समान कोई नहीं है। संसारमें ऐसा कोई वीर नहीं है, जो इनके साथ युद्ध कर सकै ? ॥ ३५–३७ ॥ प्रद्युम्नकुमार बोले, हे माता ! इन्हें प्यारा क्या लगता है और किसके साथ युद्ध करनेकी इन्हें इच्छा रहती है ? ॥ ३८ ॥ माता बोली, ये युद्धकी रंग भूमिमें बड़े २ भयंकर सिंहोंके साथ लीला करके शान्त होते हैं, अर्थात् इन्हें सिंहयुद्ध ही प्यारा लगता है ॥ ३९ ॥ माताके वचन सुन-

कर कुमार बोले, अच्छा तो मैं क्षणभर इनके बलको देखता हूं ॥ ४० ॥ माता बोली, तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये। बलदेवजी बड़े भारी बलवान हैं। भला उन्हें कौन जीत सकता है? बेटा! यदि तुझे जीवित रहनेकी इच्छा हो, तो शीघ्र ही जाकर और उनके चरणोंमें पड़कर उन्हें संतोषित कर ॥ ४१-४२ ॥ माता के इसप्रकार वचन सुनकर कुमार बोले, तुम क्षणभरके लिये यहां चुपचाप बैठी रहो, और मेरा पराक्रम देखो ॥ ४३ ॥

वहां जब तक बलदेवजी कोपाग्निसे प्रज्वलित होकर बड़े पेटवाले ब्राह्मणके साथ युद्ध करनेके लिये गलीमें आये, तबतक यहां प्रद्युम्नकुमारने अपनी उस मायाको समेट करके अर्थात् ब्राह्मणको लोप करके अपना वेष बदल लिया और सिंहका रूप धारण कर लिया ॥ ४४-४५ ॥ उस सिंहकी दाढ़े दोयजके चन्द्रमाके समान टेढ़ी और सफेद थीं, उसका आकार चंड अर्थात् भयंकर था, और केशरके समान केशरका (बालोंका) समूह उसकी गर्दनपर चंचल होता हुआ शोभित हो रहा था। सिरपर रक्खी हुई पूछसे वह बहुत अच्छा मालूम होता था। जंभाई लेता हुआ समस्त दिशाओंकी ओर भयंकर दृष्टि से देखता था ॥ ४६-४७ ॥ उसे घरके भीतरसे गर्जना करते हुए आते देखकर बलभद्रजीको अचरज मालूम हुआ। यहां राजमहलके भीतर जो यह सिंह दिखलाई देता है, सो अवश्य ही कुछ रुक्मिणीकी माया जान पड़ती है। अब तो यह रुक्मिणी श्रीकृष्णजीके योग्य नहीं रही! ऐसा विचार करके अपने बायें हाथको सुन्दर उत्तरीय वस्त्रसे अर्थात् दुपट्टेसे लपेट करके और उसे आगे करके क्रोधपूरित बलदेवजी सिंहपर झपट पड़े ॥४८-५०॥ तब एक दूसरेका घात प्रतिघात करनेमें, ताड़नेमें, वल्गनेमें, तर्जना करनेमें और उछलनेमें अतिशय चतुर वे दोंनों शूरवीर अपनी इच्छानुसार युद्धक्रीड़ा करने लगे। बहुत समयतक उनकी लड़ाई होती रही, परन्तु न तो किसीने हार खाई और न किसीने जीत पाई। आखिर सिंहवेषधारी प्रद्युम्नने छलांग मारके एक पंजेकी थप्पड़से बलदेवजीको धराशायी कर दिया ॥ ५१-५३ ॥ और अपना असलीरूप धारण करके माताके पास जाकर उसके चरणोंको विनयपूर्वक नमस्कार किया।

इसी बीचमें अचरजसे व्याकुल हुई रुक्मिणी महापराक्रमके धारण करनेवाले पुत्रको देखकर बोली, हे पुत्र ! तू मुझसे नारदमुनिकी बात कह कि, वे मेरे विना कारणके बंधु कहां चले गये ? कुमारने कहा, माता ! नारदजी विद्याधरोंके पर्वतसे अर्थात् विजयार्धगिरिसे मेरे ही साथ आये हैं। और इस समय द्वारिका नगरीके बाहिर आकाशमें विमानपर विराजमान हो रहे हैं। उनके साथ तुम्हारी मृगनयनी बहू भी है, जिसे मैं उनके पास छोड़ आया हूं ॥ ५४–५८ ॥ यह सुनकर रुक्मिणी अपने गुणवान पुत्रसे बोली, बेटा ! तूने बहू कहांसे पा ली, सोभी तो मुझसे कह ॥ ५६ ॥ पूछनेपर कामकुमार अपनी माता को सुखी करनेके लिये बोले, माता ! मैं इसका सब वृत्तान्त तुम्हारे साम्हने संक्षेपसे कहता हूं;—॥६०॥ दुर्योधन राजाने श्रीकृष्णमहाराजकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये अपनी उदधिकुमारी नामकी कन्याको भानुकुमारसे विवाह करनेको भेजी थी, सो उसे मैंने मार्गमें ही भिल्लका रूप धारण करके हरण कर ली है। वही उदधिकुमारी सुन्दरी नारदजीके साथ विमानमें बैठी है। इसके पश्चात् कुमारने भानुकुमारका तिरस्कार, सत्यभामाके बगीचेका तथा वनका विनाश, रथका तोड़ना, बावड़ीका शोषण कर लेना, सुगंधित फूलोंको आकके फूल बना देना, मेढ़ेसे वसुदेवजीकी टांग तुड़ाना, और भोजन वमन करके सत्यभामाकी विडम्बना करना; आदि सब लीलायें भी अपनी माताको सुना दीं। पुत्रको सुन्दरी बहू मिलनेकी तथा शत्रुका (सत्यभामाका) खूब तिरस्कार होनेकी सब बातें सुनकर रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई। और पुत्रसे बोली, बेटा ! मुझे नारदमुनिके देखनेकी बहुत इच्छा है, इसलिये उन अकारण बंधु मुनिको शीघ्र ही दिखला दे, अर्थात् बुला दे ॥६१–६५॥ यह सुनकर प्रद्युम्नने कहा, मैं उन्हें कैसे ले आऊँ, क्योंकि मैं अभीतक कुटुम्बी जनोंमें नहीं मिला हूं। जबतक मैं सबसे नहीं मिला हूं, तबतक उनके पास नहीं जाऊंगा ॥ ६६॥ रुक्मिणी बोली, यदि ऐसा है, तो अपने पितासे जाकर मिल आ। कुमारने कहा, माता ! इस तरह जाकर कैसे मिल आऊं? ॥६७॥ माता बोली, यादवोंसे परिवेष्टित(घिरे) हुए तेरे पिता राजसभामें बैठे हुए होंगे, सो उन्हें जाकर प्रणाम करके मिल आ ॥ ६८ ॥ प्रद्युम्नकुमार फिर बोले कि, जो उत्तम

कुलमें उत्पन्न होते हैं, चिरकालमें आकर मिलते हैं, और गुणवान तथा पराक्रमी होते हैं, वे अपनी शक्तिका वर्णन नहीं करते हैं, और न अपने नामका कीर्तन करते हैं। इसलिये हे माता! मैं स्वयं ऐसा जाके कैसे कहूं कि, मैं "तुम्हारा पुत्र हूं!" ॥ ६९–७० ॥ सो माता! मैं पहले पिता और बंधुओंसे युद्ध करके, नानाप्रकारके वाक्योंसे उनकी तर्जना करके, और अपने पराक्रमको दिखला करके अपने नामको प्रगट करूंगा—अर्थात् वे सब लोग स्वयं ही मेरा नाम जान जावेंगे। ऐसा किये विना अर्थात् जबतक वे स्वयं मुझे न जानने लगें, तब तक मेरा मिलना उचित नहीं होगा ॥ ७१–७२ ॥ घर घर जाकर अपने आनेकी वार्ता सबसे कहता फिरै, यह बात इस तेरे पुत्रके योग्य नहीं है ॥ ७३ ॥ रुक्मिणीने कहा, तुझे ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि यादवलोग बड़े ही बलवान हैं। हे बेटा! वे तुझसे कैसे जीते जावेंगे? यदुवंशी भोजवंशी और प्रचंड तेजके धारण करनेवाले पांडव रणविजयी हैं। उन्होंने अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की है। उन्हें तू कभी नहीं जीत सकेगा ॥ ७४–७५ ॥ प्रद्युम्न बोले, माता! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या है, श्रीनेमिनाथ भगवानको छोड़कर तू अभी देखेगी कि, अन्य सब कैसे बलवान हैं ॥ ७६ ॥ ऐसा कहकर और थोड़ी देर ठहरकर कुमारने मातासे कहा कि, मैं तुमसे कुछ मांगता हूं, सो मुझे देनेकी प्रतिज्ञा करो ॥ ७७ ॥ पुत्रके वचन सुनकर माता बोली, बेटा! मांगो! मांगो! क्या मागते हो? मैं जो मांगोगे, सो दूंगी ॥ ७८ ॥ कुमारने कहा, माता! तू मेरे साथ विमानमें बैठनेके लिये चल, जिसमें कि नारदमुनि तेरी बहूके साथ बैठे हुए हैं, और जो लोकमें अतिशय सुन्दर है। मुझपर कृपा-करके शीघ्र चल। वहां तुझे छोड़कर फिर मैं अपनी इच्छानुसार कार्य करूंगा। बस तुझसे मैं यही याचना करता हूं ॥ ७९–८० ॥

पुत्रकी याचना सुनकर रुक्मिणी विचार करने लगी कि, यदि मैं अपने पतिसे (श्रीकृष्णसे) विना पूछे, इसके साथ जाती हूं, तो पतिव्रता कैसी? और यदि नहीं जाती हूं, तो यह क्रोधित हो जावेगा, और रूस करके निश्चय है कि, फिर विद्याधरोंके देशमें चला जावेगा ॥ ८१–८२ ॥ अथवा मैं इतना वि-

कल्प क्यों करती हूं। मेरे स्वामी मुझपर कभी क्रोधित नहीं होंगे। इसलिये अब तो पुत्रकी ही बात मानती हूं। इसमें पीछे भला ही होगा ॥ ८३ ॥ ऐसा विचार करके रुक्मिणीने कहा, अच्छा चलो, मैं तुम्हारे साथ चलती हूं। स्वीकारता सुनते ही प्रद्युम्नकुमार हर्षित होकर अपनी माताको उसी समय हाथोंसे आकाशमें ले गया। रुक्मिणीके आभूषणोंकी प्रभाके तेजसे दिशायें कपिल रंगकी पीली पीली हो गईं ॥ ८४-८५ ॥

रुक्मिणीको हाथसे पकड़े हुए प्रद्युम्नकुमार यादवोंकी राजसभाके ऊपर ठहर गया और बलदेवजी तथा कृष्णजीके समक्षमें बोला, हे यादवो! हे भोजवंशियो! हे पांडवो! और कृष्णकी सभामें जो २ शूरवीर तथा सुभट हों, वे सब! यदि तुम अच्छे कुलसे उत्पन्न हुए हो, और यदि तुमने लड़ाइयोंमें विजय पाई है, तो सावधान होकर मेरे वचन सुनो। भीष्मराजाकी पुत्री और श्रीकृष्णजीकी प्यारी साध्वी स्त्रीको जो कि रुक्मिणीके नामसे सारी पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, जिसे श्रीकृष्ण तथा बलदेव बेचारे दीन दमघोषके पुत्रको अर्थात् शिशुपालको लड़ाईमें मारकर ले आये थे, और जिसके नीलकमलके समान नेत्र हैं, मैं विद्याधरका वीर पुत्र तुम लोगोंके साम्हने लिये जाता हूं ॥ ८६-९१ ॥ यदि मैं अकेला वीर रुक्मिणीको हर ले जाऊं, तो फिर तुम सबके जीवनसे क्या प्रयोजन है? अर्थात् तुम्हारा जीना निरर्थक है ॥ ९२ ॥ यदि तुम सब लोगोंमें कुछ अद्भुत शक्ति हो, तो मेरे पंजेमें फँसी हुई रुक्मिणीको छुड़ाओ। हे उत्तम शूरवीरो! तुम सब इकट्ठे होकर प्रयत्न करो! निश्चय समझो कि, मैं तुमसे युद्ध किये बिना नहीं जाऊंगा ॥ ९३-९४ ॥ जब पहले तुम्हारे साथ युद्ध कर लूंगा, तब श्रीकृष्णजीकी भामिनीको विद्याधरोंके नगरमें ले जाऊंगा ॥ ९५ ॥ परन्तु मैं चोर नहीं हूं, स्वेच्छाचारी नहीं हूं, और विट अर्थात् व्यभिचारी भी नहीं हूं—अपने शक्तिके जोरसे लिये जाता हूं ॥ ९६ ॥

उसके वचन सुनकर शूरवीर लोगोंसे भरी हुई यादवोंकी सभा एकाएक क्षोभित हो गई ॥९७॥ और वायुके प्रचंड आघातसे जैसे समुद्रकी तरंगें उछलती हैं, उस प्रकार उछलने लगी। अथवा जैसे समुद्रमें

बड़वानलोंकी पंक्ति प्रज्वलित होती है, उस प्रकारसे प्रज्वलित हो उठी ॥ ९८ ॥ बलदेवजी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। सारे यादवगण उनके चारों ओर घेरकर बैठ गये। परन्तु थोड़ी ही देरमें वे उसी प्रद्युम्नके जोशीले वाक्य सुननेसे सचेत हो गये। मूर्च्छा निवृत्ति हो गई। शूरवीरोंको बड़ा क्रोध आया। वे यद्यपि गौरवर्णके थे, तौ भी उस समय क्रोधसे लाल लाल हो गये ॥९९-१०००॥ उनकी भौंहें ललाटपर चढ़ गईं और शरीर कांपने लगा। सो ठीक ही है, ऐसा कौन मनुष्य है, जो भय तथा क्रोधके उत्पन्न होनेपर अपने स्वभावसे च्युत न हो जाता हो। अर्थात् भय तथा क्रोध होनेपर सभी लोग विकारयुक्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

जिस समय भीम अर्जुन आदि पांडव क्रोधित होकर अपनी २ आसनोंसे उठकर चलने लगे, उस समय उन्हें युधिष्ठिरने इशारेसे समझाया कि, शत्रुका साम्हना होनेपर युद्धमें हो तुम्हारी वीरता देखी जावेगी। इससमय व्यर्थ ही कोप करनेसे क्या लाभ है? स्थिरता रखनी चाहिये ॥ २-४ ॥ कितने ही शूरवीर जिनका कि शरीर क्रोधसे आछन्न हो रहा था—भर रहा था, हाथोंसे छाती ठोकते हुए, कठोर तथा दुष्ट बचन बोलने लगे ॥ ५ ॥ कितने ही अतिशय क्रोधी योद्धा होंठोंको डसते हुए अपने भुजबंधन तथा मणियोंसे प्रकाशमान भुजतटोंको हाथोंके अग्रभागसे पीटने लगे अर्थात् ताल ठोकने लगे ॥ ६ ॥ कितने ही राजपुत्र वीर क्रोधित होकर युद्धकी इच्छा करते हुए और अंगोंको चलायमान करते हुए बड़े भारी घमंड तथा मानके साथ हँसने लगे ॥ ७ ॥ कितने ही शूर राजा जिनका कि मान ही एक धन था, क्रोधके मारे अंधे सरीखे होकर भ्रमण करने लगे। कितने ही लाल लाल आंखें करके मुखको कंपित करने लगे। कितने ही क्रोधसे विह्वल होकर पाषाणमयी खंभोंको तोड़ने फोड़ने लगे और कितने ही म्यानसे तलवार निकालकर खड़े हो गये ॥ ८-९ ॥

इन सब क्षुभित हुए शूरोंसे कई लोग इस प्रकार अच्छे वचन बोले कि, तुम सरीखे थोड़ी शक्तिवाले थोड़ेसे लोगोंसे यह नहीं जीता जावेगा। इसलिये शूरवीरोंके सचेत करनेमें—प्रतिबोधित करनेमें जो

पंडिता होती है, उस संग्राम भेरीको बजाओ, उससे सबको मालूम हो जावेगा ॥ १०–११ ॥ आखिर रणभेरी बजाई गई। उसका नाद सुनते ही सबके सब श्रेष्ठ शूरवीर अपने हाथका आधा किया हुआ काम जैसाका तैसा छोड़कर निकल पड़े ॥ १२ ॥ कईएक कुलवान शीलवान और बलवान शूरवीर अपनी २ स्त्रियोंको जो भेरीके शब्दसे तत्काल भयभीत हुई थीं, एकान्तमें समझाकर–आश्वासन देकर निकले और कईएक गर्वशाली मानी बली वीर अपने शरीरमें कवच (जिरहवख्तर) धारण करके निकले ॥ १३–१४ ॥ वे आगे होनेवाले संग्रामके हर्षसे ऐसे प्रफुल्लित हुए–इतने फूले कि, उनके शरीरके कवच टूट गये—॥ १५ ॥

वीरगण हाथी घोड़ों और रथोंपर चढ़े हुए धनुषबाण आदि उत्तमोत्तम आयुध धारण किये हुए, शंख भेरी आदिके नादसे दशों दिशाओंको पूरित करते हुए—राजाके आंगनमें आकर एकत्र हुए। उनमें कोई २ योद्धा तो छत्र लगाये हुए थे और किसी २ के मस्तकपर चँवर ढुरते थे ॥ १६–१७ ॥ राजांगणसे सेनाका कूच हुआ। उसके साथ बड़े २ भारी हाथी चलने लगे। वे ऐसे जान पड़ते थे, जैसे प्रलय कालकी हवाके चलाये हुए बादल ही चल रहे हों। जिस प्रकार हाथी भयंकर, ऊंचे, षष्ठिहायिन अर्थात् छह वर्षकी उमरके कुथप्रासरुचो अर्थात् झूलसे शोभित होनेवाले और मद जलकी वर्षासे पृथ्वीको कीचड़मय करनेवाले थे, उसी प्रकारसे बादल भी भयंकर, काले काले, ऊंचे, 'षष्ठिहायिन' अर्थात् धान्यको पकानेवाले 'कुथप्रासरुचो' अर्थात् दूबको हरी भरी शोभायुक्त करनेवाले, और अपने मदरूप जलकी वर्षासे पृथ्वीतलको कीचड़युक्त करनेवाले होते हैं ॥ १८–१९ ॥ तीखे खुरोंके अग्रभागोंसे सारी पृथ्वीको खोदते हुए, अपने समूहसे धराको व्याप्त करते हुए, तथा अपने आच्छादनोंसे सजे हुए शीघ्रगामी घोड़े अपनी हिनहिनाहटसे शत्रुके घोड़ोंको बुलाते हुए चलने लगे ॥ २०–२१ ॥ शस्त्रों (हथियारों) और दिव्य अस्त्रोंसे जिनके मध्य भाग पूर्ण और मनोहर थे, तथा जिनके पहियेके शब्दोंसे संसार बधिर (बहिरा) हो रहा था, ऐसे रथोंके समूह भी पृथ्वीको व्याप्त करते हुए तथा हवासे उड़ती हुई धुजाओंसे पर शत्रुको

बुलाते हुए चल पड़े ॥ २२–२३ ॥ इसी प्रकारसे ढाल तलवार बांधे हुए तथा कवचसे शरीरको ढँकेहुए पैदल सारी धरतीको आच्छादित करते हुए निकल पड़े ॥ २४ ॥

शत्रुकी हारके प्रतिबंधक अनेक अशुभ निमित्त मार्गमें दिखलाई दिये, अर्थात् शत्रुकी हार नहीं होगी. इसके प्रगट करनेवाले अनेक अशुभ शकुन मार्गमें हुए, तौ भी सारे यादव, भोजक, और पांडवादि उत्तमोत्तम शूरवीर क्रोधसे भरे हुए योग्य अयोग्यका विचार किये विना ही चलने लगे ॥ २५–२६ ॥

उधर प्रद्युम्नकुमारने भी अपनी माताको उस विमानमें जाकर बिठा दी, जो नारदमुनि और उदधिकुमारीसे शोभित हो रहा था। वहां माताने नारदजीको विनयपूर्वक नमस्कार किया और बहूने सासको प्रणाम किया ॥ २७–२८ ॥ इस प्रकार विमानमें नारद और बधूके सहित गुणवती रुक्मिणीको छोड़कर कामकुमार पृथ्वीमें उतरा। और वहां बड़े लम्बे चौड़े मैदानको पाकर उसने एक हाथी, घोड़ों, रथों तथा पैदलोंसे भरी हुई अचरजकारी सेना बनाई ॥ २९–३० ॥ जिस प्रकारसे श्रीकृष्णजीकी सेनामें केशव आदि नामके धारण करनेवाले राजा थे, उसी प्रकारसे प्रद्युम्नकी सेनामें भी वे ही सब राजा हो गये। जिस प्रकारके चिन्ह कृष्णजीकी सेनामें थे, उसी प्रकारके सब चिन्ह (धुजा आदिके) यहां हो गये। वेष तथा रूप भी दोनों तरफके एकसे हो गये। बाजोंके शब्द भी एकसे होने लगे, बन्दीजन भी एक सी विरद गाने लगे ॥ ३१–३२ ॥ हाथी घोड़ा रथ भी उसी आकारके धारण करनेवाले हो गये। और तो क्या इसकी सेनाके सैनिकोंके नाम भी वही काम, कृष्ण, बलदेव आदि हो गये ॥ ३३ ॥

इस प्रकारसे लड़ाईके लिये उत्सुक हुई और सब लक्षणोंसे लक्षित तथा हर्षित दोनों ओरकी सेनाको देखकर उस नगरकी स्त्रियां परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं:—॥ ३४ ॥

पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली जो एक स्त्री महलकी छतपर खड़ी थी, वह बोली, यदि यह लड़ाई यहीं शान्त हो जावे, तो निश्चयपूर्वक मैं धन्य होऊं ॥ ३५ ॥ कोई दूसरी बोली, हे माता ! मेरे हृदयमें तो ऐसा निश्चयपूर्वक प्रतिभासित होता है कि, यह श्रीकृष्ण तो ग्रहग्रस्त हो गया है, जो अपनी

एक स्त्रीके लिये अच्छे २ वंशोंसे उत्पन्न हुए शूरवीरों तथा राजाओंको नष्ट करनेके लिये तयार हुआ है ॥ ३६–३७ ॥ कोई तीसरी स्त्री कहने लगी, यह उत्कृष्ट रथमें बैठा हुआ और चँवरों तथा भालेसे युक्त मेरा उत्साही पति है ॥ ३८ ॥ कोई चौथी स्त्री अपनी सखीसे बोली, और यह शूरवीर पति मेरा है, जिसके मस्तकपर मुकुट शोभायमान हो रहा है, और जो बड़ा शीघ्रतावाला है ॥ ३९ ॥ और कोई सुन्दरी अपनी सखीसे कहने लगी, यह योद्धा जिसके ऊपर चँवर ढुरते हैं, और जिसकी बन्दीजन स्तुति करते हैं, मेरा प्राणप्यारा है ॥ ४० ॥

नारियोंके इस प्रकार शुभ वचन सुनते हुए वे शूरवीर शीघ्र ही आगे चले। सो उनमेंसे कितने ही सिंह सरीखे शूरपुरुष तो वीरोंकी लीला करते हुए शत्रुकी सेनाके समीप जा पहुंचे, कितने ही नगरीकी गलीको प्राप्त हो गये ॥ ४१–४२ ॥ और कितने ही युद्धके लिये उत्सुक हुए योद्धा दौड़कर शत्रु की सेनामें घुस गये। उनके साथ और भी दूसरे योद्धा प्रवेश कर गये ॥ ४३ ॥ यह देख प्रतीहारी अर्थात् पहरेदार राजाकी आज्ञासे उन प्रचंड बलके धारण करनेवाले योद्धाओंको रोकने लगे ॥ ४४ ॥

दोनों सेनाओंके हाथियोंके मनोहर घंटा तथा काहलके उच्च शब्दोंसे चारों ओर कोलाहल मच गया। और भेरी दुंदुभि तथा तुरही आदि बाजोंके शब्दोंने दशों दिशायें व्याप्त कर डालीं ॥ ४५–४६ ॥ उस समय सेनाओंके आगे धूल इतनी उड़ी कि, सारी पृथ्वी व्याप्त हो गई। वहां कुछ भी दिखाई नहीं देने लगा। हमारी समझमें वह धूल श्रीकृष्णजीको रोकनेके लिये ही उठी थी कि, यह तुम्हारा शत्रु नहीं, किन्तु पुत्र है। इसके ऊपर यह निरर्थक क्रोध क्यों करते हो? ॥ ४७–४८ ॥ धूलका विस्तार देखकर उसे हाथियोंके मदजलने क्रोधयुक्त हो अपनी वर्षासे शीघ्र ही निवारण कर दिया अर्थात् धूल बैठा दी। सो मानों मदजलने उसे इस अभिप्रायसे बैठा दी कि, यह धूल इस सेनाको लड़ाईसे रोकनेके लिये क्यों उड़ी है? क्योंकि इसमें प्राणियोंका वध बिलकुल नहीं होगा। यह तो एक प्रकारका विनोद है। इसे नहीं रोकना चाहिये ॥ ४९–५० ॥

इस प्रकार जब श्रीकृष्ण और प्रद्युम्नकी महायोधाओंसे निकट हुई और बलवानोंसे युक्त हुई सेना ठहरी हुई थी, उस समय देव और दैत्य आकाशमें आ आकर कौतुक देखने लगे। वे प्रद्युम्नकी सेनाको अधिक देखकर भयभीत होकर बोले, हम नहीं जानते हैं कि, क्या होगा? इस युद्धमें किसकी विजय होगी? इस प्रकार कौतुकसंयुक्त हुए वे देव और दैत्य आकाशरूपी आंगनमें स्थिर हो रहे ॥ ५१–५३ ॥

श्रीप्रद्युम्नकुमारने भानुकुमारकी छातीपर पैर रखके उसका मर्दन किया, सत्यभामाके सुन्दर वन उपवनोंको क्षण भरमें नष्ट भ्रष्ट कर दिये, और अपनी माताके अनेक प्रकारके कार्य किये, सो सब जैनधर्मके प्रभावसे किये हैं। इसलिये प्राणियोंको निरन्तर उसी कल्याणकारी धर्मका ध्यान करना चाहिये ॥ ५४ ॥ धर्मसे ही सम्पूर्ण मंगल होते हैं, धर्महीसे स्वजन और बंधुओंका संगम होता है, इसलिये हे भव्यजनो! सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान निर्मल और मनोहर धर्मका सेवन करो ॥ १०५५ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रंथके नवीन हिन्दीभाषानुवादमे प्रद्युम्नका मातासे मिलने और सैन्यके तयार होनेका वर्णनवाला दशवाँसर्ग समाप्त हुआ।

अथ एकादशः सर्गः।

अब श्रीकृष्ण और प्रद्युम्नकी सेनाके उस संगममें जो २ वृत्त हुए उन सबका यहां वर्णन करते हैं;—॥१॥

उन दोनों प्रलय कालके समुद्र जैसी प्रचंड सेनाओंके योद्धाओंका बहुत जल्दी बीचमें ही संघट्ट हो गया। सो गर्जना करते हुए उन धीरवीर सुभटोंका देव और दैत्योंको भी भयका उत्पन्न करनेवाला बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ २–३ ॥

हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ जुट गये, घुड़सवार घुड़सवारोंसे लड़ने लगे, पैदल पैदलोंके साथ भिड़ गये, और रथवाले रथवालोंके साथ अड़ गये। इस प्रकारसे सबके सब शूरवीर युद्ध करने लगे। परन्तु यथार्थमें उन सबका बैर विना हेतुका था, और वह युद्ध विना निमित्तका था ॥ ४–५ ॥ बड़े बड़े

योद्धा बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीपर पड़ गये, हाथी हाथियोंके मारे हुए रणभूमिमें गिर पड़े, रथ रथोंकी चोटसे धराशायी हो गये, और घोड़े घोड़ोंके घातसे लोट गये। इस प्रकारसे उस रणांगनमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ ६–७ ॥

ढाल तलवारवाले योद्धा ढाल तलवारवालोंसे उलझ गये। और जिनके पास कुछ नहीं था, केवल वृक्ष ही हथियार था, वे वृक्षवालोंसे भिड़ गये। कोई २ केशाकेशी तथा मुष्टामुष्टी ही करने लगे, अर्थात् एक दूसरेके बाल खींचकर तथा एक दूसरेको घुस्से मार मारकर युद्ध करने लगे। और भालावाले भालावालोंके साथ विकट लड़ाई लड़ने लगे ॥ ८–९ ॥

किसी शूरवीरने जबतक एक हाथीके हौदेको छेदा, तबतक हाथीके स्वामी अर्थात् महावतने दूसरा हौदा ला दिया। इतनेहीमें उसने बड़े जोरसे एक शीघ्रगामी बाण ऐसा मारा कि, हाथीके मस्तकपर जो कलगी थी, वह छिदकरके गिर गई ॥ १०–११ ॥ तब बड़े २ हाथी सूंड़ोंसे सूंड़ें और खीसोंसे (दांतोंसे) खीसें भिड़ाकर तथा आगेके पैर संकुचित करके धरनीको कंपायमान करते हुए युद्ध करने लगे। वे अपनी लीलासे बड़े ही शोभायमान दिखते थे ॥१२–१३॥ उनके सिवाय और भी जो हाथी हथियारोंसे घायल हो रहे थे, वे उस रणभूमिमें रुधिरकी धारा बहाने लगे। तथा धातुरूपी जलसे पर्वतोंकी उत्कृष्ट शोभाको धारण करते हुए निश्चल हो रहे अर्थात् जीव रहित हो गये ॥ १४–१५ ॥ अनेक शूरवीरोंके हाथ पैर चक्रसे कट गये थे तौ भी वे उन्हें किसी तरह धारण किये हुए उनके काटनेवाले शत्रुओंपर जा पड़े और उन्हें मारकर आप भी उनके साथ धरतीपर सो गये। सो ठीक ही है, जिनका चित्त कीर्ति पानेका लोभी होता है, और जो स्वामीका कार्य करनेमें तत्पर होते हैं, वे अपनी निःस्सार देहमें जरा भी ममत्व नहीं करते हैं। शत्रुको मारकर ही मरते हैं ॥ १६–१७ ॥

इस प्रकारके उस महा युद्धमें यादवोंकी सेनाने प्रद्युम्नकुमारकी सेनाको शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥ १८ ॥ यह देख प्रद्युम्नकुमारके बलवान वीरोंने श्रीकृष्णजीकी प्रचंड सेनाको भी बातकी बातमें तितर

बितर कर दी ॥ १९ ॥ उस समय अपनी सेनाको भागते हुए देखकर श्रीकृष्णजीने पांडवादि शूरवीरोंको बलदेवजीके साथ भेजे। सो वे भी प्रद्युम्नकुमारकी सेनाको ध्वंस करने लगे। जब कुमारने अपने बलको नष्ट होते देखा, तब उसने भी बलभद्र पांडवादिक बड़े २ मायामयी शूरवीर बनाकर भेज दिये, सो वे कृष्णकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे। वे शूरवीर अपने २ नामके धारण करनेवाले शूरवीरोंको बुला बुलाकर—अर्थात् मायामयी बलभद्र पांडवादि सच्चे बलभद्रादिको बुला बुलाकर परस्परमें लड़ने लगे ॥ २०-२३ ॥

उस युद्धमें हाथियोंकी चिंघाड़से, घोड़ोंके हींसनेसे, बाजोंके नादसे, धनुषोंकी टंकारसे, शूरवीरोंके सिंहनादसे और हथियारोंके परस्पर भिड़नेके शब्दोंसे धरती और आकाश दो होनेकी इच्छा करते थे, अर्थात् फटे जाते थे ॥ २४-२५ ॥ और अर्धचन्द्र चक्रोंसे तथा बाणोंसे जब राजाओंके छत्रोंके दंड मूलसे कट जाते थे, और हवाके जोरसे आकाशमें उड़ने लगते थे, तब उन्हें देखकर ऐसी शंका होती थी कि, बहुतसे चन्द्रमाओंके विम्ब कौतुकके वश इस मनोहर युद्धरूपी यज्ञको देखनेके लिये आये हैं ॥२६-२७॥

उस युद्धमें कोई एक वीर दूसरेसे बोला, तू व्यर्थ शंका मत कर। यह जो तुझे भय हो रहा है, तथा कँपकँपी छूट रही है, सो छोड़ दे और मुझपर खूब जोरसे प्रहार कर ॥ २८ ॥ तेरे केश बिखर रहे हैं, तथा कपड़े धरतीपर पड़ रहे हैं, सो इन्हें संभाल ले, और हथियार धारण कर ले, तब मैं युद्ध करूंगा ॥ २९ ॥ एक और कोई सुभट दूसरेसे बोला, हे वीर! युद्ध करनेसे न तो स्वर्ग प्राप्त होता है, और न मोक्ष मिलता है। यदि तुम्हें यशके साधनेकी इच्छा हो, तो मुझसे सच सच कहो। मेरी समझमें तो तुम अपनी चन्द्रमुखी स्त्रीको छोड़कर युद्धमें व्यर्थ ही मत पड़ो! ॥ ३०-३१ ॥ इस प्रकार उन परस्पर वार्तालाप करनेमें चतुर तथा मानी घमंडी राजाओंने प्रद्युम्नके मायामयी योद्धाओंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध किया। उसमें उन धीर मानी और सजावट करनेमें चतुर वीरोंने विचित्र २ प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे अपने शत्रुओंको शीघ्र ही नष्ट कर डाला ॥३२-३३॥ बड़े २ पहाड़ोंके समान हाथियोंके पड़नेसे—धराशायी

॥१३१॥

होनेसे तथा बड़े २ रथोंके टूटकर पड़ जानेसे उस रणभूमिमें चलने फिरनेके लिये मार्ग नहीं रहा। वहां लोग बड़े कष्टसे संचार कर सकते थे ॥ ३४ ॥ रीछोंकी आवाजसे, और आंतोंके भूषण पहिनकर नाचते हुए बेतालोंसे वह रण बड़ा ही रौद्र और भयंकर हो गया ॥ ३५ ॥

आखिर इस महायुद्धमें प्रद्युम्नने अपनी मायासे पांडवादि शूरवीरोंको बलदेवादि सहित मार डाला ॥ ३६ ॥ यह सुनकर तथा देखकर श्रीकृष्णजी बड़े क्रोधित हुए और हाथीको छोड़कर रथपर सवार हो रणभूमिके सम्मुख हुए ॥ ३७ ॥ और अपने बाणोंसे लोकको आच्छादित करते हुए शत्रुकी ओर चल पड़े। स्त्री और बंधुजनोंके वियोगसे उत्तेजित होकर वे अपने शत्रुको बलपूर्वक नष्ट करनेकी इच्छा करने लगे। ॥ ३८ ॥ पिताको विलक्षण क्रोध भावसे आता हुआ देखकर विनयवान प्रद्युम्नकुमार अपने रथको उनकी ओर धीरे २ चलाने लगा ॥ ३९ ॥ उसी समय श्रीकृष्णजीकी दाहिनी आंख और दाहिनी भुजा फड़कने लगी, जो यथार्थमें इष्ट मिलापकी सूचना करनेवाली थी ॥ ४० ॥ इससे उन्होंने अपने सारथीसे कहा कि, सम्पूर्ण सेनाके क्षीण हो जानेपर, बन्धुजनोंके नष्ट हो जानेपर और युद्धचतुर शत्रुके सम्मुख उपस्थित होनेपर यह मेरी आंख और भुजा क्यों फड़कती है? हे भाई, अब भी और क्या भद्र दिखलाई देगा? भला होनेकी अब और क्या आशा है? ॥ ४१–४२ ॥ सारथी बोला, हे नाथ! इसका फल यही है कि, आप शत्रुको जीतकर और जयकीर्तिको प्राप्त करके अपनी प्यारी महाराणी रुक्मिणी-को पावेंगे। इस विषयमें अब व्यर्थ ही विषाद न करैं ॥ ४३–४४ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्ण और सारथी संतुष्ट चित्तसे परस्पर वार्तालाप करते हुए शत्रुके बिलकुल समीप पहुंच गये ॥ ४५ ॥ अपने शत्रुको बड़े भारी आडम्बरसहित देखकर श्रीकृष्णजीका हृदय स्नेहसे भर आया। इसलिये वे उससे अतिशय मनोहर वचन बोले,—हे विचक्षण शत्रु! मेरे वचन सुन, तू मेरी स्त्रीका हरण करनेवाला, बंधुओंका मारनेवाला तथा और भी अनेक दुष्कर्मोंका करनेवाला है, तौ भी क्या किया जावै, तुझपर मेरा अन्त-रंगस्नेह बढ़ता है। इसलिये तू मेरी गुणवती भार्याको शीघ्र ही सौंप दे, और मेरे आगेसे जीता हुआ

कुशलपूर्वक चला जा ॥ ४६–४९ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार हँसकरके बोला, हे सुभटशिरोमणि ! यह कौनसा स्नेहका अवसर है। यह तो मारने काटनेका समय है ॥ ५० ॥ मैं तुम्हारे बंधुओंका हंता, और तुम्हारी स्त्रीका हर्त्ता हूं, ऐसे शत्रुपर भी यदि तुम स्नेह करते हो, तो तुम्हारा शत्रु और कैसा होगा ? ॥५१॥ यदि तुम युद्ध नहीं कर सकते हो, तो मुझसे कहो कि, "हे धीर वीर ! मुझे स्त्रीकी भिक्षा प्रदान करो, अर्थात् मेरी भार्या मुझे सौंप दो" ॥ ५२ ॥ ऐसे चुभनेवाले वचन सुनकर श्रीकृष्णजी क्रोधसे लाल पीले हो गये। और धनुषको खींचकर अपने मदसे उद्धत हुए शत्रुपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥ बाणोंके समूहसे उन्होंने आकाश, धरती, तथा दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ५४ ॥ यह देखकर प्रद्युम्नकुमारने अपने अर्धचन्द्र चक्रसे श्रीकृष्णजीका धनुष तोड़ डाला। इससे क्रोधित होकर उन्होंने जबतक दूसरा धनुष धारण किया और बाण चलानेका उद्योग किया, तबतक प्रद्युम्न उस धनुषको भी नष्ट करके बोला, आपने ऐसी अच्छी धनुषविद्याकी चतुराई कहांसे पाई ? पृथ्वीमें जितने यदुवंशी भोजवंशी तथा पांडव आदि शूरवीर प्रसिद्ध हैं, आप तो उन सबके स्वामी और शस्त्रविद्याके पंडित हैं ! इस युद्धकार्यमें आपका धनुर्धरपना देख लिया गया, जो आप अपने धनुषकी भी रक्षा नहीं कर सके ! ॥ ५५–५९ ॥ जो राजाका वेष धारण करता है, और युद्ध करना नहीं जानता है, वह स्वेच्छाचारी होकर कैसे जीता रह सक्ता है ? ॥ ६० ॥ अथवा तुम्हें अपने मरे हुए बंधुओंसे क्या प्रयोजन है ? और भार्याका भी क्या करोगे ? मेरे आगेसे जीते हुए चले जाओ, और अपने घर जाकर खूब सुख भोगो ॥ ६१ ॥ जब प्रद्युम्नकुमारने इस प्रकारकी हँसीकी बातोंसे नारायणकी खूब ही ताड़ना की, तब वे भी तीसरा धनुष लेकर प्रद्युम्नपर मर्मस्थलोंको छेद डालनेवाले अतिशय तीखे बाण चलाने लगे, जिनके मारे मायावी प्रद्युम्नकी सारी सेना छिन्नभिन्न हो गई ॥ ६२–६३ ॥ अबकी बार उन्होंने कामकुमारका छत्र गिरा दिया, ध्वजा गिरा दी, सारथीको औंधाकर दिया, और घोड़ेको तथा परिजनोंको धराशायी कर दिया ॥ ६४ ॥ यह देख प्रद्युम्नकुमार शीघ्र ही दूसरे रथपर चढ़ आया और उसने तत्काल ही अपने पिताको भी अपने समान कर

दिया, अर्थात् उनके छत्र धुजा, सारथी तथा घोड़ेको भी गिरा दिया, रथ रहित कर दिया। ठीक ही है, मायाके बलसे क्या नहीं हो सकता है? ॥६५॥ तब यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णजीने भी दूसरे दिव्य रथपर सवार होकरऔर क्रोधसे अपनी उत्कृष्ट विद्याको बुलाकर अग्निबाण चलाया। सो प्रलयकालकी अग्निके समान उस देवोपनीत बाणने कामदेवकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर जलाना शुरू कर दिया। वह अग्नि कहीं तो अपनी दहनशक्तिसे धाँय धाँय करने लगी, और कहीं फक फक करती हुई बड़े २ फुलिंगे उड़ाकर दिशाओंको आच्छादित करने लगी। उस स्फुरायमान अग्निकी दीप्ति कटकके अन्ततक पहुंच गई, यह देखकर शराशनके धारण करनेवाले प्रद्युम्नकुमारने अपने वारुणबाणका स्मरण करके उसे शत्रुके ऊपर चलाया। सो उस महामेघ बाणने जो कि इन्द्रधनुषकरके युक्त था, तथा जो बिजलीके सहित गरजता था, आकाशसे वज्र गिराते हुए तथा मूसलाकार जलधारा बरसाते हुए थोड़ी ही देरमें अग्निबाणको नष्ट कर दिया ॥६६–७२॥ मधुसूदन अर्थात् श्रीकृष्णजीने अपने अग्निबाणको इसतरह नष्ट हुआ देखकर महा वेगका धारण करनेवाला वायुबाण चलाया ॥ ७३ ॥ सो उसके चलनेसे क्षण ही भरमें मनुष्य, घोड़े, हाथी, रथ आदि अपने छत्र, केतु और धुजाओंके साथ पत्तों सरीखे बहुत दूरतक उड़ गये ॥ ७४ ॥ इसके पश्चात् कामकुमारने मोहन करनेवाला तामस बाण चलाया, जो भ्रमरोंके तथा कज्जलके समान काला और यहां वहांसे चंचल था ॥७५॥ उसने एक ही साथ सब पृथ्वीको खल वृत्तिवाला बना दिया। किसीको कुछ भी नहीं सूझ पड़ने लगा। सो ठीक ही है, अंधकारकी वृत्ति स्वभावसे ही व्यामोहकी उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ ७६ ॥ उन दोनोंने इसप्रकारके और भी अतिशय प्रचंड दिव्य अस्त्र एक दूसरेपर चलाये, जो विद्याधरों और देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे ॥ ७७ ॥ श्रीकृष्णजीने प्रद्युम्नकुमारके ऊपर जो २ अस्त्र चलाये, वे यद्यपि अमोघ थे, अर्थात् कभी खाली जानेवाले नहीं थे, परन्तु व्यर्थ ही गये ॥ ७८ ॥ क्योंकि यह एक नियम है कि, जितने देवोपनीत बाण हैं, वे अपने कुलके ऊपर कभी नहीं चलते हैं ॥ ७९ ॥ अपने बाणोंके व्यर्थ जानेसे श्रीकृष्णजीको प्रद्युम्नकी शक्तिके विषयमें

बड़ाभारी अचरज हुआ। अपने बाण व्यर्थ होनेसे और सेनाके नष्ट हो जानेसे वे चिन्ता करने लगे कि, विना मल्लयुद्ध किये यह दुर्जय शत्रु नहीं जीता जा सकता है, इसलिये अब मैं मल्लयुद्ध ही करूंगा। ऐसा निश्चय करके और बद्धपरिकर होकर बलवान नारायण बाहुयुद्ध करनेकी इच्छासे रथसे पृथ्वीपर कूद पड़े। उनके चरणोंके प्रहारसे धरतीमें गड्ढे हो गये, और पर्वतोंकी संधियां शिथिल पड़ गईं ॥ ८०–८३ ॥ फूले हुए कमलके समान दिव्य शरीरवाले, क्रोधित, और उग्र वचन बोलनेवाले श्रीकृष्णजीने शत्रुपर लाल लाल दृष्टि डाली। अर्थात् बड़े क्रोधसे अपने शत्रुकी ओर देखा ॥ ८४ ॥ प्रद्युम्नकुमार भी पिताको तयार देखकर रथसे उतर पड़ा और शीघ्रतासे साम्हनेकी ओर चला ॥ ८५ ॥ उन दो हाथियोंके समान दोनों योद्धाओंको मल्लयुद्धके लिये तयार देखकर विमानमें बैठी हुई रुक्मिणी और उदधिकुमारीने नारदजीसे कहा, हे महाराज! अब आप विलम्ब न करें, शीघ्र ही इन दोनोंको रोक दें। हे पिता! इन बाप बेटोंकी लड़ाईसे अब हमारी सर्वथा हानि है ॥ ८६–८८ ॥

रुक्मिणी और उदधिकुमारीके भेजे हुए नारदजी शीघ्र ही उन लड़नेको तयार हुए शूरवीरोंके बीचमें आ खड़े हुए और बोले, हे माधव! तुमने इससमय अपने पुत्रके ही साथ यह क्या कार्य प्रारंभ कर रक्खा है? यह वही प्रद्युम्नकुमार अपने पितासे हर्षपूर्वक मिलनेके लिये आया है, जो राजा कालसंवरके घरमें वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जिसे सोलह लाभ हुए हैं, और जो गुणोंका घर है। यह तो सोलह वर्षके पीछे मिलनेको आया है, और आपने इससे युद्ध ठान रक्खा है! हे जनार्दन! अपने बेटेके साथ युद्ध करना, आपके लिये योग्य नहीं है ॥ ८९–९२ ॥ श्रीकृष्णजीको इसप्रकार उलहना देकर नारदजी प्रद्युम्नकुमारसे भी बोले कि, हे कामकुमार! और तुम भी अपने पिताके साथ यह क्या कर रहे हो? ॥ ९३ ॥ अब तुम्हें इन जगतके पूज्य और स्नेहके गृहस्वरूप पिताके साथ दूसरी सब चेष्टायें छोड़कर जो पुत्रका उत्तम कर्तव्य होता है, वह करना चाहिये ॥ ९४ ॥ नारदमुनिके वचन सुनकर श्रीकृष्णजी मल्लोंकी चेष्टाको छोड़कर स्नेहके वश प्रद्युम्नकी ओरको मिलनेके लिये चले। चलते समय पुत्रके आनेके आनन्दसे और

सेनाके नष्ट होनेके शोकसे उनकी गतिमें शीघ्रता और मन्दता दोनों ही दिखलाई देती थी ॥ ६५–९६ ॥ समीप पहुंचकर उन्होंने कहा, हे बेटा! अब शीघ्र आओ, और मुझे अपनी भुजाओंके गाढ़ आलिंगनका सुख प्रदान करो ॥ ९७ ॥ पिताके स्नेहसे भरे हुए, कानोंको सुख देनेवाले और रमणीय वचन सुनकर कुमारका चित्त आनन्दसे खिल उठा ॥ ९८ ॥ वह शीघ्रही अपने वेश को बदलकर विनयसे मस्तक झुकाये हुये पिताके चरण कमलोंमें पड़ गया ॥ ९९ ॥ पिताने भी उसे तत्काल ही अपनी भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया और संयोगसुखमें मग्न होकर नेत्र बन्द कर लिये ॥१००॥ दोनोंके शरीर अन्तरंगके आनन्दको सूचित करनेवाले चिन्हसे चिन्हित हो गये अर्थात् दोनोंके शरीर कंटकित हो गये। और उसी प्रकार मिले हुए निश्चल हो रहे। उन्हें बहुत देरतक इसी अवस्थामें देखकर नारदजी आनन्दसे पूरित हो हँसते हुए इसप्रकार संतोषदायक वचन बोले, हे वीरो! यहांपर विना कामके क्यों बैठे हुए हो? अब द्वारिकाको क्यों नहीं चलते हो? ॥ १–३ ॥ नगरीके सारे स्त्री पुरुष उत्सुक हो रहे होंगे, इसलिये बड़े भारी उत्सवके साथ अपनी उत्कृष्ट नगरीमें प्रवेश करो ॥ ४ ॥ नारदजीकी नगर प्रवेशकी बात सुनकर श्रीकृष्णजी एक लम्बी सांस लेकर और दुःखसे गद्गद होकर बोले, महाराज! मैं सेनासे रहित हो गया हूं, अर्थात् मेरी सारी सेना युद्धमें मारी जा चुकी है। इससमय यह जो मेरा पुत्र मिल गया, सो ही अच्छा हुआ ॥ ५–६ ॥ सारी नगरीमें बंधुओं और सेनाओंसे रहित होकर केवल दो ही जने शेष रह गये हैं। एक मैं और दूसरे भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर। अथवा मैं और प्रद्युम्न। इसलिये हे मुनिनायक! बतलाओ, नगर प्रवेशके समय अब मैं क्या शोभा कराऊं? और इस समय किसके ऊपर छत्र धारण किया जावेगा? अर्थात् जब प्रजा ही नहीं है, सेना ही नहीं है, तब छत्र किसका?

श्रीकृष्णजीके मुंहसे इसप्रकार दीनताके वचन सुनकर नारदजी उनका दुःख निवारण करते हुए हँस करके बोले, कुमारने इस युद्धमें किसी एक जीवको भी नहीं मारा है और न हाथी घोड़ों और पैदलोंको किसीको कुछ पीड़ा पहुंचाई है ॥ ७–१० ॥ जो कामकुमार अपने शत्रुओंको भी नहीं मारता है, हे

विष्णुमहाराज! वह अपने पिताकी सेनाको कैसे मारेगा? आप सेनाके नष्ट होनेका व्यर्थ शोक न करें। सेना मरी नहीं है। यह सुनकर नारायणने पूछा, "तो क्या हुआ है?" नारदजी इस प्रश्नका उत्तर कुछ भी न देकर प्रद्युम्नकुमारसे बोले, क्यों कुमार! तुम अभीतक अपने पिताके साथ ऐसी चेष्टायें करना नहीं छोड़ते हो, जिनका केवल बालकोंमें ही आदर होता है। देखो, बहुत समयकी हँसी भी अच्छी नहीं लगती है। योग्यता और अयोग्यताको जाननेवाले लोगोंकी हँसी एक क्षण भरके लिये होती है। इसलिये अब तुम हँसी छोड़कर मनोहर चेष्टाएँ करो॥ ११-१४॥ और इस सारी सेनाको उठाकर कृष्णजीको हर्षसे पूरित करो। नारदजीके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारने वैसा ही किया। हाथी घोड़ों और पैदलोंसे भरी हुई सारी सेनाको लीला मात्रमें उठा दी। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था कि, सब लोग सोकरके एकही साथ उठ रहे हैं॥ १५-१६॥ सेनाके वीर उठते हुए "मारो! मारो! इस पापी शत्रुको शीघ्र ही पकड़ लो!" इसप्रकार शब्द करते थे॥ १७॥ अपने वीरोंको इसप्रकार युद्ध करनेके अभिलाषी देखकर श्रीकृष्णजी हँसते हुए बोले, "बस रहने दो, बहुत हो गया। सुभटो! तुम्हारी सारी शूरवीरता देख ली गई, मेरे अकेले एक पुत्र प्रद्युम्नकुमारने तुम सबको मार डाला था।" ॥ १८॥ नारायणके ये मनोहर वचन सुनकर यादव पांडवादि सबको बड़ा भारी अचरज हुआ॥ १९॥ उनके विस्मित होनेपर श्रीकृष्णजी फिर बोले, यह मेरा पुत्र विद्याधरोंका स्वामी, सम्पूर्ण विद्याओंका निधान, और अपनी मायासे सारे संसारको जीतनेमें शूरवीर है। इससमय मुझसे मिलनेके लिये आया है॥ २०-२१॥ नारायणके ये वचन सुनते ही भीम अर्जुन आदि सब सुभट हाथी घोड़ों और रथोंसे उतर पड़े और प्रद्युम्नकुमारसे स्नेहपूर्वक मिले। कुमारने भी सब बांधवोंको यथायोग्य रीतिसे नमस्कार आदि किया। समुद्रविजय तथा बलभद्र आदि जो गुरुजन थे, उन्हें मस्तकको धरतीमें लगाकर प्रणाम किया और जो अगणित राजा नम्रीभूत हुए थे, उनको हृदयसे लगाकर तथा कुशलप्रश्न पूंछकर संतुष्टकिया। प्रद्युम्नकुमारको देखकर सम्पूर्ण बंधुजनोंको बहुत ही प्रसन्नता हुई। ठीक ही है अपने योग्य स्वजनको

देखकर किसे संतोष नहीं होता है ? सभीको होता है ॥ २२–२७ ॥

जिस समय यहांपर यह मेल मिलाप हो रहा था, उसीसमय भानुकुमार सेनामेंसे निकलकर शीघ्र ही अपने घर गया और मातासे प्रद्युम्नकुमारका सब चरित्र कहने लगा ॥ २८ ॥ जब तक भानुकुमारने प्रद्युम्नका आगमन वृत्तान्त कहा, तब तक इन दोनोंके और जो नौकर चाकर तथा सहायक लोग थे, वे भी सब सुननेके लिये आ गये। अपने बगीचेका, वनका, रथका, वापिकाका, और फूलोंके ढेरका, सत्यानाश करना तथा उदधिकुमारीका हरण करना सुनकर सत्यभामा अपने पुत्रके सहित अतिशय दुःखित हुई। उसके दुःखका वर्णन केवलीके विना और कौन कर सकता है ? ॥२९–३१॥

वहां प्रेमपूरित श्रीकृष्णजी प्रद्युम्नकुमारसे बोले, बेटा ! अब तुम अपनी माताको यहां ले आओ। यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार नीचेको दृष्टि करके कुछ सोचने लगे। उत्तर न पाकर पिताने फिर कहा कि, तुम अपनी माताको क्यों नहीं लाते हो, नीचा सिर करके क्या सोचते हो ? तब नारदजी बोले, पृथ्वीमें अपनी २ स्त्री सबको प्यारी होती है, तुमने इसप्रकारसे क्यों नहीं कहा कि, अपनी माता और स्त्रीको ले आओ। यह इसी लिये नीचेको दृष्टि करके सोचता होगा कि, अकेली माताको कैसे ले आऊं, और स्त्रीको लानेकी पिता आज्ञा नहीं देते हैं ॥ ३२–३६ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले, महाराज ! इसे बहू कहांसे प्राप्त हो गई ? मुझे तो उसके विषयमें कुछ ज्ञान भी नहीं है। नारदजी कहने लगे, हे जनार्दन ! दुर्योधनने अपनी जो उदधिकुमारी नामकी पुत्री भानुकुमारके साथ विवाह करनेके लिये भेजी थी, उसे इसने भीलका वेष धारण करके और कौरवोंको जीतकर हरण कर ली थी। वह इससमय विमानमें रुक्मिणीके साथ बैठी है ॥ ३७–३९ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्णजी संतुष्ट हुए और प्रद्युम्नसे बोले, वत्स ! शीघ्र जाओ और अपनी माता तथा बहूको ले आओ ॥ ४० ॥ पिताकी आज्ञानुसार कुमारने विमानको शीघ्र धरती पर उतार लिया। उसमें उसकी माता और भार्या दोनों बैठी हुई थीं ॥ ४१ ॥ उस विमान को देखकर सबके सब यादव बहुत प्रसन्न हुए। क्योंकि वह एक अपूर्व वस्तु थी ॥ ४२ ॥

रुक्मिणीने अपनी वधूके साथ आकाशरूपी आंगनसे उतरकर विनय और भक्तिके सहित श्रीकृष्ण-जीके चरणोंको नमस्कार किया ॥ ४३ ॥ उन्हें देखकर नारायण बहुत प्रसन्न हुए और रुक्मिणीसे बोले, तुम अपने मंत्रियोंके साथ जाकर नगरीको उत्सवयुक्त तथा शोभायुक्त करो ॥ ४४ ॥ तब रुक्मिणी प्रसन्न होकर मंत्रियोंके साथ गई और पुत्रके आगमनका सूचक महोत्सव करने लगी। सारी नगरी श्रृंगारित की गई, चन्दनके पानीसे छिड़की गई और सुन्दर २ फूलोंसे गुल्फपर्यंत अर्थात् पैरकी गाठों-तक पूर दी गई ॥ ४५-४६ ॥ ध्वजा पताका तोरणों और नानाप्रकारके वेषोंसे सजाकर बाजारोंकी शोभा की गई ॥ ४७ ॥

नगरीकी सजावट हो चुकनेपर मंत्रियोंने श्रीकृष्णमहाराजको विनयसे मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक सूचित किया कि, हे नाथ! नगरीका श्रृंगार हो चुका ॥ ४८ ॥ उनके वचन सुनकर नारायण बड़े प्रसन्न हुए और तेज वजनेवाले नगारा आदि नानाप्रकारके बाजित्रों और नृत्य करती हुई गणिकाओंके साथ बड़े भारी उत्सवसे नगरकी ओर चले। उनके साथ महाराज समुद्रविजय आदि बहुतसे राजा थे। नगरमें प्रवेश करते समय अगणित स्त्री और पुरुष देखनेके लिये आये। स्त्रियोंने तो देखनेकी उतावली में अपने रूपकी चेष्टायें विपरीत प्रकारकी कर लीं ॥ ४९-५१ ॥ मुंहमें काजल लपेट लिया, आंखोंमें केशर आंज ली कानोंमें बिछुए और पैरोंमें कर्णफूल पहिन लिये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार उस नगरीकी स्त्रियाँ नानाप्रकारकी चेष्टायें करती हुई और हाथोंमेंका अधूरा किया हुआ काम छोड़कर बाहर आ गईं ॥ ५३ ॥ बहुतसी स्त्रियां कामदेवका रूप देखकर और अपने चित्तमें संतुष्ट होकर आपसमें इस प्रकार बातचीत करने लगीं—॥ ५४ ॥

एक बोली, यदि कामदेवके समान सुन्दर रूपवाला पति नहीं मिला, तो अन्य काठके समान पुरुषों से क्या प्रयोजन है? दूसरी प्रौढ़ अवस्थाकी स्त्री बोली, यदि मेरे पुत्र हो, तो कामदेव ही सरीखा हो, नहीं तो पुत्रका न होना ही अच्छा है ॥ ५५-५६ ॥ उस रुक्मिणीको धन्य है, जिसने इसे अपने उदरमें

धारण किया है और इस श्रीकृष्णको धन्य है, जिसके घर ऐसे पुत्रका जन्म हुआ है ॥५७॥ कोई तीसरी कामिनी बोली, उस कनकमाला विद्याधरीको धन्य है, जिसने इसे लालन पालन करके तथा दूध पिलाकर बढ़ाया है ॥ ५८ ॥ यादवोंके कुलका यह एक जगत्प्रसिद्ध पुण्य ही है, जिसमें इसका अवतार हुआ है, और द्वारिकानगरीका बड़ा भारी भाग्य है, जिसमें यह विचरण करेगा ॥ ५९ ॥ और सबसे अधिक प्रशंसाके योग्य तो उदधिकुमारीका पुण्य है, जो इसके अंकमें आरूढ़ होकर रमण करेगी ॥६०॥

और एक कामिनी अपनी संगवालीसे बोली, हे सखी ! देख, देख, यह प्रद्युम्नकुमार आया । यह श्रीकृष्णजीका वही पुत्र है, जिसे छोटेपनमें कोई शत्रु हर ले गया था और खदिरा अटवीमें शिलाके नीचे ढँक गया था । तथा जिसे एक विद्याधरोंका राजा अपनी विद्याके बलसे निकाल ले गया था और घर ले जाकर उसने लालन पालनकर बड़ा किया था, तथा विद्याओंसे भूषित किया था ॥ ६१–६३ ॥ अब यह सोलह प्रकारके लाभ और विद्याधरोंकी विद्याओंको लेकर रुक्मिणीके पूर्वपुण्यके प्रभावसे अपने पिताके घर आया है ॥६४॥ इसके पुण्यके योगसे शत्रु भी परमबंधु हो गये हैं । कहां तो इसके सोलह प्रकारके लाभ, कहां इसकी आकाशचारिणी गति, कहां इसकी प्रीति और कहां इसकी पृथ्वीमें फैली हुई कीर्ति ? द्वारिकापुरीमें अच्छे कुलसे उत्पन्न हुए बहुतसे यदुवंशी हैं, परन्तु उनमेंसे किसी एकका भी नाम किसीको (इतना) ज्ञात नहीं है ॥ ६५–६७ ॥ यह सुनकर एक और स्त्री बोली, अरी मूर्खा ! तू इसप्रकार वारंवार क्या प्रशंसा करती है ? विद्या, धन, कोष और यश सब पुण्यसे प्राप्त होते हैं ॥६८॥ इसने पूर्व जन्ममें दुर्धर तप किया है, सत्पात्रोंको भावपूर्वक उत्कृष्ट दान दिया है, भाव लगाकर श्रीजिनेन्द्रचन्द्रकी पूजा की है, और निर्मल चारित्र धारण किया है । इसीलिये यह कामदेवका जन्म पाया है, नहीं तो कहां था ? इस प्रकारकी पापरहित विद्या, शूरवीरता, मनोहरता, गुरुजनोंके चरणोंमें भक्ति और रमणीय लक्ष्मी इसे कैसे मिलती ? ॥ ६९–७१ ॥

इसप्रकार स्त्रियोंकी नानाप्रकारकी बातें सुनते हुए प्रद्युम्नकुमार जो कि हाथीपर आरूढ थे, जिनके

मस्तकपर सफेद छत्र था, चँवर ढुर रहे थे, और जो स्त्रियोंके नेत्ररूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान थे, अपने पिताके साथ अपनी माताके उत्सवयुक्त महलमें पहुँचे ॥ ७२–७३ ॥ अपने सर्व लक्षणोंसे लक्षित पुत्रको आया हुआ देखकर माताने अर्घपाद्य आदि देकर मंगलक्रिया की ॥ ७४ ॥ उस समय कामकुमारके आनेपर एक सत्यभामा और भानुकुमारको छोड़कर सारी द्वारिकाके लोगोंने उत्सव मनाया। सत्यभामाके यहां उत्सवके स्थानमें शोक हुआ ॥ ७५ ॥

बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, तथा और भी अनेक राजा कितने ही दिन रुक्मिणीके महलमें आनन्द पूर्वक ठहरे। एक दिन नारायणने अपने मंत्रियोंसे कहा कि, अब प्रद्युम्नका विवाह बड़े भारी उत्सवके साथ करना चाहिये। यह सुनकर कुमारने विनयपूर्वक कहा कि, महाराज कालसंवर और रानी कनकमालाके समक्षमें मेरा विवाह होगा, नहीं तो मैं विवाह नहीं करूंगा। वे मेरे पालन करनेवाले सच्चे माता पिता हैं ॥ ७६–७९ ॥ कुमारका उचित विचार सुनकर नारायणने उसीसमय एक दूतको कालसंवर महाराजके पास भेजा। उसने उनके निकट जाकर प्रद्युम्नकी प्रतिज्ञा सुनाई कि, आपके उपस्थित हुए विना वे अपना विवाह नहीं करेंगे। उसे सुनकर विद्याधरपति अपनी रानीके साथ विचारकरके चलनेको तयार हो गया। परन्तु उसका हृदय अपनी पूर्वकृतिपर लज्जासे व्याकुल होने लगा ॥ ८०–८१ ॥ आखिर वह बड़ी भारी सेनाके साथ बहुतसी कन्याओंको और रतिकुमारीको उसके पिताके साथ लेकर द्वारिकापुरीमें जा पहुंचा ॥ ८२ ॥ विद्याधरोंके राजाको आया सुनकर प्रद्युम्नकुमार अपने पिताके सहित बड़ी भारी सेना लेकर सम्मुख गया। और वहां उसने बड़े भारी स्नेहसे कालसंवर और कनकमालाके चरणोंको नमस्कार किया। श्रीकृष्णजी भी उनसे बड़ी प्रसन्नतासे मिले ॥ ८३–८४ ॥ उसी समय मोहके वश रुक्मिणीने भी वनमें आकर रानी कनकमालासे विनयपूर्वक भेंट की ॥ ८५ ॥ इसके पश्चात् श्रीकृष्णजीने आगन्तुकोंका बड़े भारी उत्सवके साथ नगरप्रवेश कराया और भक्तिसे उन्हें खूब संतुष्ट किया ॥ ८६ ॥

नगरीमें उससमय बजते हुए बाजोंसे मनोहर, और नृत्य करती हुई स्त्रियोंके रमणीय गीतोंसे

सुन्दर बड़ा भारी उत्सव हुआ ॥ ८७ ॥ कहीं तो मनुष्योंके बजाये हुए बाजोंका शब्द सुन पड़ता था, कहीं स्त्रियोंका किया हुआ नृत्य दिखलाई देता था, ॥ ८८ ॥ कहीं पताकायें उड़ती थीं, कहीं रत्नोंके तोरण लटकते थे और कहीं घोड़ोंके समूह, हाथियोंके झुंड, रथोंके थोक तथा छत्रवृन्द दिखलाई देते थे। इसप्रकार नाना भांतिके उत्सवोंसे वह नगरी सुशोभित हो रही थी ॥ ८९–९० ॥

इसप्रकार चिन्तित विभूतिके उपस्थित होनेपर प्रद्युम्नकुमार श्रीजिनेन्द्रदेवकी आठ प्रकार पूजा करके सब राजाओंके समीप गया। उनसे मिलनेपर उसने कहा कि, मुझे सत्यभामा महाराणीके सिरकी वेणी मँगा दो, मैं उसपर पैर रखकर घोड़ेपर चढूंगा। क्योंकि इस बातकी प्रतिज्ञा श्रीबलदेव महाराजके समक्षमें हो चुकी है। सत्यभामाने यह बात स्वीकार की थी ॥ ९१–९३ ॥ लोगोंके मुंहसे यह बात सुनकर कि, प्रद्युम्नकुमार राजाओंके साम्हने वेणी मंगानेके लिये कह रहा है, रुक्मिणी महाराणी स्वयं आकर बोली, बेटा! तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये। श्रेष्ठपुरुषोंका यह काम नहीं है। तू वेणी ही क्या मांगता है? तेरे द्वारिकामें आते ही सत्यभामाका तो सिरमुंडन हो चुका, और वह सौ वार गधेपर चढ़ चुकी। अब प्रगट हुई बातको और क्या प्रगट करना है? ॥ ९४–९५ ॥

माताके रोकनेसे प्रद्युम्न चुप हो रहा, और घोड़ेपर चढ़कर याचकोंकी इच्छाओंको कल्पवृक्षके समान पूर्ण करता हुआ, कालसंवर बलदेव और श्रीकृष्णजीके साथ, नानाप्रकारके उत्सवोंसहित, वनमें गया ॥ ९६–९७ ॥ सो उसी सुन्दर वनमें कामदेव (प्रद्युम्न) और रतिका विवाह हुआ। जिससे स्वजनजनोंको अतिशय आनन्द हुआ ॥ ९८ ॥ उसीसमय उदधिकुमारीआदि पांचसौ आठ कन्यायें भी जो देवांगनाओंके समान रूपवती गुणवती थीं, प्रद्युम्नकुमारको व्याही गईं ॥ ९९ ॥ उन्हें विवाह करके उसने बड़ी भारी विभूतिके साथ नगरीमें प्रवेश किया। श्रीकृष्णजीके कहनेसे विद्याधरोंने ही प्रद्युम्नका विवाह विहित किया ॥ २०० ॥

विद्याधर लोग स्वजनों और परिजनोंसे भली भांति आदरसत्कार पाते हुए कितने ही दिन द्वारिका

में रहे। एकदिन कालसंवर महाराजने बड़ी भारी विनयसे हाथ जोड़कर कहा कि, विष्णुमहाराज! यदि आप मुझे कृपाकरके आज्ञा देवें, तो मैं अपने स्वजन परिजनोंके साथ अपने नगरको जाऊं ॥ १–३ ॥ विद्याधरनरेशको जानेके लिये उत्सुक देखकर श्रीकृष्णजी अपने बंधुजनोंके सहित अतिशय स्नेह प्रगट करके बोले, हे मित्र! आपने प्रद्युम्नको अपने मन्दिरमें ले जाकर वृद्धिको प्राप्त किया है, इसलिये यह पहले आपका ही पुत्र है, पीछे मेरा है ॥ ४–५ ॥ ऐसा विचार करके हे विद्याधरपति! आपको भी इस पुत्रके विषयमें जैसा उचित हो, वैसा करना चाहिये। श्रीकृष्णजीके पश्चात् रुक्मिणीने भी ऐसा ही कहा कि, इसे आपको अपना पुत्र समझना चाहिये। और कनकमालाको विधिपूर्वक नाना भांतिके वस्त्र आभरणादि देकर संतुष्ट किया ॥ ६–७ ॥ फिर श्रीकृष्णजीने सम्पूर्ण विद्याधरोंको आदरपूर्वक संतुष्ट करके कालसंवरको अपने नगरकी ओर विदा किया। उन्हें पहुंचाकर श्रीकृष्णजी तो रुक्मिणीके सहित विद्याधरोंकी चर्चा करते हुए अपने महलको लौट आये, परन्तु प्रद्युम्नकुमार मोहके मारे अपने उन माता पिताओंके साथ चला गया। सो कुछ दूर जाकर और उनके चरणकमलोंको नमस्कार करके–उन्हें अपनी विनयसे संतुष्ट करके लौट पड़ा और यादवोंसे भरी हुई नगरीमें आ पहुंचा ॥ ८–११ ॥

प्रद्युम्नकुमारका विवाह देखकर यदुवंशी भोजकवंशी आदि सब ही शुभचिन्तक सुखी हुए। माता पिताके सुखका तो कहना ही क्या है? रुक्मिणीको प्रसन्नचित्त देखकर और अपना मनोरथ, सफल हुआ समझकर नारदजी भी सुखी हुए ॥ १२–१३ ॥ सत्यभामाके दुःखको देखकर तो उन्हें और भी अधिक संतोष हुआ! विवाहादि कार्य हो जानेपर वे प्रसन्नतासे अपने इच्छित स्थानको चले गये ॥१४॥

इसके पश्चात् पिताकी भक्तिके भारसे नम्र, सुखसागरके मध्यमें विराजमान, देवोंद्वारा सेवनीय, देवपूजा गुरुसेवा आदि छह कर्मोंमें तत्पर, और स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंपर भ्रमरोंके समान गुंजार करनेवाला प्रद्युम्नकुमार आनन्दयुक्त रहकर अपने जाते हुए समयको नहीं जान सका। अर्थात् सुख ही सुखमें उसे नहीं मालूम हुआ कि, कितना समय बीत गया ॥ १५–१६ ॥

तदनन्तर सत्यभामाने जो कि, प्रद्युम्नकुमारके विवाहको देखकर दुःखसे बहुत आकुल हुई थी–दुःख के समुद्रमें डूब रही थी, सुन्दररूप गुण आदि सब लक्षणोंवाली अनेक कन्याओंको मंगनी करके बुलवाईं और उनका भानुकुमारके साथ विवाह कर दिया। सो माताका परमभक्त तथा गुणवान भानुकुमार भी उन स्त्रियोंके साथ उत्कृष्ट सुख भोगने लगा ॥ १७–१९ ॥

सारी पृथ्वीमें प्रद्युम्नकी कीर्ति फैल गई। नगरमें, चौराहेमें जहां तहां प्रद्युम्नकी ही कथा सुनाई पड़ती थी ॥ २० ॥ यह कीर्ति उस बलवानने अपने पुण्यके प्रभावसे प्राप्त की थी। क्योंकि संसारमें जो कुछ चिन्तनीय तथा अमूल्य पदार्थ हैं, वे सब पुण्य हेतुज हैं, अर्थात् पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ स्वजनोंसे मिलाप होना, चिन्तित पापरहित तथा उत्तम अर्थकी प्राप्ति होना, और रातदिन देव तथा मनुष्योंसे सेवित होना, ये सब पुण्यरूप वृक्षके फल हैं ॥ २२ ॥ धर्मसे अनेक प्रकारके पवित्र सुख मिलते हैं, धर्मसे निर्मल कीर्ति होती है, धर्मसे ही स्वजनों की सज्जनता, रिपुओंका क्षय, विद्या, विवेकादि प्राप्त होते हैं, और धर्मही संसारके क्लेश आदि तापोंको हरण करनेके लिये सोम अर्थात् चन्द्रमाकेसमान सौम्य है, इसलिये हे बुद्धिमानो ! जिनभगवानके कहे हुए अतिशय कल्याणरूप धर्मकी सेवा करो ॥ २२३ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नका युद्ध, स्वजनोंका मिलाप, तथा विवाहोत्सवके वर्णनवाला ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादशः सर्गः।

प्रद्युम्नकुमार द्वारिकानगरीमें सुखसागरमें निमग्न हो रहे थे। ऐसा पूर्वमें कहा जा चुका है। अब उसके अनन्तर कीर्तिशाली शंबुकुमारका दिव्यचरित वर्णन करते हैं:— ॥ १ ॥

प्रद्युम्नकुमारका पूर्व भवका छोटा भाई कैटभ सोलहवें स्वर्गमें इन्द्र हुआ था। उसकी अनेक देव

सेवा करते थे। एक दिन निर्मल विमानमें बैठे हुए उस महामतिकी ऐसी मति हुई कि, जिनेश्वर भगवान की वन्दना करना चाहिये ॥ २-३ ॥ इसप्रकारके शुभभावोंके वशवर्ती होकर वह बड़ी भारी भक्तिसे सुमेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें जो विदेह क्षेत्र है, उसकी पुण्डरीकिनी नामक प्रसिद्ध नगरीमें गया। उस नगरीको पद्मनाभि नामके राजा पालन करते थे। वहां जाकर उसने श्रीजिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनके कहे हुए दुःखके नाश करनेवाले धर्मका स्वरूप सुना ॥ ४-६ ॥ इसके पश्चात् उस इन्द्रने अवसर पाकर और फिर नमस्कार करके अपने पूर्वभवोंका वृत्तान्त पूछा कि, हे विश्वनाथ! हे जगत्पालक! हे विश्ववल्लभ! और हे गुणाकर! कृपाकरके मेरे भवान्तरोंका चरित्र कहिये:— ॥ ७-८ ॥ यह सुनकर जिनेन्द्रभगवानने कहा, हे देवेन्द्र! सुनो, तुम्हारे पूर्वभवोंका वर्णन संक्षेपसे करते हैं। निदान भगवानने ब्राह्मणके भवसे लेकर इन्द्रके भवनकका सब वृत्तान्त कहा, जिसप्रकार कि पूर्वमें नारदजीसे कहा था ॥ ९-१० ॥

अपने पूर्वभवोंका वर्णन सुनकर वह देवोंका स्वामी बोला, हे जिनराज! यह बतलाइये कि, मेरे भाई मधुका जीव कहां है? जिनभगवानने कहा कि, इससमय वह द्वारिकानगरीमें श्रीकृष्णनारायणका रुक्मिणीमहाराणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र प्रद्युम्नकुमार है ॥ ११-१२ ॥ देवराजने फिर पूछा कि, मेरा उससे मिलाप होगा या नहीं? भगवानने प्रत्युत्तर दिया कि, तुम दोनोंका वहां अवश्य ही संयोग होगा ॥ १३-१४ ॥ क्योंकि तुम भी श्रीकृष्णके पुत्र होओगे। इसमें सन्देह नहीं है। जिनदेवके वचन सुनकर देवराज बड़ा प्रसन्न हुआ और तीर्थंकरको उत्कृष्ट भक्तिसे वारंवार नमस्कार करके वहांसे द्वारिका नगरीको चल पड़ा ॥ १५-१६ ॥

श्रीकृष्णजीकी सभामें पहुंचकरके उसने अपने कमलके समान नेत्रोंको प्रफुल्लित किये हुए उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कहा, हे प्रभो! मेरे वचन सावधानीके साथ सुनो। मैं थोड़े ही दिनोंमें मनुष्योंको कामदेवके समान प्यारा और स्त्रियोंके चित्तको चुरानेवाला तुम्हारा पुत्र होऊंगा। इसमें

कुछ भी संशय नहीं है। सो तुम अमुक पक्षमें अमुक दिन महाराणीके साथ शयन करना ॥ १७–१९ ॥ इसके पश्चात् उसने श्रीकृष्णजीको एक मणियोंका हार दिया, जो अतिशय दैदीप्यमान था; जिसकी करोड़ सूर्यों सरीखी प्रभा थी। और कहा कि, यह मनोहर हार जो कि अन्य मनुष्योंको दुर्लभ है, उसी मुहूर्तमें मेरी माताको देना ॥ २०–२१ ॥ ऐसा कहकर वह देवराज बड़े आनन्दसे अपने विमानमें बैठकर चला गया।

उसके चले जानेपर श्रीकृष्णजी हर्षित हुए और उस कार्यके विषयमें चिन्ता करने लगे कि, इस प्रद्युम्नके छोटे भाईको जो कि गुणोंका सागर है, किसके गर्भमें अवतरण करूं। विचार करते २ उन्हें एक बुद्धि उत्पन्न हुई कि, प्रद्युम्नकुमारका और सत्यभामाका परस्पर बड़ा भारी द्वेष रहता है। इसलिये यदि सत्यभामाके उदरसे ही इसका अवतार कराया जावेगा, तो छोटे भाईके सम्बन्धसे प्रद्युम्नकी और सत्यभामाकी उत्कृष्ट प्रीति हो जावेगी। यह विचार उन्होंने अपने मनमें ही पक्का कर लिया। प्रद्युम्नकुमारके भयसे यह गुप्त विचार उन्होंने किसीसे भी नहीं कहा ॥ २२–२६ ॥ परन्तु दैवयोगसे यह बात छुपी नहीं रही। प्रद्युम्नकुमारको भाईके उत्पन्न होनेकी तथा हार देने आदिकी सब बातें मालूम हो गईं ॥ २७ ॥

तब प्रद्युम्नने पुत्रके उत्सवमें मोहित होनेवाली अपनी माताके महलमें जाकर उससे एकान्तमें बड़ी विनयसे निवेदन किया कि, हे माता! मेरा भाई कैटभ जो सात भवसे मेरे साथ भ्रमण कर रहा है, इस समय सोलहवें स्वर्गमें देवोंका स्वामी इन्द्र है। और थोड़े ही दिनमें मेरे पिता श्रीकृष्ण महाराजके यहां पुत्र रूपमें अवतार लेगा। यह बात जिनेन्द्रभगवानकी कही हुई है, सो झूठ नहीं हो सकती है। यद्यपि मेरे पिता वह पुत्र सत्यभामा महाराणीको देना चाहते हैं ॥ २८–३१ ॥ परन्तु यदि उसी सब गुणोंकी खानि पुत्रके पानेकी तुझे इच्छा हो; तो मैं तेरे उदरमें ही उसका अवतरण करा सकता हूं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३२ ॥ यह सुनकर रुक्मिणी बोली, यह तुझसे कैसे होगा? क्योंकि यह कार्य तेरे अधिकारमें कदापि नहीं है ॥ ३३ ॥ प्रद्युम्न बोला, नहीं, मेरे अधिकारमें है। जिस दिन सत्यभामाके

संयोगका दिन होगा, उस दिन मैं तुझे ही कृत्रिम सत्यभामा बनाकर पिताके समीप भेज दूंगा जिससे सब कार्य सिद्ध हो जावेगा ॥ ३४ ॥ रुक्मिणी पुत्रके वचनसे संतुष्ट होकर मुसकुराती हुई बोली; बेटा! अब मैं अन्य कष्टरूप पुत्रोंको नहीं चाहती हूं, मुझे तू ही बहुत है। संसारमें तेरे समान तू ही है। सूर्यके समान दूसरा और कौन हो सकता है? ॥ ३५-३६ ॥ हां! यदि तू मेरा पुत्र है, तो जो मैं कहती हूं, सो कर। यह जांबुवती रानी मेरी सौत है, तो भी मुझको प्यारी है। इसका तेरे पिताके साथ बड़ा भारी विरोध है। वे इसको नहीं चाहते हैं। इसलिये तू उस देवका अवतार इसके उदरमें करानेका प्रयत्न कर। उत्तम पुरुषोंकी विभूति पराये उपकार करनेके लिये समर्थ होती है। इसलिये जिसतरह हो, उस तरहसे इसका दुःख निवारण कर ॥ ३७-३९ ॥ "माताके सब वचन मानूंगा और निश्चयसे उन्हींके अनुसार काम करूंगा" ऐसा कहकर और नमस्कार करके प्रद्युम्न जांबुवतीके महलमें गया ॥ ४० ॥

वहां जाकर उसने अपनी मातासे जो बात कही थी, वही एकान्तमें जांबुवतीसे कह दी। वह बोली, तुम्हारे पितासे मेरा विरोध है। फिर मेरे उदरसे पुत्र कैसे हो सकता है? मेरे तो तू ही पुत्र है। यह सुनकर प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे रूप बदल देने आदिका सब विचार कह दिया ॥ ४१-४२ ॥ उसे सुनकर जाम्बुवतीको बहुत संतोष हुआ। वह बोली, बेटा! तू उत्तम है, बुद्धिमान है, जैसा तुझे रुचता हो, वैसा कर ॥ ४३ ॥ इसप्रकार स्वीकारताका उत्तर सुनकर प्रद्युम्न प्रसन्न होकर अपने महलको चला गया। यहां जाम्बुवती उस सुखसमयकी एक चित्तसे प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी ॥ ४४ ॥

इसी बीचमें संसारके प्यारे वसन्त ऋतुका आगमन हुआ। आमोंके बगीचे मौर गये। उनपर कोयलें कुहू कुहू शब्द करने लगीं। संयोगियोंके चित्तोंके समान टेसू फूल गये। मानिनी स्त्रियोंका मान भंजन करनेवाली भ्रमरोंकी झंकार सुनाई पड़ने लगी ॥ ४५ ॥ चैतके महीनेकी सुदी दशवींका दिन आया। श्रीकृष्णजी अपनी पूर्व इच्छाके अनुसार सत्यभामासे आनेका निवेदन करके वनक्रीड़ा करनेके लिये गये ॥ ४६-४७ ॥ सो रैवतक (गिरनार) पर्वतपर फूलोंका गृह बनाकर वहां पुत्रकी वांछासे तीन

दिन तक रहे ॥ ४८ ॥ उस समय सत्यभामा अतिशय आनन्दित हुई। तीन दिन बीते जानकर वह भी वनक्रीड़ाके लिये जानेको उद्यत हुई ॥ ४९ ॥

यहां प्रद्युम्नकुमारने भी जांबुवतीके घर जाकर उसको रूप बदलनेवाली देवोपनीत मुद्रिका (अंगूठी) दे दी, जिसके प्रभावसे उसने अपना रूप बदलकरके सत्यभामाका अचरज करनेवाला रूप धारण कर लिया। उस रूपको दर्पणमें देखकर और आपको ठीक सत्यभामाकी आकृति जानकर वह बहुत प्रसन्न हुई। प्रद्युम्नकुमारको भी संतोष हुआ। वह बोला, हे माता! जिस समय तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जावे, उस समय अपना प्रकृतरूप धारण कर लेना ॥ ५०–५३ ॥ ऐसा कहकर कुमारने उसे पालकीमें बिठाई और थोड़ेसे सेवकोंके साथ वनमें भेज दी, जहां कि श्रीकृष्णनारायण पुष्पगृह बनाये हुए विराजमान थे। जाम्बुवती उनसे जाकर मिली, और चरणकमलोंको नमस्कार करके खड़ी हो रही ॥ ५४–५५ ॥ उसे देखकर नारायण बहुत प्रसन्न हुए और सत्यभामा समझकर उससे मुसकुराते हुए बोले, हे देवी! तुमने बहुत अच्छा किया, जो यहां आ गई। निश्चय समझो कि, अब प्रद्युम्नका छोटा भाई तुम्हारे ही उदरमें अवतार लेगा ॥ ५६–५७ ॥ प्रद्युम्नने तुम्हारे इस वनमें आनेका वृत्तान्त नहीं जाना होगा। उसने सोलहवें स्वर्गके उस देवके (इन्द्रके) आनेका वृत्तान्त भी नहीं जाना था। यह अच्छा ही हुआ। नहीं तो उसकी मायाका बड़ा डर था ॥ ५८ ॥ ऐसा कहकर नारायण उस सत्यभामाके साथ रतिक्रीड़ा करने लगे। और वह भी अपने हाव भाव विभ्रम विलासोंसे मोहित करके रमण करने लगी ॥ ५९ ॥ सो सुरतके अन्तमें वही सोलहवें स्वर्गका देव चयकर जांबुवतीके गर्भमें स्थित हो गया। ठीक ही है, पुण्यसे ऐसा कौनसा पदार्थ है, जो प्राप्त नहीं हो सकै? ॥ ६० ॥ इसके पश्चात् श्रीकृष्णजीने दूसरोंको नहीं मिल सकै, ऐसा वह हार जो कि देव दे गया था, उस बनावटी सत्यभामाको समर्पण कर दिया। सो उसने उसे प्रसन्नतासे अपने कंठमें धारण कर लिया। हार पहिन चुकनेके पीछे उसने अपनी अंगुलीसे मुद्रिका उतार ली और अपना असली रूप प्रकट कर दिया ॥ ६१–६२ ॥

जाम्बुवतीका रूप देखकर कृष्णजी बड़े विस्मित हुए। और वारंवार विचार करने लगे कि, यह क्या कौतुक हुआ? आखिर जाम्बुवतीसे पूछा, क्या तुझे प्रद्युम्नकुमार मिल गया था, जिसने अपनी विद्या-के प्रभावसे यह सत्यभामाका रूप बना दिया था? ॥ ६३–६४ ॥ जाम्बुवती नारायणके चरण कमलोंको नमस्कार करके बोली, हे कृपाधार! मुझपर कृपा करो, और पुराने क्रोधको अब छोड़ दो ॥ ६५ ॥ उन्होंने भी प्रसन्न होकर उत्तर दिया, प्रिये! तुमपर जो क्रोध था, वह नष्ट हो गया। आजसे तुम मेरी प्राणोंसे भी अतिशय प्यारी रानी हुई ॥ ६६ ॥ मैंने यह पुत्र जो अब तेरे गर्भमें आया है, सत्यभामाको देनेका निश्चय किया था। परन्तु दैवने (भाग्यने) क्षणभरमें कुछका कुछ कर दिया। जब कर्मोंकी प्रेरणा होती है, तब बुद्धिवान पुरुष भी क्या कर सकता है? उसका दैव उसकी सब क्रियाओंको बलपूर्वक व्यर्थ कर डालता है ॥६७–६८॥ अब तेरे पुण्यके प्रभावसे वह देवोंका राजा तेरे ही गर्भसे जन्म लेगा। वह शंबुकुमार नामका विख्यात और जगद्वन्द्य पुत्र होगा ॥ ६९ ॥ ऐसा कहकर और संतुष्ट करके श्रीकृष्णजीने जाम्बुवतीको शीघ्र ही उसके महलोंको भेज दी। वे इस भयसे व्याकुल हो रहे थे कि, यदि इस समय सत्यभामा आ जावेगी, तो कठिनाई होगी ॥ ७० ॥

उधर प्रमोदको धारण करती हुई सत्यभामाने बड़े घमंडसे स्नान मज्जन आदिकरके अपना शृंगार किया। शेखर आदि आभूषणोंसे अपनेको यथाशक्ति विभूषित किया, और सुन्दर पालकीमें बैठकर वह बहुतसे नौकर चाकरोंके साथ वनकी ओर चली ॥ ७१–७२ ॥ आगे चलकर उसे मार्गमें ही जाम्बुवती आती हुई मिल गई ॥७३॥ सत्यभामाने अपने सेवकोंसे पूछा कि, यह पालकीमें आरूढ़ हुई मेरे आगेसे कौन आ रही है? उन्होंने उत्तर दिया कि, जाम्बुवती महाराणी हैं। सत्यभामाने कहा, अरे यह विना नामकी कहां गई थी? ॥ ७४–७५ ॥ फिर जाम्बुवतीसे कहा, हे पापिनी! मेरी वायीं तरफसे जा! उसने उत्तर दिया, हे घमंडिनी! जब भरे हुएको रीता हुआ साम्हने मिलता है, तब जो रीता होता है वह एक ओरको हट जाता है। और जो भरा होता है, वह अपने स्थानहीपर रहता है। तात्पर्य यह है कि, तू खाली

आई है, सो एक ओरको तू ही हट जा, मैं नहीं हटूंगी, मैं भरी हुई हूं ॥ ७६-७७ ॥

व्यर्थ समय खोनेके भयसें सत्यभामाने अधिक विवाद नहीं बढ़ाया । जाम्बुवतीको छोड़कर वह अपने पतिके समीप रवाना होगई । जिससमय श्रीकृष्णजी रतिगृहमें बैठे हुए बाट देख रहे थे, उसी समय सत्यभामा बहुतसे नौकरचाकरोंके साथ पहुंच गई ॥ ७८-७६ ॥ सो वह भी फूलोंकी दिव्य शय्यापर अपने मनोहर वचनालापसे, रति कूजनसे, मणियोंके आभूषणोंके मधुर २ शब्दोंसे, कामविकारयुक्त सी सी शब्दसे, और थकावटकी स्वाससे, पतिको रिझाती हुई इन्द्र और इन्द्राणीके समान संभोगक्रीड़ा करने लगी । सुरतके समय उसके नेत्र मधुपानके मदसे लाल हो रहे थे, और शरीर पसीनेके बिन्दुओं से सरावोर हो रहा था । ठंडी २ हवासे उसकी थकावट मिट जाती थी ॥ ८०-८२ ॥

इसप्रकार सुरतलीला समाप्त होनेपर पुण्यके योगसे उसीसमय कोई देव स्वर्गसे चयकर सत्यभामाके गर्भमें आ गया । फिर श्रीकृष्णजीने कोई एक दूसरा सुन्दर हार सत्यभामाको दिया । सो उसको लेकर और गलेमें पहिरकर वह बहुत संतुष्ट हुई ॥ ८३ ॥ सो ठीक ही है, भाग्यके अनुसार ही सब कुछ मिलता है । जाम्बुवतीको वह देवका दिया हुआ हार मिला और सत्यभामाको उसके बदले एक दूसरा साधारण हार मिला । इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी सत्यभामाके सहित द्वारावतीमें आ गये । उनके नगर-प्रवेशके समय बड़ा भारी उत्सव किया गया ॥ ८४ ॥

श्रीकृष्णजीकी उन दोनों प्यारी रानियोंके बढ़ते हुए गर्भ सम्पूर्ण यदुवंशियोंके मनको हरण करनेवाले हुए । अर्थात् उनसे सबका चित्त प्रसन्न हुआ ॥ ८५ ॥ सत्यभामा और जाम्बुवतीको गर्भवृद्धिसे जो अनेक प्रकारके मनोरथ (दोहले) होते थे, उन्हें भानुकुमार और प्रद्युम्नकुमार पूर्ण करते थे ॥ ८६ ॥ उनके गर्भोंकी बढ़तीके साथ साथ यादवोंके महलोंमें विभूतिकी भी अतिशय बढ़ती होने लगी । धनधान्य सुख शान्ति आदि सब कुछ वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥ ८७-८८ ॥

जब सत्यभामाने सुना कि, जांबुवती भी गर्भवती है, तब उसने घमंडसे सोचा कि, उसके गर्भमें

आया होगा कोई। मुझे उससे क्या? जो सोलहवें स्वर्गसे च्युत हुआ है, वह तो निश्चयपूर्वक मेरे ही गर्भमें आया है। फिर किसी दूसरे सामान्यपुत्रसे क्या प्रयोजन है? ॥ ८९–९० ॥ उसने यह भी सोचा कि, जब मेरे गर्भमें प्रद्युम्नकुमारका पूर्वभवका छोटा भाई आया है, तब वह मेरी भक्ति क्यों नहीं करेगा? अर्थात् अपने छोटे भाईके सम्बन्धसे प्रद्युम्न भी मेरा भक्त हो जावेगा ॥ ९१ ॥ इधर सत्यभामा इस प्रकारके विचार कर रही थी, उधर जाम्बुवतीके गर्भके नौ महीने पूरे हो गये ॥ ९२ ॥ इसलिये उसने शुभमुहूर्त, शुभयोग, शुभलग्न और शुभदिनमें एक मनोहर कल्याणरूप पुत्र जना ॥ ९३ ॥ उस सुन्दर बालकका आकार प्रकाशमान मणिके समान था, शरीर सांवला था, और अंग उपंग बड़े ही सुन्दर थे। जिससमय वह सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त बालक हुआ, ठीक उसी समय कृष्णमहाराजके सारथी पद्मनाभिके सुदारक नामका पुत्र हुआ, वीरनामके महामंत्रीके बुद्धिसेननामका पुत्र हुआ और गरुड़केतु नामके सेनापतिके जयसेन नामका पुत्र हुआ। इसप्रकार जाम्बुवतीके पुत्रके साथ ही तीन पुत्र और हुए, जिनके साथ वह कुमार वृद्धिको प्राप्त होने लगा। इसके लिये खूब उत्सव किये गये। दान किया गया, जिनमन्दिरोंमें पूजा की गई, और कैदी छोड़ दिये गये। सम्पूर्ण स्वजन जनोंने इस बालकका नाम शम्बुकुमार रख दिया ॥ ९४–९९ ॥

इसके पश्चात् सत्यभामाने भी एक शुभ लक्षणवाले पुत्रको जना। उसका नाम जितभानु अथवा सुभानु रक्खा गया ॥ १०० ॥

सब लोगोंके प्यारे, सुन्दर वेषके धारण करनेवाले, पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाले, कमलोंके समान नेत्र वाले और नेत्र तथा चित्तको हरण करनेवाले वे दोनों बालक सारी यदुवंशियोंकी स्त्रियोंके करकमलोंपर निवास करनेवाले भ्रमरोंके समान दिखलाई देने लगे ॥ १–२ ॥ निरन्तर एक हाथसे दूसरे हाथपर संचार करनेवाले, सुन्दरलक्षणोंवाले, प्रद्युम्न तथा भानुकुमारके दिये हुए नानाप्रकारके भूषणोंसे शोभित, रुम झुम रुम झुम बजती हुई पैजनियों तथा किंकणियोंसे युक्त, और सुन्दर कोमल २ पैर रखनेके लिये

उद्यत वे दोनों कुमार क्रमक्रमसे बढ़ने लगे ।

प्रद्युम्नकुमार अपने छोटे भाई शंबुकुमारको प्रतिदिन पढ़ाने लगा और भानुकुमार सुभानुकुमारको अपनी विद्याकला कौशल्यादि सिखाने लगा ॥ ३–६ ॥ जिससे दोनों ही कुमार विद्याकलाओंमें कुशल हो गये। तथा कुछ समयमें सुन्दर बाल्यावस्थाका उल्लंघन करके युवा अवस्था में प्रवेश करने लगे ।

एक दिनकी बात है कि, वे अपने साथमें उत्पन्न हुए मित्रोंसे वेष्टित होकर क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णजीकी सभामें आये, जो चित्रविचित्र पुष्पमालायें पहने हुए अनेक राजाओंसे परिपूर्ण थी, और बलदेव पांडव आदि शूरवीरोंसे शोभित हो रही थी ॥ ७–६ ॥ श्रीकृष्णजीके और दूसरे पूज्य पुरुषोंके चरणोंको नमस्कार करके वे दोनों चतुर कुमार यथोचित स्थानपर जाके बैठ गये ॥ १० ॥ एक तो प्रद्युम्नकुमारके समीप बैठा और दूसरा भानुकुमारके निकट। उन्हें सर्व सभाजनोंने प्रसन्नताके साथ देखा ॥ ११ ॥

उस समय बलदेवजी पांडवोंके साथ द्यूतक्रीड़ा कर रहे थे अर्थात् जूआ खेल रहे थे और श्रीकृष्णजी देख रहे थे। उन सुन्दर कुमारोंको देखकर पांडवोंने तथा बलदेवजीने कहा कि, हे कुमारो! आओ, तुम भी खेलो ॥ १२–१३ ॥ बालकोंने नमस्कार करके कहा, आप जैसे पूज्य पुरुषोंके खेलते हुए हम लोगोंकी योग्यता नहीं है कि, खेल सकें ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् जब उन्होंने बहुत आग्रह किया, तब दोनों कुमार प्रद्युम्न और भानुकुमारके मुंहकी ओर देखने लगे। इस अभिप्रायसे कि, इनकी क्या इच्छा है ॥ १५ ॥ जब उन्होंने आज्ञा दे दी, तब वे सब यदुवंशियोंके तथा श्रीकृष्णजीके साम्हने खेलने लगे ॥ १६ ॥ पहले उन्होंने एक करोड़ मुहरकी बाजी लगाई, सो शम्बुकुमारने जीत ली। सुभानुकुमार हार गया ॥ १७ ॥ उस समय प्रद्युम्नकुमारने कहा कि, द्रव्य ले आओ और फिर खेलो। क्योंकि जूआका यह नियत मार्ग है कि, द्रव्य लेकरके फिर खेलते हैं ॥ १८ ॥ यह सुनकर भानुकुमारने सत्यभामाके पाससे तत्काल ही करोड़ मुहर लाकर दे दीं ॥ १६ ॥ करोड़ मुहरें गईं यह देखकर सत्यभामा लज्जित हुई। उसने बड़े भारी घमंडसे अपना एक मुर्गा सभामें भेजा और कहला भेजा कि, यदि शम्बुकुमार मेरे

इस मुर्गेको जीत लेगा, तो मैं दो करोड़ मुहरें दूंगी ॥ २०–२१ ॥ उस समय शम्बुकुमारने अपने बड़े भाईके मुंहकी ओर देखा। अभिप्राय समझकर प्रद्युम्नकुमार एक विद्यामयी मुर्गा बनाकर ले आये ॥ २२ ॥ सत्यभामाका मुर्गा मुर्गीके विरहसे व्याकुल हो रहा था। सभाके साम्हने ही उसके साथमें शम्बुकुमारके मुर्गेकी लड़ाई होने लगी। सो अन्तमें शम्बुकुमारके मुर्गेने ही सत्यभामाके मुर्गेको हरा दिया। शम्बुकुमारने दो करोड़ मुहरें जीतीं और उन्हें लेकर प्रद्युम्नकी आज्ञासे तत्काल ही याचकोंको–भिक्षुकोंको बांट दीं ॥२३–२५॥ अबकी बार विस्मित हुई सत्यभामाने एक सुन्दर सुगंधित तथा दुर्लभ फल भेजा और कहा कि, यदि शम्बुकुमार इस फलको जीत सकेगा, तो मैं चार करोड़ मुहरें दूंगी॥ २६–२७॥ शम्बुकुमारने प्रद्युम्नकी सहायतासे इस फलको भी शीघ्र ही जीत लिया और चार करोड़ स्वर्णमुद्रा उसीसमय लोगोंको बांट दीं ॥ २८ ॥ सत्यभामाने आश्चर्ययुक्त होकर फिर दो वस्त्र भेजे और इनके जीतनेपर आठ करोड़ मुहरें दूंगी, ऐसा वचन दिया ॥२९॥ शम्बुकुमारने कामकुमारके मुंहकी ओर देखा, तब उन्होंने भी दो मनोहर वस्त्र दिये, जिनके तंतु सुवर्णके थे, और जो अग्निकुंडमें डाले जा चुके थे। इनसे सत्यभामाके वस्त्र जीत लिये गये ॥ ३०–३१ ॥ इस बाजीमें सत्यभामासे जो आठ करोड़ सुवर्ण-मुद्रायें (मुहरें) मिलीं, वे भी शम्बुकुमारने लोगोंको बांट दीं ॥ ३२ ॥ सत्यभामाने इसके पीछे एक हार भेजा और सोलह करोड़ मुहरें देना कहीं। सो कामकुमारके प्रसादसे एक दूसरे हारसे शंबुकुमारने उसे भी जीत लिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर सत्यभामाने बत्तीस करोड़ मुहरोंके साथ दो कुंडल भेजे। सो शम्बुकुमारने उन्हें भी जीत लिये। और जो धन मिला, उसका दान कर दिया ॥ ३४–३५ ॥ कुंडलोंके जीते जानेपर सत्यभामाने सभामें एक कौस्तुभमणि भेजा और उसके साथ चौसठ करोड़ मुहरें भी पहुंचा दीं। प्रद्युम्नके बुद्धिबलसे शम्बुकुमारने यह बाजी भी जीती और जो धन मिला, उसे भी कीर्ति-की इच्छासे लोगोंमें वितरण करा दिया ॥ ३६–३७ ॥ इस उदारतासे शम्बुकुमार सब लोगोंका प्यारा हो गया। भला इस संसारमें दाता किसको प्यारा नहीं होता है ? सभीको होता है ॥ ३८ ॥ कौस्तुभके

पश्चात् सत्यभामाने सभामें एक एक सुन्दर घोड़ा दूने धनके साथ-अर्थात् १२८ करोड़ मुहरोंके साथ सबकी साक्षीसे भेजा ॥ ३९ ॥ यह देखकर प्रद्युम्नकुमार अपनी विद्याके बलसे एक सम्पूर्ण सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मनोहर घोड़ा ले आये। सो इस घोड़ेसे सत्यभामाका घोड़ा जीत लिया गया, और उस का सारा धन शंबुकुमारको दिया गया ॥ ४०-४१ ॥ इसके अनन्तर सत्यभामाने अपना दूत भेजकर सभामें बैठे हुए प्रद्युम्नकुमारसे कहलाया कि, अब शम्बुकुमारको मेरी मायामयी सेना भी जीतना चाहिये। यह सुनकर शम्बुकुमारका मुख कुछ मलीन हो गया। यह देख प्रद्युम्नकुमारने उसे अपनी श्रेष्ठ विद्या दे दी। इसके अनन्तर शम्बुकुमार और सुभानुकुमार दोनों ही सेनाके देखनेके लिये नगरी से बाहिर गये। उनके साथ और भी बहुतसे लोग थे। वहां सुभानुकी मायामयी सेनाको देखकर जो कि पहलेहीसे तयार थी, शम्बुकुमारने भी वैसी ही एक सेना बनाई ॥ ४२-४५ ॥ जिसका विस्तार इतना हो गया कि, हाथी घोड़ों और रथोंका कहीं अन्त नहीं दिखलाई देता था। शूरवीरोंकी और विमानोंकी गिनती नहीं हो सकती थी ॥ ४६ ॥ और सुभानुकी सेना उसमें ऐसी डूब गई थी कि, जान नहीं पड़ती थी।

इसके पीछे दोनों सेनाओंमें मायामयी जीवोंका क्षय करनेवाला घनघोर युद्ध हुआ ॥ ४७ ॥ हाथी सवारोंने हाथीसवारोंके साथ, घुड़सवारोंने घुड़सवारोंके साथ, रथियोंने रथियोंके साथ और पैदल सुभटों-ने पैदल सुभटोंके साथ खूब युद्ध किया। आखिर सुभानुकी उत्पन्नकी हुई सेनाको शम्बुकुमारने जीत ली; इसमें जब कोई सन्देह नहीं रहा ॥ ४८-४९ ॥ तब प्रद्युम्नकी आज्ञानुसार पहले जीती हुई मुहरोंकी अपेक्षा दूनी मुहरें अर्थात् २५६ करोड़ मुहरें सत्यभामासे मंगाई, गईं और लोगोंने वे सब शम्बुकुमारको दे दीं ॥ ५० ॥ इसप्रकार जब सारा धन हराकर सत्यभामा बैठ रही। और गांवनगर तथा वनमें जहाँ तहाँ शंभुकुमारके दानकी कथा सुनाई पड़ने लगी। क्योंकि इस सत्यभामाके विवादमें उसने जो कुछ जीता था, वह सबका सब दान कर दिया था। तब उस सब लोगोंके प्यारे और दातार शंबकुमार-

ने सत्यभामासे कहा, क्या तुम्हारे पास अब भी और कुछ धन है? प्रश्न सुनकर सत्यभामा चुप हो रही! क्या करै? हार और जीत पाप और पुण्यके उदयके अनुसार होती है। इसप्रकार प्रद्युम्नकुमारके प्रसादसे शंबुकुमारकी खूब शोभा हुई। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई ॥ ५१–५३ ॥

तदनन्तर बलभद्र, युधिष्ठिर, तथा भीमादि सब राजाओंने मिलकर श्रीकृष्णजीको समझाया कि, हे जनार्दन! शम्बुकुमारने बड़े २ अमानुषीक कृत्य किये हैं, अर्थात् ऐसे कार्य किये हैं, जो मनुष्योंसे नहीं हो सकते हैं। इसलिये कृपाकरके अब इसको प्रौढ़ बनाइये। और अपने समान इसको भी सुख प्रदान कीजिये। सबके इस आग्रहको सुनकर श्रीकृष्णजी विचार करने लगे कि, इसको क्या देना चाहिये? यह सब कुछ कर सकता है। अन्तमें निश्चयकरके उन्होंने शम्बुकुमार को एक महीनेके लिये अपना राज्य सोंप दिया ॥ ५४–५७ ॥

दूसरे दिन शंबुकुमार सम्पूर्ण राजाओंके सहित राज्यसभामें आया और आनन्दके साथ सिंहासनपर विराजमान हुआ। बलभद्र, कामदेव, पांडव, आदि सब राजाओंने तथा भानु सुभानुने उसे नमस्कार किया। इसप्रकार वह तीनखंड पृथ्वीका स्वामी होकर राज्य करने लगा ॥ ५८–५९ ॥

आगे वह अपने साथ ही उत्पन्न हुए मित्रोंके साथ दूसरोंको अतिशय दुर्लभ ऐसे इन्द्रियजन्य सुख भोगता हुआ एक पापकार्यमें प्रवृत्त हो गया। अपनेमित्रोंके साथ कुलस्त्रियोंके घरोंमें जाकर उनका बलात्कारसे शीलभंग करने लगा ॥ ६०–६१ ॥ आदमियोंको भेजकर, और उनके द्वारा स्त्रियोंका अच्छा बुरा रूप निर्णय कराके वह पापी रातको घरोंमें जाता था और स्त्रियोंका शील नष्ट करता था ॥ ६२ ॥ इसप्रकारके दुराचरणसे नगरमें रहनेवाले सब ही लोग अतिशय दुखी हो गये। स्त्रियोंका शीलभंग होना, इससे बड़ा और क्या दुःख हो सकता है? ॥ ६३ ॥ निदान सब लोग एकत्र होकर राजमहलको गये। और श्रीकृष्णमहाराजसे नमस्कार कर इसप्रकार कहने लगे कि, हे नाथ! शम्बुकुमारने जो करतूतकी है, सो सुनिये। वे अब कुल स्त्रियोंका बलपूर्वक शील हरण करने लगे हैं। इसलिये अब हम

द्वारिकाको छोड़कर कहीं अन्यत्र जाकर रहेंगे। जिससमय आपको राज्य प्राप्त हो जावेगा, उससमय फिर लौट आवेंगे॥ ६४–६६॥ नारायणने कहा, हे महाजनो! थोड़े दिन और ठहरो। जब तक मैंने अपने वचनसे दिया हुआ राज्य फिर नहीं पा लिया है, तब तक तुम लोग अपने घरोंमें खूब बन्दोबस्तके साथ रहो। जब मैं राजसभामें जाने लगूंगा, तब तुम्हारा सबका कल्याण होगा। आश्वासनके वचन सुनकर लोग अपने २ घर जाकर प्रबन्धके साथ रहने लगे॥ ६७–६६॥

जब एक महीना हो चुका, तब श्रीकृष्णजी राजसभामें पहुंचे और अपना राज्य प्राप्त करके शम्बुकुमारसे बोले, हे पापी! तुझे मेरे राज्यमें क्षणभर भी नहीं ठहरना चाहिये। तुझे ऐसी जगह चला जाना चाहिये, जहांसे तेरा नाम भी नहीं सुनाई देवै॥ ७०–७१॥ ऐसा कहकर नारायणने ताम्बूलके तीन बीड़े दिये। शंबुकुमार उन्हें लेकर और सभासे निकलकर चला गया॥ ७२॥ उसीसमय प्रद्युम्नने पूछा, हे तात! शंबुकुमारका आगमन किसी भी समय हो सकेगा, या नहीं? पिताने उत्तर दिया, हां! यदि सत्यभामा हथिनीपर बैठकर, उसके सन्मुख जावेगी, और भक्तिपूर्वक गाजेबाजेके साथ ले आवेगी, तो मेरे सम्मुख आ सकेगा, नहीं तो नहीं॥ ७३–७५॥

शम्बुकुमार राजसभासे निकलकर अपनी माताके पास गया और उसे नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमारके आदेशके अनुसार सत्यभामाके वनमें गया। वहां जाकर उसने एक युवती स्त्रीका रूप बनाया, जो संपूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त थी, रूपवती तथा सौभाग्यवती थी, नवीन यौवनसे भूषित थी, सुडौल थी, और सबप्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान थी॥ ७६–७८॥ इसप्रकारका सुन्दर रूप बनाकर शम्बुकुमार उस निर्जनवनमें जा बैठा। उसके बैठतेही वहां सत्यभामा भी पहुंच गई। इस अनौखी स्त्रीको देखकर उसे बड़ा भारी अचरज हुआ। इसलिये वह समीप आकर बोली, हे बेटी! मुझे बतला कि, तू ऐसे निर्जनवनमें अकेली क्यों बैठी है? तू तो देवकन्याके समान सुन्दरी कन्या है॥७९–८१॥ यह सुनकर युवती बोली, हे माता! मैं एक राजाकी पुत्री हूं। सो अपने मामाके घर रहती थी। वहां मुझे

यौवनावस्था प्राप्त हो गई थी; इसलिये मेरे पिता मुझे विवाह करनेके हेतु लिवानेके लिये गये थे ॥ ८२-८३॥ सो वे मुझे वहांसे पालकीमें आरूढ़ कराके चले थे, और बड़ी भारी सेनाके साथ आज रात्रिको इसी स्थानमें आकर ठहरे थे ॥ ८४ ॥ रातको निद्रामें व्याकुल होकर सब लोग सो गये, परन्तु मामाकी याद आनेसे मेरी निद्रा चली गई। जब मुझे नींद नहीं आई, तब मैं पालकीमेंसे उतरकर धरतीपर लेट गई। सो पिछली रातमें जब मेरी आंख लग गई, तब विश्राम कर चुकनेपर मेरे पिता अपनी सेनाके साथ न जाने कब चले गये। उन्होंने यह नहीं जाना कि, मैं पालकीमेंसे उतरकर धरतीमें पड़ी हूं। अब इस निर्जनवनमें अकेली रह गई हूं। मैं यह भी नहीं जानती हूं कि, वे किस मार्गसे गये हैं। इसलिये हे माता! लाचार होकर मैं यहां बैठी हूं। अभीतक मैं अनूढा ही हूं। अर्थात् मेरा विवाह नहीं हुआ है ॥ ८५-८८ ॥

उस अनूढा कन्याको रूपवती और लक्षणवती देखकर सत्यभामा समीप बैठ गई और इसप्रकार मीठे वचन बोली, हे अनघे! यदि तू मेरे सुभानुकुमारके साथ विवाह करना स्वीकार करैं, तो मैं अपने महलमें ले जाकर तेरी खूब भक्ति करूं ॥ ८९-९० ॥ इसके उत्तरमें कन्याने लज्जित होकर इसप्रकार सुन्दर वचन कहे कि, यह तो निश्चय है कि, मेरे पिता भी मुझे कहीं न कहीं देते। फिर जब आप श्रीकृष्ण नारायणकी पट्टरानी हैं, तब आपके पुत्रके साथ मेरा विवाह होनेमें क्या दोष है? ॥ ९१-९२ ॥ कन्याके वचन सुनकर सत्यभामा उसे अपने महलमें ले आई, और उसकी दिनोंदिन अधिकाधिक सुश्रूषा करने लगी ॥ ९३ ॥ आसन, शयन, भोजन, विलेपन आदिके सम्पूर्ण सुखोंसे उसे इस तरह रक्खा कि, उसने अपना जाता हुआ समय नहीं जाना ॥ ९४ ॥

कितनेही दिन बीतनेपर पृथ्वीमें कामीजनोंके हृदयमें कामका बढ़ानेवाले वसन्तऋतुका आगमन हुआ ॥ ९५ ॥ वसन्तके उत्सवमें कामकी प्रबलता हो गई। आमोंमें मौर आ गये। टेसू फूलोंसे लद गये। भौंरोंकी झंकार और कोयलोंकी कूकसे वियोगनी स्त्रियोंको विरह दुःख निरंकुश होकर सताने

लगा। मलयकी मधुर हवा मानो वियोगियोंके तापको शान्त करनेके लिये ही चलने लगी। कामाग्निके प्रज्वलित होनेसे लोगोंकी लज्जा चली गई। सब उन्मत्त हो गये ॥ ९६–९८ ॥

जब वसन्तऋतुका इस प्रकार राज्य हो रहा था, तब सुभानुकुमार अपने मित्रोंके साथ सवारीसहित वनक्रीड़ा करनेके लिये गया। बन्दीजन उसकी स्तुति करते जाते थे। वसन्तका वैभव देखनेके लिये ज्यों ही वह वनमें जाकर पैठा, त्यों ही वहांपर बहुतसी स्त्रियोंने झूलोंमें बैठकर कामोद्दीपक गीतोंका गाना प्रारंभ कर दिया। नानाप्रकारके विकारोंसे युक्त, ऊंची और बारीक आवाजसे मनोहर और मानी नायक नायिकाओंके मानको खंडन करनेवाले, उन स्त्रियोंके मुखसे निकले हुए मनोहर गीतोंको सुनकर सुभानुकुमार कामके बाणोंसे घायल हो गया ॥ ९९–२०३ ॥ उसका चित्त चुरा लिया गया–छल लिया गया। जब वह मूर्छित होकर गिर पड़ा, तब सेवक लोग उसे सत्यभामाके महलमें ले गये। और वहां उन्होंने उसका सब वृत्तान्त कह दिया। उसे अचेतन देखकर सत्यभामाने भी जान लिया कि, मेरा पुत्र अब विवाहके योग्य हो गया है ॥ ४–५ ॥ निदान अपने मनमें बहुत देरतक सोच विचार करके उसने अपने मंत्रियोंसे कहा कि, तुम एक कपटलीला इस तरहकी रचो कि, कन्याकी याचना करनेके लिये जाओ, और इस तरहसे आ जाओ, जिसमें कोई भी न जानने पावै। आज्ञानुसार मंत्री लोग गये और कार्य सिद्ध करके आ गये ॥ ६–७ ॥ उनके आ जानेपर सब लोगोंने जाना कि, सत्यभामाके पुत्रका विवाह ठीक हो गया है। मंत्रीलोग कन्याकी याचना करनेको गये थे, सो ले आये हैं। सुभानुकुमार बड़ा पुण्यवान है ॥ ८ ॥ तदनन्तर नगरके बाहर एक स्थानमें उस श्रेष्ठ कन्याको गुप्तरूपसे पहुंचा दी और आप स्वयं हथिनीपर बैठकर उसके लेनेके लिये गई। उसे भय था कि, कहीं यह बात प्रद्युम्नको मालूम न हो जावे ॥ ९ ॥ निदान उस कन्याको अपनी गोदमें बिठाकर वह बड़े भारी उत्सवके साथ चौराहेसे होती हुई अपने महलमें ले आई। और गलीमेंसे होकर महलके भीतर ले गई। लग्नका समय हो गया था, इसलिये सुभानुकुमार तोरणके लिये गया। वहां दासियोंने उस कन्याकी जो २ मांगलिक क्रिया होती

हैं, सो कीं। उस समय तक तो वह कन्या जैसी चाहिये, वैसी थी। परन्तु ज्यों ही पाणिग्रहणका समय आया, त्यों ही उसने व्याघ्रका (वाघका) रूप धारण कर लिया ॥ १०-१२ ॥ और सुभानुकुमार-को पंजेके आघातसे ऐसा पटका कि, वह मूर्छित होकर धरतीमें गिर पड़ा। और जितने लोग वहां थे, वे सब भयभीत होकर गिरते पड़ते भागे। यह कौतुक करके व्याघ्रवेषधारी शंम्बुकुमार हँसता हुआ श्रीकृष्णजीकी सभामें जा पहुंचा ॥ १३-१४ ॥ उसे देखकर श्रीकृष्णजीको अचरज हुआ। पीछे उन्होंने प्रद्युम्नकुमारकी लीला समझकर उसे प्रसन्नताके साथ आश्वासन देकर विठाया ॥ १५ ॥ इस चरित्रसे शम्बुकुमारकी माता बड़ी आनन्दित हुई और सत्यभामा मदरहित हो गई। लज्जाके मारे उसका मुख-कमल कुम्हला गया ॥ १६ ॥

सत्यभामाने इस घटनासे दुःखी होकर एक दूतको अपने पिताके पास भेजा, और यहांका सव समाचार कहला भेजा। उसे सुनकर सत्यभामाके पिताने जो कि विद्याधरोंके राजा थे, सौ सुन्दर कन्यायें भेज दीं। सो उनके साथ सुभानुकुमारका विवाह कर दिया गया। विवाह वड़े उत्सव और धूमधामके साथ हुआ। सौ स्त्रियोंको पाकर सुभानुकुमारको वड़ा भारी गर्व हुआ। उनके साथ वह रातदिन आनन्दक्रीडा करने लगा ॥ १७-१९ ॥

सुभानुकुमारको विवाहित देखकर प्रद्युम्नकुमारने शम्बुकुमारके लिये अपने मामाकी कन्याओंकी याचनाकी। क्योंकि लोगोंके मुंहसे सुना था कि, वे वड़ी ही सुन्दरी हैं। परन्तु मामाने कन्या देनेसे इंकार कर दिया ॥ २० ॥ इससे प्रद्युम्नकुमार रुक्मणनरेश अर्थात् रूप्यकुमार पर वहुत क्रोधित हुए। दोनों भाई चांडालका वेप धारण करके कुण्डनपुरको गये और रुक्मणराजाकी सभामें पहुंचे। दोनोंका रूप वहुत ही सुन्दर था। दोनोंने पिनाकी (?) वजाते हुए गीत गाना प्रारंभ किये, सो शीघ्र ही संपूर्ण लोगोंको मोहित कर लिये। राजा रूप्यकुमार तो ऐसा प्रसन्न हुआ कि, उन्हें मनमाना दान देनेके लिये तयार हो गया। जिस समय सव लोग इसप्रकार रंजायमान होकर तन्मय हो रहे थे, उसी समय प्रद्यु-

म्नकुमारने राजाके अन्तःपुरमें अपनी विद्याको भेजी, और उसके द्वारा उन कन्याओंका हरण करा लिया। पीछेसे आप सभामेंसे निकलकर और उन कन्याओंको आकाशमें ले जाकर बोले, हे भीष्मपुत्र रूप्यकुमार! सुनो, ये तुम्हारी कन्यायें हैं। इनका मैंने हरण किया है। मैं द्वारकाधीश श्रीकृष्णनारायणका पुत्र हूं। तुमने मांगनेपर मुझे ये कन्यायें नहीं दी थीं, इसीलिये मैंने इन्हें हरा है। अब तुम्हें अपनी सेनासहित आकर इन्हें मेरे पाससे छुड़ा लेना चाहिये॥ २१–२९॥

यह सुनते ही रूप्यकुमार सारी सेनाको लेकर युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा। परन्तु मंत्री तथा दूसरे वृद्ध लोग उसे समझा बुझाकर नगरमें लौटा लाये। युद्ध नहीं करने दिया। इधर प्रद्युम्न और शम्बुकुमार उन कन्याओंको लेकर द्वारिकामें आ गये॥ ३०–३१॥

द्वारिकामें पहुंचकर प्रद्युम्नकुमारने भी बड़ा भारी उत्सवकरके उन दोसौ कन्याओंका विवाह शम्बुकुमारके साथ कर दिया। भाईका विवाह विधिपूर्वक कर चुकनेपर प्रद्युम्नकुमार बहुत सुखी हुआ। होना ही चाहिये। कार्यके सिद्ध होनेपर सबहीकोसुख होता है॥ ३२–३३॥

सम्पूर्ण लोगोंके चित्तको हरण करता हुआ और दर्शनमात्रसे ही स्त्रियोंको संन्तुष्ट करता हुआ प्रद्युम्नकुमार सब लोगोंका प्राणप्यारा बन गया। कुछ दिनोंमें उसके रतिनामकी स्त्रीसे एक अनुरुद्ध नामका पुत्र हुआ, जो कि अतिशय सुन्दर था। सम्पूर्ण विद्याओंसे शोभित होकर वह क्रमक्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हो गया॥ ३४–३६॥ इधर शम्बुकुमारके भी सुन्दर सौ पुत्र उत्पन्न हुए। सो कामदेव उनके साथ और अपने पुत्रोंके साथ इच्छानुसार सुख भोगने लगे॥ ३७॥ वे नदी, नद, तालाब, और वन आदि अनेक स्थानोंमें अपनी स्त्रियांके साथ जाते थे, और वहां चिन्ता करते ही उपस्थित होनेवाले श्रेष्ठ सुखोंको भोगते थे॥ ३८–३९॥

हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, और शरदऋतुओंमें वे यथाक्रमसे यथायोग्य चिन्तित सुखोंका अनुभव करते थे। रतिसमयमें कामिनियोंके चित्तको चुरानेवाले प्रद्युम्नकुमार जब हेमन्तऋतु आती थी,

खूब जाड़ा पड़ता था, तब ऐसे उत्तम स्थानमें जहां कि हवा नहीं आती थी, शीत नहीं होता था, कालागरु, कपूर और धूपका गरम धुआं व्याप्त रहता था, अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दक्रीड़ा करते थे और दूसरे लोगोंको पुण्यका फल दिखलाते थे ॥ ४०–४३ ॥ जब शिशिरऋतु आती थी, तब रूई भरे हुए वस्त्रोंसे, उष्ण भोजनोंसे, सुगंधित वस्तुओंसे, अग्निके तापसे, और रूपयौवनसे उन्मत्त हुई तथा कामबाणसे घायल हुईं स्त्रियोंके निरन्तर सेवनसे शीतका निवारण करके जवानीके सुख भोगते थे। मानों वे प्राणियोंको बतलाते थे कि, ये सब सुख पुण्यसे प्राप्त होते हैं ॥ ४४–४६ ॥ जब मानिनी स्त्रियोंका मान भंजन करनेवाला वसन्त उत्तमोत्तम फूलोंकी भेट लेकर प्रद्युम्नकी सेवामें उपस्थित होता था, अर्थात् जब वसंतऋतु आता था, तब मौरसिरी, कमल, चंपा, अशोक, टेसू, आदि अनेक वृक्षोंसे भूषित हुए मनोहर वनमें जाकर सुगंधित जलसे भरी हुई वापिकाओंमें अपनी प्यारी स्त्रियोंके साथ जलविहार करते थे ॥ ४७–४९ ॥ ग्रीष्मऋतुमें शीतल ईंटोंके बने हुए महलोंमें चन्दन, केशर, बारीक वस्त्र, मनोहर शीतल भोजन, पान, ताड़के पंखे, और नानाप्रकारके सुगंधित पदार्थों का सेवन करते हुए अपनी कामिनियोंके साथ उत्कृष्ट भोग भोगते थे ॥ ५०–५१ ॥ और जब वर्षाऋतु प्राप्त होती थी, तब जहां वायुका वेग नहीं होता था, ऐसे रमणीय तथा विशाल महलोंमें नृत्य करती हुई स्त्रियोंके मनोहर गीत सुनते हुए पुण्यका फल भोगते थे ॥ ५२–५३ ॥ इसी प्रकारसे शरदऋतुमें अनेक स्त्रियां जिसकी सेवा करती थी, ऐसा प्रद्युम्नकुमार ऊंचे २ महलोंमें रहकर गन्ना, धान्य, मूंग, तालाबोंका जल, और रातको चन्द्रमाकी चाँदनीका सेवन करते हुए लोगोंको पुण्य का फल दिखलाते थे ॥ ५४–५५ ॥ सारांश यह कि प्रद्युम्नकुमार छहों ऋतुओंमें इच्छानुसार सुख भोगते थे।

प्रद्युम्नकुमारके मस्तकपर श्वेत छत्र रहता था, और मनोहर चँवर ढुरते थे। विद्वान लोग देवोंके समूह, विद्याधर और भूमिगोचरी राजा, स्नेहके भारसे वशवर्ती हुए उनकी सेवा करते थे। बन्दीजन "जय जय" आदि मांगलिक शब्दों और स्तुतिमयी वाक्योंसे प्रभाव प्रगट करते थे और सितार, सारंगी, वीणा आदि

बाजे उन्हें प्रसन्न करते थे ॥ ५६–५८ ॥

हे भव्यजनो ! तुम्हें इन सब सुखोंको पुण्यके फल समझकर पापकार्य करना छोड़ देना चाहिये, और धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रद्युम्नकुमारने अपनी कामवती स्त्रियोंके साथ बहुतसे धनका बहुतसे वैभवका और बहुतसे भाईबन्धुओंका सुख उपभोग किया। संसारमें जितने सारभूत सुख थे, वे सब उन्हें प्राप्त हो गये। क्योंकि उनका पुण्य बहुत प्रबल था। और तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो पुण्यसे प्राप्त न हो सकता हो ॥ ६०–६१ ॥ तथा पापसे ऐसे कोई दुःख नहीं हैं, जो नहीं भोगने पड़ते हों। ऐसे लोग पाप करनेहीसे होते हैं, जो अपना पेट भरनेके लिये ही रातदिन चिन्तित रहते हैं, वस्त्र और भोजनके विना घरतीमें पड़े रहते हैं, शरीर छिन्न जाता है, दूसरोंके घर नौकरीचाकरी करते हैं, रूप लावण्यरहित होते हैं, दीन होते हैं, विना बंधुओंके होते हैं, धूप और वायुकी गर्मी सर्दी सहा करते हैं, भाई बंधुओंकी निन्दा और जगह २ का तिरस्कार सहते हैं ॥ ६२–६४ ॥

इसप्रकार प्रद्युम्नकुमार पूर्वपुण्यके फलसे प्राप्त हुए नानाप्रकारके पंचेन्द्रियजन्य सुखोंका अनुभव करते थे। उन्होंने जो सुख भोगे, उनका वर्णन करनेके लिये बृहस्पतिके समान ऐसा कौन विद्वान है, जो समर्थ हो?

*धर्मसे सुख, निर्मल सज्जनता, और सोमता प्राप्त होती है, ऐसा समझकर भव्यजनोंको निरन्तर ही जिनधर्मका सेवन करना चाहिये ॥ ६५–३६७ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नके पुण्यफलका वर्णन करनेवाला बारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

---

*दूसरी मूल प्रतिमें यह श्लोक नहीं है, और बारहवें सर्गकी समाप्ति भी यहां नहीं है। पहली प्रतिमें जहां तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ है, वहां दूसरीमें बारहवा समाप्त हुआ है। इस तरह एक सर्गका अन्तर पड़ गया है।

अथ त्रियोदशः सर्गः ।

श्रीकृष्णनारायण विद्याधर और मनुष्य जिसकी सेवा करते थे, ऐसे जरासंध राजाको लड़ाई में मारकर और सुदर्शनचक्र प्राप्त करके निष्कंटक राज्य करने लगे । कौरवपांडवोंका भारत युद्ध भी हो चुका । उसमें कौरवोंका क्षय हो गया । इसके पश्चात् श्रीकृष्णमहाराजके राज्यकालमें जो कुछ वृत्तान्त हुआ, सो सब यहांपर वर्णन करते हैं:—॥ १–३ ॥

एक दिन श्रीकृष्णजी बलदेव तथा प्रद्युम्नकुमार आदिके साथ सभामें विराजमान थे । सभा भर रही थी । इतनेमें श्री नेमिनाथ भगवान अपने मित्रोंके साथ जो कि उनके साथ एक ही समयमें उत्पन्न हुए थे, आ पहुंचे । उन्हे देखते ही जिनभगवानकी भक्तिकरनेवाले सारे सुभट उठ खड़े हुए । श्रीकृष्णजीने बैठनेके लिये उत्कृष्ट सिंहासन दिया, सो जिनभगवान बड़े भारी हर्षसे बैठ गये । सिंहासन नारायणके बिलकुल समीप रक्खाहुआ था । जब सब राजा लोग यथाक्रमसे बैठ गये, तब शूरवीरोंके बलकी चर्चा चलने लगी ॥ ४–७ ॥

कई एक सुभट बोले, महाराज वसुदेव बड़ी भारी शक्तिके धारण करनेवाले हैं । कोई पांडवोंके बलका वर्णन करने लगा । कोई कहने लगा, यह प्रद्युम्नकुमार निश्चयसे बड़ा बलवान है । किसीने शम्बुकुमारकी प्रशंसा की और कोई भानुकुमारकी कीर्ति गाने लगा । किसीने कहा, नहीं श्रीकृष्णजी बड़े बलवान हैं । उनके समान पृथ्वीपर न कोई वीर हुआ है । और न होगा । और किसीने बलभद्रजीके बलकी प्रशंसा की । सारांश यह कि, जिसके चित्तमें जिसकीशूरवीरता जमी हुई थी, सभामें उसने उसीकी प्रशंसा की ॥ ८–११ ॥ सबकी कीर्ति सुनकर बलदेवजी मस्तक हिलाते हुए बोले , अरे मूर्खों ! तुम दूसरे शूरवीरोंकी क्या प्रशंसा कर रहे हो ? जहाँ श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर स्वयं विराजमान हैं, वहां दूसरे शूरवीरोंकी प्रशंसा करना योग्य नहीं है । मेरुपर्वत और सरसोंके दानोंमें जितना अन्तर होता है, ठीक उतना ही अन्तर श्रीनेमिनाथमें और सम्पूर्ण शूरवीरोंमें है ! जब संसारमें उनके समान शूरवीर तथा श्रेष्ठ सुभट

दूसरा कोई है ही नहीं, तब हम श्रीकृष्ण अथवा दूसरे तो किस गिनतीमें हैं ? ॥ १२–१५ ॥ इसप्रकार जब बलदेवजीने वारंवार प्रशंसा की, तब श्रीनेमिनाथजी लज्जासे नीचेकी ओर देखने लगे ॥ १६ ॥ उससमय श्रीकृष्णजीने नेमिनाथजीसे मुसकराते हुए कहा, आओ, हम और आप यहींपर मल्लयुद्ध करें। ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी धोतीकी कांछ कड़ी बांधकर खड़े हो गये। यह देखकर नेमिकुमार बोले, यह कार्य सज्जनोंके योग्य नहीं है। हां ! यह मेरा पैर जो सिंहासनपर रक्खा हुआ है, यदि आप उठाकर अलग कर देवें, तो हे जनार्दन ! समझ लेना कि, मैं आपसे सब युद्धोंमें हार चुका ॥ १७–१९ ॥

जिनेन्द्रकुमारके ये वचन सुनकर श्रीकृष्णजी कमर कसके उठे, और बड़े भारी वेगसे अपनी सारी शक्ति लगाकर उस वीरशिरोमणिका पैर हटाने लगे, परन्तु जीत नहीं सके। पैर नहीं हटा, तब बलवान श्रीकृष्णजीने क्रोधित होकर फिरसे प्रयत्न किया, परन्तु इसबार भी उनका पैर जरा भी न टसका। इससे वे बड़े ही व्याकुल हुए। भाईको खेदखिन्न देखकर नेमिकुमारने कहा, हे जनार्दन ! पैरको जाने दो, यह मेरे बांये हाथकी कनिष्ठिका (छोटी उंगली) है, इसीको चलाओ। तब श्रीकृष्णजी फिर भी सारी शक्ति लगाकर अपने दोनों हाथोंसे उस उंगलीपर झूम गये। परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। नेमिकुमार ने विनोदसे ऊंचा हाथ उठाकर उन्हें झूला झुला दिया ॥ २०–२७ ॥

श्रीकृष्णजी इस लीलासे खेदखिन्न तो हो गये थे, उन्हें क्रोध भी आया था। परन्तु उससमय वे उसे दबाकर हंसते हुए बोले, "हमारे भाईका प्रचंड बल देखो ! इनके बलका क्या पार है ?" और फिर अपने महलोंमें चले गये। नेमिकुमार भी स्वजन मित्रोंके साथ अपने स्थानको चले गये ॥ २८–२९ ॥

श्रीकृष्णजी चले तो आये, परन्तु उनका खेद दूर नहीं हुआ। उन्हें चिन्ता हुई कि, श्रीनेमिकुमार बहुत बलवान हैं। वे मेरा राज्य छीन लेंगे। तत्काल ही एक निमित्त शास्त्र जाननेवाला ज्योतिषी बुलाया गया। श्रीकृष्ण और बलदेवजीने एकान्तमें लेजाकर उससे श्री नेमिकुमारका सब वृत्तान्त पूछा। उसने कहा, हे नारायण ! व्यर्थ ही चिन्ता मत करो। श्रीनेमिकुमार राज्य नहीं करेंगे। वे शीघ्र ही दीक्षा

ले लेंगे। जीवोंका विनाश देखकर वे राज्य और परिच्छदको छोड़ देंगे और गिरनार पर्वतपर जाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३०–३३ ॥

वसन्तऋतुका उत्तम समय आ पहुंचा। अमराई मौर गई। कोकिलाओंके शब्द सुनाई पड़ने लगे। नगारोंके शब्दसे सब लोगोंको वसन्तके आगमनकी सूचना देकर श्रीकृष्णजी वनक्रीड़ाके लिये जानेको उत्सुक हुए। पहले उन्होंने अपनी रानियोंके पास जाकर उन्हें श्रीनेमिनाथके विषयमें कुछ इशारेसे समझाया और फिर हाथीपर चढ़कर बहुतसे सेवकोंको लेकर वनको गमन किया ॥ ३४–३६ ॥

उनके चले जानेपर श्रीकृष्णकी सत्यभामा रुक्मिणी आदि रानियोंने श्रीनेमिकुमारके समीप जाकर कहा, हे जिनराज! उठो, इस वसन्तके समयमें तुम्हें रमण करनेके लिये वनको चलना चाहिये। तुम्हारे भाई (श्रीकृष्ण) तो कभीके चले गये हैं। यह सुनकर उन्होंने कहा, नहीं, मेरा जाना उचित नहीं है, मैं नहीं जाऊंगा। परन्तु रुक्मिणी आदि रानियोंने नहीं माना, वे उन्हें जबर्दस्ती वनमें लिवा ले गईं ॥ ३७–३९ ॥

श्रीकृष्णजी उस वनमें पहलेहीसे पहुंच गये थे। गोपियोंके साथ बहुत समय तक क्रीड़ा करते २ जब उन्होंने नेमिकुमारके आनेका समय निकट समझा, तब किसी दूसरे वनको चले गये और जाते समय श्रीनेमिनाथके विषयमें गोपियोंको कुछ सिखापन दे गये। उनके चले जानेपर गोपियां नेमिकुमारके साथ मनोहर क्रीड़ा करने लगीं। कोई केशर उलीचने लगी, कोई चन्दन डालने लगी, कोई पिचकारी मारने लगी, और प्रेमके भारसे उन्मत्त हुईं अनेक सुन्दरियां वृक्षोंके फूल तोड़नेके मिससे नेमिनाथको अपने कुचोंके आघातसे ताड़ित करने लगीं ॥ ४०–४२ ॥

इसप्रकार श्रीकृष्णजीकी गोपियोंने और रानियोंने अपने देवरके साथ लज्जारहित होकर बहुत समयतक हास्य किया और हावभावादिपूर्वक जलक्रीड़ा आदि लीलायें कीं। अन्तमें श्रीनेमिकुमारने वापिकासे निकलकर अपनी जलसे भीगी हुई धोती उतार दी और जाम्बुवतीसे कहा, हे देवी, तुम यह मेरी धोती निचोड़ दो। इससे जाम्बुवती बड़ी रुष्ट हुई। वह बोली, तुम बड़े मूर्ख हो, तुम्हें मुझपर

ऐसी आज्ञा नहीं चलाना चाहिये। क्योंकि मैं श्रीकृष्णमहाराजकी रानी हूं। यदि इसप्रकार आदेश करनेकी तुम्हारी इच्छा रहती है, तो किसी उत्तम कन्याकी मंगनी करके विवाह क्यों नहीं कर लेते हो? ऐसा काम करनेकी आज्ञा तो मुझे मेरे स्वामी भी कभी नहीं देते हैं जो तीन खंडके स्वामी हैं, और सुदर्शन नामक चक्रको हाथसे फिरा सकनेमें समर्थ हैं तथा जिन्होंने सारंग नामके धनुषको खेंचकर गोलाकार कर दिया था, और नागशय्यापर आरूढ़ होकर पांचजन्यनामक शंखको बजाया था। जाम्बुवतीके ये उद्धतताके वचन सुनकर नेमिनाथ रुष्ट हो गये ॥ ४३–५० ॥ रुक्मिणीने उसको रोका कि, अरी दुष्टनी! ऐसा मत कह। इस सचराचर तीन लोकमें इनके समान कोई बलवान नहीं है। ऐसा कहकर रुक्मिणीने उस धोतीको लेकर स्वयं निचोड़ दी। परन्तु नेमिकुमार शान्त नहीं हुए। वे जाम्बुवतीका गर्व जानकर आयुधशालामें पहुंचे। बड़े क्रोधसे उसका दरवाजा खोलकर भीतर गये और चक्र तथा धनुष लेकर नागशय्यापर चढ़ गये। फिर उन्होंने उस धनुषको गोलाकार करके, सर्पोंका मर्दन करके, और चक्रको फिरा करके शंखको अपनी नासिकाके सुरसे बजाया। उसके प्रचंड शब्दको सुनकर श्रीकृष्णजी दौड़े हुए आये, और श्रीनेमिकुमारको उक्त अवस्थामें देखकर बोले, हे जिनेश्वर! आपने न कुछ स्त्रीके वाक्यसे रुष्ट होकर यह क्या करना प्रारंभ किया है? उठो, और क्रोधको छोड़ दो। ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी भगवानको वहांसे उठाकर तथा भली भांति संतुष्ट करके अपने महलमें ले गये और वहां बड़े आदरसे उन्हें भोजनादि कराके चिन्ता करने लगे कि, अब क्या करना चाहिये ॥ ५१–५७ ॥ फिर सब कारण समझ करके वे शिवादेवीके महलमें गये। और उन्हें नमस्कार करके विनयपूर्वक बोले, हे माता! श्रीनेमिकुमार जवान हो गये हैं, विवाहके योग्य हो गये हैं, तुम अभीतक उनका विवाह क्यों नहीं करती हो? इसका क्या कारण है? शिवादेवीने उत्तर दिया, हे जनार्दन! हमारे वंशमें तो तुम्हीं सबसे प्रधान हो, फिर इस विषयमें मुझसे क्या पूछते हो? यह सब कर्तव्य तो तुम्हारा ही है। यह सुनकर नारायण अपने महलको लौट आये ॥ ५८–६१ ॥

महलमें आकर श्रीकृष्णजीने पहले बलदेवके साथ इस विषयमें विचार किया, और राजा उग्रसेनके यहां जाकर उनसे उनकी श्रेष्ठ कन्याकी मँगनी की। फिर वहांपर कुछ कपट रचकर वे अपने नगरको लौट आये, तथा नेमिनाथ भगवानके विवाहका उत्सव करने लगे। उसीसमय उन्होंने समस्त यदुवंशी भोजवंशी आदि राजाओंको बुलवाया, सो वे सब अपनी २ स्त्रियोंके सहित द्वारावती नगरीमें आ पहुंचे ॥ ६२-६४ ॥

जगह २ यादवोंकी स्त्रियां नृत्य करने लगीं, तत वितत आदि बाजोंके समूह जगह २ बजने लगे, घर घर विचित्र २ प्रकारके बंधनवारे बँध गये और मंडप खड़े हो गये। ऐसा कोई भी घर नहीं दिखता था, जिसमें कुछ उत्सव न होता हो। श्रीनेमिकुमारका मर्दन उबटन करके स्नान कराया गया और फिर स्त्रियोंने उन्हें नानाप्रकारके शृंगार कराये, और मंगलगीत गाये ॥६५-६७॥ वहां उग्रसेन महाराजके घर भी खूब उत्सव होने लगे। उन्होंने भी अपने स्वजनबंधुओंको बुलाये, सो वे सब जूनागढ़में आ पहुंचे। इस तरह दोनों ओर आनन्द ही आनन्द दिखने लगा। जिसमें श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर सरीखे वर और त्रैलोक्यसुन्दरी राजीमती सरीखी कन्या है, उस विवाहके उत्सवकी और अधिक प्रशंसा क्या की जावे ? ॥ ६८-६९ ॥

तदन्तर उग्रसेनने वरको लिवानेके लिये उत्तम २ सवारियां लेकर अपने बहुतसे अच्छे २ सेवकोंको उत्तमोत्तम भूषणोंसे सज धज करके भेजे। सो वे सब आनन्दके साथ समुद्रविजयके घरपर पहुंचे। उनका यादवोंने खूब सत्कार किया। और यादवोंकी स्त्रियोंने उन्हें गायन भोजनादिसे प्रसन्न किया। इसके पश्चात् वे नानाप्रकारके वाहनोंकेसहित बारातके साथ हो लिये।

शिवादेवी, देवकी, रोहिणी, सत्यभामा, रुक्मिणी, आदि सब रानियोंने द्वारिकामें ही सब मंगल विधान किये। अर्थात् वे बारातके साथ नहीं चलीं। जिससमय मंगल आरती उतारी जा रही थी, उससमय शिवादेवीकी ओढ़नी दीपकसे लगकर जलने लगी। मानो सबको रोकनेके लिये ही वह जलने

लगी कि, यह महोत्सव मत करो ॥ ७०–७४ ॥ इसी प्रकारसे जब श्रीनेमिकुमार रथपर आरूढ़ हुए, तब बिल्ली रास्ता काट करके आगे चली गई। परन्तु यह अपशकुन जानकर भी वे ठहरे नहीं, चल पड़े। चलते समय बाजोंके घोषसे, बन्दीजनोंके जयजय शब्दसे और सुहागिनी स्त्रियोंके मंगल गीतोंसे बड़ा ही कोलाहल हुआ। वरके साथ साथ समुद्रविजय, वसुदेव, बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, भानु, सुभानु आदि अनेक राजा चलने लगे। जब तोरणके समीप पहुंचे, तब नेमिकुमार याचकजनोंको यथेच्छ दान देने लगे। उससमय झरोंखोंमें बैठी हुई राजीमतीने उन्हें देखा। उसकी सखियोंने बतलाया कि, जिनके ऊपर छत्र चमर ढुर रहे हैं, वे ही श्रीनेमिकुमार हैं ॥ ७५–७९ ॥

तोरणके दाहिने और बाँयें ओरके स्थानोंमें अनेक पशु बँध रहे थे। वे अतिशय दीनतासे भरे हुए शब्द करते थे। नेमिकुमारको भी उनके शब्द सुन पड़े। उसी समय बहुतसी स्त्रियां उग्रसेनके महलसे मंगल कलश लिये हुए कोई उचित क्रिया करनेके लिये आई थीं। जीवोंके शब्द सुनकर दयामूर्ति नेमिकुमारने यहां वहां देखकर सारथीसेपूछा, राजाने यह जीवोंका समूह किस कारण बाँध रक्खा है? मुझे शीघ्र बतलाओ। सारथी बोला, हे नाथ! सुनो, ये सब पशु आपके लिये तथा आपके विवाहके लिये एकट्ठे किये गये है! आज आधी रातको ये सब मारे जावेंगे; और सवेरे आपके सत्कारके लिये इनका भोजन तयार किया जावेगा, जिसको सब यादवलोग खावेंगे। ये सब श्रीकृष्णजीकी आज्ञासे बांधे गये हैं ॥ ८०–८५ ॥ सारथीके वाक्य सुनकर श्रीनेमिकुमार अपने हृदयमें चिन्तवन करने लगे कि, "यह गृहबंधन–गृहस्थमार्ग पापका कारण है। ये जीवोंके घात करनेवाले दुष्ट लोग इस हिंसाकर्मसे उस नरकमें पड़ेंगे, जहां कि बड़ी भारी वेदना होती है। इन निरपराधी पशुओंको जो बेचारे जंगलोंमें रहते हैं, और घास खाकर अपना समय व्यतीत करते हैं, ये क्यों मारते हैं? जो शूरवीर कांटे न लग जावें, इस भयसे पैरोंकी रक्षाके लिये जूते पहिनते हैं, वे ही पापी दयारहित होकर अपने बाणोंसे जीवोंको कैसे मारते हैं? इस उत्सवसे जान लिया कि, विवाहका फल संसार बढ़ाना है। पापोंके आरंभ करने-

वाले असार संसारको धिक्कार है ॥ ८६–९० ॥" ऐसा विचार करके श्रीनेमिकुमारने रथको चलाया और जितने पशु बाड़ेमें घिरे हुए थे, जाकर उन सबको ही छोड़ दिया। नेमिनाथको जाते हुए देखकर लोग बहुत आकुल हुए।

श्रीनेमिनाथ भगवान वहांसे चलकर लौकान्तिक देवोंके साथ द्वारिकामें पहुंच गये। अर्थात् उसी समय लौकान्तिक देव भी अपने नियोगकी पूर्तिके लिये आ गये। भगवानको चलते समय श्रीकृष्णजीने बहुत रोका कि, हे महाबल! ठहरो, ठहरो, और विवाह करो! जिसमें मेरा कलंक मिट जावे। मातापिताने भी इसीप्रकारसे वारंवार रोका। परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। भगवान उन सबको संबोधित करके सिंहासनपर विराजमान हो गये ॥ ९१–९४ ॥

भगवानके वैराग्यसे इन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ। इसलिये वे भी जिनभक्तिके प्रेरित हुए द्वारिकामें आये और उन्होंने बड़े भारी उत्सवके साथ भगवानका अभिषेक किया। सुगंधित मलयागर चन्दनसे अनुलेपन किया, कल्पवृक्षोंके पारिजातादि फूलोंसे पूजन किया, और सैकड़ों स्तुतियोंसे स्तवन किया। इसके पश्चात् सोलह प्रकारके आभरणोंसे शोभायमान श्रीजिनेन्द्रभगवान, स्वयं चलकर शिविकामें (पालकीमें) आरूढ़ हुए। उस पालकीको पहले तो सात पैंड़तक राजा लेकर चले और फिर देवगण आकाशमार्गसे ले गये। द्वारावतीके लोग तथा और भी जो विद्याधर तथा भूमिगोचरी थे, वे सब शिबिकाके पीछे २ रैवतक पर्वत अर्थात् गिरनार पर्वतकी ओर चले। इधर जब राजीमतीने सुना, तब वह भी पदपदपर नानाप्रकारसे आक्रन्दन करती हुई–विलाप करती हुई पीछे २ चली ॥ ९५–१०० ॥

जिन भगवानने रैवतक पर्वतपर पहुंचकर उसे सब ओरसे देखा, फिर सहस्राम्रवनमें जाकर उन्होंने महान साहस किया। अर्थात् मस्तकके सारे केशोंको उन्होंने पांच मुष्ठियोंसे लोंचकर उखाड़ लिया और "नमः सिद्धेभ्याः" ऐसा कहकर सम्पूर्ण आभरणादिक छोड़ दिये। सुर और असुरगण धन्य धन्य कहकर स्तुति करने लगे। इसप्रकार जिनेन्द्रदेव मुनीन्द्र हो गये, और ध्यान लगाकर एक स्थानमें

स्थिर हो रहे। उनके साथमें एकहजार राजाओंने भी दीक्षा ले ली। वे भी सब मुनि होकर तप करने लगे॥ १–३॥

भगवानने जो मस्तकके केश उखाड़े थे, उन्हें इन्द्रने क्षीरसागरमें ले जाकर सिराये। इसप्रकार तीसरा तपकल्याणक करके इन्द्र अपने स्थानको चला गया॥ ४॥

जिनभगवानने तीसरे दिन ध्यानसे उठकर और द्वारिकामें आकर ब्रह्मदत्तके यहां पारणा किया। खीरके भोजनसे विधिपूर्वक पारणा हो जानेसे देवोंने ब्रह्मदत्तके घर यथाक्रमसे पांच आश्चर्योंकी वर्षाकी। इसके पश्चात् योगिराज भगवान् रैवतकपर्वतपर लौट आये और फिर घातिया कर्मोंका क्षय करनेके लिये ध्यान लगाकर विराजमान हुए॥ ५–७॥

उधर विलाप करती हुई और नेमिनाथका ध्यान करती हुई राजीमती अपने घरको लौटी। जब वह देख चुकी कि, भगवान दीक्षित हो गये, तब उसने भी अपने मनमें संयम लेनेका स्पष्ट निश्चय कर लिया। घर आनेपर उसे पिताने समझाया कि, बेटी! अब तू दुःख मत कर। मैं किसी दूसरे राजाके साथ तेरा पाणिग्रहण करा दूंगा। परन्तु राजीमती बोली, पिता! मैं श्रीनेमिकुमारको छोड़कर दूसरे पुरुषोंको आपके समान समझती हूं। अर्थात् और सब मेरे पिताके तुल्य हैं। नेमिकुमारके सिवाय मेरा कोई पति नहीं हो सकता। यह सुनकर उग्रसेन दुखी होकर रह गये। राजीमती भी नेमिनाथका ध्यान करती हुई दिन व्यतीत करने लगी॥ ८–११॥

उधर श्रीनेमिनाथ योगी ध्यानमें स्थिर हो रहे। उन्होंने आत्मामें आत्माका ध्यान करते हुए क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया। और उस ध्यानके प्रभावसे शीघ्रही घातिया कर्मोंको नष्ट कर दिया। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अन्तराय कर्मोंका विनाश होते ही लोक और अलोकका प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। यह ध्यानस्थहोनेके ५६ दिन पीछे हुआ॥ १२–१३॥

केवलज्ञानके प्रभावसे इन्द्रोंके आसन कंपायमान हुए। उससे उन्होंने जान लिया कि, श्रीनेमिनाथ

भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। इसलिये वे विमानोंपर तथा नानाप्रकारके वाहनोंपर आरोहण करके-दुंदुभीके शब्दोंसे दशोंदिशाओंको पूरित करते हुए, फूलोंकी वर्षा करते हुए और देवाङ्गनाओंका नृत्य कराते हुए रैवतक पर्वतपर आये ॥ १४-१६ ॥

तब तक इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने सर्व लक्षणोंसे लक्षित और मनके हरण करनेवाले समवसरणकी रचना की। पहले पृथ्वीसे पांचहजार धनुष ऊपर एक लम्बी चौड़ी पीठिका बनाई, जिसकी भूमिका वज्रकी बनी हुई थी, और जिसके चारों ओर बीसहजार सीढ़ियाँ थीं। इस पीठिकाके ऊपर रत्न सुवर्ण आदिसे बने हुए तीन प्राकार अर्थात् कोट थे, और चार मानस्तंभ थे। इनके सिवाय खाई, पुष्पवाटिका (बागीचा) नाटकशाला, वन, वेदिका, भवन और निर्मल जलसे भरे हुए सरोवर थे। पीठिकाके ठीक बीचमें एक तीन सिंहासनोंवाला कल्याणरूप सिंहासन था, जिसके चारों ओर अशोकवृक्ष आदि आठों प्रतिहार्य थे। निर्ग्रन्थमुनि तथा श्रावक आदिसे भरे हुए बारह कोठे थे। और बहुतसे स्तूप थे। वहांकी सब पृथिवी रत्नमयी थी। सिंहासनके ऊपर जिनेन्द्रभगवान विराजमान थे। उनके ऊपर ६४ चँवर ढुरते थे और मस्तकपर तीन छत्र शोभायमान थे। सुर और असुर उनकी वन्दना करते थे। और उनके ब्रह्मदत्त आदि ग्यारह गणधर थे। इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञासे समवसरणकी रचना हुई ॥ १७-२५ ॥

श्रीजिनभगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, ऐसा सुनकर द्वारावतीके समस्त लोग वन्दनाके लिये आये। कृष्ण, समुद्रविजय, आदि यादव शिवादेवी, देवकी, देवी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रानियां, और उग्रसेनादि अन्य सब राजा लोग भी आये। समवसरणको देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ। सब लोग तीन प्रदक्षिणा देकर, भावपूर्वक स्तुति करके, नमस्कार करके, और विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें यथास्थान बैठ गये। राजीमती भी पांचहजार स्त्रियोंके साथ समवसरणमें आई और भगवानको नमस्कार करके दीक्षित हो गई। जितनी स्त्रियां आर्यिका हुई थीं, राजीमती उन सबकी महत्तरा अर्थात् स्वामिनी होगई ॥ २६-३१ ॥

इसके पश्चात् सुननेकी इच्छा करनेवाले लोगोंके लिये श्रीवरदत्त गणधर जिनभगवानसे बोले, प्रभो! भव्यरूपी चातकोंके संतुष्ट करनेके लिये धर्मरूपी मेघको प्रगट करो। ये प्राणी अनादिकालसे मिथ्यात्वकी तृषासे अतिशय पीड़ित हो रहे हैं। तब मेघके स्वरूपको धारण करनेवाले श्रीजिनेन्द्रदेव भव्यरूपी चातकोंके लिये सप्तभंगमयी, अतिशय गंभीर और मधुर, वाणी बोले। उस वाणीमें चारों अनुयोग, बारहों अंग, रत्नत्रय और सातों तत्त्वोंका सार तथा स्वरूप था ॥ ३२–३५ ॥

भगवान बोले, संसारके भ्रमणका नष्ट करनेवाला धर्म दो प्रकारका है, एक मुनियोंका और दूसरा गृहस्थोंका। जिसमेंसे दिगम्बर मुनियोंका चारित्र तेरह प्रकारका है। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति। इसके सिवाय मुनियोंके अट्ठाईस मूलगुण, हजारों (८४ लाख) उत्तरगुण, और प्रतिदिनके करने योग्य छह आवश्यक कर्म हैं। मुनि इसप्रकारके निर्मल चारित्रका पालन करके मोक्षके शाश्वत सुखको प्राप्त करते हैं ॥ ३६–४० ॥ और गृहस्थोंका चारित्र बारह प्रकारका है। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत। श्रावकोंके येही बारह व्रत कहलाते हैं। भव्यजनोंको ये उत्तम श्रावकोंके आचार सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके सहित निरन्तर पालना चाहिये। मुनियोंके समान गृहस्थोंके भी मूलगुण होते हैं। वे ये हैं;–मद्य, मांस, मधु, और पांचप्रकारके उदुम्बर फलोंका त्याग। इनके सिवाय गृहस्थोंको विना जाने हुए वर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये, बुरे फल, बुरे फूल, बाजारका आटा, तथा कन्दमूलादिकका त्याग करना चाहिये। मक्खन सर्वथा छोड़ने योग्य है। ऐसा अन्न जिसपर फूल (फफूंड़ा) आ गया हो, तथा जो द्विदल हो, अर्थात् गोरससे (दूध दही तथा छांछसे) मिला हुआ दो दालोंवाला हो, नहीं खाना चाहिये, क्योंकि वह अनन्तकाय होता है अर्थात् उसमें अनन्त जीवोंकी राशि होती है ॥ ४१–४५ ॥ कांजी तक्र (छांछ-मठा) और पका हुआ शाक ये दो दिनके रक्खे हुए नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इनसे अहिंसाव्रतमें अतीचार लगता है। विवेकी श्रावकोंको चमड़ेके वर्त्तनमें (कुप्पे वगैरहमें) रक्खे हुए घी तैल, और जलको भी ग्रहण नहीं करना

चाहिये। क्योंकि इनके ग्रहण करनेसे मांसका दोष लगता है ॥ ४६-४७ ॥ तत्कालका गाला हुआ दोष रहित प्रासुक जल पीना चाहिये। विना जाना हुआ फल भी नहीं खाना चाहिये। मिथ्यात्वको और सातों व्यसनोंको दूरहीसे त्यागकर देना चाहिये। रातका भोजन और दिनका मैथुन त्याज्य है। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र और कुधर्म जो संसारके बढ़ानेवाले होते हैं, उनका कभी मनमें भी चिन्तवन नहीं करना चाहिये। बुद्धिमानोंको देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान ये छह कर्म प्रतिदिन करना चाहिये। तीन लोकमें सबसे दुर्लभ पदार्थ जिनदेवका कहा हुआ धर्म है ॥ ४८-५१ ॥

जिनेन्द्रभगवानका यह धर्मोपदेश सुनकर वहां जितने मनुष्य तथा देव थे, अतिशय संतुष्ट होकर भगवानको नमस्कार करने लगे। वादित्रोंका घोष, और गीतोंकी मधुर ध्वनि होने लगी। वाणीको सुनकर कितने ही भव्योंने दीक्षा ले ली, कईएकोंने जिनेन्द्रकी पूजाका तथा कईएकोंने मौन आदिका नियम धारण किया, किसीने सम्यक्त्व और किसीने अणुव्रत ग्रहण किये। इसतरह अपने २ भावोंके अनुसार भगवानके वाक्योंकी प्रेरणासे अनेक भव्योंने अनेक प्रकारके नियम लिये ॥ ५२-५५ ॥

इस उपदेशसे करोड़ों मनुष्य, देव, और असुर संबोधित होगये और नमस्कार करके अपने अपने स्थानको चले गये। इसी प्रकारसे सब यदुवंशी भी जिनभगवानको प्रणाम करके द्वारिकानगरीको लौट गये और जिनधर्ममें रत हो गये। जिनभगवानकी चरचा करते हुए अगणित भव्यजीव प्रतिदिन आते थे और उन्हें नमस्कार करते थे ॥ ५६-५८ ॥

इसके अनन्तर श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर रैवतक पर्वतसे विहार करनेके लिये उतरे। उनके साथ देव और असुरोंका समूह भी चला। जिससमय भगवान चलते थे, उससमय उनकी भक्तिकी प्रेरणासे वायुकुमार आगे आगे तृण तथा कांटोंको उड़ाते जाते थे, और मेघकुमार गंधोदककी वर्षा करते थे। जहां जहां भगवानके चरण पड़ते थे, वहां २ देवगण सोनेके कमलोंकी रचना करते थे। जिस स्थानमें भगवान गमन करते थे, उसके चारों ओर आठसौ कोशतक सुभिक्ष रहता था, अर्थात् कहीं अकाल

नहीं पड़ता था। किसी जीवका घात नहीं होता था। शीत, आताप, पीड़ा, छोटे २ उपद्रव आदि कुछ भी नहीं होते थे। जहां जहां जिनेन्द्रदेव चलते थे, देवगण आगे आगे जय जय शब्द करते जाते थे। शालि आदि धान्योंसे पृथ्वी खूब हरी भरी सोहती थी। सब दिशायें निर्मल रहती थीं। मन्द सुगंध पवन चलती थी। इन्द्रकी आज्ञासे देवगण सम्पूर्ण लोगोंको जिनेश्वरकी वन्दनाके लिये बुलाते थे। आगे २ पाप-का क्षय करनेवाला, जिनधर्मका प्रभाव प्रगट करनेवाला और मिथ्यात्वको नष्ट करनेवाला धर्मचक्र चलता था ॥ ५९–६७ ॥

इसप्रकारसे जिनेन्द्रदेवका सारी पृथिवीमें विहार हुआ। जहां जहां उनका गमन होता था, वहां वहां वे कल्याणकारी उपदेश देते थे। महाराष्ट्र, तैलंग, कर्णाटक, द्रविड़, अंग, वंग (बंगाल), कलिंग, सूर-सेन, मगध, (विहार), कनूज (कन्नौज), कुंकण (कोकण), सौराष्ट्र (सोरठ), उत्तर, मालवा, गुजरात, पांचाल (पंजाब), और महेश्वर आदि अनेक देशोंको संबोधित करके वे भद्दिलपुर नगरमें पधारे। वहां अलकाके घरमें वसुदेव महाराजके तीन युगल (जोड़ी) अर्थात् छह लड़के थे, जिन्हें कंसके उपद्रवके मारे देव रख आये थे। भगवानके वहां पहुंचनेपर वे भी समवसरणमें आये। ये छहों लड़के युवा थे, और प्रत्येकने बत्तीस २ श्रेष्ठ स्त्रियां विवाहीं थीं। भगवानका उपदेश सुनकर उक्त युवाओंको ऐसा वैरा-ग्य हुआ कि, सबोंने तत्काल ही जिनदीक्षा ले ली। पठन, पाठन, ध्यान, योग, पारणा, प्रोषण आदि सब ही कार्य वे छहों भाई एकसाथ करने लगे ॥ ६८–७५ ॥

उनको संबोधित करके जिन भगवान फिर रैवतक पर्वतपर आ गये। साथ ही श्रीकृष्ण आदि य-दुवंशी पुरुष और उनकी सत्यभामा आदि स्त्रियां भी समवसरणमें आईं। भगवानको नमस्कार करके और भक्तिपूर्वक पूजा करके सब मनुष्य देव असुर आदि अपने २ कोठोंमें यथास्थान बैठ गये। उससमय जिनराजने भव्यरूपी प्यासे चातकोंके लिये धर्मके स्वरूपका निरूपण किया, जिसे सुनकर सब ही लोग सन्तुष्ट हुए। अवसर पाकर देवकी महाराणीने जो कि एक घटनासे विस्मित हो रहीं थीं, बड़ी विनयके

साथ पूछा, हे भगवन् ! आज मेरे घर दो मुनि आये थे, सो उन्होंने विधिपूर्वक कई बार आहार लिया । अर्थात् वे ही दो मुनि एक ही दिन मेरे घर तीन बार भोजनके लिये आये और मैंने उन्हें पुत्रके मोहसे भक्तिके साथ तीन ही बार भोजन करा दिया । सो जिनभगवानके शासनमें जो दिगम्बर मुनि हो जाते हैं, क्या वे एक ही दिनमें कई बार आहार लेते हैं ? इसके उत्तरमें भगवानने कहा, दिगम्बर मुनि बार बार भोजन नहीं करते हैं, यह ठीक है, परन्तु तुम्हारे यहां जो तीन बार भोजनको आये, वे जुदे २ तीन युगल मुनि थे । और यथार्थमें वे छहों भाई तेरे ही पुत्र हैं, जिनकी जन्मके समय देवोंने ले जाकर रक्षा की थी । भगवानकी वाणी सुनकर देवकी महाराणीने कुटुम्बसहित उठकर उन छहों मुनियोंको नमस्कार किया ॥ ७६–८६ ॥ भगवानकी वाणीसे मुनियोंका सब सन्देह दूर हो गया । माता और छहों बेटे परस्पर अपनी २ वार्ता करने लगे । कृष्णजीके सगे भाइयोंको (मुनियोंको) देखकर सम्पूर्ण यादव प्रसन्न हुए । उस संगममें बड़ा भारी हर्ष हुआ ॥ ८७–८८ ॥

इसके पश्चात् सत्यभामा आदि आठों पट्टरानियोंने अपने २ पूर्वभवोंका वृत्तान्त पूछा और तदनुसार जिनभगवानने उन सबके भवोंका वर्णन किया । उन्हें सुनकर सब यादव लोग संतुष्ट हुए और फिर अपने २ घर चले गये । जिनेन्द्रभगवान भी फिरसे विहार करनेके लिये निकले । और अनेक देशोंको संबोधित करनेमें तथा भव्यजीवोंको मोक्षप्राप्तिके लिये जिनदीक्षा देनेमें तत्पर हुए ॥ ८९–९१ ॥

जो भव्यजीव जिनेन्द्रभगवानका यह पवित्र चारित्र आदरपूर्वक सुनते हैं, जिसमें कि विवाहादि महोत्सवोंकी चर्चा है, और निर्मल वैराग्य, दीक्षा, ध्यान, केवलज्ञान तथा देशना (उपदेश) आदिका वर्णन है, उनके घरमें निरन्तर ही सोमता, विद्वत्ता, और चतुराई निवास करती है ॥ १९२ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीनहिन्दीभाषानुवादमें श्रीनेमिनाथका विवाह, वैराग्य, दीक्षा, ज्ञान, समवसरण, देशना, विहारादिके वर्णनवाला तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्दशः सर्गः ।

श्रीनेमिनाथभगवान पल्लव देशमें विहार करके उर्ज्जयन्तगिरि अर्थात् गिरनारपर्वतपर फिर पधारे। सुर और असुर जिनको नमस्कार करते थे, उन तीर्थंकर देवके आनेपर कुवेरने इन्द्रकी आज्ञासे समवसरण-की फिर रचनाकी। सर्वज्ञ भगवान वहां विराजमान हो गये हैं, ऐसा जानकरके भक्तिके भारसे झुका हुवा और मस्तकपर हाथ रखके नमस्कार करता हुआ इन्द्र तत्काल ही वहां पहुंच गया। इसी प्रकार-से उन्हें आया हुआ जानकर श्रीकृष्णजी भी वन्दना करनेके लिये चले। अपने नगरमें उन्होंने इस बातकी घोषणा करा दी कि, भगवान आये हैं। उनके साथ प्रद्युम्नकुमार शंबुकुमार भानुकुमार आदि बहुतसे यदुवंशी राजा चले, तथा सत्यभामा आदि सब रानियां भी अपनी २ पालकियोंमें बैठकर चलीं ॥ १–५ ॥

तुरहीके शब्दोंसे दिशाओंको गुंजायमान करते हुए, हाथियोंके मदजलसे पृथ्वीको प्लावित करते हुए, घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलको सब दिशाओंमें उड़ाते हुए, छत्रोंसे संसारके सघन आतापको शोषण करते हुए, क्षण क्षणमें दुरनेवाले अगणित चँवरोंसे दिशाओंको ढँकते हुए, बन्दीजनोंकी विरदध्वनिसे सारी दिशाओंको व्याप्त करते हुए, पैदल सेवकोंसे पृथ्वीको कंपित करते हुए और अपनी विभूतिसे जगतको तिनकाके समान दिखलाते हुए उस तीन खंडके स्वामी श्रीकृष्णनारायणने दूरहीसे गिरनार पर्वतको देखा ॥ ६–६ ॥ वह रमणीय पर्वत मदोन्मत्त कोयलोंकी कूकसे ऐसा मालूम पड़ता था, मानों आलाप ही कर रहा है, और फलोंसे लदे हुए वहांके वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे, मानों उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार ही करते हैं। निरन्तर आकाशमें भ्रमण करते हुए, सूर्यके घोड़े जिस पर्वतके शिखरपर थक कर विश्राम लेते थे, और जो आलवालोंसे आकुल था अर्थात् जहांके वृक्षोंके चारों ओर जल भरनेके खंदक बने हुए थे। ऐसे गिरनार पर्वतपर श्रीकृष्णजी पहुंचे। वह पर्वत उन्हींके समान था, अर्थात् जिस प्रकार वह पर्वत, उन्नतवंशवाला अर्थात् बड़े २ वांसोंवाला, सौम्य, बहुतसे सत्त्व अर्थात् जीवोंसे

भरा हुआ, और अनेक पत्रोंसे सघन था, उसी प्रकार श्रीकृष्णजी भी उन्नतवंशवाले (कुलीन), सौम्य, बहुसत्त्वसमाकुल अर्थात् पराक्रमी, और अनेकपत्रसंकीर्ण अर्थात् हाथी घोड़े आदि वाहनोंसे सघन थे ॥ १०-१२ ॥ श्रीकृष्णनारायण छत्र चमर हाथी घोड़ा रथ आदि राजचिन्होंको दूरहीसे छोड़कर कितने ही श्रेष्ठराजाओंके साथ जो कि विनीत और विस्मित हो रहे थे, भगवानके समवसरणमें पहुंचे। मानस्तभों, सरोवरों, नाट्यशालाओं, चँदोवों, छत्रों, झारियों, पुष्पमालाओं, सिंह आदिके चिन्होंवाली धुजाओं और अनेक महोत्सवोंसे उक्त समवसरण शोभायमान हो रहा था ॥ १३-१६ ॥ वहां सिंहासनपर बैठे हुए, और तीन छत्रों तथा ढुरते हुए चँवरोंसे युक्त नेमिनाथ भगवानको देखकर नारायणने तीन प्रदक्षिणा दीं, विधिपूर्वक पूजा की, और उत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार करके इसप्रकार स्तुति की:—हे भगवन्! आप तीन जगतके स्वामी हैं, ज्ञानवान हैं, तृष्णारहित हैं, क्षमा श्री ह्री धृति कीर्ति आदिसे निरन्तर शोभित हैं, विद्याधर, भूमिगोचरी, देव आदि आपके चरणकमलोंको सदा नमस्कार करते हैं, और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं। हे नाथ! हम शक्तिहीन आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? परन्तु स्वार्थकी सिद्धिके कारण अर्थात् अपने कल्याणकी इच्छासे लज्जित नहीं होते हैं—स्तुति करते हैं ॥ १७-२१ ॥ आपने संसारके बंधनको नष्ट करके निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया है, राजीमती आदि प्रियजनोंको तथा राज्यको आपने दूरहीसे छोड़ दिया है, माया मोह काम क्रोध और लोभादि शत्रुओंको हे प्रभो! आपने अपने ध्यानके योगसे जीत लिया है। आप सारे लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाले सूर्य हैं, और निर्दोष जड़ता रहित, धीर तथा निष्कलंक चन्द्रमा हैं। आपने आत्मा और शरीरको पृथक् चिन्तवन करके आत्मतत्त्वको जाना है, और इसी उत्कृष्टतत्त्वको आपने सप्तभंगीवाणीमें वर्णन किया है ॥ २२-२५ ॥ अज्ञानरूपी अंधकारसे अंधेहुए पुरुषोंके चक्षुओंको आप ज्ञानरूपी अंजनकी सलाईसे उघाड़नेवाले-सूझते करनेवाले और भव्योंको संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले हो। इसप्रकार अनेक गुणोंके धारण करनेवाले हे नेमिनाथ! हे तीन लोकके गुरु! आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ २६-२७ ॥ इसप्रकार स्तुति

करके और हाथ जोड़कर नमस्कार करके श्रीकृष्णजीने भगवानसे धर्मका स्वरूप पूछा। तब उन्होंने कहा;- संसारसे पार करनेवाला धर्म दो प्रकारका है, एक तपस्वियोंका और दूसरा गृहस्थोंका। जीव, अजीव, आस्रव आदि सात तत्त्व जैनधर्ममें कहे गये हैं। इनमें पुण्य और पापको मिलानेसे नव पदार्थ हो जाते हैं। लोकमें ये नव पदार्थ भी प्रसिद्ध और माननीय हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। इनमें से काल द्रव्यको छोड़कर पांचको अस्तिकाय कहते हैं। आत्मा न्यारा है, कर्म न्यारे हैं, और शरीर न्यारा है। परन्तु संसारमें आत्मा कर्म की फाँसीमें फँस रहा है, इसलिये तत्त्व और अतत्त्वको सचे और झूठेको नहीं जान सकता है। जैसे कि बादलों के आजाने से सूर्य और चन्द्रमा। लेश्या छह प्रकारकी हैं, जिनमेंसे पहली पीता पद्मा और शुक्ला ये तीन शुभ हैं, तथा भव्य जीवोंके होती हैं, और शेष कृष्णा, नीला और कापोती ये तीन अशुभ हैं, तथा अभव्य जीवोंके होती हैं। ये सब लेश्या जीवोंके विशेष २ प्रकारके भावोंसे होती हैं। ध्यान चार प्रकारके हैं, मार्गणा चौदह प्रकारकी हैं, धर्म दश प्रकारका है, और तप अन्तरंग तथा बहिरंगके योगसे बारहप्रकारका है ॥ २८-३७ ॥

इस प्रकार भगवानकी वाणी सुनकरके श्रीकृष्णजीने त्रेशठशलाका पुरुषोंका चरित्र पूछा, तब उन्होंने पांचों कल्याण, गुरु, पुर, नाम, जिन स्वर्गोंसे चय करके आये उनके नाम, जन्मके नगर, माता, पिता, नक्षत्र, शरीरकी उंचाई, वर्ण (रंग) वंश, राज्यकाल, तप, ज्ञान और निर्वाणके स्थान, और जितने राजाओंके साथ दीक्षा ली, उनकी संख्या, आदि छयालीस २ बातें प्रत्येक तीर्थंकरकी कहीं। फिर छह खंड पृथ्वीके स्वामी बारह चक्रवर्तियोंके, नव नारायणोंके, नव प्रतिनारायणोंके, और नव बलभद्रोंके नगर, वंश, माता पिता, जिन २ तीर्थंकरोंके तीर्थमें उत्पन्न हुए उनके नाम, उत्पत्ति, वृद्धि और मरण आदि सब विषयोंका प्रतिपादन किया। जिसे सुनकर सारी सभा वैराग्यसे भूषित हो गई अर्थात् सब लोगोंके चित्तपर वैराग्य छा गया ॥ ३८-४४ ॥

समवसरण सभामें श्रीकृष्णजीके भाई गजकुमार भी बैठे हुए थे। उन्हें ऐसा वैराग्य हुआ कि,

वे तत्काल ही उठे और भगवानसे दीक्षा लेकर पर्वतके शिखरपर चले गये। और वहां अपने हाथसे अपने केश उखाड़कर ध्यान धारण करके विराजमान हो गये। एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण गजकुमारका श्वसुर था। वह दीक्षालेनेकी खबर पाकर गजकुमार मुनिके समीप आया, और उन्हें नाना प्रकारके वचनोंसे समझाने लगा कि, इस मुनिदीक्षाको छोड़कर घर चलो। परन्तु जब मुनिराजपर उसके वचनोंका कुछ भी असर नहीं हुआ, तब वह बहुत ही कुपित हुआ और अग्निमयी दग्धिकाको(?)उस पापीने उनके सिरपर रखदी। परन्तु इतने पर भी अर्थात् शरीरके जलने लगनेपर भी वे योगिराज अपने ध्यानसे जरा भी च्युत नहीं हुए। आखिर शरीरके बहुत जल जानेसे जब कंठगत प्राण हो गए, तब उन्हें उस अपूर्व ध्यानके योगसे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और उसी समय अर्थात् केवलज्ञान होते ही उनका शरीर छूट गया–मोक्ष प्राप्त होगया। यह जानते ही भगवानके समवसरणमें जो देव बैठे हुए थे, वे सब उठ खड़े हुए और गजकुमार की ओर चले॥ ४५–५१॥ श्रीकृष्णजीने पूछा, हे भगवन्! यहांसे ये देवगण जयजय शब्द करते हुए क्यों उठ रहे हैं? भगवान बोले, श्रीगजकुमार मुनिको शुक्लध्यानके योगसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, तथा उपसर्गके जीतनेसे तत्काल ही उनका मोक्ष भी हो गया है। इसी लिये ये सब देव और मनुष्य वहां जा रहे हैं॥ ५२–५४॥ यह सुनते ही सब लोगोंने गजकुमारको बड़े अचरजसे यहां वहां देखा, और इतनी जल्दी यह सब कैसे हो गया, इसका कारण पूछा। तब जिनेन्द्रदेवने भी उपसर्ग आदिका सब वृत्तान्त कह सुनाया। गजकुमारका इसप्रकार निर्वाण देखकर तथा भगवानकी वाणी सुनकर अनेक लोगोंको वैराग्य होगया। इसलिये उन्होंने जिनदीक्षा ले ली। जो लोग दीक्षा नहीं ले सके, उनमेंसे बहुतोंने अणुव्रत ग्रहण कर लिये, बहुतोंने सप्तशील धारण किये और बहुतोंने गृहस्थों के छह कर्म पालन करनेका नियम लिया॥ ५५–५७॥ निदान भगवानकी वाणीसे सब ही देव मनुष्य संतुष्ट हुए और मिथ्यात्वके नष्ट करनेवाले सम्यक्त्वको प्राप्त हो गये अर्थात् सब ही समकिती हो गये॥ ५८॥

श्रीकृष्णजीने भी जान लिया कि, यह संसार असार है। क्योंकि जितने श्रेशठ शलाका पुरुष आजतक

हुए हैं, उन सबको नष्ट हुए सुने हैं। कानरूपी अंजुलियोंसे जिनेन्द्रदेवके वचनरूपी अमृतका पान करके सब लोग हर्षित हुए। तदनन्तर बलभद्रजीने इस प्रकारसे अपने मनकी बात पूछी कि, हे नाथ ! जो पदार्थ अनादि हैं, वे तो अकृत्रिम हैं, इसलिये उनका कभी नाश नहीं होता है, परन्तु जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे अवश्य ही नष्ट होते हैं, ऐसा मुझे पक्का विश्वास है। इसलिये बतलाइये कि, द्वारिकाका नाश कब और कैसे होगा, तथा श्रीकृष्णकी मृत्यु कैसे होगी ? क्योंकि ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि, द्वारावती कभी नष्ट नहीं होगी, और श्रीकृष्ण सदा जीते रहेंगे ॥ ५९–६१ ॥ नेमि भगवानने कहा कि, द्वारिकानगरी बारह वर्षके पीछे द्वीपायन मुनिके कोपसे नष्ट होगी, और उस क्रोधका कारण मद्य (शराब) होगा। तथा श्रीकृष्णजीकी मृत्यु जरत्कुमारके वाणसे होगी। वह शिकारके व्यसनमें फँसकर कोशांब वनमें जावेगा, और वहां वाण चलावेगा। वही वाण नारायणकी मृत्युका कारण है ॥ ६२–६३ ॥ यह सुनकर सब ही लोग भयसे व्याकुल हो गये। ठीक ही है, सम्पतिमें जिस प्रकारसे सुख होता है, उसी प्रकारसे विपत्तिमें दुःख भी होता है। द्वारिकाके नष्ट होनेका तथा कृष्णजीकी मृत्युका भविष्य सुनकर कई लोग तो डरके मारे दूसरे नगरको चले गये और कई लोग वैरागी होकर सर्वज्ञदेवकी शरणको प्राप्त हुए, अर्थात् दीक्षित हो गये। और द्वीपायन मुनि भगवानके वचनोंको मिथ्या करनेके लिये दूने वैराग्य युक्त परिणाम करके विदेशको चले गये। वहां द्वारिकाके समीप नहीं रहे। इसी प्रकार जरत्कुमार यह सोचकर किसी निर्जन वनमें चला गया, कि, जिनके चरणोंकी समस्त शूरवीरोंके मुकुटोंसे पूजा होती है, वे ही श्रीकृष्णजी जब मेरे द्वारा मारे जावेंगे, तब मैं यहां रहकर क्या करूँगा ? भाइयों ने उसे रोका, परन्तु वह नहीं रुका, द्वारिका छोड़कर चला गया ॥ ६४–६८ ॥ इसके पश्चात् श्रीकृष्णजीने द्वारिका जलनेके डरसे नगरीमें मुनादी पिटवाई कि, जितने मद्य पीनेवाले हैं, वे मद्यका सर्वथा सम्बन्ध छोड़ देवें। और यह भी प्रकट किया कि, यदि हमारी कोई प्यारी स्त्री, पुत्र, भाई, आदि जिनदीक्षा लेना चाहैं, तप करना चाहैं, तो करैं, हम कभी नहीं रोकेंगे ॥ ६९–७० ॥

द्वारिकाको इसप्रकार भविष्यके भयसे व्याकुल देखकर सूर्यदेव रक्त होनेपर भी अपनी उदय लक्ष्मीकी निन्दा करके पराङ्मुख हो गये। नारायणके दुःखको तथा भावीको देखनेमें असमर्थ होकर वे अस्ताचल पर्वतके तटसे समुद्रमें गिर पड़े। सारांश यह कि, सूर्य अस्त हो गया। उसके समुद्रमें पतन होनेका समाचार सुनकर कमलिनी दुखसे मलिनमुख हो गई और भौंरोंके शब्दोंके मिससे मानो रोने ही लगी। संध्या सिन्दूर, कुसुंभ तथा टेसूके फूलोंकी शोभाको धारण करने लगी, अर्थात् लाल हो गई। मानो वह द्वारिकाके जलनेकी पहलेहीसे सूचना देने लगी ॥ ७१–७४ ॥ सूर्यके परलोक हो जानेके शोचसे लाल अम्बर (वस्त्र तथा आकाश) को धारण करनेवाली संध्या रोती २ नष्ट हो गई। दिन अस्त होनेपर पक्षियोंका जो कोलाहल होता है, वही उस संध्यारूपी स्त्रीका रोना था ॥७५॥ संध्याके बीत जानेपर अंधकारके परमाणु दशों दिशाओंमें फैल गये। वे ऐसे मालूम पड़ते थे, मानो आगे जो आग लगनेवाली है, उसके धुएंके अंशही उड़ उड़कर फैल गये हैं ॥ ७६ ॥ अज्ञानको तथा निरुत्साहको बढ़ाता हुआ और कुमार्गमें मनको भरमाता हुआ अंधकार मिथ्या श्रद्धान करानेवाले मोहजालके समान विश्वव्यापी हो गया ॥ ७७ ॥ फिर क्या था, क्षणभरमें तारागण दिखलाई देने लगे। अल्प बुद्धिवाले लोक प्रायः अंधकार में ही शोभा देते हैं, अर्थात् जहां अज्ञान होता है, अल्प बुद्धिवाले वहीं प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ ७८ ॥ थोड़ी देरमें अंधकारको नष्ट करते हुए और कुमदोंको प्रफुल्लित करते हुए निशानाथ अर्थात् चन्द्रदेव उदित हुए। जिनके पति परदेश गये हुए थे, उन स्त्रियोंके लिये वे बड़े ही भयंकर थे॥ ७९ ॥ संयोगिनी स्त्रियोंने शरीरका श्रृंगार करना, पतिके अपराधसे रूसना, और दूतियोंको भेजना अथवा दूतियोंके आनेकी बाट देखना आदि कार्य प्रारंभ कर दिये। क्रमक्रमसे स्त्री पुरुषोंमें रतिक्रीड़ा होने लगी। बहुतसे लोग कामभोगोंमें निमग्न हो गये। परन्तु कई विचारवान पुरुष इस प्रकार चिन्ता करके कामभोगोंसे विरक्त हो गये कि, जिसको साक्षात इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने बनाई थी, वही द्वारिका नगरी यदि नष्ट होनेवाली है, तो इस संसारके उदरमें और क्या शाश्वत–स्थायी हो सकता है? कंस आदि मत्तहाथियोंके लिये जो सिंहके समान था, उसी श्रीकृष्ण

नारायणकी नगरीको कोई जला देगा, यह बड़ा अचरज है ॥ ८०–८३ ॥ सच है, सम्पूर्ण जीवधारियोंका जीवन और वैभव स्वप्नके समान, इन्द्रजालके समान, और पानीमें उठनेवाले फेनके समान क्षणस्थायी तथा मृगतृष्णाके समान भ्रमरूप है। मनुष्योंका शरीर रोगका घर है, भोग भयंकर हैं, स्त्रियां अनेक दोषोंसे भरी हुई हैं, अर्थ (धन) अनर्थोंका करनेवाला है, मित्रता सदा स्थिर नहीं रहती है, और जिस का संयोग होता है, उसका वियोग होता है, ऐसा ध्यानकरके लोगोंको तपोवनकी सेवा करनी चाहिये, अर्थात् दीक्षा लेकर मुनि हो जाना चाहिये। संसारमें यही सारभूत है। इसप्रकार चिन्तवन करते हुए पुरुषोंसे रागद्वेष करके ही मानो चन्द्रदेव भी रात्रिके साथ २ संसारसे विमुख होकर चले गये, जैसे कि सूर्य चला गया था। अर्थात् रात बीत गई, चन्द्रमा डूब गया ॥ ८४–८७ ॥

प्रभातकी सूचना करनेवाले मुर्गोंके शब्दोंके साथ साथ नगाड़े बजने लगे। जो कि जागे हुए लोगोंको बहुत प्यारे लगते थे। गन्धर्वोंके गीत होने लगे, और बन्दी जनोंकी जयजय ध्वनि होने लगी। सब लोग इन नानाप्रकारके शब्दोंको सुनकर जाग उठे। सूर्यदेव रात्रिको नष्ट करके और अंधकारका निराकरण करके उदयाचल पर्वतके शिखरपर आ गये। सिन्दूरके समान लाल वर्ण, लोग जिसकी बन्दना करते हैं, ज्योतिषी देवोंका नाथ, और सौम्यरूप वह बालसूर्य पर्वतके मस्तकपर ऐसा मालूम पड़ता था, मानो आगामी दाहके मारे भयभीत हो रहा है–कांप रहा है ॥ ८८–९१ ॥*

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें बलभद्रप्रश्न और जिनेन्द्रदेवकृत भविष्यनिरूपणनामक चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अथ पंचदशः सर्गः।

एक दिन श्रीकृष्णनारायण राजसभामें दिव्य सिंहासनपर इन्द्रके समान विराजमान हो रहे थे।

---

*दूसरी प्रतिमें ९१ नम्बरका श्लोक नहीं है और यहां सर्गकी समाप्ति भी नहीं है। पन्द्रहवें सर्गके अन्तमें सर्ग समाप्त किया है।

यादवोंकी भीड़से सभा सब ओरसे भर रही थी। सामन्तों, मंत्रियों, विद्याधरों, और बलभद्रादि राजाओंसे घिरे हुए वे सूर्यके समान मालूम होते थे। गंगाकी धवल तरंगोंके समान चमर ढुर रहे थे। सोलहों आभरण उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। हृदयमें कौस्तुभ नामका मणि दैदीप्यमान हो रहा था। मस्तकपर सफेद छत्र शोभित होता था। और उनका मुख फूले हुए कमलके समान था। लोग नानाप्रकारकी कला और विनोदोंसे उनका चित्त रंजायमान कर रहे थे। परन्तु उनके हृदयमें थोड़ीसी शंकाकी छाया जान पड़ती थी ॥ १–५ ॥ इतनेमें शान्तशील, गुणवान, और विद्यावान प्रद्युम्नकुमार राजसभामें आया और अपने पिताको नमस्कारकरके सुन्दर सिंहासनपर बैठ गया। उस समय उसका चित्त विषयवासनाओंसे विरक्त हो रहा था। थोड़ी दूर बैठकर जब किसी चलती हुई चरचाका अंत हुआ, तब उसने कठिनाईसे भी जो नहीं छोड़ा जा सकता है, ऐसे मोहको छोड़ करके, मस्तकपर अंजुली रखके अर्थात् हाथ जोड़कर और अभयकी याचना करके कहा, हे पिता! आपके प्रसादसे मैंने जाति रूप कुल आदि तथा सम्पूर्ण भोग उपभोगकी सुखकारी वस्तुएं पाई हैं। परन्तु भोगकरके जान लिया कि, कोई भी वस्तु शाश्वत सदा रहनेवाली नहीं है। हे प्रभो! संसारकी स्थिति नित्यतारहित अर्थात् क्षणभंगुर है ॥ ६–११ ॥ इसलिये अब प्रसन्न हूजिये, और मुझे आज्ञा दीजिये, जो मैं आपकी कृपासे मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिये जो कि सदा शाश्वत है, कोई अच्छा उपाय करूं। यह सारा संसार असार और दुःखकारक है, इसलिये हे पिता!! मैं संसारभ्रमणकी मिटानेवाली जिन भगवानकी दीक्षा लेता हूं ॥ १२–१३ ॥

प्रद्युम्नकुमारके वचन सुनकर वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि सबके सब यादव शोकमें मग्न हो गये। मूर्च्छित होकर काठके समान हो रहे। उस मूर्च्छासेही उन सबका मरण रुक गया, यह बात हम निश्चित समझते हैं। अर्थात् मूर्च्छा न आती, तो कोई भी न बचता। मूर्च्छाके दूर होनेपर उन सबने स्नेहके वश होकर कहा, हे बेटा! आज तू इतना कठोर क्यों हो गया है? क्या अब तू पहलेका प्रद्युम्नकुमार नहीं रहा है? ऐसे स्नेहरहित और बन्धुवर्गोंको दुखित करनेवाले कठोर वचन तेरे मुखसे कैसे निकलते हैं? हे वीर!

हे गुणोंके आधार! संयमका यह कौनसा समय है? तू अभी युवा है, रूपवान है, इसलिये भोगोंके भोगने योग्य है। दीक्षा लेने योग्य नहीं है ॥ १४–१८ ॥ इसके सिवाय जिनेन्द्र भगवानने जो कहा है, उसे कौन जानता है कि, होगा या नहीं? तू व्यर्थ ही क्यों भयभीत होता है? तू वीरोंमें वीर है, धीरोंमें धीर है, योद्धाओंमें योद्धा है, मंत्रियोंमें मंत्री है, विद्वानोंमें विद्वान है, भोगियोंमें भोगी है, सब जीवोंकी दया करनेवाला है, बंधुजनोंमें प्रीति करनेवाला है, पंडित है, चतुर है, योग्य अयोग्यका जाननेवाला है, सारांश यह कि, सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, किसी गुणमें कम नहीं है, इसलिये इस समय तेरे दीक्षा लेनेके वचन युक्तियुक्त नहीं जान पड़ते हैं ॥ १९–२२ ॥

अपने मलीनमुख बंधुओंको मोहके वशीभूत जानकर प्रद्युम्नकुमार बोला, हे पूज्यपुरुषो! केवली भगवानके वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकते हैं। जो सम्यग्दर्शनसे विभूषित हैं, उन्हें इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिए। मैं भयभीत नहीं हुआ हूं। सारी पृथिवीमें मुझे किसीका भी भय नहीं है। जीवधारियोंको अपने पुराने बांधे हुए कर्मोंके सिवाय और किसीका कुछ भी डर नहीं है। संसारमें न कोई सज्जन बंधु है, और न कोई दुर्जन तथा शत्रु है। न कोई किसीको कुछ (सुख दुख) दे सकता है, और न कोई किसीका कुछ ले सकता है। इस असार संसारमें जीव अनादि निधन है। अगणित भवोंमें इसके अगणित बंधु हुए हैं। फिर बतलाओ, किन किन बंधुओंके साथ स्नेह किया जाय? सभी बन्धु हैं। ऐसा समझकर आप सब पूज्य पुरुषोंको शोक नहीं करना चाहिये। शोक बड़ा दुखदाई है। प्रद्युम्नकुमारके ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्णजीका हृदय दुःखसे भर आया। उन्हें शोकसे गद्गद देखकर विद्वान कामकुमारने कहा, हे तात! आप क्या शोक करते हैं? आप तो सबको उपदेश देनेवाले हैं! क्या प्रकाशवान सूर्य्य को भी दीपक दिखलानेकी आवश्यकता होती है? ॥ २३–३० ॥ क्या आप नहीं जानते हैं, कि यह मृत्यु आयुके क्षीण होनेपर सब जीवोंका भक्षण कर जाती है। न बालकको देखती है, न कुमारको देखती है; न विद्वानको छोड़ती है, न मूर्खको छोड़ती है, न रूपवानको बचाती है, न कुरूप-

को बचाती है। इसी प्रकारसे सुशील, शीलरहित, गुणी निर्गुणी, शूर कायर, और जवान बूढ़ा आदि जिसको पाती है, ले जाती है। फिर मैं जवान हूं, भोग भोगनेके योग्य हूं, गुणवान हूँ, इसलिये क्या मौत मुझे बचा देगी? ॥३१-३२॥ यदि ऐसा है, तो बतलाओ, भरत चक्रवर्तीका पुत्र तथा सुलोचनाका पति मेघेश्वरकुमार कहां गया, जो स्त्रियोंका अतिशय प्यारा था? आदिनाथ भगवानके भरतचक्रवर्ती तथा आदित्यकीर्ति आदि प्रतापी पुत्र कहां गये? बलवान बाहुबली भी कहां गये? नमि आदि विद्याधरराजाओंका क्या पता है? इसप्रकार अनेक वैराग्य उत्पन्न करनेवाले वचनोंसे पिताको समझाकर और शाम्बुकुमारको अपने पद पर स्थापित करके प्रद्युम्नकुमार अपनी माताके महलको गये ॥ ३३-३६ ॥

रुक्मिणीमाताके चरणकमलोंको नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार बोला, हे माता! बालकपनसे लेकर अभीतक मैंने जो कुछ अनिष्ट किये हों, इससमय प्रसन्न होकर उन सबकी क्षमा प्रदान करो। मैं आपका बालक हूं। और पूज्यपुरुष जितने होते हैं; वे क्षमाके करनेवाले होते हैं। बालकोंपर वे सदा क्षमा करते हैं। मैं अब दिगम्बरी मुनियोंके व्रत ग्रहण करता हूं, जो सम्पूर्ण कर्मरूपी तिनकोंके जलानेके लिये दावानलके समान हैं, शीलादि बड़े २ रत्नोंके रत्नाकर हैं, गुणोंके मन्दिर हैं, और जिन्हें पूर्व पुरुषोंने वनमें जाकर ग्रहण किये हैं। हे माता! इस विषयमें अब तुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये, अर्थात् रोकना नहीं चाहिये ॥ ३७-४० ॥ पुत्रके इसप्रकार दीक्षा लेनेके वचन सुनकर माता अतिशय दुःखी हुई और मूर्छित होकर धरतीमें गिर पड़ी; जैसे कि जड़के कट जानेसे वल्लरी (बेल) प्रभाहीन होकर गिर पड़ती है। थोड़ी देरमें जब चेतना हुई, तब रुक्मिणी बोली, हे बेटा! इससमय क्या तुझे ऐसा करना योग्य है? अपनी माताको दुखिनी छोड़कर जाना क्या तुझे उचित है? यदि धर्मके लिये उद्यत हुआ है, तो हे दयाधर्मके पालनेवाले! अपनी माताको क्यों दुखी करता है? ॥ ४१-४४ ॥ माताको इसप्रकार शोकाकुलित देखकर शास्त्रोंके नाना दृष्टान्तोंको जाननेवाला प्रद्युम्नकुमार फिर बोला, हे माता! तू संसारके स्वरूपको नित्य (स्थायी) समझ रही है। और यह नहीं जानती है कि, जीवधारी अकेला, उत्पन्न होता

है, और अकेला ही मरता है। अकेला कर्म बाँधता है और अकेला ही उसका फल भोगता है। इसलिये जो विवेक आदि गुणोंके धारण करने वाले हैं, उन्हें किसीके साथका शोक नहीं करना चाहिये। प्राणियोंको प्रत्येक भवमें दुःखका देनेवाला एक मोह ही है। जबतक मोह है, तभीतक अधिकाधिक दुःख है। जन्मके पीछे मरण लगा हुआ है, यौवनके पीछे बुढ़ापा लगा हुआ है और स्नेहके पीछे दुःख लगा हुआ है। इन्द्रियोंके विषयभोग हैं, सो विषके समान दुखदाई हैं। विवेकी जीव इस मोहको छोड़कर सुकृत करनेका यत्न करते हैं । उन्हें जो कोई रोकता है, वह मूर्ख है तथा शत्रु है । इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५–५० ॥

ऐसा समझकर शोच छोड़ दो और मुझपर प्रसन्न होकर दीक्षा लेनेकी आज्ञा दो। मैं तुम्हारी आज्ञानुसार चलनेवाला हूं ॥ ५१ ॥ पुत्रके वचन सुनकर रुक्मिणीका मोह दूर हो गया। विषयोंका परिणाम समझकर बोली, हे पुत्र! मैं बहू और बेटेके मोहसे मोहित हो रही थी। तूने मुझे प्रतिबोधित कर दी। हे गुणाधार! इस विषयमें तू मेरे गुरुके समान है। प्रद्युम्न! जिस तरह सूखेपत्तोंका समूह हवाके लगनेसे उड़ जाता है, उसी प्रकारसे कुटुम्बीजनोंका संयोग है। अर्थात् कालरूपी हवाके चलनेसे यह भी जहां तहां उड़ जाता है। जैसे बादलोंके समूह आकाशमें दिखलाई देते हैं, और थोड़ी ही देरमें हवाके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं, उसीप्रकारसे संपति भी बातकी बातमें नहीं रहती है ॥ ५२–५५ ॥ एक तप तथा संयम ही संसारमें ध्रुव है। विषयोंकी प्रीति अवश्य ही विनाश होनेवाली है। सुखके साथ दुःख लगा हुआ है। और विषयभोग विषके समान परिपाकमें दुख देनेवाले हैं। यदि संसारके विषयों में कुछ सारता होती, तो श्रीआदिनाथतीर्थंकर आदि महापुरुष उन्हें क्यों छोड़ देते और मोक्षके लिये क्यों प्रयत्न करते। कुटुम्बीजनोंकी संगति यदि नित्य होती, अर्थात् हमेशा बनी रहती, तो भरत आदि महाराज तपस्या करनेके लिये कैसे तत्पर होते? ॥ ५६–५८ ॥ इसप्रकार संसारकी अनित्यता तथा असारता जानकर तुझे मोक्षका शाश्वत सुख प्राप्त करनेके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। सन्मार्गके आचरणमें रक्त

हुए तथा कृत्रिम क्षणस्थायी सुखोंसे विरक्त हुए तुझको मैं नियमानुसार रोक भी नहीं सकती हूं कि, दीक्षा मत ले ॥ ५६–६० ॥ बल्कि मैं स्वयं ही स्नेहको छोड़कर तपोवनमें प्रवेशकरती हूं, जो संसार रूपी समुद्र से पार करनेके लिये जहाजके समान है। हे वत्स! इतने समयतक मैं जो सुखमें लवलीन होकर घरमें रहती थी, सो केवल तेरे मोहहीसे रहती थी और कोई दूसरा कारण नहीं था ॥ ६१–६२ ॥

माताके ऊपर कहे हुए वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारको संतोष हुआ। फिर उसने अपनी स्त्रियोंसे कहा, हे स्त्रियो! मेरे हितकारी वचन सुनो। यह जीव दुःखसे भरे हुए संसारमें चिरकाल तक भ्रमण करके किसी प्रकार दैवयोगसे मनुष्यजन्म पाता है। और उसमें भी उच्च कुल में जन्म पाना तो बहुत ही कठिन है। करोड़ों भवोंमें भी नहीं मिलता है। इसके सिवाय सुकुलमें जन्म पाकर भी राज्यका तथा धन वैभवका पाना अतिशय कठिन है। सो संसारमें जितनी बातें दुर्लभ थीं, मैंने उन सबको पा ली हैं, अर्थात् मनुष्यपर्याय, यदुवंश जैसे श्रेष्ठ कुलमें जन्म, बड़ी भारी राज्यविभूति, विद्या, बल आदि सब कुछ मैं पा चुका हूं। अब मेरा जो यथार्थ कर्तव्य है, उसके करनेका यत्न करता हूं। अर्थात् मोक्षसुखकी देनेवाली जिनभगवानकी दीक्षा लेता हूं। सो इस विषय में अब तुम्हे मुझको रोकना नहीं चाहिये ॥ ६३–६८ ॥ यह प्राणी स्त्रियोंके लिये ऐसा कौनसा कार्य है, जो नहीं करता है? निरन्तर विषयोंमें विह्वल रह कर आखिर वह मौतके मुंहमें जा पड़ता है। स्त्रियोंके लिये धनकी आवश्यकता होती है, और धन पानेकी इच्छासे लोग ऐसे युद्धमें भी प्रवेश करनेसे नहीं डरते हैं, जो हाथी, घोड़ों और रथोंसे सघन होता है, तथा जिसमें रक्तकी नदियां बहती हैं। धन के लोभसे अनेक लोग व्याघ्र सिंह आदि हिंसक जानवरोंसे भरे हुए भयंकर वनों में तथा विंध्याचल जैसे पर्वतोंमें प्रवेशकरनेमें नहीं हिचकते हैं। और उसी धनके लिये जो कि स्त्रियोंके भोगनेके लिये आवश्यक होता है, लोग अत्यन्त गहरे तथा मच्छ-कच्छ आदि जीवधारियोंसे भरे हुए समुद्रमें भी प्रवेश करते हैं। अधिक कहनेसे क्या? सारांश यह है कि, ऐसा कोई भी दुष्कर कर्म नहीं है, जिसे मनुष्य स्त्री और धनके लिये नहीं करता है ॥ ६६–७३ ॥

तुम्हारे सबके साथ मैंने निरन्तर अनेक प्रकार के भोग भोगे, तौ भी उनसे तृप्ति नहीं हुई। ऐसी अवस्थामें जब कि विषय भोगोंसे तृप्ति ही नहीं होती है, अधिक २ अभिलाषा बढ़ती है, घर में किस लिये रहूं ? अब मैं जिनेन्द्रभगवानके तपोवनमें जाना चाहता हूं। सो तुम सबको मुझपर क्षमाभाव धारण करना चाहिये। मेरी सबके प्रति क्षमा है ॥ ७४–७५ ॥

प्रद्युम्नके इसप्रकार रागरहित वचन सुनकर रति आदि रानियां दुःखके मारे व्याकुल हो गईं। संसारसे किंचित् विरक्त होकर और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर वे बोलीं, हे नाथ! आप ही हम सबके शरण हैं। आप ही हमारे आश्रयभूत हैं, और आप ही हमारे मित्र तथा हितकारी बंधुवर्ग हैं। सुखदुःख जो कुछ है, हम सब आपके साथ ही भोगनेवाली हैं। जब आपके साथ हमने भोग भोगे हैं, तब आपके ही साथ दीक्षा लेकर पवित्र तप भी करेंगी, जिसके प्रभावसे हे विभो! देवलोकमें उत्पन्न होवेंगी और आपके प्रभावसे वहांके अपूर्व सुख भोगेंगी। हे नाथ! आप प्रसन्नतासे कर्मोंका विनाश करनेवाली जिनदीक्षा ग्रहण करैं। आपके साथ हम भी जिन भगवानके दिये हुए व्रत ग्रहण करती हैं। और यदि भोगोंमें लुब्ध होकर हे राजन्! आप घरमें रहना चाहैं, तो रहिये, हम भी आपके साथ रहकर सुख भोगैं और आपके प्रसादसे नेमिनाथ भगवानकी बन्दना करैं। परन्तु हे प्रभो! यह संसार असार है। इसका स्वरूप समझकर इसे छोड़ दीजिये। अवश्य छोड़ दीजिये। हम सब जिसका जय नहीं हो सकता है, ऐसे विभूतिमें मत्सर हुए रागको छोड़ करके, काम शत्रुको नष्ट करके, स्वरूपमें चित्तको लगाकरके और श्रीमती राजीमतीके निकट शुद्ध एक वस्त्रको धारण करके आर्यिकाओंका उत्कृष्ट तप करैंगी ॥ ७६–८६ ॥

इसप्रकार शान्तिताके तथा वैराग्यके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने अपनी स्त्रियोंसे छुटकारा पाकर मानों उसीसमय समझ लिया कि, हम संसाररूपी पींजरेसे निकल आये। जिन बहुतसे राजपुत्रोंको प्रद्युम्नने स्वयं अपने साथ रखकर बालकपनसे बड़े किये थे, उनके साथ हाथीपर

आरूढ़ होकर वे घरसे निकल पड़े। नगरके लोगोंने उन्हें बड़े प्रेमसे देखा। नानाप्रकारके वाक्योंसे वे सब उनकी प्रशंसा करने लगे। कोई बोला कि, सर्व शत्रुओंका मर्दन करनेवाला श्रीकृष्णनारायणसरीखा जिसका पिता है, तीनलोककी सुन्दरी स्त्रियोंके रूपको जीतनेवाली जगत्प्रसिद्ध रुक्मिणीमहाराणी जिसकी माता है, सौराष्ट्र देशका इन्द्रके समान जिसका राज्य है, देव दुर्लभ और उपमारहित जिसका रूप है, रूपतथा लावण्यसे भरीं हुईं सुलक्षणा तथा कला विज्ञानकी जाननेवाली जिसकी अनेक स्त्रियां हैं, वह प्रद्युम्नकुमार इस प्रकार सम्पूर्ण सुखोंके उपस्थित होते हुए भी तपस्या करनेको उद्यत हुआ है, सो अब इससे अधिक क्या चाहता है? ॥ ८७–९२ ॥ यह सुनकर कोई चतुर पुरुष बोला, सुनो, यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका पारगामी प्रद्युम्नकुमार कृत्रिम सुखोंको छोड़कर लोकातीत, सारभूत, और जन्मजरामरणरहित, मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे तप करनेको उद्यत हुआ है। इसका हृदय वैराग्यसे शोभायमान हो रहा है। अविनाशी सुखके पानेको वांछा कर रहा है। इसप्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए लोग प्रद्युम्नकुमारसे बोले, "हे गुणसागर! जयवन्त होओ! चिरकाल तक जियो! बढ़ो! और संसारकी अनित्यताका निरन्तर स्मरण करते हुए अपनी आत्माका कल्याण करो!" लोगोंके इसप्रकार आशीर्वादरूप वचन सुनते हुए प्रद्युम्नकुमार गिरनार पर्वतपर पहुंच गये ॥ ९३–९८ ॥

वहांपर उन्होंने मानस्तंभोंसे युक्त भगवानका समवसरण देखा। उसके आंगनके पास पहुँचते ही उन्होंने हाथीपरसे उतरकर राजवैभवकी छत्र चँवर आदि विभूतियां छोड़ दीं। पूर्वमें पाये हुए सोलह लाभोंको तथा सबकी सब विद्याओंको स्त्रियोंके समान त्याग दीं। विद्याओंको छोड़ते समय उसने क्षमा मांग ली। इसके पश्चात् प्रद्युम्नने अपने सब इष्टजनोंसे वारंवार क्षमा कराके समवसरणमें प्रवेश किया, जो आते हुए सुर और असुरोंसे संकीर्ण हो रहा था। वहां भगवानको नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए कहा, "हे नाथ! आप भव्य पुरुषोंको संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले हो, वरदानके देनेवाले हो, और भक्तजनोंके कष्टको दूर करनेवाले हो। हे जिनेन्द्र! मुझे कृपा करके जन्ममरणकी नाश

करनेवाली दीक्षा दो।" यह कहकर प्रद्युम्नकुमारने जो कुछ वस्त्र आभूषण पहिन रक्खे थे, वे भी सब उतार दिये, पांच मुष्ठियोंसे अपने सिरके केश उखाड़कर फैंक दिये। और समस्त सावद्य योगके उत्पन्न करनेवाले परिग्रहको छोड़कर बहुत से राजाओंके साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली। मोक्षके प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला वह गुणवान कुमार संसारसे अतिशय विरक्त हो गया ॥ ९९–१०८ ॥

उसीसमय भानुकुमारने भी वैराग्यके रंगमें रंगकर, माता पिता तथा बंधुजनोंसे आज्ञा लेकर और अपनी समस्त राज्यविभूतिको छोड़कर अनेक राजपुत्रोंके सहित निर्मल जिनदीक्षा ले ली। भानुकुमारके दीक्षा लेनेसे श्रीकृष्णजी आदि सबही दुःखी हुए ॥ ९–११ ॥

इसके अनन्तर सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बुवती, आदि रानियोंने भी भगवानकी सभामें जाकर श्रीमती राजीमती आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। उन सब स्त्रियोंके हृदयसे रागभाव धुल गये थे। श्वेत साड़ी धारण करके वे घोर तपस्या करनेके लिये तत्पर हो गईं ॥ १२–१४ ॥

प्रद्युम्नकुमार चारित्र धारण करके उत्कृष्ट तप करने लगा। स्वजन और परिजन उसकी बन्दना करने लगे। जगतका हित करनेके लिये वह सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान सौम्य गुणका धारक हुआ ॥११५॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीनहिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्न भानुकुमार और आठ पट्टरानियोंकी दीक्षाका वर्णनवाला पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अथ षोडशः सर्गः।

प्रद्युम्न मुनिको वैराग्यसे विभूषित, तपरूप लक्ष्मीसे शोभित, और घोर तपस्या करते हुए देखकर श्रीकृष्ण बलदेव आदि मोहके वश दुःखी होकर द्वारिकाको लौट आये और अपने कामकाजमें लग गये ॥ १–२ ॥

इधर कामदेव मुनि मुनियोंसे भी जो कठिनाईसे किये जाते थे, ऐसे तप करने लगे। सम्यग्दर्शन

ज्ञान और चारित्र संयुक्त होकर देव गुरु शास्त्रकी त्रिधा भक्ति करते हुए उन्होंने अनेक लब्धियां प्राप्त करलीं। उनके पारणे एक दिनके अन्तरसे दो दिनके अन्तरसे तीन चार पांच आठ पन्द्रह दिन और महिने २ के अन्तरसे होते थे। अर्थात् वे एकसे लेकर महीने २ तकके उपवास करते थे। वे रागद्वेषसे रहित थे, परन्तु गुणरूपी संपतिसे रहित नहीं थे। कामक्रोधादिक कषायोंको उन्होंने नष्ट कर दी थीं। विषयोंसे वे सर्वथा निष्पृह थे। जिनागममें जो मुनियोंके आहारके लिए ३२ ग्रास कहे हैं, उन्हें घटाते बढ़ाते हुए नाना भेदरूप ऊनोदर तप करते थे। अर्थात् कभी एक ग्रास लेते थे, कभी दो ग्रास लेते थे, इसतरहसे तीन चार आदि ३२ ग्रास पर्यन्त आहार करते थे। इसके सिवाय जैनशास्त्रोंमें जो सिंहविक्रीड़ित, हारबंध, वज्रबंध, धर्मचक्र, बाल(?) आदि नानाप्रकारके कायक्लेश तप कहे हैं, उनको भी वे पवित्र मुनि करते थे। गुड़, घी, तैल, दही, दूध, शक्कर, नमक, आदि रस उन्होंने छोड़ दिये थे। सम्पूर्ण दोषोंसे रहित, और पापारंभवर्जित शुद्ध आहार, विरक्तचित्तसे केवल शरीर की रक्षा करनेके अभिप्रायसे करते थे। प्रद्युम्नकुमारने जैसा तप किया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥ ३–१३ ॥

जहांपर मृगादि जीवधारी नहीं होते थे, ऐसे उत्तम और प्रासुक स्थानमें प्रद्युम्नकुमार मुनि विविक्तशय्यासन नामक तप करते थे। वर्षाकालमें जब घोर वर्षा होती थी, वृक्षके नीचे दुस्साध्य स्थानमें तीन प्रकारका योग धारण करके निश्चल हो जाते थे। जब शीतकाल आता था, कठिन जाड़ा पड़ता था, तब रातको नदीके किनारे वे धीरवीर ध्यानमें स्थिर हो जाते थे। इसी प्रकारसे जब ग्रीष्मका समय आता था, दुस्सह गर्मी पड़ती थी, तब पर्वतके शिखरपर जाकर जलती हुई शिलापर बैठकर तप करते थे और कठिन ताप सहन करते थे ॥ १४–१७ ॥

प्रमादसहित मन वचन कायसे तथा उनके भेदाभेदोंसे अर्थात् मनवचनसे मनकाय से कायवचन आदिसे जो पाप तथा अतीचार होते थे, उनके रोकनेके लिये उन प्रमाद रहित मुनीश्वरने बाह्य कायक्लेशादि योगसे और अन्तरंग मनोनिग्रह आदिसे घोर तपश्चरण किया। अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय

तथा साधुओंकी आलसरहित होकर भक्ति की। सम्यक्त्वसे शोभित और विनयसे विभूषित होकर ऋषि-मुनियोंका भक्तिपूर्वक दशप्रकारका वैयावृत्य किया। जिनेन्द्र भगवानके मुखसे निकला हुआ, पद अक्षरादि संयुक्त, और बड़े भारी विस्तारवाला द्वादशांग श्रुतज्ञान, दया संयम और क्षमाके धारण करनेवाले उन प्रद्युम्नमुनिने गुरुभक्तिमें तत्पर रहकर युक्तिपूर्वक पढ़ा ॥ १८–२३ ॥

बाह्य और अन्तरंगरूप सर्व परिग्रहको छोडकर शरीरका किसी भी प्रकारका संस्कार उन्होंने नहीं किया। शरीरमें उनको ऐसी निरादरबुद्धि हो गई कि, उसको ओर उनका किंचित् भी लक्ष्य नहीं रहा। आर्त रौद्रादि ध्यानोंको उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया और धर्मध्यान शुक्लध्यानको वे आदरपूर्वक करने लगे। प्रतिक्रमण वन्दना आदि छहप्रकारके आवश्यकोंको उन्होंने नियम पूर्वक किया। रातको वे निरन्तर मौन-पूर्वक कायोत्सर्ग धारण करके रहे। लोगोंके भयंकर आक्षेपोंसे, ताड़नाओंसे, आदररहित वचनोंसे, और अपमानसे उन क्षमाधारी विवेकी मुनीश्वर का अन्तःकरण जरा भी चलित नहीं हुआ–मेरुके समान अचल रहा ॥२४–२८॥ चलनेमें, लेटनेमें, बैठनेमें, भोजनमें, देखनेमें, विचारने तथा पठनपाठनमें वे शान्त-हृदयवाले तथा उत्तम चेष्टाके धारण करनेवाले योगी उत्कृष्टमार्दवगुणको धारण करते हुए शोभित हुए। अर्थात् उनके सम्पूर्ण बर्तावोंमें कोमलता निरभिमानता दिखलाई देती थी ॥२९–३०॥ वे उत्कृष्ट आर्जवगुणके धारण करनेवाले मुनि मन वचन और कायके पृथक् करनेका चिन्तवन करते थे। अर्थात् आत्माको मन वचन कायसे पृथक् ध्यान करते थे। धीरपुरुषों के अगुए, पराक्रमी और बड़े २ योगी जिनकी वन्दना करते थे, ऐसे वे योगी निरन्तर विचार करते थे कि, आत्मा न्यारा है—शरीर न्यारा है। और उत्तम शौच, उत्तम संयम, तप, त्याग, सत्य, शरीरमें भी निर्लोभिता (आकिंचन), और ब्रह्मचर्य्य इन जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए धर्मोंको जो कि मोक्षमार्गका आदेश करनेवाले, संसारसमुद्रके सोखनेवाले, सच्चे, और सम्पूर्ण गुणोंवाले हैं, धारण करते थे ॥ ३१–३५ ॥

जिसप्रकार राज्यावस्थामें सम्पूर्ण रिपुओंको जीत लिया था, उसी प्रकारसे उन्होंने क्षुधा तृषादि ऐसी

कठिन परिषहोंको जीतीं, जिन्होंने कि अन्य लोगोंको जीत लिया था, जो विषम थीं, क्षुद्र लोगोंको ठगनेवाली थीं, और पापी तथा छली लोगोंकी प्यारी थीं ॥ ३६–३७ ॥

जो कामकुमार पहले वृन्त रहित फूलोंकी कोमल मशहरीदार शय्यापर तकिया लगाकर शयन करते थे, वे ही प्रद्युम्नमुनि अब साधुवृत्तिसे तिनके और कंकड़ चुभानेवाली खाली जमीनका सेवन करते हैं। पहले सफेद छत्रादिकोंसे जिन्हें धूप नहीं लगने पाती थी, तथा उष्णताके निवारण करनेके लिये जो चन्दनका लेप करते थे, वे ही अब ध्यानी तथा योगी होकर पर्वतके मस्तकपर खड़े होकर संसारका क्षय करनेके लिये सूर्यकी तीव्र किरणोंका आताप सहन करते हैं। जो पहिले कामिनियोंके कोमल हाथोंके बनाये हुए, छहरसयुक्त, अत्यन्त स्वादिष्ट, उत्तमोत्तम व्यंजनोंका भोजन करते थे, वे ही अब उपवासोंसे अपने शरीरको क्षीण करके कोदोंका (कोद्रवका) भी आहार लेते हैं। पहले जिनकी अनेक राजा सेवा करते थे, और जिन्होंने सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मीको छोड़कर तपोवनका आश्रय लिया था, वे ही मौनी ध्यानी अब मुनियोंके नाथ होकर पृथ्वीपर विहार करते हैं। देवोंके राजा भी उनकी वन्दना करते हैं। और जिन्होंने विद्याधर तथा भूमिगोचरी राजाओंकी अनेक कन्याओंके साथ विवाह करके उनके साथ चिरकालतक भोग भोगे थे, और उद्वेगसे सबका त्याग करके दीक्षा ली थी, उन्होंने कान्ति, कीर्ति, क्षमा, बुद्धि और दया रूप स्त्रियोंका त्याग नहीं किया! आचार्य कहते हैं कि, इसमें हमको अचरज मालूम पड़ता है ॥३८–४७॥ जो रसिक कामकुमार सम्पूर्ण राजाओंके शृंगाररूप अचरजकारी सोलहों आभरण धारण करते थे, वे ही अब द्वादशांगरूपी शृंगारसे विभूषित ऐसे वीतराग हो गये हैं, कि उनकी कामचेष्टाके अस्तित्वका लोग अनुमान भी नहीं कर सकते हैं—नहीं जान सकते हैं। जिन्होंने अपने पहले दिन सुन्दर स्त्रियोंके गीत नृत्योंमें तथा ततसे लेकर सुषिर पर्यन्त नाना प्रकारके बाजोंमें मोहित होकर बिताये थे, वे ही योगीश्वर अब धर्मध्यानके रसमें मग्न होकर ऐसे गहनवनोंमें समय व्यतीत करते हैं, जहां श्याल सिंह आदि जानवरोंके शब्दोंसे भय मालूम होता है। जो पहले हाथियों, घोड़ों, चन्द्ररथके समान रथों और सेवकों

से सेवित होकर अपनी लीलासे भ्रमण करते थे, वे ही अब तीन गुप्तिपरायण योगीश्वर होकर आत्म-ध्यानमें अतिशय लवलीन हुए पवित्र पृथ्वीपर विहार करते हैं। जो चतुरा पंडिता स्त्रियोंके साथ गाथा, दोहा, आदि मनोहर छंदोंमें सरस स्नेहयुक्त सत्यासत्य भाषण करते थे, वे ही अब सब जीवोंपर दया करनेवाले योगी होकर शास्त्रानुसार हितकारी परिमित उपदेश देते हैं ॥ ४८–५५ ॥ जो पहले सोने तथा रत्नादिके पात्रोंमें स्त्री पुत्रादिकोंके सहित षट्रस भोजन बड़े विनोदके साथ करते थे, वे ही अब सब प्रकारके दोषोंसे रहित, त्रिशुद्धिसहित, जिनभगवानकी कही हुई विधिके अनुसार, केवल शरीर पिंडकी रक्षाके लिये आहार लेते हैं। जो पहले सर्वगुणसम्पन्न, मनके हरनेवाले, प्राणप्यारे, चंचल, और भोले पुत्रोंके साथ स्नेहपूर्वक रमण करते थे, वे ही अब एकाकी, निष्प्रह, तथा शान्त होकर परम वैराग्यको धारण करते हुए निर्जनवनमें निवास करते हैं, जहां एक उनका एक चित्त ही सहायक है। जो काम-कुमार मदोन्मत्त तथा अगणित सेनायुक्त शत्रुओंका गर्व गलित करते थे, वे ही अब दयावान और जितेन्द्रिय होकर छह कायके जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर रहते हैं और संसारको अपने समान देखते हैं। राजमार्गके आश्रयसे जो पहले प्राणियोंके घात करनेवाले भयकारी सत्यतारहित (सावद्य वचनको भी असत्य माना है) वचन बोलते थे, वे ही अब चार प्रकारके सत्यसे पवित्र हुए, मनोहर, हितकारी और जिनेन्द्रदेवके मुखसे उत्पन्न हुए सद्वचन बोलते हैं। पहले राज्य करते समय पापके भयसे रहित तथा उन्मत्त होकर जो बलपूर्वक दूसरोंकी द्रव्य तथा कन्या आदि छीन लेते थे, वे ही अब दूसरेके धनको तिनके समान समझते हैं। उसे मन वचन कायसे कभी ग्रहण नहीं करते हैं। गृहस्थावस्थामें जिन्होंने स्त्रियादिकोंके साथमें पंचेन्द्रियोंको सुखके देनेवाले नानाप्रकारके मनोहर भोग भोगे थे, वे ही अब राग रहित होकर उन भोगसुखोंका मनसे भी कभी स्मरण नहीं करते हैं। उनके चिन्तवनको भी शीलका नाश करनेवाला समझते हैं। पूर्वमें जो प्रभुताके रसमें छके हुए धन, धान्य, रत्न, हाथी, घोड़ा, तथा सुवर्णादिसे तृप्त नहीं होते थे, वे ही अब सब झगड़ोंसे मुक्त होकर और समस्त परिग्रह छोड़कर,

अन्तरात्माके रसमें रंगे हुए रहते हैं। अपने शरीरमें भी उन्हें मोह नहीं है ॥ ५६–६९ ॥

तीन प्रकार की गुप्ति और पांच प्रकारको समितियोंको पालते हुए वे धीर योगीश्वर गंभीर समुद्रके समान शोभित होते हैं। यशके बड़े भारी गृहस्वरूप उन कामकुमार मुनिने दुस्सह तप किया, और चारित्रका पालन किया। जो धीरवीर तथा बुद्धिवान हैं, तपोवनका सेवन उन्हींके लिये युक्त है कायर तथा कुबुद्धियोंके लिये नहीं ॥ ७०–७२ ॥

श्रीप्रद्युम्नकुमार योगीन्द्र जो कि शुद्धबुद्धि और पापरहित थे, ग्यारहवें दिन* गिरनार पर्वतके एक ध्यानयोग्य वनमें पहुंचे। वहांपर उन्होंने अपने सम्यग्दर्शनकी सामर्थ्य से दर्शनके नाश करनेवाले दर्शन मोहनीय कर्मका घात किया। फिर उसी रमणीकवनके एक आम वृक्षके नीचे जन्तु रहित निर्मल शिला-पर वे पृथ्वीके समान क्षमावान मुनि पर्यंकासन योगसे विराजमान हुए। और चित्तको निरोध करके ध्यान करने लगे। नरकके कारणभूत रौद्र ध्यानको और तिर्यंच गतिके कारणभूत आर्तध्यानको छोड़ करके वे मुनिराज धर्मध्यानके बलसे मनको स्थिर करके और नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमा करके आ-त्माके विचारमें लवलीन हुए। फिर क्रमक्रमसे जैसे २ कर्मशुद्धि होती गई, तैसे २ प्रमत्तादि गुणस्थानोंसे निकलकर ऊपर चढ़े। तथा चित्तका निरोध करके वे महामुनि उनके ऊपर श्रेणी आरोहण करनेके लिये उद्यत हुए। आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानमें आकर और क्रमसे उसको भी उल्लंघन करके नवमें अनिवृत्ति-करणमें स्थिर हुए। उसके पहले आधे भागमें उन्होंने सोलह कर्मप्रकृतियोंका क्षय किया+। वे प्रकृतियां ये हैं:–१ निद्रानिद्रा, २ प्रचलाप्रचला, ३ स्त्यानगृद्धि, ४ नरकगति, ५ नरकगत्यानुपूर्वी, ६ तिर्यंचगति,

+ ऊपर कहा है कि, प्रद्युम्नमुनिने गर्मीमें वर्षामें शीतमें कठिन २ परिषहैं सहीं और यहां ग्यारहवें ही दिन केवल ज्ञान होना कहा है! सो हमारी समझमें ऊपरका कथन सामान्य मुनियोंकी अपेक्षा है कि, मुनि शीत वर्षाकी ऐसी २ परीषह सहते हैं। प्रद्युम्नने तो केवल ११ दिन ही तपस्या की है।

*इन श्लोकोंमें प्रकृतियोंका क्रम ठीक २ नहीं दिया था। इसलिये हमने ग्रन्थान्तरोंसे स्पष्टकरके लिखा है।

७ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, ८ उद्योत, ९ आतप, १० एकेन्द्री, ११ साधारण, १२ सूक्ष्म, १३ स्थावर, १४ द्वीन्द्रिय, १५ त्रेन्द्रिय, और १६ चतुरिन्द्रिय। दूसरे भागमें प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ और अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ इन आठ प्रकृतियोंका घात किया। तीसरे भागमें नपुसंक वेद प्रकृतिका, चौथेमें स्त्रीवेद प्रकृतिका, पांचवेंमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जगुप्सा, तथा पुरुषवेदका और छठे सातवें आठवें भागमें क्रमसे संज्वलन क्रोध मान मायाका नाश किया। इसके पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें संज्वलन लोभ प्रकृतिका घात किया, और बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थानमें सम्पूर्ण घातिया कर्मोंका नाश किया। इसमें ज्ञानावरणीकी ५, दर्शनावरणीकी ४, अन्तरायकी ५, निद्रा और प्रचला इसप्रकार सोलह प्रकृतियोंका विच्छेद होता है ॥ ७३–८७ ॥ इसके अनन्तर, आदि अन्तरहित, अज्ञानहीन, और सर्वांगसुन्दर तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश किया—तथा जिसका कभी नाश नहीं हो सकता है, ऐसे लोकालोकको प्रकाश करनेवाले सुन्दर केवलज्ञानको प्राप्त किया। इन्द्रियअगोचर सुखका कारण और आत्माका सच्चा हित जिसमें है, ऐसा यह केवलज्ञान पुण्यहीन पुरुषोंको नहीं होता है ॥ ८८–९० ॥ केवलज्ञान सूर्यका उदय होते ही एक छत्र, दो चँवर, और एक मनोहारी सिंहासन, ऐसी तीन दिव्य वस्तुएं देवोंकी बनाई हुई प्राप्त हुईं। और इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने बड़ी भक्तिसे ज्ञानकल्याणके लिए एक गंधकुटीकी रचना की ॥ ९१–९२ ॥

प्रद्युम्नकुमारका केवलकल्याण जानकर असुरकुमार, नागकुमार आदि भवनवासी, किन्नर आदि व्यन्तरदेव, इन्द्रादि स्वर्गवासी देव, और सूर्य आदि ज्योतिषी देव, आनन्द, भक्ति और धर्मप्रीतिसे भरे हुए गिरनार पर्वतपर आये। इसी प्रकारसे अनेक विद्याधर और भूमिगोचरी राजा अपनी २ स्त्रियों सहित तथा श्रीकृष्ण, आदि यदुवंशी राजा सुन्दर लीला तथा सुन्दर वेषके धारण करनेवाले शम्बुकुमार आदि राजपुत्रों सहित आये। सबने आनन्दके साथ केवली भगवानको प्रणाम किया और जल, गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, और सुन्दर फलादि द्रव्योंसे गीत, नृत्य, वीणा, बांसुरी, मृदंग आदिके साथ २

भक्तिपूर्वक पूजा की। इनके पश्चात् बहुतसे यादव भक्तिके प्रेरे हुए सवारियोंमें आरूढ़ हो होकर आये, पंचाग नमस्कार करके बैठ गये और धर्म श्रवण करने लगे। फिर जिनेन्द्रकथित धर्मका श्रवण करके और यथायोग्य नियम लेकर यादवगण अपने २ घरोंको लौट गये ॥ ६३–१०० ॥

तदनन्तर योगिराज श्रीप्रद्युम्नकुमार जो कि अनेक देवोंसे अथवा विद्वानोंसे घिरे हुए थे, श्रीनेमिनाथ भगवानके साथ विहार करनेके लिये चले और पल्लव देशमें जाकर पहुंचे। उनके साथ रुक्मिणी अर्जिका भी अपनी पुत्रवधू और राजीमती सहित उक्त देशमें पहुंची। शीलवती रुक्मिणी और उसकी बहू एकादश श्रुतज्ञानकी धारण करने वाली हो गई थी। नेमिनाथ भगवान बड़े भारी संघके साथ विहार करने लगे। यहांपर एक दूसरी कथाका सम्बन्ध है:– ॥ १–३ ॥

द्वीपायनमुनि जो कि अन्य देशको चले गये थे, जितनी अवधि बतलाई थी, उतनी बीती हुई जानकर द्वारिकाको देखनेकी इच्छासे और यदुवंशियोंसे यह कहनेके लिये कि, अब तुम्हें डर नहीं रहा, लौट आये। उन्होंने भूलसे समझ लिया कि, बारहवर्ष बीत चुके हैं। परन्तु यथार्थमें उस समय बारह वर्ष पूरे होनेमें कुछ दिन बाकी थे ॥ ४–६ ॥

ग्रीष्मऋतुका समय था। द्वीपायन मुनि यादवोंको अपना तप दिखानेके लिये द्वारिका नगरीके बाहर एक शिलापर विराजमान हो रहे थे। दैवयोगसे उस दिन यादवोंके शम्बुकुमार, भानुकुमारआदि पुत्र गिरनार पर्वतपर क्रीड़ा करनेके लिये गये थे। वहां ग्रीष्मके तापमें तपनेसे उन्हें प्यासने ऐसा सताया कि, वे जलकी खोजमें चारों ओर भ्रमण करने लगे। जिस समय नेमिनाथ भगवानने द्वारिकाके नष्ट होनेकी बात कही थी, उस समय लोगोंने राजाकी आज्ञासे जो शराबके बर्तन फेंक दिये थे, वे पर्वतकी एक खोहमें पड़े थे। वर्षा ऋतुमें जब पानी बरसता था, तब वे जलसे भर जाते थे और उनमें वृक्षोंके नानाप्रकारके फूल हवाके झकोरोंसे झड़कर पड़ा करते थे, और सड़ते रहते थे। इससे वह जल समय पाकर शराबके समान उन्मत्त करनेवाला हो गया था। प्यासके व्याकुल हुए राजपुत्रोंने कुछ भी न

सोचकर वह जल पी लिया। जिससे थोड़ी ही देरमें वे सबके सब मतवाले हो गये। उनके नेत्र नशेके मारे लाल लाल हो गये। नानाप्रकारके गीत गाते हुए, झूठा बकवाद करते हुए, परस्पर लड़ते झगड़ते हुए, जमीनपर लोटते हुए, बाल बिखराये हुए और एक दूसरेके कानसे लगकर झूठी बड़बड़ करते हुए वे सबके सब द्वारिकाकी ओर चले। जिस समय वे द्वारिकाके द्वारपर पहुंचे, उस समय उनकी दृष्टि वहांपर विराजमान हुए क्षीणशरीर मुनिराजपर पड़ी। सो दैवयोगसे उन सबने उन्हें शीघ्र ही पहिचान लिया। श्रीनेमिनाथ भगवानके वचन स्मरण करके कि, इसी मुनिके द्वारा द्वारिका भस्म होगी, वे क्रोधसे उन्मत्त हो गये ॥ ७–१६ ॥ और लाल लाल आंखें करके बोले, नेमिनाथने द्वारिकाका जलानेवाला जिसे बतलाया था, वह यही है। इसलिये इस दुराचारीको द्वारिकाका कुछ अनिष्ट न करनेके पहले ही मार डालना चाहिये। ऐसा कहकर उन दुष्टोंने पत्थरोंसे मारना शुरू किया, सो तबतक मारा, जब तक द्वीपायन मुनि जमीनपर नहीं गिरे। परन्तु इतना कष्ट सहनेपर भी मुनिने जरा भी क्रोध नहीं किया। अपने परिणामोंको सम्हालकर शान्त हो रहे। राजकुमार इतनेपर भी नहीं माने। उन्होंने मुनिके मस्तकपर मातंगसे (चाण्डालसे) पेशाब करवाई ॥ १७–२० ॥ इस नीच कृत्यसे मुनिराज को बड़ा ही क्रोध आया। पत्थरों की चोट से वे पृथ्वीपर गिर पड़े थे। और प्राण उनके कंठगत हो रहे थे। उन्हें ऐसी अवस्था में छोड़कर राजकुमार नगरीको चले गये ॥ २१ ॥

इस अनर्थकी खबर श्रीकृष्ण तथा बलभद्रके पास पहुंची। सुनते ही वे शीघ्र ही वहां दौड़े हुए आये, जहां द्वीपायनमुनि पड़े हुए थे। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करके वे बोले, हे भगवन्! हम लोगों से जो कुछ हीनकर्म हो गया है, उसके लिये क्षमा करो! क्षमा करो!! आप क्षमाके धारण करनेवाले योगीन्द्र हैं, इस लिये हे प्रभो! मूर्ख बालकों ने जो कुछ दुष्कर्म किया है, उसके लिए क्षमा करो ॥ २२–२४ ॥ यह सुनकर द्वीपायन मुनिने दो अंगुलियोंके इशारेसे बतलाया कि, सारी द्वारिका में तुम दोनों को अर्थात् श्रीकृष्ण और बलभद्रको छोड़कर कोई नहीं बचेगा, सब भस्म हो जावेंगे। मुनि के

नेत्र क्रोधके कारण लाल हो रहे थे। उससे उनके चित्तकी दुष्टताको समझकर बलभद्र और नारायण भय से व्याकुल होते हुए नगरी में गये, और सब लोगोंसे बोले, जो जहां कहीं जाकर अपने जीवन की रक्षा कर सके, वह वहां चला जावै। यहां कोई रहेगा, तो उसका अवश्य ही विनाश होगा॥ २५–२७॥

शम्बुकुमार सुभानुकुमार तथा प्रद्युम्नका पुत्र अनुरुद्धकुमार ये तीनों नारायन बलभद्रके वचनों से प्रतिबोधित हो गये। सो उसी समय नेमिनाथ भगवान के चरण कमलोंको शरीर से तथा वचनसे नमस्कार करके गिरनार पर्वतपर चले गये और वहां अपने हाथोंसे मस्तकके केश उखाड़कर तथा लोकदुर्लभ वस्त्राभूषण उतार करके उन्होंने वैराग्यपूर्वक अतिशय उज्ज्वल चारित्र धारण कर लिया ॥ २८–३० ॥

इसके पश्चात् द्वीपायनमुनिके अशुभ तैजस शरीर के निकलने से द्वारिकाके जलने का तथा जरत्कुमार के बाण से श्रीकृष्णजीके मरने आदिका जो वृत्तान्त हुआ है, सो सब श्री 'हरिवंशपुराण' में विस्तारसे कहा है। हमने यहांपर उसे असुंदर तथा दुःखकर समझ के नहीं लिखा है।

वहां श्रीशाम्बकुमार आदि तप करने में तत्पर हुए। आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानको छोड़कर वे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानमें लवलीन थे और नाना प्रकारके तप करते थे कि, इतनेहीमें श्रीनेमिनाथ भगवान विहार करके गिरनार पर्वत पर आ गये। सो उन तीनोंने उनके हाथ से फिरसे दीक्षा ग्रहण की। और छह प्रकार का अन्तरंग तथा बारह प्रकारका बाह्य तप ग्रहण किया ॥ ३१–३४ ॥

वे गुणोंके घर, शीलों की लीला से प्रकाशमान, और इच्छारहित मुनि दुस्सह तप करने लगे। जहां सूर्य अस्त हो जाता था, वहांपर प्रासुक भूमि देखकर विराजमान हो जाते थे अर्थात् रात्रिको कहीं गमन नहीं करते थे। और जैन मुनियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंका पालन करते थे। हेमन्त ऋतुमें अर्थात् जाड़ेके दिनोंमें बाहर खुली जगहमें अथवा वायु और शीतके स्थानमें स्थिर रहकर वे वैरागी मुनि रात व्यतीत करते थे, ग्रीष्मऋतुमें जब लोग पसीनेसे व्याकुल होते हैं, पर्वतके मस्तकपर चढ़कर योग धारण करके सुखसे समय बिताते थे, और वर्षाकालमें वृक्षके नीचे स्थिर होकर धर्मरसका आस्वादन करते हुए

कष्ट नहीं मानते थे। इसके सिवाय वे धीर वीर गुणी, तथा योगी मुनि मुक्तावली, रत्नावली, द्विकावली, सिंहविक्रीड़न, सर्वतोभद्र, आदि नाना प्रकारके तप करते थे ॥ ३५–४१ ॥

उन मुनियोंने निदान चौदहवें वर्षमें पर्यंकासन योगसे घातिया कर्मोंका क्षय किया। और क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर तथा कर्मोंके बड़े भारी समूहको नष्ट करके लोक अलोकका प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया॥ ४२–४३ ॥ नेमिनाथ भगवानने इन तीनों केवलियोंके साथ पृथ्वीतलमें बहुत समयतक विहार किया। और भव्य जीवोंको प्रतिबोध करके, जिनधर्मका प्रकाश करके, लोगोंके हृदयमें पैठे हुए मोहान्धकारको नष्ट करके, और स्वर्ग मोक्षके देनेवाले धर्मका उपदेश करके सुर असुरोंसे पूजनीक गिरनार पर्वतको अपने चरणोंसे फिर पवित्र किया। सुर, असुर, विद्याधर, भूमिगोचरी आदि पद पदपर उनकी वंदना करते थे। वहां पर अर्थात् गिरनार पर्वतपर आकर वे सिद्धशिलापर विराजमान हुए और पर्यंकासन योगसे चार अघातिया कर्मों और उनकी प्रकृतियोंको नष्ट करके जन्ममृत्यु जरारहित सिद्ध स्वरूपको प्राप्त हुए। उनके साथ शाम्बकुमार, भानुकुमार और अनुरुद्धकुमार भी मोक्षको प्राप्त हो गये॥ ४४–४८ ॥

गिरनार पर्वतपर तीन शिखर हैं। उनमेंसे पहले शिखरको अनुरुद्धकुमारने, दूसरेको शाम्बकुमारने और तीसरेको प्रद्युम्नकुमारने पवित्र किया। अर्थात् उक्त शिखरोंपरसे उनका निर्वाण हुआ। इस प्रकारसे गिरनार पर्वतके तीनों शिखर शोभित हुए। उक्त मुनियोंके मोक्ष होनेके दिनसे ही गिरनार पर्वत सिद्धक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ और सुर असुरोंके द्वारा पूजा जाने लगा॥ ४९–५१ ॥

श्रीनेमिनाथ, प्रद्युम्नकुमार आदि मुनि जहाँ जहाँसे मुक्त हुए थे, वहांपर इन्द्रआदि देवोंने आकर उनके बचे हुए शरीरको (नखकेश आदिको) पवित्र चन्दनके संयोगसे दग्ध किया। इसके पश्चात् मोक्ष कल्याणको आये हुए वे सब देव पर्वतके तीनों शिखरोंपर हर्ष भक्ति और श्रद्धापूर्वक भगवानकी पूजा करके तथा गीत नृत्यादिक करके बड़ी भारी विभूतिके साथ अपने २ स्थानको चले गये॥ ५२–५५ ॥

अन्तमंगल।

जो केवलज्ञानसे शोभायमान हैं, जिन्हें देवगण नमस्कार करते हैं, जो निर्मल सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, जो क्षुधा, तृषा, राग, रोष आदि दोषोंसे रहित हैं, भाव मनका अभाव हो जानेसे जिनका द्रव्यमन निश्चल है, और जो जन्म, जरा, मरण, वियोग, त्रास आदिसे रहित हैं, वे अरहंत भगवान निरन्तर मंगल करें और मेरे पापोंका नाश करें ॥ ५६ ॥ जहां आशाको फांसी नहीं है, घरद्वार नहीं है, जन्म मृत्यु नहीं है, स्त्री बन्धु, स्वजन, परिजन नहीं हैं, सुख नहीं हैं, दुख नहीं है, रूप, वर्ण, छोटापन बड़ापन, और स्थूलता सूक्ष्मता नहीं है, उस मोक्षस्थानका आश्रय लेनेवाले अर्थात् मोक्षको प्राप्त हुए मुनिगण मुझे सुख प्रदान करें ॥ ५७ ॥ जिन्होंने दशवां अवतार लेकर तीर्थंकर पद पाया, जो संसार समुद्रसे तारनेवाले हैं, जो यदुवंशियोंमें गुणरूपी रत्नोंके हार हुए हैं, और जो कृष्णवर्ण होकर भी मोह अंधकारको नाश करते हैं, वे श्रीनेमिनाथ भगवान शान्ति करें ॥ ५८ ॥ जन्म होते ही जिन्हें शत्रु हर ले गया, और एक विषम स्थान में शिलाके नीचे दबा गया, फिर कालसंवर विद्याधरने अपने घर ले जाकर जिन्हें पाला, तथा जवान होने पर अनेक विद्या तथा लाभ प्राप्त करके जो पुण्यके प्रभावसे अपने कुटुम्बसे मिले, और अन्तमें जिन्होंने मोक्षकी प्राप्ति की, वे श्रीप्रद्युम्नकुमार हमको विपुल सौख्य देवें ॥ ५९ ॥ श्रीकृष्णनारायणके पुत्र और प्रद्युम्नकुमारके अनुयायी श्रीशाम्बकुमार भी जो कि केवलज्ञान प्राप्त करके गिरनार पर्वतके शिखरसे मोक्ष को सिधारे, मेरे पापोंको नष्ट करें ॥ ६० ॥ श्रीप्रद्युम्नकुमारके रूपवान पुत्र अनुरुद्धकुमार जिनके गुणोंकी उत्कृष्ट कीर्ति देवोंने भी संसारमें विख्यात की, और जिन्होंने गिरनार पर्वतके एक शिखरको अपने मोक्ष-गमनसे प्रसिद्ध किया, मुझे सुख प्रदान करें ॥ ६१ ॥

शास्त्रका माहात्म्य।

इस गुणोंके समुद्र और आनन्दकारी प्रद्युम्नचरित्र नामके ग्रन्थ को जो बुद्धिमान भव्य जीव आदर के साथ सुनते हैं, वे मनुष्यपर्याय तथा देवपर्याय के धन, सौभाग्य, राज्य आदि सुखोंको पा

श्रीप्रद्युम्नचरित्र समाप्त ।

फिर मुनियोंमें श्रेष्ठ होकरके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, तथा अन्तमें पवित्र सिद्धलोकको सिधारते हैं ॥ ६२ ॥

ग्रन्थकर्त्ताकी प्रार्थना।

न मैं निर्मल व्याकरण शास्त्रको जानता हूं, न काव्य जानता हूं, न तर्क आदि जानता हूं, और न अलंकारादि गुणोंसे अलंकृत छन्दोंको भी जानता हूं। मैंने यह पवित्र चरित्र बनाया है, सो किसी प्रकार की कीर्ति आदिकी वांछासे अथवा मानके वशसे नहीं बनाया है, किन्तु पापोंके नाश करनेके लिये बनाया है ॥ ६३ ॥ जो विशुद्ध बुद्धिवाले हैं, शास्त्रोंके पार पहुंचे हुए हैं, परोपकार करनेमें कुशल हैं, पापसे रहित हैं, और भव्य हैं, उन्हें मुझ मन्दबुद्धिके बनाये हुए, गुणसमुद्र कामदेवके इस निर्मल चरित्रको संशोधन करके पृथ्वीपर विस्तृत करना चाहिये अर्थात् इसका प्रचार करना चाहिये ॥ ६४ ॥

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय।

काष्ठासंघके नन्दीतट नामके पवित्र गच्छमें गुणोंके समुद्र श्रीरामसेन नामके आचार्य हुए। फिर उनके पट्टको शोभित करनेवाले और पापोंके नाश करनेवाले रत्नकीर्ति आचार्य हुए। इनके शिष्य लक्ष्मणसेन जो कि शीलकी खानि और सर्व गुणसम्पन्न थे हुए, और उनके पट्टको धारण करनेवाले धीरवीर तथा गुणी भीमसेनसूरि हुए। इन्हीं भीमसेन गुरु के चरणोंके प्रसादसे सोमकीर्तिसूरिने यह रमणीय चरित्र अपनी भक्तिके वशसे बनाया है। भव्य जीवोंको इसे संशोधन करके पढ़ना चाहिये ॥ ६५–६७ ॥*

पौषसुदी त्रयोदशी बुधवार संवत् १५३१ को इस शास्त्रकी रचना पूरी हुई ॥ ६८ ॥

जब तक पृथ्वी है, सुमेरु पर्वत है, जब तक सूर्यका मंडल है, जब तक ग्रहादि तारे हैं, और जब

* दूसरी प्रतिमें ६५–६६ और ६८ नम्बरके श्लोक नहीं हैं।

तक सज्जनोंकी चेष्टा है, तब तक श्रीशान्तिनाथके चैत्यालयमें भक्तिपूर्वक बनाया हुआ यह सुखकारी तथा निर्मल शास्त्र स्थिर रहै ॥ ६९ ॥ जब तक सुमेरु पर्वत, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य और तारागण हैं, तब तक यह पापका नाश करनेवाला चरित्र जयवन्त रहै ॥ ७० ॥ चार हजार साढे आठ सौ श्लोक जिसमें हैं, ऐसा यह प्रद्युम्नचरित्र श्रीसर्वज्ञदेवके प्रसादसे निरन्तर जयवन्त रहै ॥ ७१ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्रसंस्कृतग्रन्थके नवीनहिन्दीभाषानुवादमें श्रीनेमिनाथ, प्रद्युम्न, शाम्ब, तथा अनुरुद्ध आदिके निर्वाणका वर्णनवाला सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ।

[समाप्तोऽयं ग्रन्थः]

